

मारवाड़ का इतिहास

प्रथम भाग

Part I

लेखक

परिचित विश्वेश्वरनाथ रेड

साहित्याचार्य

सुपरिगटैशंडैशट - आर्कियोलॉजीकल डिपार्टमेंशट

और

सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी

जोधपुर.

[कॉरस्पॉण्डिङ्ग मैम्बर-इण्डियन हिस्टोरिकल रेकर्ड्स कमीशन]



954.35

Rev

जोधपुर,

आर्कियोलॉजीकल डिपार्टमेंशट.

१९३८.

जोधपुर, गवर्नमेंशट प्रेस में मुद्रित.

Acc No. 253

Vol. 3

Page No. 1

Book No.

11-8-38

मूल्य रु० ५। सजिल्द

४।। विना जिल्द

ENTOMOLOGICAL

3691.
28.10.55

954.35/Rev

प्राक्-कथन ।

मारवाड़-राज्य राजपूताने के पश्चिमी भाग में स्थित है और इसका क्षेत्रफल राजपूताने की रियासतों से ही नहीं, किन्तु हैदराबाद और काश्मीर को छोड़कर भारत की अन्य सब ही रियासतों से बड़ा है । राव सीहाजी के कन्नौज से आने के पूर्व यहां पर अनेक राज-वंशों का अधिकार रह चुका था और विक्रम की नवीं शताब्दी में यहां के प्रतिहार-नरेश नागभट (द्वितीय) ने कन्नौज विजय कर वहां पर अपना राज्य स्थापित किया था । परन्तु विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में चक्र में परिवर्तन हुआ और कन्नौज के राठोड़-नरेश जयचन्द्र के पौत्र सीहाजी ने आकर मारवाड़ में अपना राज्य जमाया ।

यद्यपि वैसे तो राठोड़-नरेश पहले से ही पराक्रम और दानशीलता में प्रसिद्ध थे, तथापि मारवाड़ के आधिपत्य से इनका प्रताप-सूर्य फिर से पूरी तौर से चमक उठा ।

इसी वंश में राव मालदेव-से पराक्रमी, राव चन्द्रसेन-से स्वाधीनताभिमानी और महाराजा जसवन्तसिंह (प्रथम)-से भारत सम्राट् औरंगजेब तक की अवहेलना करने-वाले नरेश हो गए हैं ।

इसी से किसी कवि ने कहा है:—

बल हट बंका देवड़ा, किरतब बंका गोड़ ।

हाडा बंका गाढ में, रणबंका राठोड़ ॥

चारणों की कविताओं से प्रकट होता है कि जिस प्रकार इस वंश के नरेश वीरता में अपना जोड़ नहीं रखते थे, उसी प्रकार दानशीलता में भी बहुत आगे बढ़े हुए थे । इनके सम्मान और दान में दिए गांवों के कारण इस समय मारवाड़-राज्य का प्रतिशत ८३ भाग जागीरदारों और शासनदारों के अधिकार में जा चुका है ।

इनके अलावा इस इतिहास के पृष्ठ ३६२-३६३ पर दी हुई अपूर्व घटना तो, जिसमें महाराजा रामसिंहजी की सेना ने अपने विरोधी जुल्फिकार की भटकती हुई

प्यासी सेना को युद्ध-स्थल में ही पानी पिलाकर सकुशल अपने शिविर में लौट जाने की अनुमति दी थी, पुराण-कालीन नरेशों के धर्म-युद्ध की याद दिलाती है ।

युद्ध-भूमि के बीच रक्त के प्यासे शत्रुओं की तृपा को शीतल जल से शान्त कर उन्हें बिना बाधा के अपने शिविर में लौट जाने का मौका देने का वर्णन शायद ही किसी अन्य राज्य के इतिहास में मिल सकता है । यह राठोड़-वीरों की ही महती उदारता का उदाहरण है, और इसके लिये 'सहस्रल मुताखरीन' के लेखक सैयद गुलामहुसैन ने राजपूत-वीरों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है । अपने ऐसे वीर और उदार पूर्वजों का, तथा उनके वर्तमान मुख्य राज्य-मारवाड़ का इतिहास लिखवाकर प्रकाशित करने के लिये ही जोधपुर-दरबार ने, वि० सं० १९४४ (ई० सं० १८८८) में, 'इतिहास-कार्यालय' की स्थापना की थी और इसके कार्य-संचालन के लिये मुंशी देवीप्रसादजी आदि कुछ इतिहास-प्रेमी विद्वानों की एक 'कमेटी' बना दी थी । इसके बाद वि० सं० १९५२ से १९६८ (ई० सं० १८९५ से १९११) तक इस कार्यालय का कार्य पाल-ठाकुर रणजीतसिंहजी के और फिर वि० सं० १९७६ (ई० सं० १९१९) तक ठाकुर गुनानसिंहजी खीची के अधिकार में रहा । इसके बाद यह महकमा रीवा-ठाकुर विजयसिंहजी को सौंपा गया । परन्तु वि० सं० १९८३ (ई० सं० १९२६) के करीब उनके इस कार्य से अवसर ग्रहण करलेने पर इसी वर्ष के आश्विन (अक्टोबर) में जिस समय आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट (पुरातत्त्व-विभाग) की स्थापना की गई, उस समय उक्त 'इतिहास-कार्यालय' भी उसी में मिलाया जाकर लेखक के अधिकार में दे दिया गया ।

यद्यपि उस समय तक राजकीय 'इतिहास-कार्यालय' को स्थापित हुए करीब ३९ वर्ष हो चुके थे और राज्य का लाखों रुपया उस पर खर्च हो चुका था, तथापि वास्तविक कार्य बहुत ही कम हुआ था । उस समय के 'रिव्यू-मिनिस्टर' के राजकीय काउंसिल में पेश किए विवरण से ज्ञात होता है कि उस समय तक केवल ६ राजाओं का इतिहास लिखा गया था और वह भी प्राचीन ढंग से लिखा होने के कारण राजकीय काउंसिल ने अस्वीकार कर दिया था । इसके अलावा उस समय तक मारवाड़ में राठोड़-राज्य के संस्थापक राव सीहाजी से लेकर राव चूड़ाजी तक के नरेशों के समय का निर्णय भी न हो सका था ।

ऐतिहासिक सामग्री के संग्रह का यह हाल था कि जो कुछ काम की सामग्री इकट्ठी की जाती थी वह इस महकमे के अहलकारों के निजी संग्रह की शोभा बढ़ाती

(ग-)

थी और महकमे में व्यर्थ की सामग्री का ढेर बढ़ रहा था। अइलकार लोग जागीरदारों से लेकर छोटे से छोटे खेत के मालिक तक को अपना इतिहास पेश करने के लिये दबाते थे, और वे लोग वास्तविक इतिहास के अभाव में, उन्हीं अहलकारों से मन-माना इतिहास लिखवाकर महकमे में पेश कर देते थे।

यद्यपि स्वर्गवासी प्रख्यात वयोवृद्ध राटोड़-वीर महाराजा सर प्रतापसिंहजी की अपने वीर पूर्वजों के इतिहास को लिखवाकर प्रकाशित करवाने की प्रबल इच्छा थी और इसी से उन्होंने कुछ वर्षों के लिये इस 'इतिहास-कार्यालय' को अपने निज के स्थान पर भी रक्खा था, तथापि उनकी वह इच्छा उनकी जीवितावस्था में पूरी न हो सकी।

वि० सं० १९७९ (ई० सं० १९२२) के करीब स्वयं महाराजा प्रतापसिंहजी ने, उस समय के 'इतिहास-कार्यालय' के अध्यक्ष रीयां-ठाकुर राओ बहादुर विजयसिंहजी की उपस्थिति में ही इस इतिहास के लेखक को मारवाड़ का इतिहास तैयार करने में सहायता करने की आज्ञा दी थी। परन्तु इसके बाद शीघ्र ही आपका स्वर्गवास हो जाने से इस विषय में विशेष कार्य न हो सका।

इसके बाद जिस समय यह महकमा लेखक को सौंपा गया, उस समय इसकी यही दशा थी, और यद्यपि इस इतिहास के लेखक को इतिहास-कार्यालय के अलावा, 'सरदार भूजियम' (अजायबघर), 'सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी,' 'आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेंट,' 'पुस्तक-प्रकाश' (Manuscript Library) और 'चण्डू-पञ्चाङ्ग' के कार्यों का भी निरीक्षण करना पड़ता था, तथापि ईश्वर की कृपा से केवल दो वर्षों में ही इस राजकीय इतिहास की रूप-रेखा तैयार कर ली गई, और वि० सं० १९८६ के ज्येष्ठ (ई० सं० १९२९ के जून) से इतिहास-कार्यालय के पुराने अमले में कमी की जाकर दरबार के खर्च में ४,६०० रुपये सालाना की बचत कर दी गई।

वि० सं० १९८५ (ई० सं० १९२९) में जब उस समय का आय-सचिव (Revenue Member) मिस्टर डी. एल. डेक्करोकमैन (I. C. S., C. I. E.), जो आर्कियोलॉजिकल महकमे का भी 'कंट्रोलिंग मेंबर' था, अपना यहां का कार्यकाल समाप्त कर 'युनाइटेड प्रोविंसेज' में वापस जाने लगा, तब उसकी विदाई के भोज में स्वयं महाराजा साहब ने फरमाया था:—

(घ)

“ I must too mention the despatch with which Mr. Drake Brockman has been able to push through the compilation of the long awaited History of Marwar, a task which the Historical Department through its life of three generations showed no signs of accomplishing. ”

अर्थात्-“मैं यह प्रकट करना भी आवश्यक समझता हूँ कि मारवाड़ का वह इतिहास, जिसकी बहुत समय से प्रतीक्षा की जा रही थी और जिसको सरकारी ‘इतिहास-कार्यालय’ तीन पीढ़ी बीत जाने पर भी तैयार नहीं कर सका था, मिस्टर ड्रेकब्रोकमैन की प्रेरणा से शीघ्र ही तैयार हो गया।”

इसके बाद वि० सं० १९१० (ई० सं० १९३३) में ‘आर्कियोलॉजिकल’ महकमे की तरफ से ‘History of Rasttrakutas (Rathodas)’ और इसके अगले वर्ष उसी का हिन्दी संस्करण ‘राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) का इतिहास’ प्रकाशित किया गया। उनमें राव सीहाजी के मारवाड़ में आने से पूर्व का दक्षिण, लाट (गुजरात) और कन्नौज के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) का इतिहास दिया गया था। अब यह उसी का अगला भाग इतिहास-प्रेमियों के सामने उपस्थित किया जाता है। इसमें मारवाड़ के संक्षिप्त प्राचीन-इतिहास के साथ-साथ राव सीहाजी के मारवाड़ में आने से लेकर अब तक का इतिहास दिया गया है।

इस इतिहास को इस रूप में प्रस्तुत करने के कारण जिन लोगों के स्वार्थों में बाधा पहुँचती थी, उनकी तरफ से लेखक पर अनुचित दबाव डालने और शिखण्डियों के नाम से नोटिस-बाजी करने में भी कमी नहीं की गई। इसी सिलसिले में एक समय ऐसा भी आ गया, जब राज्य के कुछ प्रभावशाली लोगों ने षड्यन्त्र रच लेखक को राजकीय सेवा से हटा देने तक का प्रयत्न किया। परन्तु लेखक ने परिणाम की परवा न कर अपना कर्तव्य पालन करने में यथासाध्य त्रुटि न होने दी। अन्त में ईश्वर की कृपा से विरोधियों का सारा ही प्रयत्न विफल हो गया और जिस समय इस घटना की सूचना महाराजा साहब को मिली, उस समय आपने लेखक को बुलवाकर और स्वयं मामले की जाँच कर अपनी प्रसन्नता और सहानुभूति प्रकट की।

यहां पर यह प्रकट कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि इस इतिहास का अधिकांश भाग ई० सं० १९२७ से ही समालोचना के लिये हिन्दुस्तानी, सरस्वती, सुधा, माधुरी, विशालभारत, वीणा, चाँद, क्षत्रियमित्र आदि हिन्दी की प्रसिद्ध-प्रसिद्ध

(६)

पत्रिकाओं में प्रकाशित किया जाने लगा था, इसी से इस पुस्तक के संग्रहण में विकल्प-रूप से लिखे जा चुके शब्दों में कहीं कहीं भिन्नता रह गई है ।

इसके अलावा इस इतिहास में कहीं-कहीं पुरानी ख्यातों में मिलने वाले श्रावणादि (श्रावण मास से प्रारम्भ होनेवाले) संवत्तों को चैत्रादि (चैत्र पुदि से प्रारम्भ होने वाले) संवत्तों में परिवर्तन कर लिखना छूट गया था, इसी से शुद्धि-पत्र नं० १ में यह संशोधन दे दिया गया है । परन्तु इसमें के राजाओं के चित्रों के नीचे जो राज्यवर्ष दिए गए हैं वे चैत्रादि संवत्तों में ही हैं ।

इस इतिहास के लिखने में जिन-जिन मुद्रित और अमुद्रित ग्रन्थों से सहायता ली गई है, उनके अवतरण और नाम आदि यथास्थान टिप्पणी में देने का प्रयत्न किया गया है ।

यद्यपि वर्तमान मारवाड़-नरेश के राजत्वकाल का इतिहास इसके 'प्रथम परिशिष्ट' में दिया गया है, तथापि वह इस इतिहास का ही एक अङ्ग है । इसके अलावा उन बातों का उल्लेख भी, जो मारवाड़ राज्य के इतिहास से गौणरूप से सम्बन्ध रखती हैं, अन्य परिशिष्टों में दे दिया गया है । हमारा विचार इस इतिहास के साथ ही मारवाड़ का संक्षिप्त भौगोलिक वर्णन भी जोड़ देने का था, परन्तु कई कारणों से ऐसा न हो सका ।

इसके प्रकाशन में जोधपुर गवर्नमेंट-प्रेस के सुपरिन्टेंडेंट मिस्टर चैनपुरी और अन्य कर्मचारियों ने जिस तत्परता से सहायता दी है, उसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं ।

आर्किवॉजॉजिकल डिपार्टमेंट,
जोधपुर
आषाढ सुदि १४ वि० सं० १९६५. }

विश्वेश्वरनाथ रेड.

(ड १)

जोधपुर-नरेश के कनिष्ठ भ्राता महाराज श्री अजीतसिंहजी साहब

का

वक्तव्य ।

मारवाड़ और उसके विख्यात नरेशों का यह विशद इतिहास पूरी विद्वत्ता और ज्ञानवीन के साथ लिखा गया है, और इस श्रमसाध्य कार्य को पूर्ण करने के लिये इसके लेखक पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेडु बधाई के पात्र हैं ।

यह पुस्तक स्वयं ही श्रीयुक्त रेडु की पूरी खोज और अध्ययन का प्रमाण है ।

अजीतसिंह महाराज,

सभापति,

परामर्शदात्री सरदार सभा,

और

मुख्य परामर्शदात्री सभा.

(1) This comprehensive History of Marwar and its illustrious rulers has been written with scholarly care and thoroughness and its author Pandit Bisheshwar Nath Redu, is to be congratulated on the accomplishment of a laborious task. The work evidences a good deal of research and study done by Mr. Redu.

AJIT SINGH MAHARAJ,

President,

Consultative Committee of Sardars

and

Central Advisory Board.

Jodhpur,
21-6-1939.

(च)

जोधपुर-राज्य के प्रधान मन्त्री सर डोनाल्ड फ़ील्ड (सी. आइ. ई.)

का
वक्तव्य ।

इस विशद और सर्वाङ्ग-पूर्ण इतिहास को ऐसी सफलता के साथ लिखकर प्रस्तुत करने के कारण मैं पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेड को हार्दिक बधाई का अधिकारी समझता हूँ ।

यह इतिहास, परम्परागत धारणाओं के ऐतिहासिक आधार को ढूँढ निकालने में की गई, लेखक की सावधानतापूर्ण और यथार्थ खोजका स्वयं ही प्रमाण है और साथ ही, अन्य बातों में, वीर राठोड़-वंश पर लगाए गए कलङ्कों का ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा मूजोच्छेदन करने में भी पण्डित विश्वेश्वरनाथ ने पूर्ण सफलता प्राप्त की है ।

लेखक ने उस कार्य को, जिसे जोधपुर-राजकीय इतिहास-कार्यालय के पहले के तीन अधिकारी केवल प्रारम्भ ही कर सके थे, पूरी योग्यता से समाप्त किया है और मेरी सम्मति में उसका इस कार्य को सम्पूर्ण करने में सफल होने के कारण सच्चा गौरव अनुभव करना ठीक ही है ।

उन विद्वानों ने भी, जो इतिहास पर सम्मति देने के पूर्ण अधिकारी हैं, पण्डित विश्वेश्वरनाथ के लिखे इतिहास की सहानुभूति-पूर्ण समालोचना की है और मेरे विचार में यह इतिहास राजकीय कागज-पत्रों में भी एक अमूल्य वस्तु समझा जायगा ।

मैं इस संक्षिप्त वक्तव्य को भूमिका के रूप में लिखने में बड़ी प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ ।

डी. एम. फ़ील्ड,
लैफ्टिनेन्ट कर्नल,
चीफ मिनिस्टर,
गवर्नमेन्ट ऑफ जोधपुर.

(2) Pandit Bisheshwar Nath Red deserves, in my opinion warm congratulations on the accomplishment of a detailed and exhaustive History of Marwar. The work affords evidence of careful and accurate research in an effort to discover a historical basis for the facts alleged, and Mr. Bisheshwar Nath has, amongst other things, been successful in dispelling certain false ideas which have in the past been promulgated about the brave dynasty of the Rathors. He has accomplished with marked ability a task that was no more than begun by three of his predecessors in the History Department of the Jodhpur State and he can I think claim a legitimate pride in the accomplishment of his task.

Pandit Bisheshwar Nath's History has earned favourable criticism by scholars well qualified to pronounce an opinion on the subject, and I think that this history will be a most valuable acquisition to the State records.

I have great pleasure in writing this brief foreword by way of introduction.

JODHPUR,
March 23, 1939.

D. M. FIELD,
L.T. COLONEL,
Chief Minister,
Govt. of Jodhpur.

(छ)

जोधपुर-राज्य के गृह-सचिव (होम मिनिस्टर)

का
वक्तव्य ।

मुझे पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेड के लिखे मारवाड़ के इतिहास को आदि से अन्त तक अवलोकन करने का अवसर मिला । मैं इस देश का निवासी होने के कारण इसके प्राचीन गौरव से अवगत होने का दावा कर सकता हूँ । यह करीब आठ सौ वर्षों का लंबा इतिहास है और इसके तैयार करने में लेखक की आयु का श्रेष्ठ भाग व्यतीत हुआ है । निस्सन्देह उसने इसकी सामग्री एकत्रित करने, अनेक साधनों द्वारा उसकी सत्यता जाँचने और फिर सच्ची घटनाओं को सुचारु और समुचित रूपसे उपस्थित करने में अत्यन्त परिश्रम उठाया है ।

समय-समय पर श्रीयुक्त रेड का कार्य अवश्य ही कठिन और अप्रिय प्रतीत हुआ होगा । परन्तु उसने सच्चे ऐतिहासिक के कर्तव्य को कभी न भुलाया, और बिना किसी भय या पक्षपात के वास्तविक घटनाओं और उनके सच्चे परिणामों का उचित रूप से चित्रण किया है ।

मारवाड़ के राठोड़ों के इस गौरवमय इतिहास के साथ-साथ इसके लेखक का नाम भी अनन्तकाल तक बना रहेगा ।

महर्मा खास
जोधपुर,
ता० २८ अक्टोबर १९३८.

माधोसिंह,
होम मिनिस्टर, जोधपुर गवर्नमेण्ट,
(प्रेसिडेंट हिस्टोरिकल कमिटी).

(*) I have had the privilege and pleasure of revising the History of Marwar written by Pt. Bisheswar Nath Reu. I belong to this place and claim to know something of its ancient glory. It is a long record covering a period of about 800 years and its compilation has taken the writer the best part of a life time. He has no doubt taken infinite pains in collecting material, verifying the contents from various sources and then presenting the proved facts in an interesting and proper form.

At times Mr. Reu's task must have been irksome and unpleasant but he has always adhered to the true historian's principle and has without fear or favour presented facts and their consequences in correct perspective.

With this proud record of Rathors in Marwar will go down the name of its writer to the end of time.

Mehkma Khas,
JODHPUR,
Dated October 28, 1938

MADHO SINGH,
Home Minister,
Government of Jodhpur.
(President, Historical Committee.)

(ज)

विषय-सूची ।

| | पृष्ठ |
|---|-------|
| मारवाड़ की स्थिति और विस्तार | १ |
| पौराणिक काल | २ |
| ऐतिहासिक काल | ४ |
| मुसलमानों के हमले | १३ |
| जोधपुर के राष्ट्रकूट-नरेशों और उनके वंशजों का प्रताप | १६ |
| जोधपुर के राष्ट्रकूट-नरेशों का विद्या-प्रेम और उनकी दान-शीलता | २० |
| जोधपुर के राष्ट्रकूट (राठोड़) नरेशों का धर्म | २७ |
| जोधपुर के राष्ट्रकूट (राठोड़) नरेशों का कला-कौशल-प्रेम | २८ |
| १ राव सीहाजी | ३१ |
| २ राव आसथानजी | ४२ |
| ३ राव धूहड़जी | ४६ |
| ४ राव रायपालजी | ४८ |
| ५ राव कनपालजी | ४९ |
| ६ राव जालणसीजी | ५० |
| ७ राव छाडाजी | ५१ |
| ८ राव तीडाजी | ५२ |
| (९) राव कान्हड़देवजी | ५२ |
| ९ राव सलखाजी | ५३ |
| (१०) राव त्रिभुवनसीजी | ५३ |
| (११) रावल महिनाथजी | ५३ |
| (१२) रावल जगमालजी | ५४ |
| १० राव वीरमजी | ५४ |
| ११ राव चूँडाजी | ५८ |
| १२ राव कान्हाजी | ६८ |
| १३ राव सत्ताजी | ६९ |
| १४ राव रणमल्लजी | ७० |
| राव रणमल्लजी की मृत्यु के कारण पर विचार | ८१ |
| १५ राव जोधाजी | ८३ |
| १६ राव सातलजी | १०४ |
| १७ राव सूजाजी | १०७ |

(भू)

| | | | | |
|---|----|----|----|-----|
| १८ राव गांगजी | .. | .. | .. | १११ |
| १९ राव मालदेवजी | .. | .. | .. | ११६ |
| फारसी तवारीखों से राव मालदेवजी के प्रभाव, पराक्रम और ऐश्वर्य के विषय के कुछ अवतरण | .. | .. | .. | १४५ |
| २० राव चन्द्रसेनजी | .. | .. | .. | १४८ |
| राव चन्द्रसेन और महाराणा प्रताप पर एक तुलनात्मक दृष्टि | .. | .. | .. | १६१ |
| (२१) राव आसकरनजी और उग्रसेनजी | .. | .. | .. | १६७ |
| २१ राव रायसिंहजी | .. | .. | .. | १६७ |
| २२ राजा उदयसिंहजी | .. | .. | .. | १७० |
| २३ सवाई राजा शूरसिंहजी | .. | .. | .. | १८१ |
| २४ राजा गजसिंहजी | .. | .. | .. | १९६ |
| २५ महाराजा जसवन्तसिंहजी (प्रथम) | .. | .. | .. | २१० |
| महाराजा जसवन्तसिंहजी का प्रताप और गौरव | .. | .. | .. | २४६ |
| २६ महाराजा अजितसिंहजी | .. | .. | .. | २४८ |
| २७ महाराजा अभयसिंहजी | .. | .. | .. | २३१ |
| २८ महाराजा रामसिंहजी | .. | .. | .. | २५६ |
| २९ महाराजा बख्तसिंहजी | .. | .. | .. | २६७ |
| ३० महाराजा विजयसिंहजी | .. | .. | .. | २७१ |
| ३१ महाराजा भीमसिंहजी | .. | .. | .. | २८६ |

चित्र-सूची ।

| | | | | पृष्ठ के सामने |
|------------------------------|----|----|----|----------------|
| मारवाड़-नरेशों की वंशावली | .. | .. | .. | प्रारम्भ में |
| राव सोहाजी | .. | .. | .. | ३२ |
| राव आसथानजी | .. | .. | .. | ४२ |
| राव धूहड़जी | .. | .. | .. | ४६ |
| राव रायपालजी | .. | .. | .. | ४८ |
| राव कनपालजी | .. | .. | .. | ५० |
| राव जालणसीजी | .. | .. | .. | ५२ |
| राव छाडाजी | .. | .. | .. | ५४ |
| राव तीडाजी | .. | .. | .. | ५६ |
| राव सलखाजी | .. | .. | .. | ५८ |
| राव वीरमजी | .. | .. | .. | ६० |
| राव चूँडाजी | .. | .. | .. | ६२ |
| राव रणमहजजी | .. | .. | .. | ७० |
| राव जोधाजी | .. | .. | .. | ८४ |
| जोधपुर का क़िला | .. | .. | .. | ८२ |
| जोधपुर नगर | .. | .. | .. | ८४ |
| राव सातलजी | .. | .. | .. | १०४ |
| राव सूजाजी | .. | .. | .. | १०८ |
| राव गांगाजी | .. | .. | .. | ११२ |
| राव मालदेवजी | .. | .. | .. | ११६ |
| राव चन्द्रसेनजी | .. | .. | .. | १४८ |
| राजा उदयसिंहजी | .. | .. | .. | १७० |
| सवाई राजा शूरसिंहजी | .. | .. | .. | १८२ |
| जालोर का क़िला | .. | .. | .. | १६४ |
| राजा गजसिंहजी | .. | .. | .. | २०० |
| महाराजा जसवन्तसिंहजी (प्रथम) | .. | .. | .. | २१० |

(८)

| | | | | | |
|------------------------------|----|----|----|----|-----|
| महाराजा अजितसिंहजी | .. | .. | .. | .. | २४८ |
| राठोड़-वीर दुर्गदास | .. | .. | .. | .. | २५४ |
| वीरों की मूर्तियां | .. | .. | .. | .. | ३२८ |
| महाराजा अभयसिंहजी | .. | .. | .. | .. | ३३२ |
| नागौर का किला | .. | .. | .. | .. | ३३४ |
| महाराजा अजितसिंहजी का स्मारक | .. | .. | .. | .. | ३५६ |
| महाराजा रामसिंहजी | .. | .. | .. | .. | ३६० |
| महाराजा बखतसिंहजी | .. | .. | .. | .. | ३६८ |
| महाराजा विजयसिंहजी | .. | .. | .. | .. | ३७२ |
| महाराजा भीमसिंहजी | .. | .. | .. | .. | ३८६ |

मारवाड़ का इतिहास

स्थिति और विस्तार

यह देश राजपूताने के पश्चिमी भाग में है और इसका विस्तार यहां के सब राज्यों से अधिक है। इसकी लंबाई ईशानकोण से नैऋत्यकोण तक ३२० मील और चौड़ाई उत्तर से दक्षिण तक १७० मील है।

इसके पूर्व में जयपुर, किशनगढ़ और अजमेर; अग्निकोण में मेरवाड़ा और उदयपुर (मेवाड़); दक्षिण में सिरोही और पालनपुर; नैऋत्यकोण में कच्छ का रण; पश्चिम में थरपाकर और सिंध; वायव्यकोण में जैसलमेर तथा उत्तर में बीकानेर और ईशानकोण में शेखावाटी है।

यद्यपि आजकल यह देश २४ अंश ३६ कला उत्तर अक्षांश से लेकर २७ अंश ४२ कला उत्तर अक्षांश तक; तथा ७० अंश ६ कला पूर्व देशांतर से लेकर ७५ अंश २४ कला पूर्व देशांतर तक फैला हुआ है, और इसका क्षेत्रफल ३५०१६ वर्गमील है, तथापि कर्नल टॉड के मतानुसार किसी समय मरुदेश का विस्तार समुद्र से सतलज

१. कुछ लोग “मरु” और “माड़” देशों के नामों के मिलने से “मारवाड़” नामकी उत्पत्ति होना अनुमान करते हैं। ‘माड़’ जैसलमेर के पूर्वी भाग का नाम है और यह मरुदेश के पश्चिमी भाग से मिला हुआ है। उन के मतानुसार कालान्तर में इसी ‘माड़’ शब्द का ‘वाड़’ के रूप में परिवर्तन हो गया है।

मारवाड़ का इतिहास

तक था । अबुलफजल ने इसकी लंबाई १०० कोस और चौड़ाई ६० कोस लिखी है और अजमेर, जोधपुर, नागौर, सिरौही और बीकानेर, को इसके अंतर्गत माना है । उसने इसके प्रसिद्ध किलों के नाम इस प्रकार दिए हैं:—अजमेर, जोधपुर, बीकानेर, जैमलमेर, उमरकोट और जैनगर ।

पौराणिक-काल

इसकी उत्पत्ति के विषय में वाल्मीकीय रामायण में इस प्रकार लिखा है—

“लंका पर चढ़ाई करने की इच्छा से जब श्रीरामचंद्र समुद्र के किनारे पहुँचे, तब जल में मार्ग पाने की इच्छा से उन्होंने उसकी अभ्यर्थना प्रारंभ की । परन्तु समुद्र ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया । इससे क्रुद्ध हो राम ने समुद्र-जल को सुखा देने के लिये आग्नेयास्त्र का अनुसंधान किया । यह देख समुद्र क्षुब्ध हो उठा और उसने प्रकट होकर श्री रामचंद्र से उस अस्त्र को अपने द्रुमकुल्य-नामक उत्तरी भाग पर

१. उत्तरेणावकाशोस्ति कश्चित्पुण्यतरो मम ।

द्रुमकुल्य इति ख्यातो लोके ख्यातो यथा भवान् ॥ २६ ॥

अग्रदर्शनकर्माणो बहवस्तत्र दस्यवः ।

आभीरप्रमुखाः पापाः पिबन्ति सलिलं मम ॥ ३० ॥

तैर्न तत्स्पर्शनं पापं सहेयं पापकर्मभिः ।

अमोघः क्रियतां राम ! अयं तत्र शरोत्तमः ॥ ३१ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सागरस्य महात्मनः ।

मुमोच तं शरं दीप्तं परं सागरदर्शनात् ॥ ३२ ॥

तेन तन्मरुकान्तारं पृथिव्यां किल विश्रुतम् ।

निपातितः शरो यत्र वज्राशनिसमप्रभः ॥ ३३ ॥

ननाद च तदा तत्र वसुधा शल्यपीडिता ।

तस्माद्द्रुममुखात्तोयमुत्पपात रसातलात् ॥ ३४ ॥

स बभूव तदाकूपो ऋणहृत्थेव विश्रुतः ॥

.....रामो दशरथात्मजः ।

वरं तस्मै ददौ विद्वान्मरुवेऽमरविक्रमः ॥ ३७ ॥

पशव्यश्चाल्प्यरोगश्च फलमूलरसायुतः ।

बहुस्नेही बहुक्षीरः सुगंधिर्विविधौषधः ॥ ३८ ॥

एवमेतैश्च संयुक्तो बहुभिः संयुतो मरुः ।

रामस्य वरदानाच्च शिवः पंथा बभूव ह ॥ ३९ ॥

(युद्धकांड, सर्ग २२)

चलाने की प्रार्थना की। उन्होंने भी उसके विनीत वचन सुन उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। राम के आग्नेयास्त्र के प्रभाव से द्रुमकुल्य का जल सूख गया और वहाँ पर भरुदेश की उत्पत्ति हुई, तथा जहाँ पर वह तीर गिरा था वहाँ पर गढ़े से पानी निकलने लगा।”

रामायण की कथा से यह भी प्रकट होता है कि पहले उक्त स्थान पर आभीर आदि जंगली (अनार्य) जातियाँ रहती थीं। परन्तु इस घटना के बाद से वहाँ का मार्ग निष्कण्टक हो गया और आर्य लोग उधर आने-जाने और बसने लगे। अब तक भी मारवाड़ के अन्य प्रदेशों से उस प्रदेश में गाएँ आदि (दूध डेनेवाले पशु) अधिक होती हैं।

मारवाड़ के पश्चिमी प्रदेश में अर्धपाषाणरूप में परिवर्तित शंख, सीप आदि के मिलने से भी पूर्वकाल में वहाँ पर समुद्र का होना सिद्ध होता है और प्राकृतिक कारणों से उसके हट जाने से वहाँ पर रेतीली पृथ्वी निकल आई है।

यह भी अनुमान होता है कि वहाँ पर किसी समय सतलज की एक धारा बहती थी। लोग उसे हाकड़ा नदी के नाम से पुकारते थे और उसके किनारों पर गन्ने की खेती करते थे। परन्तु अब उधर की पृथ्वी के कुछ ऊँचा हो जाने के कारण उस धारा का पानी मुलतान की तरफ मुड़कर सिंधु में जा मिला है। मारवाड़-राज्य का एक प्रांत अब तक हाकड़ा के नाम से प्रसिद्ध है और ‘वह पानी मुलतान गया’ की एक कहावत भी यहाँ पर प्रचलित है।

‘भागवत’ से ज्ञात होता है कि कंस का वैर लेने के लिये उस के अशुर (भगध के राजा) जरासंध ने सत्रह बार मथुरा पर विफल चढ़ाइयाँ की थीं। इसके बाद उक्त नगरी पर कालयवन का हमला हुआ। यह देख श्रीकृष्ण ने सोचा कि यदि इस मौके पर कहीं फिर जरासंध चढ़ आया तो यदु लोग निरर्थक ही मारे जायेंगे। इसी से उन्होंने यदु लोगों को द्वारकापुरी की तरफ भेज दिया।

इससे अनुमान होता है कि संभवतः इसी समय (अर्थात्-महाभारत के समय के पूर्व ही) से मारवाड़ का गुजरात की तरफ का दक्षिणी भाग आबाद होने लगा होगा।

१. कुछ लोग वीलाड़ा नामक गांव की ‘वाण गंगा’ के कुण्ड को उक्त वाण के गिरने का स्थान अनुमान करते हैं। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता।
२. श्रीमद्भागवत, दशमस्कंध, अध्याय ५०।
३. श्रीमद्भागवत में लिखा है—“भरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान्।”
(भागवत, स्कंध १, अ० १०, श्लो० ३५)

मारवाड़ का इतिहास

पहले मारवाड़ का उत्तरी भाग और उसके आगे का बीकानेर का सारा प्रदेश जांगल देश कहाता था और उसकी राजधानी अहिच्छत्रपुर (नागोर ?) थी। महाभारत से पता चलता है कि उस समय वहां पर कौरवों का अधिकार था।

ऐतिहासिक-काल

इसके बाद से मौर्यवंशी नरेश चंद्रगुप्त के पूर्व तक का इस देश का विशेष वृत्तांत नहीं मिलता है। परंतु इस राजा के अंतिम समय मौर्य-राज्य का विस्तार नर्मदा से अफगानिस्तान तक फैल गया था। इसका पौत्र अशोक भी बड़ा प्रतापी राजा था। उसने सुदूर दक्षिण को छोड़ करीब-करीब सारे हिंदुस्तान, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान पर अधिकार कर लिया था। जयपुर-राज्य के वैराट (विराट) गाँव से उसका एक स्तंभलेख मिला है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि मौर्य-सम्राट् चंद्रगुप्त और उसके पौत्र अशोक के समय मारवाड़ भी मौर्य-साम्राज्य का ही एक भाग रहा होगा।

विक्रम सं० ६७ से २२३ (ईसवी स० ४० से २२६) तक भारत के पश्चिमी प्रदेशों पर कुशानवंशी राजाओं का अधिकार रहा था; क्योंकि इन्होंने बलख से आगे बढ़कर धीरे-धीरे काबुल, कंधार, फारस, सिंध और राजपूताने का बहुतसा भाग दबा लिया था। इनमें कनिष्क विशेष प्रतापी राजा हुआ। समग्र उत्तर-पश्चिमी भारत और दक्षिण का विंध्य तक का प्रदेश इसके राज्य में था। इसलिये मारवाड़ के कुछ भाग पर इस वंश के नरेशों का अधिकार भी अवश्य रहा होगा।

इससे अनुमान होता है कि 'मरु' और 'धन्व' दो भिन्न देश थे। यदि कोषकार अमरसिंह के लेखानुसार ये दोनों शब्द पर्यायवाची होते तो भागवत में इन दोनों शब्दों का प्रयोग इस प्रकार एकही स्थान पर न किया जाता। इससे प्रतीत होता है कि शायद मारवाड़ का दक्षिणी भाग 'धन्व' कहाता होगा।

१. "पैव्यं राज्यं महाराज ! कुरवस्ते सजाङ्गलाः ।"

(उद्योगपर्व, अध्याय ५४, श्लोक ७)

(एक स्थान पर सिंधु से अरवली तक के भूभाग को शाल्वदेश के नाम से लिखा है।)

२. मौर्यों के बाद उनका राज्य शुंगवंशी राजाओं के अधिकार में चला गया था। इस वंश के संस्थापक पुष्यमित्र के समय, वि० सं० से ६६ (ई० स० से १५६) वर्ष पूर्व, ग्रीक नरेश मिनेंडर ने राजपूताने पर चढ़ाई की थी और उसकी सेना नगरी (चित्तौड़ से ६ मील उत्तर) तक जा पहुँची थी। नहीं कह सकते कि उस समय मारवाड़ में भी उसका प्रवेश हुआ था या नहीं ?

वि० सं० १७६ (ई० सं० ११६) के करीब गुजरात, काठियावाड़, कच्छ आदि प्रदेशों पर पश्चिमी क्षत्रप नहपान का राज्य था। इससे मारवाड़ के दक्षिणी भाग का भी इसके अधिकार में होना पाया जाता है। इसके जामाता ऋषभदत्त (उषवदात) ने पुष्कर में जाकर बहुतसा दान दिया था। वि० सं० १८१ के कुछ काल बादही नहपान का राज्य आंध्रवंशी गौतमीपुत्र शातकर्णी ने छीन लिया था। इसपर मारवाड़ का दक्षिणी भाग भी उसके अधिकार में चला गया होगा।

शक संवत् ७२ (वि० सं० २०७) के जूनागढ़ से मिले पश्चिमी क्षत्रप रुद्रदाना प्रथम के लेख से पता चलता है कि श्वभ्र (उत्तरी गुजरात), मरु (मारवाड़), कच्छ और सिंधु (सिंध) प्रदेशों पर उसका अधिकार हो गया था।

समुद्रगुप्त का पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय था। इसको विक्रमादित्य भी कहते थे। इसने वि० सं० ४४५ के करीब पश्चिमी क्षत्रपों के राज्य की समाप्ति कर अपने राज्य का और भी विस्तार किया था। गुप्त संवत् २६८ (वि० सं० ६७४) का एक शिलालेख मारवाड़ के गोठ और मांगलोद की सीमा पर के दक्षिणी देवी के मंदिर से मिला है। ये दोनों गाँव नागौर से २४ मील उत्तर-पश्चिम में हैं। मारवाड़ की प्राचीन-राजधानी मंडोर के विशीर्ण-दुर्ग में एक तोरण के दो स्तंभ खड़े हैं। उन पर श्रीकृष्ण की बाललीलाएँ खुदी हैं। इनमें के एक स्तंभ पर गुप्त लिपि का लेख था, जो अब करीब-करीब नारा ही नष्ट हो गया है। इन सब बातों से सिद्ध होता है कि इस देश के कुछ भागों पर गुप्त राजाओं का अधिकार भी रहा होगा।

वि० सं० ५२७ (ई० सं० ४७०) के करीब हूणों ने स्कंदगुप्त के राज्य पर (दुबारा) चढ़ाई की। इससे गुप्त-राज्य की नींव हिल गई और उसके पश्चिमी प्रांत पर हूणों का अधिकार हो गया। सम्भवतः उस समय मारवाड़ का कुछ भाग भी अवश्य ही उनके अधिकार में चला गया होगा।

१. एपिग्राफिया इंडिका, भाग ८, पृ० ३६

२. वि० सं० ५४१ (ई० सं० ४८४) में हूणों ने पर्शिया (ईरान) के राजा फ़ीरोज़ को मारकर वहाँ का खज़ाना लूट लिया था। इसी से वहाँ के ससेनियन सिक्कों का भारत में प्रवेश हुआ। ये सिक्के अठन्नी के बराबर होते थे और इन पर सीधी तरफ़ राजा का मस्तक और उलटी तरफ़ अग्निकुण्ड बना रहता था, जिसके दोनों तरफ़ आदमी खड़े होते थे। ये आजकल के सिक्कों से बहुत पतले होते थे। ये सिक्के हूणों का राज्य नष्ट हो जाने पर भी गुजरात, मालवा और राजपूताने में विक्रम संवत् की बारहवीं शताब्दी के

मारवाड़ का इतिहास

इसी प्रकार वि० सं० ४४५ के आसपास पश्चिमी क्षत्रपों के राज्य के नष्ट होने पर मारवाड़ के कुछ भाग पर गुर्जरों ने अधिकार कर लिया था। इसी से धीरे-धीरे मारवाड़ का पूर्व की तरफ का (दक्षिण से उत्तर तक का) सारा भाग गुर्जर-राज्य के अंतर्गत हो गया था और गुर्जरत्रा (गुर्जर या गुजरात) कहाता था।

चीनी यात्री हुएन्तसंग, जो वि० सं० ६८६ में चीन से खाना होकर भारत में आया था, भीनमाल को गुजरात की राजधानी लिखता है। वि० सं० १०० के सिवा गाँव (डीडवाना प्रांत) से मिले प्रतिहार भोजदेव प्रथम के दानपत्र से उस प्रदेश का भी एक समय गुर्जर-प्रांत में रहना सिद्ध होता है।

यही बात कालिंजर से मिले विक्रम की नवीं शताब्दी के लेख से भी प्रकट होती है।

वि० सं० ५८१ (ई० स० ५३२) के मंदसौर से मिले यशोधर्म के लेख में उसके राज्य का विस्तार पूर्व में ब्रह्मपुत्र से पश्चिम में समुद्र तक और उत्तर में हिमालय से दक्षिण में महेन्द्र पर्वत तक होना लिखा है। परंतु अबतक न तो उसके पूर्वजों का ही पता चला है न उत्तराधिकारियों का ही। संभव है उस समय गुर्जर लोग उसके सामंत होगए हों।

वि० सं० ६८५ में भीनमाल के रहनेवाले ब्रह्मगुप्त ने 'ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त' की रचना की थी। उस समय वहाँ पर चावड़ा वंश के व्याघ्रमुख नामक राजा का राज्य था।

भीनमाल के प्रसिद्ध कवि माघ ने अपने 'शिशुपालवध' नामक महाकाव्य के कवि-वंश-वर्णन में अपने दादा को राजा वर्मलात का मंत्री लिखा है। वसंतगढ़ (सिरोही-राज्य) से, वि० सं० ६८२ का, इस वर्मलात का एक शिला-लेख मिला है।

पूर्वार्ध तक प्रचलित था। परंतु क्रमशः इनका आकार छोटा होने के साथही इनकी मुट्ठी बड़ती गई और धीरे-धीरे इसमें का राजा का चेहरा ऐसा भड़ा हो गया कि वह गधे के खुर के समान दिखाई देने लगा। इसी से इसका नाम गधिया (गधैया) हो गया। इस प्रकार के सिक्के मारवाड़ के अनेक प्रदेशों से मिले हैं।

१. एपिग्राफिया इंडिका, भाग ५, पृ० २११ (गुर्जरत्राभूमौडेगङ्गानकविषय०)
२. एपिग्राफिया इंडिका, भाग ५, पृ० २१०, नोट ३ (श्रीमद्गुर्जरत्रामंडलांतःपातिमंगलानक०)
३. विक्रम की छठी शताब्दी के उत्तरार्ध के करीब वैसवंशी प्रभाकरवर्धन ने सिंध और गुजरात-वालों से युद्ध कर उन्हें हैरान कर दिया था, ऐसा 'श्रीहर्षचरित' से पाया जाता है। इसका छोटा पुत्र हर्षवर्धन भी बड़ा प्रतापी था। उसने उत्तरापथ के राजाओं पर चढ़ाई कर उधर के देशों को जीत लिया था। यह बात विजयभट्टारिका के दानपत्र और हुएन्तसंग के लेखों से प्रकट होती है।

इसके और ब्रह्मगुप्त-रचित 'ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त' के रचना-काल के बीच केवल तीन वर्ष का अंतर होने से विद्वान् लोग वर्मलात को व्याघ्रमुख का पिता या उपनाम अनुमान करते हैं।

इससे ज्ञात होता है कि गुजरात के बाद मारवाड़ का दक्षिणी भाग चावड़ों के अधिकार में रहा था। कलचुरी संवत् ४६० (वि० सं० ७६६) के (लाटदेश के) सोलंकी पुलकेशी के दानपत्र से प्रकट होता है कि उस समय के पूर्व ही अरब लोगों की चढ़ाई से चावड़ों का राज्य नष्ट हो गया था। फारसी के 'कतूहल बुलदान' नामक इतिहास से ज्ञात होता है कि खलीफा हशाम के समय सिंध के शासक जुनैद की सेना ने मारवाड़ और भीनमाल पर चढ़ाई की थी। इस चढ़ाई से चावड़े कमजोर हो गए और कुछ ही काल बाद उनका राज्य पड़िहारों ने दबा लिया।

जोधपुर नगर की शहरपनाह से वि० सं० ८६४ का मंडोर के राजा वाउक का एक लेख मिला है। यह शायद मंडोर के किसी वैष्णव-मंदिर के लिये खुदवाया गया था। इसी प्रकार वि० सं० ९१८ के दो शिला-लेख वाउक के भाई कक्कु के ग्रटियाला (जोधपुर से २० मील उत्तर) से मिले हैं। इनमें का एक प्राकृत का और दूसरा संस्कृत का है^१। इनसे प्रकट होता है कि हरिश्चंद्र के पुत्रों ने वि० सं० ६७० के करीब मंडोर के किले पर अधिकार कर वहाँ पर कोट बनवाया था। इसके बाद इसके प्रपौत्र नागभट ने मेड़ता नगर में अपनी राजधानी कायम की और मंडोर में अपने नाम पर नाहड़स्वामिदेव का एक मंदिर बनवाया। नाहड़ के बड़े पुत्र तात ने

१. नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० २११, नोट २३

२. जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१८६४), पृ० ४-६। इसमें शालुक का 'खवरी' और 'बल्लभगडल' पर अधिकार करना लिखा है। अनुमान से ज्ञात होता है कि उस समय मारवाड़ का वायव्य कोण का जैसलमेर से मिला महानी की तरफ का भाग 'खवरी' और फलोदी की तरफ का भाग 'बल्ल' कहलाता था। इसी लेख में वाउक का मयूर को मारना भी लिखा है। कुछ लोगों का अनुमान है कि उस समय मंडोर के पश्चिमी प्रान्त पर मौर्य वंशियों का राज्य था और यह मयूर उन्हीं का वंशज होगा। कुछ काल बाद पड़िहारों ने उस वंश के राजाओं को सिंध की तरफ भगा दिया था। इस समय उनके वंशज सिंध और मुलतान में मोर के नाम से प्रसिद्ध हैं। परन्तु उन्होंने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया है।

३. जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (१८६५), पृ० ५१७-१८

४. पृथ्वीराजरासे में मंडोर के नाहड़राव पड़िहार और पृथ्वीराज चौहान के युद्ध की जो कथा लिखी है वह कपोल-कल्पित ही है।

मारवाड़ का इतिहास

अपने छोटे भाई भोज को राज्य देकर मांडव्य के आश्रम (मंडोर) में तपस्या की। इसी भोज की छुठी पीढ़ी में कक्क हुआ। जिस समय कन्नौज और भीनमाल के पड़िहार राजा वत्सराज ने मुंगेर के गौड़ राजा पर चढ़ाई की, उस समय यह कक्क भी, सामंत की हैसियत से, वत्सराज के साथ था। परंतु जिस समय इस वत्सराज ने मालवे पर चढ़ाई की, उस समय मान्यखेट का राष्ट्रकूट राजा ध्रुवराज मालवे वालों की सहायता को जा पहुँचा। इस से वत्सराज को भागकर मारवाड़ में आना पड़ा। श० सं० ७०५ (वि० सं० ८४०) में जिनसेन ने 'हरिवंशपुराण' लिखा था। उसमें वत्सराज को पश्चिम (मारवाड़) का राजा लिखा है।

इसका पुत्र नागभट्ट द्वितीय था। पुष्कर का घाट बनवानेवाला प्रसिद्ध नाहड़ यही होगा। इसके समय का वि० सं० ८७२ का एक लेख बुचकला (बीलाड़ा परगने) से मिला है। इसी ने अपनी राजधानी भीनमाल से हटाकर कन्नौज में स्थापित की थी।

उपर्युक्त कक्क का पुत्र वाउक हुआ। इसके बाद इसके भाई कक्कुक ने मारवाड़ और गुजरात के लोगों से मित्रता की, घटियाले (रोहिसकूप) में बाजार बनवाया और मंडोर तथा घटियाले में जयस्तंभ खड़े किए। वि० सं० ११३ का एक लेख प्रतिहार (पड़िहार) जसकरण का भी चेराई (जोधपुर-राज्य) से मिला है।

वि० सं० १२०० के करीब तक तो मंडोर पर पड़िहारों का ही राज्य रहा। परंतु इसके करीब नाडोल के चौहान रायपाल ने वहाँ पर अपना अधिकार कर लिया और पड़िहार लोग छोटे-छोटे जागीरदारों की हैसियत से रहने लगे।

वि० सं० १२०२ की समाप्ति के करीब का चौहान रायपाल के पुत्र सहजपाल का एक टूटा हुआ लेख मंडोर से मिला है। उससे भी इस बात की पुष्टि होती है।

१. हांसोट (भड़ोच ज़िले) से चौहान भर्तृवर्द्ध द्वितीय का, वि० सं० ८१३ का, एक दानपत्र मिला है। उसमें उसे पड़िहार नागावलोक का सामंत लिखा है। यह नागावलोक इस वत्सराज का पितामह था। इसके राज्य का उत्तरी भाग मारवाड़ और दक्षिणी भाग भड़ोच तक फैला हुआ था। इसके वंशज भोजदेव की ग्वालियर की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसने अपने राज्य पर सिंध की तरफ से हमला करनेवाले बल्लोचों को हराकर भगा दिया था। (आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया (१९०३-४), पृ० २८०)

२. 'वत्सादिराजे परा' (बाँवे गजैटियर, जि० १, भा० २, पृ० १६७, नोट २)

३. एपिग्राफिया इंडिका, भा० ६, पृ० १६६-२००

४. आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया (१९०६-१०), पृ० १०१-३। यद्यपि इस लेख में संवत् नहीं लिखा है, तथापि सहजपाल के पिता रायपाल की वि० सं० १२०२

वि० सं० १३१६ के, सूँधा से मिले, चाचिगदेव के लेख से भी उसके पिता चौहान उदयसिंह (वि० सं० १२६२ से १३०६) का मंडोर पर अधिकार होना पाया जाता है। इसके बाद वि० सं० १२८४ में वहाँ पर शम्सुद्दीन अल्तमश का अधिकार होगया। परंतु कुछ काल बाद मुसलमानों की कमजोरी से मंडोर फिर पड़िहारों के अधिकार में चला गया। इस पर वि० सं० १३५१ में जलालुद्दीन फ़ीरोज़शाह खिलजी ने चढ़ाई कर पड़िहारों को वहाँ से भगा दिया।

वि० सं० १४५२ के करीब मुसलमानों से तंग आकर ईंदा शाखा के पड़िहारों ने फिर एकवार मंडोर पर अधिकार कर लिया। परंतु उसकी रक्षा करना कठिन जान उन्होंने उसे राठोड़ राव चूड़ाजी को दहेज में दे दिया, जो अब तक उन्हीं के वंशजों के अधिकार में है।

वि० सं० ७४३ के करीब चौहान वासुदेव ने अहिच्छत्रपुर से आकर शाकंभरी (सांभर) में अपना राज्य कायम कर लिया था। इसी से ये (चौहान) शाकंभरीश्वर (सांभरीराज) कहाए और इनके राज्य का प्रदेश, जिसमें नागौर आदि के प्रान्त भी थे, 'सपादलक्ष' या 'सवालक्ष' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

वि० सं० १०३० का सांभर के चौहान राजा विग्रहराज के समय का एक लेख शेखावाटी (जयपुर-राज्य) के हर्षनाथ के मंदिर से मिला है। उससे ज्ञात होता है कि उस समय तक चौहान लोग कन्नौज के पड़िहारों के सामंत थे। परंतु उसके बाद धीरे-धीरे स्वतंत्र हो गए। 'पृथ्वीराजविजय काव्य' के लेखानुसार वि० सं० ११६५ (ई. स. ११०८) के करीब चौहान अजयदेव ने अजमेर बसाकर उसे इस वंश की राजधानी बनाया। वि० सं० १२५१ तक तो वहाँ पर इसी वंश का अधिकार रहा, परंतु इसके बाद प्रसिद्ध पृथ्वीराज चौहान के भाई हरिराज की मृत्यु के बाद उस पर मुसलमानों का पूरी तौर से अधिकार हो गया।

इसी वंश की एक शाखा ने वि० सं० १०१७ (ई. स. १६०) के करीब नाडोल का राज्य कायम किया था। परंतु वि० सं० १०७८ के बाद ही इस शाखा के

तक की प्रशस्तियों के मिलने से यह लेख उस समय के बादका ही प्रतीत होता है।

१. वि० सं० १२७४ में एकवार मंडोर पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था। परंतु शीघ्र ही चौहान उदयसिंह ने वहाँ पर फिर से अधिकार कर लिया।
२. वि० सं० १२४६ में पृथ्वीराज शहाबुद्दीन गोरी द्वारा मारा गया था।

मारवाड़ का इतिहास

चौहानों को सोलंकियों की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी। वि० सं० १२५६ (ई. स. १२०२) के करीब कुतुबुद्दीन ने इन चौहानों के राज्य पर हमला कर उसे नष्ट कर दिया।

वि० सं० १२१८ के करीब चौहानों की उसी शाखा के (केलहरा के छोटे भाई) कीर्तिपाल ने पँवारों से जालोर छीनकर सोनगरा नाम की प्रशाखा चलाई थी। इस शाखा की राजधानी जालोर थी। वि० सं० १४८२ के करीब राव रणमल्लजी ने, राजधर को मार, इसकी समाप्ति कर दी^१। इसी प्रकार वि० सं० १४४४ में नाडोल से निकली साचोर के चौहानों की भी एक शाखा का पता चलता है।

पोकरण से वि० सं० १०७० का एक लेख मिला है। इससे उस समय वहां पर परमारों (पँवारों) का अधिकार होना पाया जाता है।

किराड़ से वि० सं० १२१८ का परमार सोमेश्वर के समय का एक लेख मिला है। उसमें परमार सिंधुराज को मारवाड़ का राजा लिखा है। इसका समय वि० सं० १५६ के करीब होगा और इसने मंडोर के पड़िहारों की कमजोरी से मारवाड़ के कुछ प्रदेशों पर अधिकार कर लिया होगा। जालोर का सिंधुराजेश्वर का मंदिर भी इसी ने बनवाया था। इसकी चौथी पीढ़ी में धरणीवराह हुआ। वि० सं० १०५३ के, हथूँडी (गोडवाड़ परगने) के, राठोड़ राजा धवल के लेख से ज्ञात होता है कि

१. यह बात वि० सं० ११७४ के, जालोर के तोपखाने के, लेख से भी सिद्ध होती है। उस लेख में परमारों की ७ पीढ़ी दी हुई है। (आजकल यह लेख जोधपुर के अजायबघर में रक्खा है।)
२. लेखों में जालोर के पर्वत का नाम कांचन-गिरि (सुवर्ण-गिरि) लिखा है। अनुमान होता है कि वहां पर मिलनेवाली सुवर्ण के समान चमकीली धातु के कारण ही (जो शायद कुछ धातुओं का मिश्रण है) इस पर्वत का नाम कांचन-गिरि या सुवर्ण-गिरि हो गया होगा; और इस पर्वत के नाम से ही चौहानों की इस शाखा का नाम सोनगरा हुआ होगा।
३. सँधा पहाड़ी वाले मंदिर के वि० सं० १३१६ के लेख में सोनगरा शाखा के उदयसिंह को नाडोल, जालोर, मंडोर, ब्राह्मेर, सांचोर, गुड़ा, खेड, रामसेन, भीनमाल और रतनपुर का स्वामी लिखा है। इसीके समय रामचंद्र ने 'निर्भयभीम व्यायोग' और जिनदत्त ने 'विवेक-विलास' बनाया था। इस उदयसिंह का प्रपौत्र कान्हड़देव बड़ा वीर था फरिश्ता लिखता है कि उसने खुद ही बादशाह अलाउद्दीन को अपने किले पर चढ़ाई करने का निमंत्रण दिया था और इसी युद्ध में वि० सं० १३६६ (हि० स० ७०६) में वह मारा गया। इस से कुछ दिन के लिये जालोर और सिवाना चौहानों से छूट गया।
४. 'सिंधुराजो महाराजः समभूमरुमण्डले।'

जिस समय सोलंकी मूलराज ने इस (धरणीवराह) पर चढ़ाई की थी, उस समय इसने उक्त राठोड़ धवल का आश्रय लिया था। मारवाड़ में किसी कवि का बनाया एक कृष्ण प्रचलित है। उससे प्रकट होता है कि धरणीवराह ने अपने नौ भाइयों में अपना राज्य बांट दिया था और इसी से यह देश 'नौ कोटी मारवाड़' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। परंतु अजमेर चौहान अजयदेव के समय बसा था; जिसका समय वि० सं० ११६५ के करीब आता है। ऐसी हालत में उक्त कृष्ण के अनुसार धरणीवराह का अपने एक भाई को अजमेर देना सिद्ध नहीं हो सकता।

धरणीवराह की पांचवीं पीढ़ी में कृष्णराज द्वितीय हुआ। भीममाल से इसके समय के दो लेख मिले हैं। एक वि० सं० १११७ का है और दूसरा वि० सं० ११२३ का। इस कृष्ण से दो शाखाएँ चलीं। एक आवू की और दूसरी किराड़ की। इस कृष्णराज को गुजरात के सोलंकी भीमदेव प्रथम ने कैद कर लिया था। परंतु नाडोल के शासक चौहान बालप्रसाद ने इसे छुड़वा दिया।

वि० सं० १२८७ में, गुजरात के सोलंकी भीमदेव का सामंत, परमार सोमसिंह आवू का राजा था। इसने अपने पुत्र कृष्ण तृतीय (कान्हड़देव) को (गोडवाड़ परगने का) नागा गांव दिया था।

वि० सं० १३६८ के करीब तक तो परमार ही आवू के शासक रहे, परंतु इसी के आसपास वहां पर चौहानों का अधिकार हो गया।

किराड़ से मिले, वि० सं० १२१८ के, लेख में किराड़ की शाखा के पँवार-नरेशों के तीन नाम दिए हुए हैं। ये गुजरात के सोलंकी नरेशों के सामंत थे।

बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी के कुछ लेख (नागौर परगने के) रोल नामक गांव से मिले हैं। इनसे उस समय वहां पर भी परमारों का अधिकार रहना सिद्ध होता है।

पौकरण से विक्रम की दसवीं शताब्दी के करीब का एक लेख मिला है। उसमें गुहिलवंश का उल्लेख है। आवू के अचलेश्वर के लेख से गुहिलराजा जैत्रसिंह का नाडोल को नष्ट कर तुर्कों को भगाना लिखा है।

१. बॉबि गज़ेटियर, जि० १, भा० १, पृ० ४७२-४७३

२. बॉबि गज़ेटियर, जि० १, भा० १, पृ० ४७३-४७४

३. जैत्रसिंह वि० सं० १२७० से १३०६ तक विद्यमान था और वि० सं० १२५६ के बाद नाडोल पर कुतुबुद्दीन का अधिकार हो गया था। इसलिये जैत्रसिंह ने इसके बाद ही चढ़ाई की होगी।

वि० सं० १०५१ के सोलंकी मूलराज के ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि उसने साँचोर के पवारों को हराकर उक्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया था और वे इसके सामंत हो गए थे। इसी प्रकार वि० सं० १०७८ के करीब नाडोल के चौहानों ने भी सोलंकी भीमदेव की सामंती स्वीकार कर ली थी। सांभर से सोलंकी जयसिंह के समय का एक लेख मिला है। इससे वि० सं० ११५० और ११६६ के बीच वहाँ पर उसका अधिकार होना पाया जाता है।

वि० सं० १२०७ के करीब सोलंकी कुमारपाल ने साँभर पर चढ़ाई कर वहाँ के चौहान राजा अणोरराज को हराया और नाडोल पर भी अपना हाकिम नियत कर दिया। इस कुमारपाल का वि० सं० १२०६ का एक लेख पाली के सोमेश्वर के मंदिर में भी लगा है।

वि० सं० १२१८ के किराड़ के लेख से ज्ञात होता है कि किराड़ के परमार शासक सोलंकियों के सामंत थे।

आबू के परमार सोमसिंह के, वि० सं० १२८७ के, लेख से पता चलता है कि वह गुजरात के सोलंकी भीम का सामंत था। उस समय गोड़वाड़ की तरफ का देश भी इसी सोमसिंह के अधिकार में था।

इसी प्रकार कुछ काल के लिये देसूरी पर भी सोलंकियों का अधिकार रहा था।

ख्यातों में लिखा है कि एक समय मारवाड़ (खास कर मंडोर और नागोर) पर नाग-वंशियों का राज्य भी रहा था। नागकुंड, नागादरी, नागोर, नागाणा आदि नामों में पहले नाग शब्द लगा होने से लोग इनका नामकरण उसी वंश के संबन्ध से हुआ मानते हैं और उनका अनुमान है कि मंडोर का पर्वत भी उन्हीं के सम्बन्ध से 'भोगिशैल' कहाता है।

इसी प्रकार जोहिया (यौधेय), दहिया और गौड़वंशी राजपूत भी इस देश के अधिकारी रह चुके हैं। इनमें से जोहिया लोग बीकानेर की तरफ थे। दहियों के दो लेख किनसरिया (पर्वतसर से ४ मील उत्तर) के केवाय माता के मंदिर से मिले हैं। इनमें का एक वि० सं० १०५६ का और दूसरा वि० सं० १३००

१. इसके बाद सांभर के चौहान राजा वीसलदेव (विग्रहराज द्वितीय) ने सोलंकी मूलराज पर चढ़ाई कर उसे कच्छ की तरफ भगा दिया था।

२. संस्कृत साहित्य में भोगि शब्द भी नाग का पर्यायवाची है।

का है। तीसरा लेख मगलाना (परवतसर परगने) से मिला है। यह वि० सं० १२७२ का है। ये लोग चौहानों के सामंत थे। कहते हैं कि गोड़वाड़ में गौड़-वंशियों का अधिकार रहा था। लोग इस प्रदेश का नामकरण इसी वंश के पीछे होना अनुमान करते हैं। इसी प्रकार मारोठ के आसपास का प्रदेश भी इन्हीं के अधिकार में रहने के कारण गौड़ावाटी कहाता था। परन्तु वि० सं० १६८६ में मेड़तिया रघुनाथसिंह ने इन से यह प्रदेश छीन लिया।

मुसलमानों के हमले

आगे मारवाड़ पर होने वाले मुसलमानों के आक्रमणों का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

हि० सं० १०५ से १२५ (वि० सं० ७८१ से ८००=ई० सं० ७२४ से ७४३) तक हशाम अरब का खलीफा था। पहले लिखे अनुसार इसके समय इसके भारतीय प्रदेशों के शासक जुनैद की सेना ने मारवाड़, भीनमाल, अजमेर, गुजरात आदि पर चढ़ाई की। यह बात कलचुरी संवत् ४६० (वि० सं० ७६६=ई० सं० ७३६) के चालुक्य पुलकेशी के दान-पत्र से भी प्रकट होती है।

हांसोट (भड़ोच ज़िले) से चौहान भर्तृवद्ध द्वितीय का एक दान-पत्र मिला है। यह वि० सं० ८१३ (ई० सं० ७५६) का है। इससे ज्ञात होता है कि पड़िहार नागभट्ट (प्रथम) के समय उसके राज्य (मारवाड़ के दक्षिणी भाग) पर बलोचों ने चढ़ाई की थी। परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली।

सिंध और मारवाड़ की सीमा मिली हुई होने से समय-समय पर मुसलमानों के ऐसे अनेक आक्रमण यहां पर होते रहते थे।

हि० सं० ५१२ (वि० सं० ११७६=ई० सं० १११६) में मुहम्मद बाहलीम बागी हो गया और उसने नागौर का किला बनवाया। इस पर बहरामशाह ने उसपर चढ़ाई की। परंतु इसी बीच मुहम्मद बाहलीम के मर जाने से वह लौट गया।

वि० सं० १०८२ (हि० सं० ४१६=ई० सं० १०२५) में जिस समय महमूद गज़नवी ने सोमनाथ पर चढ़ाई की थी, उस समय वह नाडोल की तरफ से होता हुआ उधर गया था। इसके बाद भी मौका पाकर गज़नवी-वंश के हाकिमों की सेनाएं लाहौर से आगे बढ़ मारवाड़ के भिन्न भिन्न प्रदेशों पर हमला करती रहती

थीं और उन्हीं के एक हमले में साँभर का चौहान राजा दुर्लभराज मारा गया था। परन्तु उस का वंशज अजयदेव और उसका पुत्र अणोराज इन आक्रमण-कारियों को मार भगाने में समर्थ हुए। अणोराज का छोटा पुत्र विग्रहराज (वीसलदेव) चतुर्थ था। देहली के अशोक के स्तंभ पर (जिसको फीरोजशाह की लाट कहते हैं) इसका वि० सं० १२२० (ई० स० ११६३) का एक लेख खुदा है। उससे ज्ञात होता है कि इसने आर्यावर्त से मुसलमानों को भगा दिया था। उस समय तक तो इधर की तरफ मुसलमानों के पैर नहीं जमे और वे लूट-मारकर के ही लौटते रहे। परन्तु उसके बाद सुलतान शहाबुद्दीन के आक्रमण शुरू हुए। पहले पहल मारवाड़ में नाडोल पर उसका हमला हुआ। परन्तु उसमें उसे सफलता नहीं मिली। वि० सं० १२४७ (ई० स० ११९१) में उसका और अजमेर के चौहान पृथ्वीराज का पहला युद्ध हुआ। इसमें उसे बुरी तरह से घायल होकर भागना पड़ा। इस पर वि० सं० १२४९ (ई० स० ११९२) में उस (शहाबुद्दीन) ने पहली हार का बदला लेने के लिये दूसरी बार पृथ्वीराज पर चढ़ाई की। उस समय आपस की फूट के कारण पृथ्वीराज मारा गया और अजमेर, सवालक आदि पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। तथा वहाँवाले उनको कर देने लगे। वि० सं० १२५२ (ई० स० ११९५) में कुतुबुद्दीन ने पृथ्वीराज के भाई हरिराज से अजमेर छीनकर वहाँ पर पूरी तौर से अधिकार कर लिया। इसी वर्ष गुजरात के सोलंकी भीमदेव ने मेरों की सहायता से कई महीनों तक कुतुबुद्दीन को अजमेर में घेरे रक्खा। अंत में गजनी से नई सेना के आ जाने पर घिराव उठाना पड़ा। इसके बाद शहाबुद्दीन ने गुजरात पर चढ़ाई की। परन्तु इसमें उसे घायल होकर लौटना पड़ा। इसीके दूसरे वर्ष (वि० सं० १२५३ में) इस हार का बदला लेने के लिये उस (कुतुबुद्दीन) ने दुबारा चढ़ाई कर गुजरात को लूटा। इस बार विजय उसके हाथ रही। ये दोनों युद्ध कायद्रां में (आबू के पास) हुए थे। इस पिछली चढ़ाई में उसकी सेना अजमेर से नाडोल और पाली (बाली ?) की तरफ होती हुई गई थी, और वहाँ के लोग उसके डर से किले खाली कर भाग खड़े हुए थे।

-
१. यदि दुर्लभराज को दुर्लभराज प्रथम मानें तो यह जुनैद का समकालीन होता है; और यदि इसे दुर्लभ तृतीय मानें तो इस घटना का गजनी के खुसरो या उसके पुत्र खुसरो मल्लिक के समय होना पाया जाता है।

वि० सं० १२६७ (ई० सं० १२१०) में दिल्ली के बादशाह शम्सुद्दीन अल्तमश ने जालोर विजय किया और वि० सं० १२७४ (ई० सं० १२१७) में लाहौर के सूबेदार नासिरुद्दीन महमूद ने मंडोर पर अधिकार कर लिया। परंतु कुछ ही दिनों में वह उसके हाथ से निकल गया। इसपर वि० सं० १२८४ (ई० सं० १२२७) में उसके पिता शम्सुद्दीन अल्तमश ने दुबारा उसे विजय किया। इसके अलावा स्वालक और साँभर पर भी उसका अधिकार हो गया।

वि० सं० १२९९ (ई० सं० १२४२) में अलाउद्दीन की गद्दीनशीनी के समय मंडोर, नागौर और अजमेर मल्लिक इजुद्दीन के अधिकार में आए।

इसके बाद वि० सं० १३५१ (ई० सं० १२९३) में मंडोर पर फ़ीरोज़शाह द्वितीय का आक्रमण हुआ। उस समय की बनी मसजिद इस समय भी वहाँ पर विद्यमान है और उसमें उसका एक खंडित शिला-लेख लगा है। सम्भवतः उस समय मंडोर पर सोनगरा चौहान सामन्तसिंह का अधिकार होगा।

वि० सं० १३६५ (ई० सं० १३०८) में अलाउद्दीन खिलजी ने चौहान शीतलदेव (सातल) से सिवाना और वि० सं० १३६८ (ई० सं० १३११) में चौहान कान्हड़देव से जालोर छीन लिया।

वि० सं० १४६४^१ में जफ़रखाँ गुजरात का स्वतंत्र बादशाह बन बैठा और उसने अपने भाई शम्सखाँ को नागौर की हुकूमत दी। यह हुकूमत यद्यपि राव चूड़ाजी, राव रणमल्लजी आदि की चढ़ाईयों के कारण बीच-बीच में छूटती रही, तथापि वि० सं० १५९५ तक समय-समय पर वहाँ पर इस वंश के शासकों का अधिकार होता रहा।

वि० सं० १४५० में जालोर पर बिहारी पठानों का अधिकार हो गया था।

इनके अलावा मारवाड़ के प्रदेशों पर इधर-उधर के मुसलमान-शासकों के और भी अनेक साधारण हमले हुए थे।

१. 'तवक़ाते-अक़बरी' (पृ० ४४८) में इस घटना का समय हिजरी सन् ८०८ के बाद लिखा है। इस हिसाब से वि० सं० १४६४ ही होना ठीक प्रतीत होता है।

जोधपुर के राष्ट्रकूट नरेशों और उनके वंशजों का प्रताप

इस इतिहास के प्रथम खण्ड में पहले के राष्ट्रकूट नरेशों के प्रताप के विषय में, उनकी प्रशस्तियों और समकालीन लेखकों की पुस्तकों से, प्रमाण उद्धृत किए जा चुके हैं; इसलिये यहां पर राव सीहाजी के वंशजों के प्रताप के विषय में कुछ प्रमाण दिए जाते हैं।

वि० सं० १५६१ के महाराणा रायमल्ल के घोसूंडी (मेवाड़) से मिले लेख में लिखा है:—

“श्रीयोधन्जितपतिरुग्रखड्गधारानिर्घातग्रहतपठानपारशीकः ॥ ५ ॥

पूर्वानतार्प्साङ्गयया विमुक्तया काश्यां सुवर्णैर्विपुलैर्विपश्चितः ।

अर्थात्—राव जोधाजी ने अपनी तलवार से पठानों और पर्शियावालों (मुसलमानों) को हराया, और गया के यात्रियों पर लगनेवाला कर छुड़वाकर अपने पूर्वजों को और काशी में बहुतसा सुवर्ण दान कर विद्वानों को तृप्त किया ।

फरिश्ता (मुहम्मद कासिम) ने वि० सं० १६७१ के करीब ‘तारीख़ फरिश्ता’ नामक इतिहास लिखा था । उस में लिखा है कि जोधपुर के राव मालदेव के साथ के युद्ध में स्वयं बादशाह शेरशाह ने कहा:—

“खुदाका शुक्र है कि, किसी तरह फ़तह हासिल हो गई, वरना मैंने एक मुट्ठी भर बाजरे के लिये हिन्दुस्तान की बादशाहत ही खोई थी ।”

“अकबर नामा ” नामक इतिहास में राव मालदेवजी को हिन्दुस्तान के तमाम दूसरे रावों और राजाओं से बड़ा लिखा है, और “तुजुक जहाँगिरी” में उन्हें सेना और राज्य की विशालता में महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) से भी बड़ा बतलाया है । राव मालदेवजी की सेना में ८०,००० सिपाही थे ।

१. जर्नेल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० ५६, अंक १, नं० २

२. (जिल्द १, मिकाला २, पेज २२८)

३. जिल्द २, पेज १६०,

४. दिवाचा (भूमिका), पेज ७,

राव मालदेवजी के पुत्र राव चन्द्रसेनजी के विषय में किसी कवि ने लिखा है:—

“अणदगिया तुरी ऊजला असमर, चाकर रहण न डिगियौ चीत ।

सारे हिन्दुस्थान तरौ सिर पातल नै चन्द्रसेण प्रवीत ।

अर्थात्—उस समय महाराणा प्रताप और राव चन्द्रसेन दोनों ने न तो शाही अधीनता ही स्वीकार की और न अपने घोड़ों पर शाही निशान का दाग ही लगवाया ।

इसके अलावा स्वयं महाराणा प्रताप ने भी राव चन्द्रसेन द्वारा अंगीकृत मार्ग का ही (दस वर्ष बाद) अनुसरण किया था ।

“आलमगीर नामे” में महाराजा जसवंतसिंहजी प्रथम को “रुके रकीने दौलत व मिदने कवीमें सलतनत” (अर्थात्—रौब—शाय में सबसे बढ़कर और बादशाही सलतनत का स्तंभ) लिखा है ।

“मआसिरुल उमरा” में महाराजा जसवंतसिंहजी को फौज और सामान की अधिकता से हिन्दुस्तान के राजाओं में सबसे बड़ा बतलाया है ।

इन महाराजा ने औरंगजेब के समय ही बहुत सी मसजिदें गिरवाकर उनके स्थान पर मन्दिर बनवा दिए थे । महाराजा जसवंतसिंहजी के जीते जी बादशाह औरंगजेब की हिम्मत हिन्दुओं पर ‘जज़िया’ लगाने की नहीं हुई । इसीसे इनके मरने पर उसने फिर से ‘जज़िया’ लगाया था ।

जोधपुर-नरेश महाराजा अजितसिंहजी ने सैय्यद भ्राताओं से मिलकर बादशाह फ़र्रुख़सीयर को मरवा डाला, और फिर क्रमशः तीन बादशाहों को देहली के तख़्त पर बिठाया ।

राठोड़ वीर दुर्गादास की कुशलता और वीरता की प्रसिद्धि आज तक चली आती है ।

महाराजा रामसिंहजी की राठोड़ वाहिनी ने सम्मुख-रण में प्रवृत्त अपने शत्रु ‘अमीरुल उमरा’ (जुल्फ़िकार जंग) की सेना को मौक़े पर पानी पिलाकर अपनी उदारता का परिचय दिया था ।

१. पृ० ३२

२. जिल्द ३, पृ० ६०३

३. सरकार लिखित—हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब, भाग ३ पृ० ३६८—३६९

४. वी० ए० स्मिथ की—ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, पृ० ४३८

५. सहस्रल मुताखरीन, भाग ३, पृ० ८८५

कर्नल टॉड ने अपने 'राजस्थान के इतिहास' में महाराजा बखतसिंहजी को राजस्थान (राजपूताने) में होनेवाले नरेशों में सर्वश्रेष्ठ और आदर्श नरेश माना है ।

कर्नल टॉड ने अपने इतिहास में एक स्थान पर यहां तक लिखा है कि:-

“मुग़ल बादशाह अपनी विजयों में से आधी के लिये राठोड़ों की एक लाख तलवारों के एहसानमंद थे ।”

इस बीसवीं शताब्दी के यूरोपीय महायुद्ध में भी, अन्य राठोड़-नरेशों की सहायता के अलावा, जोधपुर-नरेश महाराजा सुमेरसिंहजी ने अपनी १६ वर्ष की अवस्था में और ईडर-नरेश महाराजा प्रतापसिंहजी ने अपनी ६१ वर्ष की आयु में रण-स्थल में पहुंच, जो क्षत्रियोचित आदर्श उपस्थित किया था, वह भी किसी से छिपा नहीं है ।

इससे प्रकट होता है कि राष्ट्रकूट (राठोड़) सदा से ही प्रतापी और वीर होते चले आए हैं, और इसी से ये राजस्थान में 'रणबंका राठोड़' के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

आगे राष्ट्रकूटों की वैयक्तिक वीरताओं के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

अकबर नामें में लिखा है कि—‘राव मालदेव के राज्य में जिस समय अकबर की सेना ने मेड़ता नामक नगर पर चढ़ाई की, उस समय जैतावत राठोड़ देवीदास ने अपने ४०० सवारों के साथ किले से निकल विशाल शाही सेना का ऐसी वीरता से मुकाबला किया कि रुस्तम का नाम और निशान दुनिया से मिटा दिया ।’

उसी इतिहास से प्रकट होता है कि अकबर के चढ़ाई करने पर जब महाराणा उदयसिंह को पहाड़ों में जाना पड़ा, तब चित्तोड़ के किले की रक्षा का भार मेड़तिया राठोड़ जैमल ने ग्रहण किया और अपने जीते जी अकबर को सफल न होने दिया । परन्तु उसके मारे जाते ही किला बादशाह के अधिकार में चला गया ।

१. (क्रुक् संपादित) भा० २ पृ० १०५७,

२. The Moghul Emperors were indebted for half their conquest to the 'Lakh Tarwar Rathoran,' the 1,00,000 swords of the Rathors (Annals and Antiquities of Rajsthan (edited by W. Crooke), Vol. I, pp 105—106.

३. जोधपुर नरेशों के प्रताप और वीरता का पूरा-पूरा विवरण उनके इतिहास में यथास्थान मिलेगा ।

४. दफ्तर २, पृ० १६२

५. 'अकबरनामा', दफ्तर २, पृ० ३२०-३२१,

बीसवीं शताब्दी के यूरोपीय महायुद्ध के समय भी जोधपुर के रिसाले ने जो वीरता दिखलाई थी, उस की ब्रिटिश और भारत गवर्नमेंट ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी। उदाहरणके लिये ई० सन् १९१८ की २३ सितंबरकी घटनाका विवरण ही पर्याप्त होगा।

उस समय टर्की के शत्रु पक्ष में मिल जाने से मिस्र (इजिप्ट) के रणस्थल में भीषण युद्ध हो रहा था। इसी से ई० सन् १९१८ के मार्चमें जोधपुर-रिसाले को पश्चिम के रणक्षेत्र से हटाकर पूर्व के रणक्षेत्र में भेजा गया। जिस समय यह रिसाला हैफा के सामने पहुँचा, उस समय उस नगर को टर्की के युद्ध विशारदों ने पूर्ण रूप से सुरक्षित कर रक्खा था और वे इस रिसाले को देखतेही वहाँ के सुरक्षित मोरचों में बैठ भीषण नाद के साथ आग उगलनेवाली अपनी तोपों से इस पर गोले बरसाने लगे। वहाँ पर जोधपुर रिसाले के और हैफा के बीच नदी की प्राकृत बाधा होने से शत्रु की स्थिति और भी सुरक्षित हो रही थी। यह देख अनुभवी और कुशल ब्रिटिश सेनापति भी एका एक आगे बढ़ने की हिम्मत न करसके। परन्तु मारवाड़ के वीरों को शत्रु के सामने पहुँच पीछे पैर रखना सह्य न हुआ। इसी से इन्होंने अपने सेनापति की अधिनायकता में अपने चमचमाते हुए भालों को सम्हाल कर शत्रु पर आक्रमण कर दिया। इन्हें इस प्रकार मृत्यु को आलिंगन करने के लिये आगे बढ़ते देख, शत्रु ने इन्हें नदी के उस पार रोक रखने के लिये, अपनी गोला-वृष्टि को और भी तीव्रतम कर दिया। परन्तु जोधपुर-रिसाले ने इसकी कुछ भी परवाह न की और कुछ ही देर में नदी, शत्रु की गोला-वृष्टि और उसके सुदृढ़ मोरचों की बाधाओं को पार कर हैफा नगर पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध में राजपूतों के भालों से अनेक तुर्क-योद्धा मारे गए और करीब ७०० ज़िन्दा पकड़े गए।

इसी प्रकार ई० स० १९१८ की १४ जुलाई के जार्डन की घाटी के युद्ध में भी जोधपुर के रिसाले ने अद्भुत वीरता दिखलाई थी^१।

-
१. इन कार्यों का उल्लेख ब्रिटिश सेनापतियों के खलीतों (Despatches) में और भारत के उस समय के वाइसराय लार्ड चैम्सफोर्ड की २० नवंबर १९२० को जोधपुर की वक्तृता में विशद रूपसे मिलता है। वाइसराय ने अपने भाषण में कहा था कि—

“By their exploits at Haifa and in the Jordan Valley recalled the deeds of their ancestors who fought at Tonga, Merta and Patan. The reputation which they have gained is well worthy of the glorious annals of Marwar.”

जोधपुरके राष्ट्रकूट नरेशोंका विद्याप्रेम और उनकी दानशीलता ।

जोधपुर (मारवाड़) के राठोड़ नरेश भी अपने पूर्वजों के समान ही विद्वानों और कवियों के आश्रयदाता थे और अपने समय के कवियों आदि का दान और मान से सत्कार करते रहते थे । इसके अलावा इनमें के कुछ नरेश स्वयं भी अच्छे विद्वान थे और उनके या उनके वंशजों के बनाए या बनवाए ग्रन्थ इस समय तक भी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं ।

प्राचीन ख्यातों और प्राचीन काव्यों से प्रकट होता है कि राजा गजसिंहजी ने अपने समय के १४ कवियों को 'लाख पसावै' दिया था । इन्हीं के समय हेम कवि ने 'गुण भाषाचित्र' और गाडण शाखा के चारण कवि केशवदास ने 'गुण रूपक' नामक काव्य लिखे थे । ये दोनों काव्य डिंगल भाषा के हैं और इनमें राजा गजसिंहजी के वीर-चरित्र का वर्णन है । उपर्युक्त कवियों में से पहले कवि को कितना पुरस्कार मिला यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता । परन्तु दूसरे कवि को १५०० रुपये वार्षिक आय की जागीर मिली थी ।

राजा गजसिंहजी के उत्तराधिकारी महाराजा जसवन्तसिंहजी प्रथम विद्वानों के आश्रयदाता होने के साथ ही स्वयं भी विद्वान थे । इनके लिखे भाषा-ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं:—

(१) भाषाभूषण

अलङ्कार

अर्थात्—जोधपुर के वीरों ने हैफा और जार्डन में किए अपने वीरतापूर्ण कार्यों से अपने पूर्वजों के लुझा, मेड़ता और पाटन में किए युद्धों की याद करवा दी । इस रिसाले के वीरों ने जो प्रशंसा प्राप्त की है, वह मारवाड़ की वीरतापूर्ण प्राचीन गाथाओं के अनुकूल ही है ।

१. जोधपुर बसाने वाले राव जोधाजी की प्रपौत्री (राव दूदाजी की पौत्री और रत्नसिंहजी की पुत्री) मीराबाई के भजन और नरसीजी का मायरा आदि सर्व प्रसिद्ध हैं । इनका विवाह मेवाड़ के राणा संग्रामसिंह (प्रथम) के ज्येष्ठ पुत्र भोजराजजी के साथ हुआ था ।
२. राव वीरमजी और उनके पुत्र गोगादेव के यशोवर्णन में ढाढी जाति के कवि बहादर ने डिंगल भाषा का "वीरमायण" नामक काव्य लिखा था ।
३. राजस्थान में कवियों को 'लाख पसाव' देने का यह नियम था कि, जिसे यह पुरस्कार दिया जाता था, उसे वस्त्र, आभूषण, हाथी, घोड़ा और कमसे कम एक हजार से पांच हजार तक वार्षिक आयकी जागीर दी जाती थी ।
४. हेम कवि ने 'गुणरूपक' नाम का एक अन्य काव्य भी लिखा था ।
५. यह ग्रन्थ नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस द्वारा प्रकाशित हुआ है ।

- (२) आनन्दविलास
(३) अनुभवप्रकाश
(४) अपरोक्षसिद्धान्त
(५) सिद्धान्तबोध
(६) सिद्धान्तसार
(७) चन्द्रप्रबोध

वेदांत

(इनमें के चार ग्रन्थ पद्यमय हैं और 'सिद्धान्त-बोध' में गद्य और पद्य दोनों हैं ।)

(यह नाटक संस्कृत के 'प्रबोधचन्द्रोदय' नामक नाटक का अनुवाद है ।)

- (८) पूली जसवन्त संवाद और
फुटकर दोहे और कुण्डलिये

वेदान्त विषयक ।

- (९) आनन्दविलास यह संस्कृत पद्यों में है, और इसका विषय भी भाषा के 'आनन्दविलास' के समान वेदान्त ही है ।

इनके अलावा नायिका भेद पर भी महाराज की लिखी एक पुस्तक बतलाई जाती है ।

महाराजा जसवन्तसिंहजी प्रथम के पुत्र महाराजा अजितसिंहजी के समय के तीन काव्य मिले हैं । इनमें से दीक्षित बालकृष्ण रचित 'अजितचरित्र' और भट्ट जगजीवन कृत 'अजितोदय' संस्कृत के और 'अजितचरित' भाषा का है । महाराज ने ब्राह्मणों और चारणों को करीब ३५ गांव दान दिए थे^१ ।

स्वयं महाराजा अजित के बनाए भाषा के दो ग्रन्थ मिले हैं । एक 'गुणसार' और दूसरा 'भाव विरही' ।

मिश्रबन्धु विनोदों में इनके बनाए अन्य ग्रन्थों के नाम इस प्रकार मिलते हैं:—

दुर्गापाठ भाषा, राजरूप का ख्याल, निर्वाणी दोहा, ठाकुरों (आदि) के दोहे, भवानी सहस्रनाम और फुटकर दोहे ।

१. जोधपुर दरबार की आज्ञा से इस इतिहास के लेखक ने, इन पाँचों ग्रन्थों को संपादित कर (वेदान्तपंचक के नाम से) गवर्नमेंट प्रेस, जोधपुर से प्रकाशित करवाया है ।

२. इन्हीं के समय पण्डित श्यामराम ने 'ब्रह्माण्डवर्णन' नामक काव्य लिखा था ।

३. प्रथम वरणा शृङ्गार को, राजनीति निरधार ।

जोग जुगति यामें सबै, ग्रन्थ नाम गुणसार ॥

४. यह साहित्य का ग्रन्थ है ।

५. भाग २, पृ. ५५६-५५७

अजितसिंहजी के पुत्र महाराजा अभयसिंहजी के समय के बने तीन काव्यों में से भट्ट जगजीवन का बनाया 'अभयोदय' संस्कृत में और कविता शाखा के चारण करणीदान का बनाया 'सूरजप्रकाश' और रतनू शाखा के चारण वीरभाण का बनाया 'राजरूपक' डिंगल भाषा में हैं। सूरजप्रकाश के कर्त्ता नै ही अपने काव्य के आशय को १२६ पद्धरी छन्दों में लिख कर उसका नाम 'बिड़दसिणगर' रख दिया था। इन्हीं दोनों काव्यों के पुरस्कार में महाराजा ने करणीदान को २००० रुपये वार्षिक आय की जागीर दी थी। परन्तु अभाग्यवश वीरभाण को शीघ्र ही मारवाड़ छोड़ कर चला जाना पड़ा और इसीसे उसका काव्य महाराजा अभयसिंहजी के सामने पेश न हो सका। अन्त में करीब १०० वर्ष बाद जब महाराजा मानसिंहजी ने उस काव्य को देखा, तब उन्होंने कवि के आभार से उन्मृष्ट होने के लिये वीरभाण के वंशज का पता लगवाकर, उसके अशिद्धित होने पर भी, उसे ५०० रुपये वार्षिक आय की जागीर दी।

'सूरजप्रकाश' के एक छप्पर्य से प्रकट होता है कि महाराजा अभयसिंहजी ने १४ 'लाख पसाव' दिए थे।

इन्हीं के समय सांदू शाखा के चारण कवि पृथ्वीराज ने 'अभयविलास' नाम का भाषा-काव्य लिखा था।

महाराजा बखतसिंहजी की डिंगल भाषा में लिखी एक देवीस्तुति और कुछ भजन मिले हैं।

महाराजा भीमसिंहजी के समय रामकर्ण कवि ने 'अलङ्कारसमुच्चय' नामक भाषा-ग्रन्थ लिखा था।

ऊपर जिन महाराजा मानसिंहजी का उल्लेख आ चुका है, वह भी विद्वानों और कवियों के आश्रयदाता होने के साथ ही स्वयं भी संस्कृत और भाषा के

१.

‘बारठ नरहर बगस एक लख प्रथम उजागर।

कवि आढा किशन नूं ब्रवे लख दुवौ क्रीतकर ॥

अभंग खेम धधवाड़ दोय लख हाथे दीधा।

हरि संदायच हेक लाख ब्रव बहु जस लीधा ॥

लह हेक लाख महड्ड बलू लख त्रया सांदू नाथ लह।

आढा महेस हू रीम अति पांच लाख दीधा सुपह ॥ १ ॥

अच्छे विद्वान् थे । उनके बनाए ग्रन्थों के नाम आगे दिए जाते हैं:-

- | | |
|---|--|
| (१) नाथ चरित्र (संस्कृत गद्यात्मक काव्य ।) | |
| (२) विद्वज्जनमनोरंजनी (संस्कृत-मुण्डकोपनिषद् की टीका प्रथम खंड ।) | |
| (३) कृष्णविलोस (भागवत के दशम स्कन्ध का भाषा में पद्यात्मक अनुवाद ।) | |
| (४) टीका (भागवत की मारवाड़ी भाषा की टीका ।) | |
| (५) चौरासी पदार्थ नामावली | भाषापद्यात्मक |
| | (इसमें न्याय, साहित्य, संगीत, वैद्यक, आदि |
| | अनेक विषय हैं । |
| (६) जलंधरचरित | (७) नाथचरित |
| (८) जलंधरचन्द्रोदय | (९) नाथपुराण |
| (१०) नाथस्तोत्र | (११) सिद्धगंगा, मुक्ताफल, संप्रदाय आदि |
| (१२) प्रश्नोत्तर | (१३) पदसंग्रह |
| (१४) शृङ्गार रस की कविता | (१५) { परमार्थ विषय की कविता (भाषा की |
| (१६) नाथाष्टक | { स्फुट कविता का बड़ा संग्रह) |
| (१७) जलंधर ज्ञानसागर | (१८) तेजमञ्जरी |
| (१९) पंचावली | (२०) स्वरूपों के कवित्त |
| (२१) स्वरूपों के दोहे | (२२) सेवासार |
| (२३) मानविचार | (२४) आराम रोशनी |
| (२५) उद्यानवर्णन | |

१. मिश्रबन्धु विनोद में इनके कुछ अन्य ग्रन्थों के नाम इस प्रकार मिलते हैं:-रागारों जालो, बिहारी सतसई की टीका, रागसागर, श्रीनाथजी रा दोहा, नाथप्रशंसा, वंशावली (?), नाथजी की वाणी, नाथकीर्तन, नाथमहिमा, नाथसंहिता, रामविलास, फुटकर कवित्त, सवैये, दोहे आदि । (भा० २, पृ० ८६१-८६२)
२. इन्हीं महाराजा मानसिंहजी की आज्ञासे श्रीकृष्ण शर्मा ने उक्त उपनिषद् के द्वितीय और तृतीय खण्डों की 'सारग्राहिणी' (संस्कृत) टीका और भीष्मपति ने उक्त उपनिषद् की भाषा टीका बनाई थी । यह पिछली टीका अपूर्ण है ।
३. जोधपुर दरबार की आज्ञा से इस इतिहास के लेखक ने इसके ३२ अध्यायों को संपादित कर गर्वनमैट प्रेस, जोधपुर से प्रकाशित करवाया है ।
४. इस समय इसका तीसरा और पांचवां स्कन्ध ही उपलब्ध है ।

आपकी भटियानी रानी प्रताप कुंवरिजी ने भी भगवद्भक्तिपूर्ण अनेक छोटे छोटे ग्रन्थ लिखे थे ।

इन्हीं महाराज के समय बांकीदास आदि अनेक कवियों ने 'मानजसोमण्डन' आदि अनेक कवित्वपूर्ण ग्रन्थ लिखकर एकाधिक बार पुरस्कार प्राप्त किया था ।

महाराजा मानसिंहजी के उत्तराधिकारी महाराजा तखतसिंहजी ने भी अनेक पदों की रचना की थी । आपकी जाडेजा वंश की रानी प्रतापकुंवरिजी (प्रतापबाला) ने 'हरिपदावली' और 'रामपदावली' नाम के दो ग्रन्थ लिखे थे । इनमें भक्तिरस भरे सुन्दर भजन हैं ।

१. आप के बनाए ग्रन्थों का संग्रह ईडर की महारानी रत्नकुंवरिजी ने प्रकाशित करवाया है । उसमें उनके बनाए निम्नलिखित ग्रन्थ हैं:—१ ज्ञानसागर, २ ज्ञानप्रकाश, ३ प्रतापपचीसी, ४ प्रेमसागर, ५ रामचन्द्र नाम महिमा, ६ रामगुणसागर, ७ रघुवर स्नेह लीला, ८ रामप्रेम सुखसागर, ९ राम सुजस पचीसी, १० पत्रिका, ११ रघुनाथजी के कवित्त, १२ भजन पद हरिजस, १३ प्रताप-विनय, १४ श्रीरामचन्द्र विनय, १५ हरिजसगायन ।

(मारवाड़ी भजन सागर,—कवियों का परिचय, पृ० १६—१७)

२. महाराजा मानसिंहजी के समय के बने कुछ अन्य ग्रन्थ:—

कवि शंभुदत्त कृत 'नाथचन्द्रोदय', 'जलंधरस्तोत्र' और 'राजकुमारप्रबोध'; पण्डित सदानन्द त्रिपाठी कृत 'अवधूतगीता' की संस्कृत टीका, गीताकी 'सिद्धतोषिणी' नामकी संस्कृत टीका और 'जलंधराष्टक' की 'आत्मदीप्ति' नामकी (संस्कृत) टीका; पण्डित विश्वरूप कृत 'गोरक्ष-सहस्र-नाम' की टीका, 'मेघमाला' (संस्कृत पद्यात्मक); भीष्म भट्ट कृत 'विवेकमार्तण्ड' की 'योगितोषिणी' टीका; मूलचन्द्र यति कृत 'मानसागरी महिमा', 'नायिकालक्षण'; सेवग दौलतराम कृत 'जलंधर-गुण-रूपक'; शिवनाथ कवि कृत 'जलंधर जस वर्णन'; सेवग वगीराम गाडूराम कृत 'जलंधर जस भूषण', और 'मानसिंह जस रूपक'; कवि बांकीदास कृत 'नाथस्तुति'; चारण चैना कृत 'जलंधरस्तुति'; व्यास ताराचन्द्र कृत 'नाथानन्द प्रकाशिका'; मीर हैदर अली कृत 'जलंधरस्तुति'; सुकालनाथ कृत 'नाथ आरती'; सेवग पन्ना कृत 'नाथ उत्सव माला'; चारण सेणीदान और भंडारी पीरचन्द कृत 'नाथस्तुति'; और विप्र गुमान कृत भागवत दशम स्कन्ध के ४६ से ६१ तक के अध्यायों का भाषा पद्यानुवाद आदि । इनके अलावा महाराजको प्रसन्न करने के लिये बहुत से अन्य कवियों ने अनेक नाथाष्टक, जलंधराष्टक और फुटकर गीत, कवित्त, दोहे आदि भी लिखे थे ।

महाराजा मानसिंहजी की एक परदायत तुलछराय भी भगवद्भक्ति-पूर्ण-भजन-रचना में प्रवीण थी ।
(मारवाड़ी भजन सागर 'कवियों की जीवनी' पृ० ११—१२)

३. आपकी कविताओं का 'संग्रह प्रतापकुंवरि-पद-रत्नावली' के नाम से प्रकाशित हो चुका है ।
(मारवाड़ी भजन सागर, कवियों की जीवनी, पृ० १०—११)

आपकी बघेल वंश की रानी रणछोड़कुंवर जी भी भक्ति-पूर्ण पदों के बनाने में प्रवीण थीं ।

महाराजा तखतसिंहजी के उत्तराधिकारी महाराजा जसवन्तसिंहजी^१ द्वितीय के समय महामहोपाध्याय कविराजा मुरारिदान ने 'यशवन्त-यशो-भूषण' नाम का ग्रन्थ लिखा था, और इसके संस्कृत और भाषा के दो-दो संस्करण तैयार किए गए थे । इस पर महाराजा ने कवि को लाख पसाव में पांच हजार रुपये वार्षिक आय की जागीर देकर सम्मानित किया था ।

इनके अलावा इन नरेशों के समय अनेक कवियों ने इनकी प्रशंसा में सैकड़ों गीत, कवित्त, दोहे आदि बनाए थे और इन्होंने भी अपनी गुण-ग्राहकता दिखलाने में कमी नहीं की थी । कई ऐसे भी अवसर आए थे जब कवि की एक छोटी सी उक्ति से प्रसन्न होकर इन नरेशों ने उन्हें अच्छी आय के अनेक गांव दे डाले थे । इन नरेशों की दान और मान में दी हुई सैकड़ों जागीरें इस समय भी कवियों और वीरों के वंशजों के अधिकार में चली आती हैं ।

महाराजा मानसिंहजी ने काशी, नेपाल आदि अनेक नगरों से संस्कृत के और राजपूताने के अनेक स्थानों से डिंगल आदि भाषाओं के ग्रन्थ अथवा उनकी नकलें मँगवाकर जोधपुर के किले में 'पुस्तकप्रकाश' नामक पुस्तकालय की स्थापना की थी । यद्यपि उनके स्वर्गवास के बाद उसकी तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया जाने से वहां की बहुतसी पुस्तकें इधर-उधर हो गई हैं, तथापि इस समय भी उसमें १६७८ संस्कृत की और १०१४ डिंगल आदि भाषाओं की

इन्हीं की समकालीन वीरों के बनाए कृष्ण-भक्ति में पूर्ण कुछ भजन मिलने हैं । परन्तु इसका जोधपुर राज-घराने से क्या संबंध था यह अज्ञात है ।

(मारवाड़ी भजन सागर, कवियों की जीवनी, पृ० २१)

१. महाराजा जसवन्तसिंहजी (द्वितीय) के छोटे भ्राता महाराजा प्रतापसिंहजी की भटियानी रानी रत्नकुंवरजी और महाराज किशोरसिंहजी की बघेल रानी विष्णुप्रसादकुंवरजी भी हरि-भक्ति-पूर्ण पद बनाने में कुशल थीं ।

बघेलीजी ने १ अवधविलास, २ कृष्णविलास और ३ राधा-रास-विलास नाम के ग्रन्थ बनाए थे ।

(मारवाड़ी भजन सागर, कवियों की जीवनी, पृ० ३५, १६)

२. एक संचित और दूसरा बड़ा ।

हस्तलिखित पुस्तकें विद्यमान हैं। जिस प्रकार संस्कृत की पुस्तकों में वेद, पुराण, दर्शन, साहित्य, काव्य आदि सब विषयों की पुस्तकें होने पर भी योग विषयक ग्रन्थों की संख्या अधिक है, उसी प्रकार भाषा में भी अन्य विषयों के ग्रन्थों से योग-विषयक ग्रन्थ अधिक हैं। इसका कारण महाराजा मानसिंहजी का इस विषय से अधिक प्रेम होना ही सिद्ध होता है।

इस 'पुस्तकप्रकाश' में महाराजा जसवन्तसिंहजी प्रथम रचित ग्रन्थों का संग्रह होने से अनुमान होता है कि इस पुस्तकालय का सूत्रपात उनके समय (अर्थात् विक्रम की १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ) से ही हो चुका था। वि० सं० १७७६ से १७८६ (ई० सं० १७१६ से १७३२) के बीच नकल किए गए महाभारत, पुराण और काव्य-ग्रन्थों से प्रकट होता है कि महाराजा अजितसिंहजी और महाराजा अभयसिंहजी के समय भी इस संग्रह में वृद्धि हुई थी। इसी प्रकार वल्लभ संप्रदायके ग्रन्थों की संख्या से पता चलता है कि इनका संग्रह महाराजा विजयसिंहजी के समय किया गया होगा। परंतु इसकी वास्तविक उन्नति महाराजा मानसिंहजी के समय ही हुई थी।

इसके अलावा 'पुस्तकप्रकाश' में जो लेखक नियत थे वे अन्य कार्य न होने पर वहां की पुस्तकों की नकलें तैयार किया करते थे। इससे इन नकलों की संख्या को मिला देने से संस्कृत पुस्तकों की संख्या १६७८ से ३०५७ और हिंदी पुस्तकों की संख्या १०६४ से १८४१ तक पहुंच जाती है। परंतु यह भी सम्भव है कि महाराजा मानसिंहजी की तरफ से समय-समय पर इस प्रकार तैयार की गई अनेक विषयों के ग्रन्थों की नकलें प्रेस के अभाव में विद्या प्रचार के लिये विद्वानों और विद्यार्थियों में बांटी जाती हों और इसीसे कुछ लेखक नियत किए गए हों। 'पुस्तकप्रकाश' में सब से पुरानी पुस्तक वि० सं० १४७२ (ई० स १४१५) की लिखी हुई है।

जोधपुर के राष्ट्रकूट (राठोड़) नरेशों का धर्म ।

जोधपुर-नरेशों की कुलदेवी चामुण्डा है, जो प्राचीन विश्वास के अनुसार श्येन का रूप धर इनके राज्य की रक्षा करती है। इसी से इन राजाओं के झन्डे या निशान पर श्येन-पत्नी का चिह्न बना रहता है। परन्तु इन नरेशों ने समय-समय पर वैष्णव और शैव मतों को भी बड़ी श्रद्धा से आश्रय दिया था। जोधपुर नरेश महाराजा विजयसिंहजी परम वैष्णव थे। उनके राज्य समय जोधपुर नगर में मांस और मदिरा का प्रचार विलकुल बंद कर दिया गया था। इस आज्ञा के उल्लंघन करने वाले को, चाहे वह कितना ही प्रभावशाली क्यों न हो, कठोर से कठोरतर दण्ड दिया जाता था। इनके दिए अनेक गाँव इस समय तक भी वल्लभ-संप्रदाय वालों के अधिकार में चले आते हैं।

महाराजा मानसिंहजी के समय शैवमत के अङ्गभूत नाथ-संप्रदाय का विशेष प्रभाव रहा और उक्त संप्रदाय के आचार्य उस समय में मिले अनेक गाँवों आदि का उपभोग अब तक करते चले आ रहे हैं।

इन राठोड़ नरेशों के समय उपर्युक्त पौराणिक मतों के अलावा जैन मत को भी अच्छा अवलम्ब मिला था। इसी से मारवाड़ में इस संप्रदाय का अच्छा प्रचार चला आता है।

१. उस समय पशुवध का निषेध होने से कसाइयों की मकानों के छतों की पट्टियाँ (छीनें) और बड़े-बड़े पत्थर उठाने का काम सौंपा गया था। उनके वंशज इस समय तक भी वही काम करते हैं और 'चँवालिये' कहलाते हैं।
२. महाराज ने आठवा ठाकुर जैतसिंह के इस आज्ञा का उल्लंघन करने पर उसे प्राण दण्ड दिया था।
३. राजा शूरसिंहजी ने चांदपोल दरवाजे के बाहर रामेश्वर महादेव का मन्दिर बनवाया था। उसके पुजारियों को राज्य की तरफ से जागीर मिली हुई है।

जोधपुर के राष्ट्रकूट (राठोड़) नरेशों का कलाकौशल-प्रेम ।

इन नरेशों का कला-कौशल की उन्नति पर भी विशेष ध्यान रहा है। इसका प्रमाण जोधपुर के सुन्दर और सुदृढ किले को, जिसकी स्थापना राव जोधाजी ने वि० सं० १५१६ (ई० सं० १४५६) में की थी, देखने से आपही आप मिल जाता है। इस में जोधाजी के और उनके बाद होने वाले उनके उत्तराधिकारियों के बनावे गए अनेक सुन्दर महल आदि विद्यमान हैं।

जोधपुर नगर की शहरपनाह पहले पहल राव मालदेवजी ने बनवाई थी। परन्तु महाराजा बखतसिंजी ने शहर के घेरे के बढ़ जाने से इसका विस्तार किया। इसके अलावा मारवाड़ राज्य के वैभव की उत्तरोत्तर वृद्धि और उसके साथ साथ यहां के नरेशों की क्रमशः बढ़ती हुई कला-कौशल की अभिरुचि का प्रमाण यहां के कुछ राजाओं पर बने मंडोर के देवल (Cenotaphs.) हैं। इनको देखने से अनुमान होता है कि जिस प्रकार राव मालदेवजी, राजा उदयसिंहजी, सवाई राजा शूरसिंहजी, राजा गजसिंहजी, महाराजा जसवन्तसिंहजी और महाराजा अजितसिंहजी के समय मारवाड़ राज्य की उत्तरोत्तर उन्नति होती गई, उसी प्रकार उनके नाम पर बने देवलों (Cenotaphs) के आकार और उनकी स्थापत्य कला में भी वृद्धि होती गई।

इनके अलावा महाराजा अजितसिंहजी के समय का बना मंडोर का एक-थंभिया महल, पहाड़ काटकर बनवाई बीरों आदि की मूर्तियाँ और उनके उत्तराधिकारी महाराजा अभयसिंहजी के समय पहाड़ काट कर तैयार की गई देवताओं आदि की मूर्तियाँ भी विक्रम की अठारहवीं शताब्दी की मारवाड़ की स्थापत्य-कला के अच्छे नमूने हैं।

१. कहते हैं कि किले पर का प्रसिद्ध मोतीमहल सवाई राजा शूरसिंहजी ने, फूतैमहल और दौलतखाना महाराजा अजितसिंहजी ने और फूलमहल महाराजा अभयसिंहजी ने बनवाया था। इसी प्रकार शृङ्गार चौकी, जिस पर नवीन महाराजाओं का राज-तिलक होता है, महाराजा विजयसिंहजी ने बनवाई थी।

२. इस समय इन मूर्तियों पर चूने की कली की हुई होने से इनकी असली कारीगरी नहीं देखी जा सकती।

मारवाड़ के नरेशों ने अनेक नए किले और महल बनवाए थे; और बहुत से पुराने किलों की मरम्मत करवा कर उनमें कई नवीन स्थान आदि तैयार करवाए थे । इनमें राव मालदेवजी का बनवाया अजमेर के किले में बीटली का कोट और चश्मे से किले में पानी चढ़ाने का मार्ग और (राव अमरसिंहजी और) महाराजा बखतसिंहजी के बनवाए नागोर के किले में के महल सराहनीय हैं । नागोर के किले का 'आबहवामहल, दिल्ली या आगरे के शाही महलों से बहुत कुछ समानता रखता है ।

महाराजा सरदारसिंहजी के समय बना महाराजा जसवंतसिंहजी (द्वितीय) का संगमरमर का देवल (Cenotaph) विक्रम की बीसवीं शताब्दी का अत्युत्तम नमूना है । इसी प्रकार जोधपुर का जुबली कोर्ट्स (Jubilee Courts.) नाम का न्यायालय भी इसी शताब्दी का सुन्दर भवन है ।

मारवाड़ के वर्तमान नरेश महाराजा उम्मेदसिंहजी साहब के समय बना विएडम अस्पताल, विलिङ्गडन बगीचा, उसमें का अजायबघर और पुस्तकालय का भवन और बालसमंद और मण्डोर के बगीचों को दिया गया नया दर्शनीय रूप भी बहुत ही सुन्दर है । इनके अलावा महाराजा साहब का छीतर नामक पहाड़ी पर का भव्य भवन भी, जो इस समय बन रहा है, जब तैयार हो जायगा, तब राजपूताने भर में एक अपूर्व महल होगा ।

मारवाड़ नरेशों के आश्रय के कारण यहां के कारीगर भी बड़े ही सिद्धहस्त होते थे । उनकी बनाई विशाल तोपें, और बंदूकें इस समय भी देखने वालों को आश्चर्य में डाल देती हैं ।

इन सब के अलावा महाराजा मानसिंहजी के समय बने चित्रों का संग्रह भी अपूर्व है । यह इस समय राजकीय अजायबघर में रक्खा हुआ है । इसमें अन्य अनेक चित्रों के अलावा करीब ४६६ चित्र, जिनमें से प्रत्येक की लंबाई करीब ४ फुट और चौड़ाई करीब $1\frac{1}{2}$ फुट के हैं ऐसे हैं, जिन पर समग्र रामायण, दुर्गाचरित, शिवपुराण आदि हिन्दू-धर्म के ग्रन्थों की कथाएँ चित्रित हैं । इसके अलावा ७३४ चित्रों में जो करीब १ फुट लंबे और आध फुट चौड़े हैं, सूरजप्रकाश नामक इतिहास का कुछ अंश, भागवत के दशमस्कन्ध का पूर्व भाग, पंचतंत्र और ढोला मारवण की कथाएं अंकित हैं ।

इस संग्रह की प्रशंसा इसको देखने वाले बड़े-बड़े विद्वानों ने की है । महाराजा मानसिंहजी, जिनके समय में यह संग्रह तैयार करवाया गया था, अन्य अनेक कलाओं के भी मर्मज्ञ थे । इसी से उनके विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है:—

जोध बसायो जोधपुर, व्रज कीनो व्रजपाल ।

लखनेऊ काशी दिली, मान कियो नेपाल ॥

अर्थात्—राव जोधाजी ने जोधपुर बसाया, महाराजा विजयसिंहजी ने वैष्णवमत में दृढ भक्ति होने से उसे व्रज बनादिया । (उनके समय यहां पर वल्लभ-संप्रदाय के अनेक मन्दिर बन गए थे ।) परन्तु महाराजा मानसिंहजी ने उसे लखनेऊ, काशी, दिल्ली, और नेपाल बनादिया । (उनके समय उनकी गुणग्राहकता के कारण यहां पर बहुत से कथक, संस्कृत के पंडित, गवैये, और योगी या नाथ-संप्रदाय के लोग इकट्ठे हो गए थे ।)

मारवाड़ के राठोड़ नरेश



राव सीहाजी

इस इतिहास के प्रथम भाग (राष्ट्रकूटों के इतिहास) में लिखा जा चुका है कि इतिहास-प्रसिद्ध राठोड़-नरेश जयचन्द्र (जयचन्द्र) के शहाबुद्दीन ग़ोरी के हमले में मारे जाने पर भी कन्नौज के आस-पास का प्रदेश उस (जयचन्द्र) के पुत्र हरिश्चन्द्र के अधिकार में ही रहा था। सम्भवतः इसी हरिश्चन्द्र की उपाधि या दूसरा नाम वरदायीसेन था। परन्तु वि० सं० १२५३ के बाद जब मुसलमानों के आक्रमणों से हरिश्चन्द्र का रहा-सहा राज्य भी जाता रहा, तब वरदायीसेन के पुत्र

१. यह भी सम्भव है कि वरदायीसेन हरिश्चन्द्र का छोटा भाई हो। परन्तु रामपुर और खिमसेपुर के इतिहासों में सीहाजी को प्रहस्त का पौत्र लिखा है। यह प्रहस्त शायद हरिश्चन्द्र का ही बिगड़ा हुआ रूप है। इसीसे हम भी हरिश्चन्द्र और वरदायीसेन को एक ही व्यक्ति अनुमान करते हैं।

जिस प्रकार जयचन्द्र की उपाधि “दलपुंगल” थी उसी प्रकार हरिश्चन्द्र की उपाधि “वरदायी-सैन्य” होना भी सम्भव है।

मारवाड़ का इतिहास

सेतराम और सीहाजी खोर (शम्साबाद) की तरफ चले गए और कुछ दिन बाद मोथा की तरफ होते हुए महुई में जा रहे। परन्तु जब उक्त प्रदेश में भी मुसलमानों का उपद्रव प्रारम्भ हो गया, तब इन्हें और सेतराम को मारवाड़ की तरफ आना पड़ा। सम्भव है, विदेश में आ जाने पर सेतराम ने अपने छोटे भाई सीहाजी को ही अपना दत्तक पुत्र मान लिया हो।

१. महुई गाँव फर्रुखाबाद ज़िले में है। वहाँ पर काली नदी के किनारे बने सीहाजी के निवासस्थान के खण्डहर अब तक विद्यमान हैं और लोग उन्हें 'सीहा राव का खेड़ा' के नाम से पुकारते हैं।

२. शम्सुद्दीन अलतमश पहले बदायूँ का शासक था। (कॉनॉल्लोजी ऑफ़ इण्डिया, पृ० १७६।) परन्तु वि० सं० १२६८ (ई० सं० १२११) में वह दिल्ली के तख्त पर बैठा, और उसके बाद उसकी सेना ने खोर विजय किया। खोर (शम्साबाद) की तरफ के लोग इस घटना का समय वि० सं० १२७१ की चैत्र (सुदि) ३ रविवार अनुमान करते हैं। परन्तु श्रीयुत आर० डी० बैनर्जी शम्सुद्दीन के कन्नौज-विजय करने का समय वि० सं० १२८३ (ई० सं० १२२६) मानते हैं। (जर्नल बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १२ नं० ११, पृ० ७६६)

मारवाड़ की ख्यातों में सीहाजी का वि० सं० १२१२ में मारवाड़ में आना लिखा है। परन्तु जब कन्नौज-नरेश जयचन्द्र स्वयं ही वि० सं० १२५० में मारा गया था, तब उसकी सन्तान का इस घटना से ३८ वर्ष पूर्व मारवाड़ में आना कैसे सम्भव हो सकता है ?

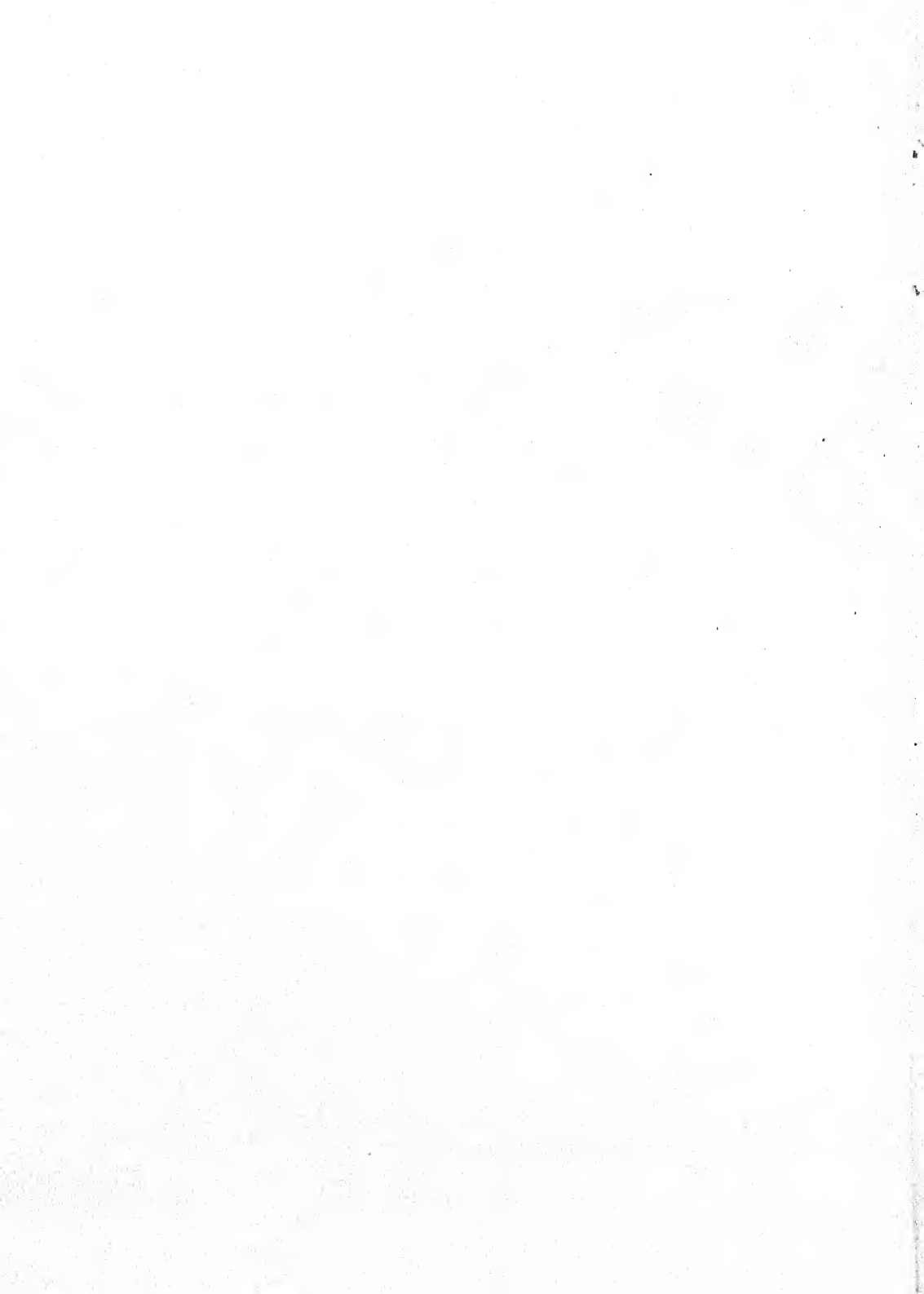
कर्नल टॉड ने अपने 'ऐनल्स ऐण्ड ऐरिक्टीज ऑफ़ राजस्थान' नामक इतिहास (भा० २, पृ० ६४०) में सीहाजी के, कन्नौज छोड़ कर, मारवाड़ में आने का समय वि० सं० १२६८ (ई० सं० १२१२) लिखा है। जनरल कनिङ्गहम इस घटना का वि० सं० १२८३ (ई० सं० १२२६) में होना मानते हैं। (कनिङ्गहम की आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, भा० ११, पृ० १२३)

विक्रम की १७ वीं शताब्दी के लेखक मुहम्मद नैयसी ने अपने इतिहास में एक स्थल पर सीहाजी का विवाह सोलंकी जयसिंह की कन्या से होना लिखा है। यदि उसका लिखना ठीक हो, तो यह जयसिंह (जयन्तसिंह) द्वितीय की कन्या ही होगी। इस जयसिंह द्वितीय का, वि० सं० १२८० की पौष सुदि ३ (२६ दिसम्बर १२२३) का, एक ताम्रपत्र काडी से मिला है। (इण्डियन ऐरिक्वेरी, भा० ६, पृ० १६६) इसने इसी समय के करीब गुजरात-नरेश सोलंकी भीमदेव द्वितीय के राज्य पर कुछ समय के लिये अधिकार कर लिया था।



१. राव सीहाजी

वि० सं० १२६८-१३३० (ई० सं० १२१२-१२७३)



वि० सं० १६५० (ई० सं० १५६३) का बीकानेर के महाराजा रायसिंहजी का

इस घटना से भी जनरल कनिङ्गहम के मत की पुष्टि होती है । परन्तु मारवाड़ की सारा ही ख्यातों में सीहाजी के पुत्र आसथानजी का जन्म उनके मारवाड़ में आने के बाद होना लिखा मिलता है । यदि यह सत्य हो तो सीहाजी का मारवाड़ में वि० सं० १२६८ (ई० सं० १२१२) के करीब आना ही मानना होगा; क्योंकि हम आसथानजी का जन्म वि० सं० १२६६ (ई० सं० १२१२) के करीब मान लेने को बाध्य हैं । इसके बिना मारवाड़ के राठोड़ों का सारा का सारा प्रारम्भिक इतिहास गड़बड़ हो जाता है । हमारे मतानुसार जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र से लेकर राव चूड़ाजी तक के नरेशों के जन्म-संवत् इस प्रकार मानने होंगे:—

जयचन्द्र

हरिश्चन्द्र

वरदायीसेन

[जन्म वि० सं० १२३२—जयचन्द्र के ताम्रपत्रों के आधार पर]

[या तो यह हरिश्चन्द्र का ही उपनाम होगा या उसका छोटा भाई होगा । पिछली हालत में इसका जन्म वि० सं० १२३३ में माना जा सकता है ।]

सेतराम [जन्म वि० सं० १२५०]

राव सीहा [जन्म वि० सं० १२५१]

राव आसथान [जन्म वि० सं० १२६६]

राव धूहड़ [जन्म वि० सं० १२८७]

राव रायपाल [जन्म वि० सं० १३०५]

राव कनपाल [जन्म वि० सं० १३२३]

राव जालगासी [जन्म वि० सं० १३४१]

राव छाड़ा [जन्म वि० सं० १३५६]

राव तीड़ा [जन्म वि० सं० १३७७]

राव कान्हड [जन्म वि० सं० १३६५] राव त्रिभुवनसी [जन्म वि० सं० १३६६] राव सलखा [जन्म वि० सं० १३६७]

रावल मल्लिनाथ [जन्म वि० सं० १४१५]

राव वीरम [जन्म वि० सं० १४१६]

राव चूड़ा [जन्म वि० सं० १४३४—

ख्यातों के आधार पर]

(सम्भव है, बीच के सम्बतों में एक-दो वर्षों का अन्तर हो । सीहाजी के मारवाड़ की तरफ आने का कारण वरदायू के शासक शम्सुद्दीन का दवाव ही प्रतीत होता है ।)

एक लेख मिला है। इस में की नारायण से विजयचन्द्र के पूर्व तक की पीढ़ियाँ भाटों के आधार पर लिखी हुई प्रतीत होती हैं। इसीसे वे लेखों की पीढ़ियों से नहीं मिलतीं। इस लेख में आगे लिखा है:—

तस्माद्विजयचन्द्रोऽभूजयचन्द्रस्ततोऽभवत् ।
वरदायीसेननामा तत्पुत्रोऽतुलविक्रमः
तदात्मजः सीतरामो रामभक्तिपरायणः ।
सीतरामस्य तनयो नृपचक्रशिरोमणिः ।
राजा सीह इति ख्यातः शौर्यवीर्यसमन्वितः ।

अर्थात्—उसका पुत्र विजयचंद्र हुआ और विजयचन्द्र का जयचन्द्र। जयचन्द्र का पुत्र वरदायीसेन था और उसका सीतराम हुआ। इसी सीतराम का पुत्र सीहा था।

इस लेख में जयचन्द्र के पुत्र का नाम हरिश्चन्द्र न देकर वरदायीसेन दिया है। इससे ज्ञात होता है कि या तो इस वंश का सम्बन्ध हरिश्चन्द्र के छोटे भाई वरदायीसेन से था या हमारे अनुमान के अनुसार हरिश्चन्द्र का ही उपनाम वरदायीसेन था। इसीसे उक्त लेख में हरिश्चन्द्र का नाम नहीं लिखा गया है।

कर्नल टॉड ने अपने इतिहास में सीहाजी को कहीं जयचन्द्र का पुत्र, कहीं भतीजा और कहीं पौत्र तथा सेतराम का भाई लिखा है। परन्तु मारवाड़ की ख्यातों और सीहाजी के वि० सं० १३३० के लेख में इन्हें सेतराम का पुत्र लिखा है।

‘आईने अकबरी’ में लिखा है कि मोइजुद्दीन साम (गोरी) ने जब राय पिथोरा की लड़ाई से फुरसत पाई, तब वह कन्नौज के राजा जयचन्द्र के मुकाबले को चला। जयचन्द्र हार कर भागा और गङ्गा में डूब गया। उसका भतीजा सीहा भी, जो शम्साबाद में रहता था, बहुत से आदमियों के साथ मारा गया। इसके बाद सीहा के तीनों बेटे—सोनग, अश्वत्थामा (आसथान) और अज गुजरात की तरफ जाते हुए पाली में आकर ठहरे। कुछ दिन बाद उन्होंने गोयलों से खेड़ छीन लिया। इसके बाद सोनग ने ईडर में और अज ने बगलाने में अपना अधिकार जमाया। (भा० २, पृ० ५०७।)

परन्तु सीहाजी का उस समय मारा जाना सिद्ध नहीं होता।

१. जर्नल बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी (ई. सन् १९२०), भा० १६, पृ० २७६

२. ऐनाल्स ऐण्ड ऐरिटिक्टीज ऑफ राजस्थान, भा० १, पृ० १०५; भा० २, पृ० ३० और भा० २, पृ० ६४०

इतिहास से ज्ञात होता है कि जिस समय सीहाजी करीब २०० साथियों के साथ महुई से पश्चिम की तरफ चले थे, उस समय इनका विचार द्वारका की तरफ जाने का था। परन्तु मार्ग में जब यह पुष्कर में ठहरे, तब वहीं पर इनकी भेंट तीर्थ-यात्रार्थ आए हुए भीनमाल (मारवाड़ के दक्षिणी प्रान्त के एक नगर) के ब्राह्मणों से हो गई। उन दिनों मुलतान की तरफ के मुसलमान अक्सर भीनमाल पर आक्रमण कर लूट-मार किया करते थे। इसीसे उन ब्राह्मणों ने सीहाजी को अपने दल-बल सहित देख कर इनसे सहायता की प्रार्थना की। सीहाजी ने भी इसको सहर्ष स्वीकार कर लिया और भीनमाल जाकर आक्रमणकारी मुसलमानों के मुखियाओं को मार डाला।

इस विषय का यह दोहा मारवाड़ में अब तक प्रसिद्ध है:—

भीनमाल लीधी भड़ै, सीहै सेल बजाय।

दत्त दीन्हौ सत संप्रहयो, ओ जस कदे न जाय ॥

अर्थात्—वीर सीहाजी ने भाले के जोर से भीनमाल पर अधिकार कर लिया और इसके बाद उसे (ब्राह्मणों को) दान देकर पुण्य का सञ्चय किया। इनका यह यश सदा ही अमर रहेगा।

इस प्रकार भीनमाल के ब्राह्मणों का कष्ट दूर कर सीहाजी ने द्वारका (गुजरात) की यात्रा की और वहाँ से लौटते हुए कुछ दिन पाटन (अनहिलवाड़े) में ठहरे। वहाँ पर उस समय सोलंकीयों का राज्य था।

ख्यातों में लिखा है कि सीहाजी ने पाटन के राजा मूलराज सोलंकी की सहायता कर कच्छ के राजा लाखा फूलानी को मारा था और इसके एवज

१. ख्यातों में यह भी लिखा है कि सीहाजी ने द्वारका से लौटते समय मुज के सामा भाटी, थिराद के शासक, साँचोर के चौहान, पीलूडा गाँव के कोली मेघा, करड़ा पर्वत के करतर (जाति के) हरदास छोगाला; और भीलड़ा गाँव के डाभी आसा (ईडर के दीवान) को भी दण्ड दिया था।

ख्यातों में सीहाजी का द्वारका को जाते समय भी पाटन होकर जाना लिखा है।

२. मुहणोत नैणसी ने पाटन के राजा मूलराज को चावड़ा जाति का लिखा है।

में मूलराज ने इन्हें अपनी कन्या व्याह दी थी। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि जैनाचार्य हेमचन्द्र रचित 'द्वयाश्रय काव्य' के पाँचवें सर्ग में लिखा है:—

तौ गूर्जरत्राकच्छस्य द्वारका कुण्डनस्य नु
नाशौ शरोर्मिमालाभिर्गङ्गाशोणं प्रचक्रतुः ॥ १२१ ॥

× × ×

कुन्तेन सर्वमारेणावधील्लक्षं चुलुक्यराट् ॥ १२७ ॥

अर्थात्—गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज और कच्छ के राजा लाखा के बीच भीषण युद्ध हुआ। अन्त में सोलंकी मूलराज प्रथम ने लाखा को मार डाला।

साँभर (मारवाड़) से मिले सोलंकियों के एक शिलालेख में लिखा है:—

वसुनन्दनिधौ वर्षे व्यतीते विक्रमार्कतः ।

मूलदेवनरेशस्तु चूडामणिरभूद्भुवि ॥ ६ ॥

अर्थात्—वि० सं० ६६८ के बीत जाने पर मूलदेव राजा हुआ।

इससे ज्ञात होता है कि मूलराज प्रथम ने वि० सं० ६६८ (ई० सं० ६४१) के बादही गुजरात विजय कर वहाँ पर अपना राज्य स्थापित किया था। इसकी प्रशस्तियों से प्रकट होता है कि यह वि० सं० १०५१

१. यह काव्य वि० सं० १२१७ (ई० सन् ११६०) के करीब बनाया गया था। इसमें लिखा है कि जिस समय सौराष्ट्र देश के राजा ग्रहरिपु ने पाटणा पर चढ़ाई की, उस समय कच्छ देश का राजा लाखा भी उसके साथ था। इसी युद्ध में गुजरात के राजा मूलराज ने नेत्रे (कुन्त) का प्रहार कर लाखा को मारा था।

वि० सं० १२८२ (ई० सं० १२२५) के करीब की बनी सोमदेव की 'कीर्ति-कौमुदी' में भी लाखा का मूलराज प्रथम के हाथ से मारा जाना लिखा है:—

महेच्छकच्छभूपालं लक्षं लक्ष्मीचकार यः ।

वि० सं० १३६२ (ई० सं० १३०५) की बनी मेस्तुङ्ग की 'प्रबन्धचिन्तामणि' से भी इसकी पुष्टि होती है। उसमें लिखा है:—

कच्छपलक्षं हत्वा सहस्राधिकलम्बजालमायातम् ।

सङ्गरसागरमध्ये धीरवता दर्शिता येन ॥

डफ की 'क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इण्डिया' में ग्रहरिपु का समय ई० सं० ६१६ और ६५६ (वि० सं० ६७३ और १०१६) के बीच लिखा है।

२. सरदार म्यूजियम और सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर की ई० सं० १६२५-२६ की रिपोर्ट, पृ० २; और इण्डियन ऐरिडिकैरी, भाग ५८, पृ० २३४-२३६।

(ई० स० १६४) तक जीवित था। ऐसी हालत में इसकी मृत्यु सीहाजी के मारवाड़ में आने से करीब २१६ वर्ष पूर्व हुई होगी। इसलिये मूलराज और उसके समकालीन लाखा का सीहाजी के समय विद्यमान होना और उस लाखा का सीहाजी के हाथ से मारा जाना असम्भव ही प्रतीत होता है।

ख्यातों में लिखा है कि जब सीहाजी पाटन से लौट कर पाली (मारवाड़) पहुँचे, तब वहाँ के पल्लीवाल ब्राह्मणों ने भी इनसे सहायता की प्रार्थना की। उस समय पालीनगर व्यापार का केन्द्र हो रहा था और फारस, अरब आदि पश्चिमी

१. पं० गौरीशङ्करजी ओम्हा के लिखे 'राजपूताने के इतिहास' में गुजरात के सोलंकी मूलराज प्रथम का समय १०१७ से १०५२ लिखा है (भा० २, पृ० २१५)। परन्तु उपर्युक्त नवीन लेख के मिल जाने से वह ठीक नहीं हो सकता। सोलंकीयों के वंश में एक मूलराज द्वितीय भी हुआ है। परन्तु एक तो उस (मूलराज द्वितीय) का समय वि० सं० १२३३ से १२३५ तक माना गया है। दूसरे वह बाल्यावस्था में ३ वर्ष राज्य करके ही मर गया था। इसलिये वह बाल मूलराज के नाम से प्रसिद्ध था। ऐसी हालत में उसकी कन्या से सीहाजी का विवाह होना भी असम्भव ही है। वास्तव में सीहाजी के समय गुजरात पर सोलंकी भीमदेव द्वितीय का राज्य था। उसका समय वि० सं० १२३५ से १२६८ तक माना गया है। परन्तु पहले लिखा जा चुका है कि मुहम्मद नैगसी के इतिहास में सीहाजी का विवाह सोलंकी सिद्धराज जयसिंह की कन्या से होना लिखा है। यदि उसका लिखना ठीक हो, तो यह जयसिंह (जयन्तसिंह) द्वितीय ही हो सकता है; जिसने कुछ समय के लिये सोलंकी भीमदेव द्वितीय के राज्य पर अधिकार कर लिया था। परन्तु इस विषय में भी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

२. कच्छ के जाड़ेजा नरेशों में लाखा नाम के तीन नरेश मिलते हैं। डफ़ की 'क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ इण्डिया' में इनके नाम और समय इस प्रकार दिए हैं:—

- (१) लाखा गुडारा या ढोडरा, ई० स० १२५० (वि० सं० १३०७)
- (२) लाखा फूलानी, ई० स० १३२० (वि० सं० १३७७)
- (३) लाखा जाम, ई० स० १३५० (वि० सं० १४०७)

इसी पुस्तक में लाखा फूलानी के विषय में लिखा है कि वह खेड़कोट का राजा था और उसने काठियों को दवा कर काठियावाड़ के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था। कहीं पर इसकी मृत्यु का इसके जामाता के हाथ से होना और कहीं पर इसका, अड़कोट (काठियावाड़) में मूलजी बाघेला के साथ के युद्ध में, राठोड़ सीहाजी के द्वारा मारा जाना लिखा है। परन्तु इसके समय के विषय में बड़ी गड़बड़ है। (देखो पृ० २६० और पृ० २१५-२१६)। परन्तु इस पुस्तक में दिए वृत्तान्त और समय के विषय में स्वयं ग्रन्थ लेखिकाने ही सन्देह प्रकट कर दिया है। कुछ लोग सीहाजी का जैसलमेर के रावल भाटी लाखा से लड़ना अनुमान करते हैं। उक्त राज्य की ख्यातों में उसका समय वि० सं० १३२७ से १३३० तक लिखा है। (तवारीख जैसलमेर, पृ० ३३)

देशों के माल के यहीं होकर आगे जाने के कारण यहाँ के पल्लीवाल व्यापारी बड़े समृद्धिशाली बन गए थे। परन्तु साथ ही सोलङ्कियों और चौहानों के निर्बल हो जाने से आस-पास के जङ्गलों में रहने वाले मीणा, मेर आदि लुटेरी जातियों के लोग मौका पाते ही उन्हें लूट लिया करते थे। सीहाजी ने उन ब्राह्मणों की और उस प्रदेश की दशा देख उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वहीं पर अपना निवास स्थापित कर आस-पास की लुटेरी जातियों से उन व्यापारी ब्राह्मणों की रक्षा करने लगे। इस सहायता के एवज में उन ब्राह्मणों ने भी इनके खर्च के लिये कुछ लागें नियत कर दीं। कुछ ही काल में आस-पास के प्रदेश पर सीहाजी का अधिकार हो गया।

उस समय खेड़ पर गुहिल राजपूतों का अधिकार था। परन्तु उनके और उनके मन्त्री डाभी राजपूतों के बीच मनोमालिन्य रहा करता था। इसी घर की फूट से लाभ उठाने के लिये सीहाजी ने उनके देश पर चढ़ाई की। परन्तु इसी समय पाली पर मुसलमानों ने हमला कर दिया। इसकी सूचना मिलते ही सीहाजी खेड़ की तरफ से लौट कर मुसलमानी सेना पर टूट पड़े। इससे उसे मैदान छोड़ कर भागना पड़ा। यह देख राठोड़ों ने उसका पीछा किया। परन्तु उनके वीठू नामक गाँव के पास पहुँचते ही मुसलमानों की एक नवीन सेना उधर आ निकली। इससे मुसलमानों का बल बहुत बढ़ गया और उनकी भागती हुई सेना ने मदद पाकर पीछा करती हुई राठोड़-सेना पर प्रत्याक्रमण कर दिया। दोनों तरफ से जी खोल कर युद्ध हुआ। परन्तु थकी हुई अल्पसंख्यक राठोड़-सेना मुसलमानों की बहु-संख्यक ताज्जदम फौज के सामने

१. यह गाँव पाली से ७० मील पश्चिम जसोल के पास उजड़ी हुई दशा में अबतक विद्यमान है।

यद्यपि कर्नल टॉड ने सीहाजी का खेड़ राज्य पर अधिकार करने का लिखा है और इसकी पुष्टि नगर (मारवाड़) से मिले वि० सं० १६८६ के राठोड़ जगमाल के लेख से भी होती है, तथापि ख्यातों से खेड़ पर पहले पहल आसथानजी का अधिकार होना ही पाया जाता है। ऐसी हालत में मानना पड़ता है कि यदि सीहाजी ने खेड़ के कुछ प्रदेशों पर अधिकार किया भी होगा तो भी सम्भवतः उनकी मृत्यु के बाद वे स्थान एकवार फिर राठोड़ों के हाथ से निकल गए होंगे।

अधिक समय तक न ठहर सकी। इससे मैदान मुसलमानों के हाथ रहा और वीरवर सीहाजी इसी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए।

१. मारवाड़ की ख्यातों में यह भी लिखा है कि सीहाजी कुछ दिन तक पाली में रह कर कन्नौज लौट गए थे। वहाँ पर इनकी राजधानी गढ़ गोयन्दारो में थी। इनका पहला विवाह वज्जाल-नरेश की राज-कन्यासे और दूसरा पाटण के सोलंकी राजा की पुत्री से हुआ था। इनके पहली रानी से ४ पुत्र और दूसरी से ३ पुत्र हुए। सीहाजी ने मारवाड़ से लौट कर १३ वर्ष तक गढ़ गोयन्दारो में राज्य किया। इनकी मृत्यु के बाद वहाँ का अधिकार पहली रानी के बड़े पुत्र को मिला और दूसरी रानी अपने तीनों पुत्रों (आसथान, सोनग और अज) को लेकर पाली (मारवाड़) में चली आई। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

कनल टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में सीहाजी का वृत्तान्त इस प्रकार लिखा है:-

“वि० सं० १२६८ (ई० सं० १२१२) में जयचन्द्र के पौत्र संतराम और सीहाजी, दो सौ आदमियों को साथ लेकर, कन्नौज से रवाना हुए। जिस समय ये कोलूमठ (आधुनिक बीकानेर नगर से २० मील पश्चिम की तरफ) पहुँचे, उस समय वहाँ पर सोलंकीयों का राज्य था। वहाँ के राजा ने इनकी बड़ी स्वातिर की। इसकी एवज में सीहाजी ने सोलंकीयों के शत्रु लाखा फूलानी से युद्ध कर उसे हराया। इसी युद्ध में संतराम मारा गया। इनकी इस सहायता से प्रसन्न होकर सोलंकी-नरेश ने अपनी बहिनका विवाह सीहाजी के साथ कर दिया। वहाँ से चल कर यह (सीहाजी) द्वारका जाते हुए अनहिल पाटन पहुँचे। वहाँ के राजा ने भी इनकी बड़ी आवाभगत की। जिस समय सीहाजी पाटन में ठहरे हुए थे, उसी समय लाखा फूलानी ने उक्त नगर पर आक्रमण किया। इस बार के युद्ध में सीहाजी ने लाखा को मार कर अपने भाई का बदला ले लिया। उधर से लौटकर जब सीहाजी लूनी के किनारे पहुँचे, तब इन्होंने डामियों से मेहवा और गुहिलों से खेड़ छीन लिया। इसके बाद यह पाली आए और इन्होंने वहाँ पर होने वाले मेर व मीरों के उपद्रव को शान्तकर पल्लीवाल ब्राह्मणों की रक्षा की। परन्तु कुछ समय बाद इन्होंने पल्लीवाल ब्राह्मणों को मारकर वहाँ पर भी अधिकार कर लिया। इसके एक वर्ष बाद वहीं पर इनका स्वर्गवास हुआ। (ऐनाल्स ऐराड ऐरिगिटिकिटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६४०-६४३)। परन्तु यह सारी कथा कपोल-कल्पित है; क्योंकि पल्लीवाल ब्राह्मण पाली के शासक न होकर व्यापारी ही थे। पाली में स्थित सोमनाथ के मन्दिर से मिले वि० सं० १२०६ के लेख से प्रकट होता है कि उस समय वहाँ पर सोलंकी कुमारपाल का राज्य था और उसकी तरफ से बाहडदेव वहाँ का शासक था। वि० सं० १३१६ के सूंघासे मिले चौहान चाचिगदेव के लेख से ज्ञात होता है कि इस चाचिगदेव का पिता उदयसिंह नाडोल, जालोर, मंडोर, बाहडमेर, रत्नपुर, साँचोर, सूरचंद, राडवड़ा, खेड़, रामसीन और भीनमाल आदि का शासक था। उदयसिंह के वि० सं० १२६२ से १३०६ तक के लेख मिले हैं। इससे अनुमान होता है कि सोलंकीयों के बाद पाली पर चौहानों का अधिकार हुआ होगा। ऐसी हालत में सीहाजी का वहाँ के पल्लीवाल व्यापारियोंको मारकर उनमें पाली छीनना बिल्कुल असंगत ही है।

मारवाड़ का इतिहास

सीहाजी के स्वर्गवास का, वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) का, एक लेख वीठू (मारवाड़ का एक गाँव, जो पाली से ६ कोस के अन्तर पर है) से मिला है,

इस लेख से प्रकट होता है कि वि० सं० १३३० की कार्तिक वदि १२ सोमवार (ई० स० १२७३ की ६ अक्टूबर) को करीब ८० वर्ष की अवस्था में सीहाजी

१. उक्त लेख में लिखा है:-

(१) “ओं ॥ साँ (सं) वछ (त) १३३०

(२) कार्तिक वदि १२ सोम-

(३) वारे रठड़ा श्री सेत-

(४) कवर सुतु (त) सीहो दे-

(५) वलोके गतः सो [लं-]

(६) क पारवतिः (ती) तस्यार्थे देव-

(७) ली स्थ (स्था) पिना (ता) क (का) रायि (पि) व (ता) सु (शु) मं भवतुः (तु) ।

(इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, भा० ४०, पृ० १४१)

इस लेख के ऊपर घोड़े पर चढ़ी सीहाजी की मूर्ति बनी है, और सामने उनकी रानी हाथ जोड़े खड़ी है। घोड़े के पैरों के नीचे एक मुसलमान पड़ा है।

हमारे मतानुसार इस लेख में इतनी बातें विचारणीय हैं:-

१—सीहाजी के मस्तक पर पगड़ी या साफ़ा नहीं है। उनके धुँधराले बाल आगे से साफ़ दिखाई देते हैं।

२—सीहाजी की मूर्ति का कमर तक का भाग खुला है (परन्तु रानी शायद कंचुकी पहने हुए है ।) दोनों के कंधों पर से केवल एक-एक दुपट्टा लटकता हुआ बना है।

३—सीहाजी के कमर के नीचे के भाग में कवच और पैरों में घुटनों तक के बूट (भाड़ोले) बने हैं। (रानी के पहनने को चुन्नतदार धोती है और उसकी नाभि से पैरों तक धोती की चुन्नत या करघनी की लम्बी लड़ी लटकती है ।)

४—सीहाजी की शकल और दाढ़ी मुसलमानी ढङ्ग की है।

५—इस लेख के सम्वत् १३३० के बीच के दोनों अङ्क (३३) आधुनिक शैली के प्रतीत होते हैं।

६—लेख में सीहाजी को ‘सेतकँवर सुत’ लिखा है। (इसलिये या तो ‘सेतराम’ के लिये ही ‘सेतकँवर’ शब्द का प्रयोग किया गया है या इससे उसका छोटा पुत्र होना प्रकट होता है। पूरब में आजकल भी राजाओं और ज़मींदारों के छोटे पुत्र या उनकी सन्तान अपने नामों के आगे कुँवर की उपाधि लगाती है।)

का स्वर्गवास हुआ था और उसी दिन इनकी सोलंकी वंश की पार्वती नामक रानी इनके साथ सती हुई थी।

परन्तु इस लेख के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है; क्योंकि इसके लाने वाले के बताए स्थान पर इतिहास कार्यालय के भूतपूर्व अध्यक्ष ने स्वयं जाकर पूछ-ताछ की थी। फिर भी इसके वहाँ से लाए जाने का कुछ पता नहीं चला।

पाली की रोदाबाव नामक पुरानी बावली के पास एक चबूतरा बना है। कुछ लोग उसे सीहाजी का चबूतरा बतलाते हैं। सम्भव है, इनके वंशजों ने इनके निवास-स्थान पर पीछे से, यादगार की तौर पर, यह चबूतरा बनवाया हो।

इनके तीन पुत्र थे—आसथान, सोनग और अज।

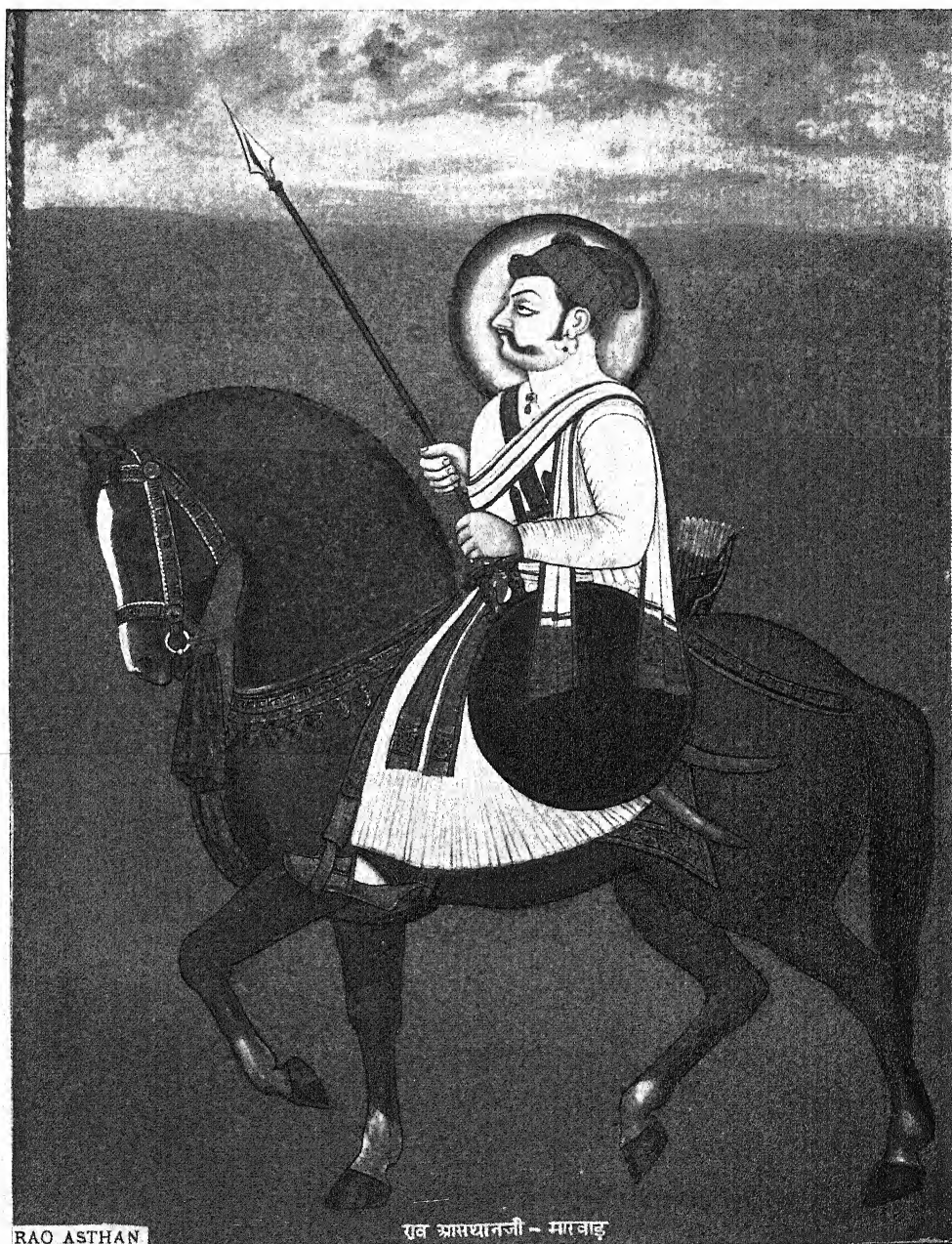
१. मारवाड़ की ख्यातों में सीहाजी की सोलंकी वंशकी रानी का नाम राजलदे लिखा है और उसे सोलंकी मूलराज की पुत्री माना है। यदि वास्तव में यह ठीक हो तो यह कोई तीसरा ही मूलराज होगा; क्योंकि पहले लिखे अनुसार प्रथम और द्वितीय मूलराज की पुत्री का विवाह तो सीहाजी से होना असम्भव सिद्ध होचुका है।
२. यह चबूतरा इस समय टूटी फूटी दशा में है। कुछ ख्यातों में इसको आसथानजी का चबूतरा भी लिखा है।
३. इनके एक भीम नामक चौथे पुत्रका उल्लेख भी मिलता है। परन्तु उसका हाल न मिलने से अनुमान होता है कि वह बालकपन में ही मरगया होगा।

२. राव आसथानजी

यह राव सीहाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे, और उनके युद्ध में वीर-गति प्राप्त कर लेने पर उनके उत्तराधिकारी हुए। यह भी अपने पिता के समान ही वीर और साहसी थे।

ख्यातों में लिखा है कि यद्यपि उस समय पाली पर इन्हीं का अधिकार था, तथापि इन्होंने अपना निवास वहाँ से ५ कोस दक्षिण के गूंदोच नामक गाँव में कर रक्खा था। इसके बाद जब इनके पास धन-जन का अच्छा संग्रह हो गया, तब इन्होंने, डाँभी राजपूतों को अपनी तरफ़ मिलाकर, गुहिल क्षत्रियों से खेड़ का राज्य छीन लिया।

१. जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, रतलाम, सीतामऊ, सैलाना, भाबुआ और ईडर के राठोड़-नरेश इन्हीं के वंशज हैं।
२. हमारे मतानुसार इनका जन्म वि० सं० १२६६ (ई० सन् १२१२) में हुआ होगा। इनके पिता राव सीहाजी की मृत्यु से संबंध रखनेवाला लेख वि० सं० १३३० की कार्तिक वदी १२ (ई० सन् १२७३ की ६ ऑक्टोबर) का है। उसके अनुसार राव आसथानजी का राज्याभिषेक भी उसी समय हुआ होगा।
३. डाभियों का निवास पाली से ३६ कोस पश्चिम के महेवे में था।
४. ख्यातों में लिखा है कि उस समय खेड़ के गुहिल-नरेश का प्रधान मंत्री डाभी-क्षत्रिय सांवतसी था। परन्तु उन दोनों के बीच मनोमालिन्य हो जाने के कारण वह आसथानजी से मिल गया। यद्यपि उसी की प्रेरणा से खेड़ के गुहिल-नरेश ने अपनी कन्या का विवाह आसथानजी से करना निश्चित किया था, तथापि उस (मंत्री) ने आसथानजी को समझाया कि विवाहोत्सव के समय जब गुहिल-वंशी दाईं तरफ़ और डाभी लोग बाईं तरफ़ बैठें हों, तब आप गुहिलों को मारकर खेड़ पर अधिकार करें, और बाद में उनके राज्य का आधा हिस्सा मुझे दें। यह सुन आसथानजी ने सोचा कि जब यह इस समय हमसे मिलकर अपने वर्तमान स्वामी को धोका देने को तैयार है, तब संभव है, किसी समय तीसरे पुरुष से मिलकर हमारे साथ भी यही बर्ताव करे। ऐसा सोच उस समय तो यह चुप हो रहे, परन्तु समय आने पर इनके इशारे से इनके साथ के सरदारों ने डाभी और गुहिल दोनों ही जातियों के मुखियाओं को मार डाला। इसी घटना के कारण मारवाड़ में यह कहावत चली है—“डाभी डावा ने गोहिल जीवणा” अर्थात् किसी स्थान पर इकट्ठे हुए दाएं और बाएं दोनों ही तरफ़ के लोग अविवशनीय या शत्रु हैं। कहते हैं कि इस घटना के बाद बचे हुए गुहिल काठियावाड़ की तरफ़ चले गए, क्योंकि वहाँ पर इस वंश के लोग पहले से ही अधिकार प्राप्त कर चुके थे। भावनगर, लाठी, पालीताना और वल के राजवंश गुहिल वंश की ही संतान हैं।



२. राव आसथानजी

वि० सं० १३३०-१३४६ (ई० सं० १२७३-१२८२)

इनके इसी खेड़ नगर में पहले पहल यथानियम अपनी राजधानी स्थापित करने के कारण इनके वंशज 'खेड़ेचा' कहाने लगे।

कुछ काल बाद राव आसथानजी ने ईडर (गुजरात) के (कोली-जाति के) राजा सामलिया सोड के मंत्री से मिलकर उक्त नरेश को मार डाला, और वहाँ का राज्य अपने छोटे भाई सोनग को दे दिया।

ईडर के राजा होने के कारण ही सोनग के वंशज ईडरिया राठोड़ कहाए।

ख्यातों से ज्ञात होता है कि उस समय खेड़-राज्य में ३४० गाँव थे।

१. यद्यपि कर्नल टॉड ने उस समय ईडर पर डाभियों का राज्य होना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, क्रक-संपादित, भा० २, पृ० ६४३), तथापि मिस्टर फॉर्ब्स ने वहाँ के, उस समय के, राजा का परिचय सामलिया सोड लिखकर दिया है (रासमाला, भा० १, पृ० २६४)। उसी में यह भी लिखा है कि यह (कोली-जाति का नरेश) अपने मंत्री (जो जाति का नागर ब्राह्मण था) की रूपवती कन्या पर आसक्त हो गया, और उसका विवाह अपने साथ कर देने का आग्रह करने लगा। इस पर मंत्री ने सोचा कि यदि मैं इस समय इनकार कर दूँगा, तो यह कन्या को ज़बरदस्ती पकड़कर ले जायगा। इस वास्ते कुछ समय के लिये इसको ढाल देना ही उचित है। इसी के अनुसार उसने विवाह का प्रबंध करने के लिये ६ मास की मियाद माँग ली। इसके बाद वह सामेतरा में जाकर सोनगजी से मिला, और ईडर का राज्य दिलवाने का वादा कर उन्हें अपनी सहायता के लिये तैयार कर लिया। इस प्रकार सब प्रबंध कर लेने पर उसने सामलिया को विवाह के लिये आने का निमंत्रण भेजा। परंतु जिस समय विवाह में इकट्ठे हुए कोली लोग शराब पीकर मस्त हो गए, उस समय सोनगजी के साथवालों ने अपनी छिपने की जगह से निकल उन पर हमला कर दिया। यद्यपि सामलिया स्वयं इनके पंजे से निकल भागा, तथापि क़िले के द्वार के पास पहुँचते-पहुँचते वह भी आहत होकर गिर पड़ा। इसके बाद उसने अपने बचने की आशा न देख स्वयं अपने हाथ से ही सोनगजी के ललाट पर ईडर का राज-तिलक लगा दिया, और इनसे प्रार्थना की कि मेरी यादगार बनाए रखने को जब-जब आपके वंश के नरेश पहली बार गद्दी पर बैठें, तब-तब मेरी जातिवाले को ही राजतिलक करने का अधिकार रहे। सोनगजी ने उसकी यह प्रार्थना स्वीकार करली (रासमाला, भा० १, पृ० २६३-२६४)। यह घटना वि० सं० १३३१ (ई० सन् १२७४) के करीब या इससे कुछ समय बाद हुई होगी। वहाँ पर इनके वंशजों का राज्य वि० सं० १७७५ (ई० सन् १७१८) के कुछ काल बाद तक रहा था।

२. कर्नल टॉड ने सोनग के वंशजों का हथूँडिया राठोड़ के नाम से प्रसिद्ध होना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६४३)। परंतु यह ठीक नहीं है; क्योंकि बीजापुर (गोडवाड़-मारवाड़) से मिले वि० सं० १०५३ के लेख

रावजी के तीसरे भाई अज ने ओखामंडल (शंखोद्धार-द्वारका के निकट) के स्वामी चावड़ा भोजराज को मारकर वहाँ पर अधिकार कर लिया।

अज ने स्वयं अपने हाथ से वहाँ के राजा का मस्तक काटा था, इसलिये उसके वंश के लोग वाढेलें राठोड़ के नाम से प्रसिद्ध हुए।

वि० सं० १३४७ (ई० सन् १२६०) में जलालुद्दीन (खिलजी) ने शम्सुद्दीन को मार डाला और खुद फ़ीरोज़शाह द्वितीय के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा। इसी के अगले वर्ष उसकी फौज ने पाली पर चढ़ाई की। जैसे ही यह सूचना आसथानजी को मिली, वैसे ही यह खेड़ से रवाना होकर पाली आ पहुँचे, और वहीं पर शाही सेना से युद्ध कर १४० राजपूत वीरों के साथ वीर-गति को प्राप्त हुए। यह घटना वि० सं० १३४८ की वैशाख सुदी १५ (ई० सन् १२६१ की १५ एप्रिल) की है।

राव आसथानजी के ८ पुत्र थे।

मे प्रकट होता है कि उक्त स्थान के पास जो हस्तिकुंडी (हथुंडी) नामक नगरी थी, वहाँ पर तो विक्रम की दसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ही राष्ट्रकूटों की एक शाखा का राज्य था।

इसी तरह सीहाजी के मारवाड़ में आने के पूर्व यहां पर (मारवाड़ में) राठोड़ों की और भी कुछ शाखाएँ विद्यमान थीं। यह बात वि० सं० १२१३ के लेख से प्रकट होती है (यह लेख जोधपुर के अजायबघर में रक्खा है)।

१. 'गुजरात राजस्थान' में यही नाम है। परंतु कर्नल टॉड ने उसका नाम भीकमसी लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिकिटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६४३)।

२. इस शाखा के राठोड़ इस समय भी वहाँ पर पाए जाते हैं।

३. किसी-किसी तवारीख़ में इस घटना का समय वि० सं० १३४५ (ई० सन् १२८८) भी लिखा मिलता है।

४. परंतु यदि यह श्रावणादि संवत् हो, तो इसमें एक वर्ष का अंतर आवेगा। इसके अनुसार वि० सं० १३४६ की वैशाख सुदी १५ (ई० सन् १२६२ की २ मई) को इस घटना का होना मानना होगा।

वि० सं० १३५१ (ई० सन् १२६३) का फ़ीरोज़शाह द्वितीय के समय का एक खंडित-शिलालेख उसकी बनवाई मंडोर में की मसजिद में अब तक विद्यमान है।

५. किसी-किसी ख्यात में इनके पुत्रों में मूपा और गुडाल इन दो के नाम और भी मिलते हैं। कर्नल टॉड ने आसथानजी के पुत्रों के नाम इस प्रकार लिखे हैं—१ धूहड़, २ जोपसी, ३ खीपसा, ४ भोपसू, ५ धौधल, ६ जेठमल, ७ बांदर और ८ ऊहड़ (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिकिटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६४३)।

१ धूहड़, २ धौधल, ३ चाचक, ४ आसल, ५ हरडक (हरखा), ६ खीपसा,
७ पोहड और ८ जोपसा ।

१. धौधल ने कोलू के चौहानों को हराकर वहाँ पर अधिकार कर लिया था । इसी के छोटे पुत्र का नाम पाबू था । यह बड़ा वीर और दृढ़-प्रतिज्ञ था । एक बार जायल (नागौर-प्रांत) के स्वामी खाँची जींदराव ने ऊँदा चारण से उसकी एक घोड़ी माँगी । परंतु उसने वह घोड़ी उसे न देकर पाबू को दे दी । इससे जींदराव मन-ही-मन कुढ़ गया । इसके बाद जिस समय पाबू ऊमरकोट के सोटा परमारों के यहाँ विवाह करने को गया, उस समय जींदराव ने अपने पुराने अपमान का बदला लेने के लिये ऊँदा की गाँव छीन ली । यह देख ऊँदा की स्त्री देवल पाबू के पास सहायता माँगने पहुँची । यद्यपि उस समय वह विवाह-मंडप में था, तथापि देवल की प्रार्थना सुन तत्काल गायों को छुड़वाने के लिये चल दिया । मार्ग में उसने अपने बड़े भाई बूडा को भी साथ ले लिया । युद्ध होने पर ये दोनों भाई मारे गए । ख्यातों में इस घटना का समय वि० सं० १३२३ लिखा है, परंतु यह संदिग्ध है । अंत में बूडा के पुत्र भरड़ा ने (जो इस घटना के समय मातृ-गर्भ में था, बड़े होने पर) जींदराव को मारकर अपने पिता और चाचा के वैर का प्रतिशोध किया ।

मारवाड़ के लोग विवाह-मंडप से उठकर गो और शरणागत-रक्षा के निमित्त प्राण देने के कारण पाबू की और पितृ-भक्ति तथा साहस के कारण भरड़ा की अब तक पूजा करते हैं ।

कोलू (फलोदी-प्रांत) के पाबू के मंदिर में के पड़े गए लेखों में सबसे पुराना लेख वि० सं० १४१५ का है । उसमें धौधल सोभ के पुत्र सोहड़ द्वारा पाबू का मंदिर बनवाने का उल्लेख है ।

मारवाड़ का इतिहास

३. राव धूहड़जी

यह राव आसथानजी के बड़े पुत्र थे, और उनके युद्ध में मारे जाने पर उनके उत्तराधिकारी हुए। इन्होंने अपनी वीरता से अपने पैतृक राज्य की और भी वृद्धि की, और आस-पास के १४० गांवों पर विजय प्राप्त कर उन्हें अपने राज्य में मिला लिया।

१. इनका राज्याभिषेक वि० सं० १३४८ या १३४९ (ई० सन् १२९१ या १२९२) के ज्येष्ठ में हुआ होगा।

२. पहले लिखा जा चुका है कि ख्यातों के अनुसार सीहाजी की मृत्यु के समय उनके गढ़ गोयंदाने (कन्नौज के पास) के राज्य पर उनकी बड़ी रानी के पुत्रों ने अधिकार कर लिया था; इससे आसथानजी को पाली (मारवाड़) की तरफ लौट आना पड़ा। इसी का बदला लेने के लिये राव धूहड़जी ने गढ़ गोयंदाने पर चढ़ाई की। यद्यपि वहांवालों को मुसलमानों की मदद मिल जाने से धूहड़जी सफल न हो सके, तथापि लौटते समय यह कर्नाट से अपनी कुलदेवी चक्रेश्वरी की मूर्ति ले आए, और उसे नागाना-नामक गांव में एक नीम के वृक्ष के नीचे स्थापित कर दिया। इसी से इनके वंशज (राठोड़) नीम को पवित्र मानने लगे। यह भी प्रसिद्ध है कि नागाना गांव के संबंध के कारण ही उस देवी का नाम नागनेची हुआ। कर्नल टॉड ने भी धूहड़जी की कन्नौज पर की इस चढ़ाई का उल्लेख किया है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६४३)। परंतु यह कथा कल्पित ही प्रतीत होती है।

किसी-किसी ख्यात में इस मूर्ति का कल्याणी (कोंकन-दक्षिण में) से लाया जाना भी लिखा है। साथ ही उक्त देवी (नागनेची) के नाम के पीछे दक्षिण में प्रयुक्त होनेवाला 'ची' प्रत्यय लगा होने से भी इस मत की पुष्टि होती है। परंतु ऐतिहासिक इस कल्याणी से कन्नौज के कल्याण कटक (बांबे गजेटियर भा० १, खंड १, पृ० १५०) का तात्पर्य ही लेते हैं; क्योंकि घड़ी विभक्ति का बोधक यह 'ची' या 'चा' प्रत्यय राजस्थानी भाषा में भी प्रयुक्त होता आया है, जैसे:-

(१) खेड़ के संबंध से राव आसथानजी के वंशजों (राठोड़ों) का खेड़ेचा के नाम से प्रसिद्ध होना।

(२) "हे जगत-जननी, पुत्र तुमचो, मेरु मजन वर करो;
उच्छंग तुमचे बलिय थापिस, आतमा पुरये भरी।"

(जिन-पूजा-पद्धति)

इस देवी के पुजारी भी राठोड़ ही हैं, जो नागनेचिया राठोड़ कहाते हैं। किसी-किसी ख्यात में लिखा मिलता है कि जयचंदजी ने जब चित्तौड़ विजय किया था, तब वहाँ पर भी अपनी कुलदेवी (नागनेची) का मंदिर बनवाया था।



राव धूहड़जी - मारवाड

३. राव धूहड़जी

वि० सं० १३४६-१३६६ (ई० सं० १२६२-१३०६)

राव धूहड़जी ने पड़िहारों को हराकर मंडोर पर भी अधिकार कर लिया था। परंतु उन्होंने मौका पाकर शीघ्र ही मंडोर वापिस छीन लिया। यह देख इन्होंने उन पर दुबारा चढ़ाई की। परंतु मार्ग में थोभ और तरसीगंडी नामक गांवों के बीच इनका पड़िहारों से सामना हो गया, और यह उनके साथ के युद्ध में मारे गए।

इनकी यादगार में तरसीगंडी के तालाब पर जो चबूतरा बनाया गया था, उस पर की पुतली का लेख घिस जाने के कारण अब पढ़ा नहीं जा सकता।

तरसीगंडी से ही इनका वि० सं० १३६६ (ई० सन् १३०६) का एक अन्य लेख भी मिला है। कहा जाता है कि नागाने का नागनेचियां देवी का मंदिर इन्होंने ही बनवाया था।

जोधारी के ताम्रपत्र की नकल से प्रकट होता है कि राव धूहड़जी के समय लुंवकपि नाम का सारस्वत ब्राह्मण कन्नौज से राठोड़ों की कुलदेवी चक्रेश्वरी (आदि पत्तिणी) की मूर्ति लेकर मारवाड़ में आया था। इसके बाद जब उक्त देवी ने राव धूहड़जी को नाग के रूप में दर्शन देकर वर दिया, तब वह नागनेचियां के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस सेवा के बदले में धूहड़जी ने लुंवकपि को अपना पुरोहित नियत कर एक ताम्रपत्र लिख दिया था। उसी को देखकर जोधाजी ने भी उसके वंशज को एक नवीन ताम्रपत्र लिख दिया।

यह नागना गांव खेड़ से १५ कोस ईशान कोण और जोधपुर से १६ कोस नैर्ऋत्य कोण में है। नगर (मल्लानी-प्रांत के एक गांव) से मिले महारावल जगमाल के वि० सं० १६८६ (ई० सन् १६३०) के लेख में लिखा है—“सूरिजवंशी कन्नौजिया राठोड़ सीहा सोनग इए पे (खे) ड गोहिलाँ पासे खडग बले लीधी आस्थान पुः धूहड़ नि (ने) देवी नागणेची अविचल राज दीधु.....।”

१. इस घटना के समय राव धूहड़जी ने एक पड़िहार राजपूत को पकड़कर जबरदस्ती अपना ढोली (नक्कारची) बना लिया था। उसके वंशज देवड़ा कहते हैं।

२. उस समय खेड़ राज्य की सीमा थोब तक थी। यह खेड़ से ६ कोस ईशान कोण में है।

३. यह स्थान खेड़ से ११ कोस ईशान कोण में और पंचपदरे से ७ कोस ईशान कोण में है।

४. कर्नल टॉड ने धूहड़जी का मंडोर के युद्ध में मारा जाना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६४३)। इसी प्रकार किसी-किसी ख्यात में लिखा है कि यह चौहान आना के थोब पर आक्रमण करने के समय उससे लड़कर वीरगति को प्राप्त हुए थे।

५. उक्त लेख का पढ़ा गया अंश—“ओं सम्वत् १३६६.....आस्थान सुत धूहड़.....” (इंडियन ऐंटिक्वेरी, भा० ४०, पृ० ३०१)।

६. ख्यातों में लिखा है कि राव धूहड़जी ने निम्नलिखित ३ गाँव दान दिए थे—

१ बसी (पाली परगने का) आसिया-जाति के चारण को, २ मेघावस (पंचपदरा परगने का) पुरोहित को, ३ समराखिया (पंचपदरा परगने का) पुरोहित को।

मारवाड़ का इतिहास

इनके ७ पुत्र थे—१ रायपाल, २ चंद्रपाल, ३ बेहड़, ४ पेंथड़, ५ जोगा, ६ खेतपाल और ७ ऊनड़ ।

४. राव रायपालजी

यह राव धूहड़जी के बड़े लड़के थे और उनके रणभूमि में वीर-गति प्राप्त करने पर खेड़ की गद्दी पर बैठे । यह वीर होने के साथ ही दयालु और उदार स्वभाव के थे । इन्होंने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये पड़िहारों को हराकर मंडोर पर अधिकार कर लिया । परन्तु कुछ समय बाद ही वह नगर फिर पड़िहारों के हाथ में चला गया ।

इसके बाद राव रायपालजी ने वाहड़मेर की तरफ के पँवारों को परास्तकर उनके अधिकृत प्रदेश को अपने राज्य में मिला लिया । इससे महेवे का सारा प्रान्त इनके शासन में आ गया । यही प्रान्त आजकल मालानी के नाम से प्रसिद्ध है ।

ख्यातों में लिखा है कि जिस समय खीची जींदराव और राठोड़ पाबू के बीच युद्ध हुआ था उस समय पाबू की मृत्यु भाटी फरड़ा के हाथ से हुई थी । इसलिये रायपालजी ने उसे मार कर उसके ८४ गाँवों पर भी अधिकार कर लिया । उनमें यह भी लिखा है कि इन्होंने जैसलमेर के (बुध शाखा के) भाटी (यादव) मांगा के पुत्र चन्दे को बहुतसा द्रव्य देकर, जबरदस्ती, अपना पौलपात (राजद्वार पर दान लेने वाला) बना लिया था ।

एक बार वर्षा न होने से जब रावजी के राज्य में अकाल पड़ा तब इन्होंने राजकीय भण्डार से अन्न बाँट कर प्रजा की सहायता की, इसीसे लोग इन्हें 'महीरेलगा' (इन्द्र) के नाम से पुकारने लगे ।

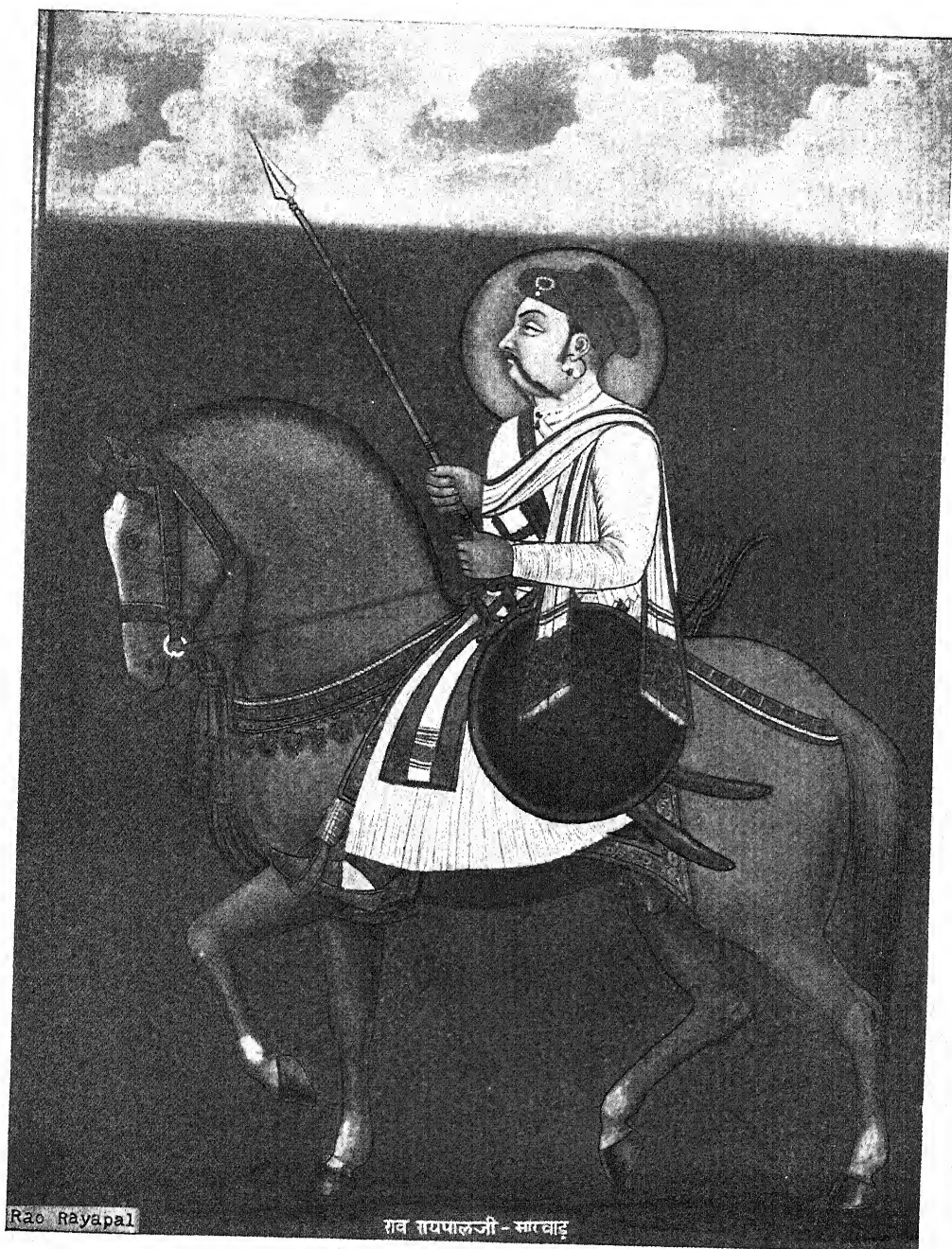
१. कर्नल टॉड ने इनके पुत्रों के ७ नाम इस प्रकार लिखे हैं:—

१ रायपाल, २ कीरतपाल, ३ बेहड़, ४ पीथल, ५ जुगेल, ६ डालू और ७ बेगड़ (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६४३) । इसीप्रकार कहीं-कहीं इनके पुत्रों के कुछ अन्य नाम भी मिलते हैं ।

२. ख्यातों के अनुसार उस समय उसमें ५६० गाँव थे ।

३. यह रायपालजी का चचेरा भाई था ।

४. यह माँगा की चारण जाति की स्त्री के गर्भ से पैदा हुआ था । इसके वंशज रोहड़िया बारहठ कहलाते हैं ।



४. राव रायपालजी

वि० सं० १३६६ और १३७० (ई० स० १३०६ और १३१३) के बीच ?



इनके १४ पुत्र थे:-१ कनपाल, २ सूंडा, ३ केलण, ४ लाखणसी, ५ थांथी, ६ डांगी, ७ रांदा, ८ जूंझण, ९ राजा, १० हथूंडिया (हसत), ११ राणा, १२ मूहण, १३ बूला और १४ बीकम ।

५. राव कनपालजी

यह राव रायपालजी के ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके बाद उनके उत्तराधिकारी हुए । उस समय महेवे का सारा ग्रान्त इनके अधिकार में होने से इनके राज्य की और जैसलमेर राज्य की सीमाएँ मिली हुई थीं । इसीसे बहुधा जैसलमेर वाले इनके राज्य में घुसकर लूट-खसोट किया करते थे । परन्तु इनकी आज्ञा से इनके बड़े पुत्र भीम ने, उन्हें दण्ड देकर, काक नदी को खेड़ और जैसलमेर राज्य के बीच की सीमा नियत कर दी । यद्यपि इससे एक बार तो जैसलमेर वाले शान्त हो गए, तथापि कुछ काल बाद मुसलमानों की मदद मिल जाने से वे फिर उपद्रव करने लगे । यह देख भीम ने फिर दुबारा उन पर चढ़ाई की । परन्तु इस बार के युद्ध में भीम के मारे जाने से भाटी और भी उच्छृंखल हो उठे और वे खेड़ राज्य के भीतरी ग्रान्तों तक में घुसकर लूट मार करने लगे । उनके इस प्रकार बढ़ते हुए उपद्रव को देख राव कनपालजी को स्वयं उन पर चढ़ाई करनी पड़ी । परन्तु मार्ग में अचानक भाटियों और मुसलमानों की सम्मिलित सेना से घिर जाने के कारण यह, वीरता से शत्रु का सामना कर, मारे गए ।

इनके ३ पुत्र थे:-१ भीम, २ जालणसी, और ३ विजपाल ।

१. इन १४ पुत्रों में कहीं जूंझण और राणा के नाम लिखे मिलते हैं तो कहीं उनके स्थान पर छाजड़ और मोपा के नाम पाए जाते हैं ।
२. मुहणोत ओसवाल (वैश्य) भी इसी मूहण की सन्तान हैं ।
३. ख्यातों के अनुसार उस समय इस राज्य में ६८४ गाँव थे ।
४. इस विषय का यह सोरठा प्रसिद्ध है:-

आधी धरती भीम, आधी लोदरवै धणी ।

काक नदी है सीम, राठोडों ने भाटियाँ ॥

(लोदरवा जैसलमेर के भाटियों की पहली राजधानी थी ।)

६. राव जालणसीजी

यह राव कनपालजी के द्वितीय पुत्र थे और अपने बड़े भाई भीम के, पिता के जीतेजी निस्सन्तान, मारे जाने के कारण खेड़ के स्वामी हुए।

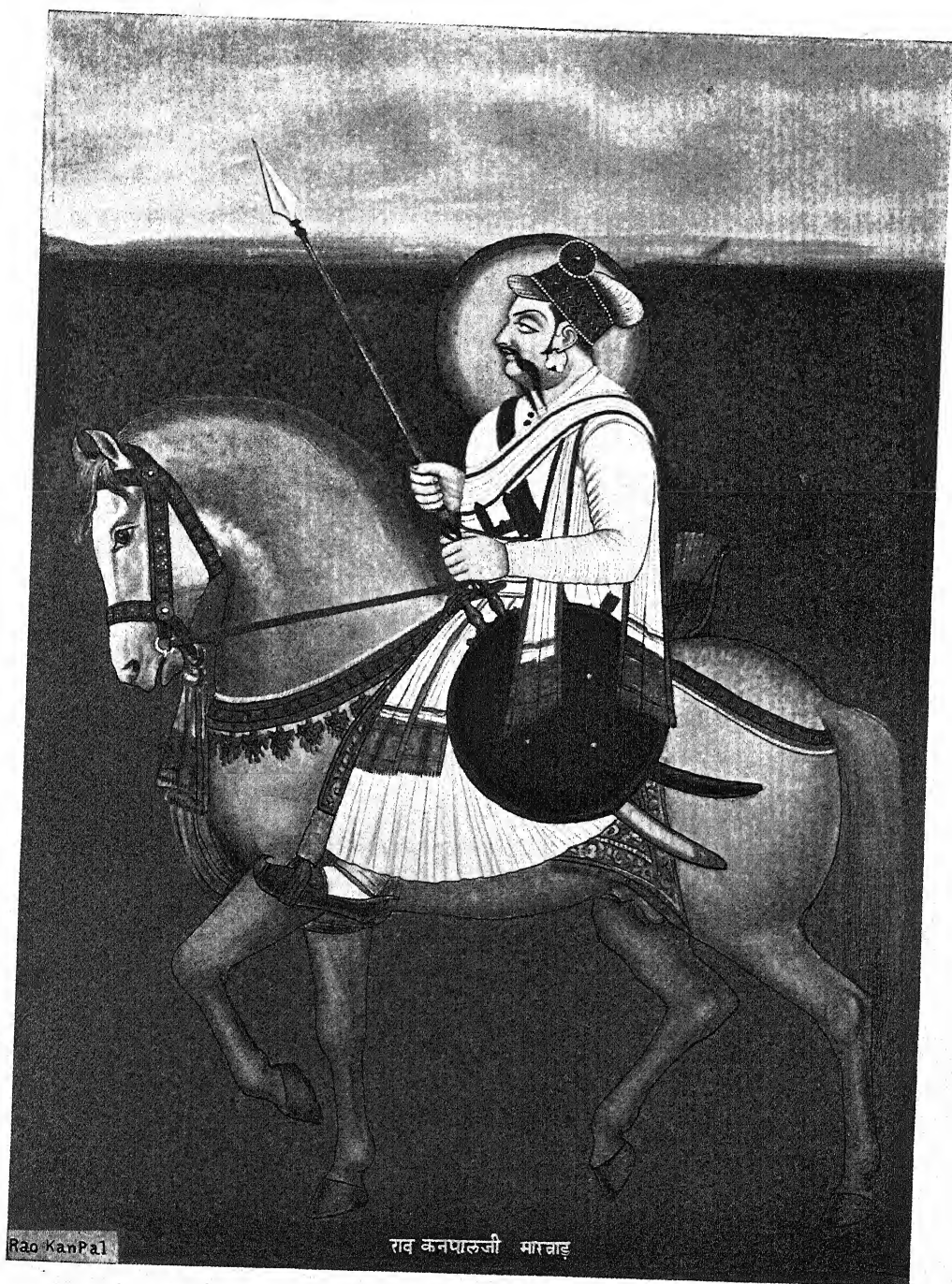
एक साधारण घटना के कारण इनके और उमरकोट के सोढ़ों के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। परन्तु युद्ध होने पर सोढ़े हार गए और उन्होंने नियत दण्ड देने का वादा कर इनसे सुलह करली।

इसके बाद यह सिंध और थड़े की तरफ के यवन-शासित प्रदेशों को लूटते हुए मुलतान की तरफ पहुँचे। इनके पिता जिस युद्ध में मारे गए थे, उसमें भाटियों की तरफ से मुलतान के शासक की सेना ने भी भाग लिया था। इसी बैर का बदला लेने के लिये इन्होंने वहाँ वालों को हरा कर उनसे दण्ड वसूल किया।

किसी किसी ख्यात में यह भी लिखा है कि जिस समय इन्होंने अपने पिता के बैर का बदला लेने के लिये भाटियों पर चढ़ाई की, उस समय भीनमाल के सोलङ्कियों को भी अपना साथ देने के लिये कहलाया था। परन्तु उन्होंने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। यह देख उस समय तो यह चुप हो रहे, परन्तु अवकाश मिलते ही इन्होंने भीनमाल पर चढ़ाई कर दी। सोलङ्की घबरा गए और उन्हें, अपनी असमर्थता के कारण, इनसे माफी माँगनी पड़ी।

ख्यातो में यह भी लिखा है कि इनके चचा को सराई जाति के हाजी मलिक ने मारा था। इसलिये इन्होंने उसे मार इसका बदला लिया।

१. राव जालणसीजी ने चाँदणी गाँव के एक वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, टहनी आदि तोड़ने की मनाई कर रखी थी। परन्तु सोढ़ों (पँवारों की एक शाखा) ने जान बूझ कर उसका उल्लंघन कर डाला। इसीसे यह झगड़ा हुआ था।
२. रावजी ने इस युद्ध में सोढ़ा राजपूतों के मुखिया का साफ़ा छीन लिया था। उसी दिन से, अपनी इस विजय की यादगार में, राठोड़ साफ़ा बाँधने लगे।
३. इस अवसर पर सोढ़ा दुर्जनसाल ने कुछ घोड़े भेंट करने का वादा किया था। परन्तु राव जालणसीजी की मृत्यु समय तक भी वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सका। इसीसे अपने स्वर्गवास के समय रावजी ने राजकुमार को इस भेंट के वसूल करने की, खास तौर से, ताक़ीद कर दी थी।
४. किसी किसी ख्यात में इनका पालनपुर पहुँच हाजी मलिक को मारना लिखा है।



५. राव कनपालजी

वि० सं० १३७० और १३८० (ई० सं० १३१३ और १३२३) के बीच ?



राव छाडाजी

इनके इस प्रकार बढ़ते हुए प्रताप को देख जब भाटियों और मुसलमानों की सम्मिलित सेना ने इन पर चढ़ाई की, तब उसी का मुकाबला करते हुए यह युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए ।

इनके ३ पुत्र थे:—१ छाडा, २ भाकरसी और ३ डूंगरसी ।

७. राव छाडाजी

यह राव जालणसीजी के बड़े पुत्र थे और उनके बाद उनके उत्तराधिकारी हुए । कुछ दिन बाद ही इन्होंने उमरकोट के सोढ़ों पर चढ़ाई कर उन से दण्ड में घोड़े लिए और जैसलमेर के भाटियों को कहला भेजा कि यदि वे लोग किले के बाहर नगर बसावेंगे तो उन्हें कर (खिराज) देना होगा । परन्तु वहां के भाटी नरेश ने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया । यह देख छाडाजी ने जैसलमेर पर चढ़ाई की । यद्यपि एकवार तो भाटियों ने भी इनका बड़ी वीरता से सामना किया, तथापि अन्त में हार कर उन्हें अपने वंश की एक कन्या रावजी को व्याहनी पड़ी । इस प्रकार भाटियों से सुलह हो जाने के बाद रावजी ने पाली, सोजत, भीनमाल और जालोर पर चढ़ाई कर उन प्रदेशों को लूटा । परन्तु जिस समय यह इस युद्ध यात्रा से लौटते हुए जालोर प्रान्त के रामा नामक गांव में पहुँचे, उस समय सोनगरों और देवेंडा चौहानों ने मिलकर इन

१. यह घटना वि० सं० १३८५ (ई० सं० १३२८) की है ।
२. ख्यातों में लिखा है कि मुलतान के यवन सेनापति की चढ़ाई के कारण छाडाजी को कुछ दिन के लिये महेवा छोड़ना पड़ा था । परन्तु शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जाने से इन्होंने उस पर फिर अधिकार कर लिया ।
३. अपने पिता राव जालणसीजी की अन्तिम आज्ञा के अनुसार ही इन्होंने सोढ़ा दुर्जनसाल पर चढ़ाई कर उसे अपने पहले किए वादे से चौगुने घोड़े देने को बाध्य किया था ।
४. सम्भवतः उस समय सोनगरों का मुखिया वनवीरदेव या उसका पुत्र राववीरदेव होगा (भारत के प्राचीन राजवंश, भा० १, पृ० ३१३) । ख्यातों में राव छाडाजी का सोनगरों के मुखिया सामंतसिंह के हाथ से मारा जाना लिखा है । परन्तु जालोर के सोनगरा नरेश सामंतसिंह के लेख वि० सं० १३३६ से १३५६ (ई० सं० १२८२ से १३०२) तक के मिले हैं । इसलिये वह तो इनका समकालीन हो ही नहीं सकता । परन्तु यदि ख्यातों में का यह नाम ठीक हो तो मानना होगा कि यह कोई दूसरा ही सामन्तसिंह था ।
५. ये सिरौही की तरफ़ के थे ।

मारवाड़ का इतिहास

पर अचानक हमला कर दिया। इसी हमले में यह शत्रुओं का मुकाबला करते हुए स्वर्ग को सिंधारे। यह घटना वि० सं० १४०१ (ई० स० १३४४) की है।

इनके ७ पुत्र थे। १ तीडा, २ खोखर, ३ वानर, ४ सीहमल, ५ रुद्रपाल, ६ खीमसी और ७ कान्हडदेव।

८. राव तीडाजी

यह राव छाडाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे और उनके बाद महेवे की गद्दी पर बैठे। इन्होंने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये सोनगरा चौहानों पर चढ़ाई कर उन्हें हराया और भीनमाल पर अधिकार कर लिया।

कुछ दिन बाद इन्होंने देवड़ों, (लोदवा के) भाटियों, बालेचा चौहानों और सोलंकियों पर चढ़ाईयां कर उनसे भी दण्ड के रूप में रुपये वसूल किए।

सिवाने के शासक चौहान सातल और सोम तीडाजी के भानजे थे। इसलिये जिस समय मुसलमानों ने चढ़ाई कर उनकी राजधानी को घेर लिया, उस समय रावजी भी अपने दलबल के साथ अपने भानजों की मदद को जा पहुँचे और वहीं पर मुसलमानों से लड़ते हुए वीर-गति को प्राप्त हुए।

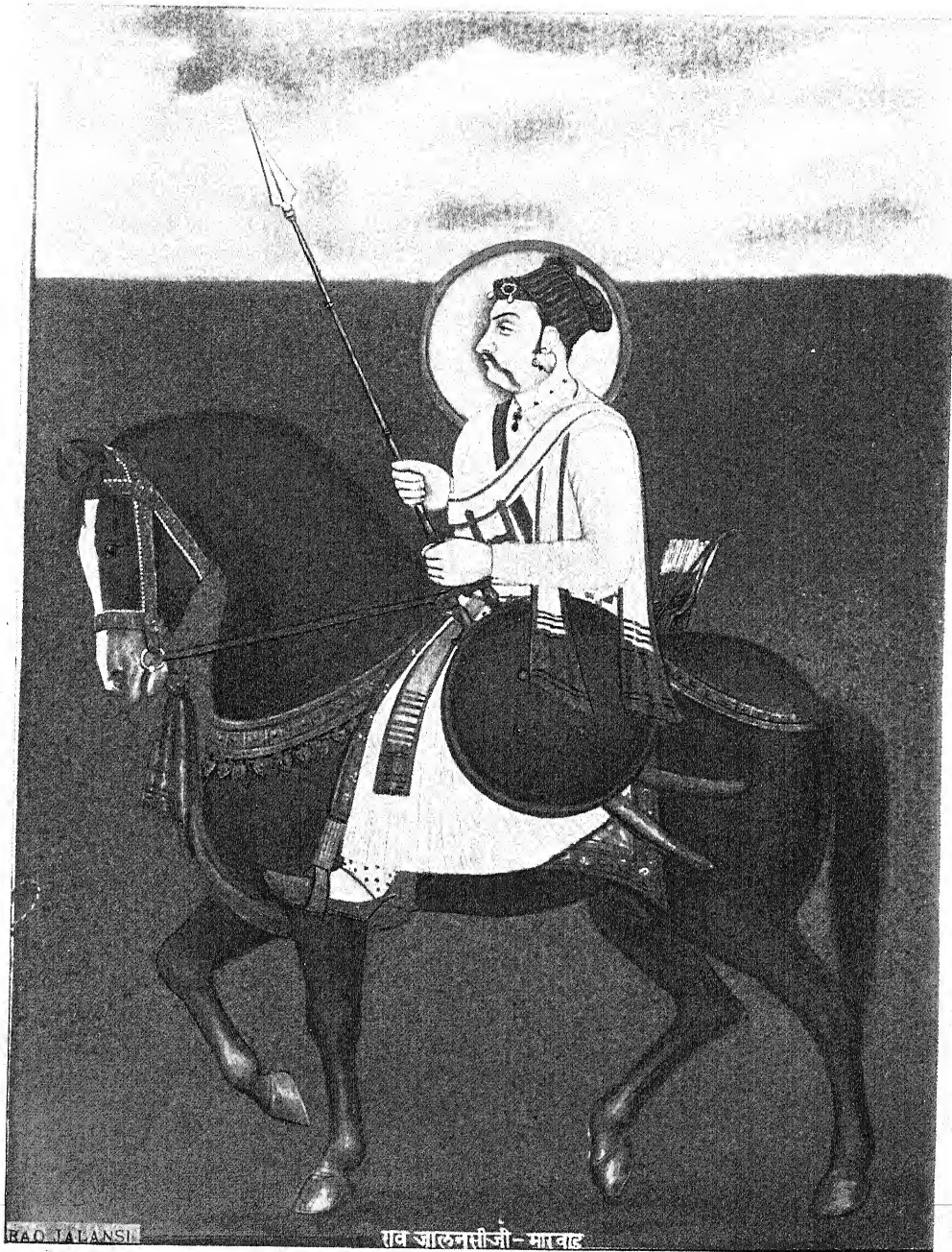
इनके ३ पुत्र थे। १ कान्हडदेव, २ त्रिभुवनसी और ३ सलखा।

१. ख्यातों में लिखा है कि उक्त गाँव में जहाँ पर इनका दाह हुआ था, वहाँ पर एक चबूतरा भी बनाया गया था।

२. ख्यातों के अनुसार यह घटना वि० सं० १४१४ (ई० स० १३५७) में हुई थी।

३. (६) राव कान्हडदेवजी—यह राव तीडाजी के बड़े पुत्र होने के कारण उनके बाद महेवे के राव हुए। सिवाने से लौटती हुई मुसलमानी सेना ने इनके राज्य पर भी हमला कर दिया। यद्यपि मुख्य-मुख्य राठोड़ वीरों के पहले ही राव तीडाजी के साथ सिवाने के युद्ध में हताहत हो जाने के कारण उस समय इनके पास सैनिकों की संख्या बहुत ही कम थी, तथापि इन्होंने बड़ी वीरता से शत्रुदल का सामना किया। परन्तु अन्त में अपनी संख्याधिकता के कारण महेवे पर मुसलमानों ने अधिकार कर लिया।

कुछ समय बाद जब कान्हडदेवजी के पास फिर धन-जन का संग्रह हो गया, तब इन्होंने मुसलमानों को निकाल कर खेड़ पर कब्ज़ा कर लिया और अपने अन्त समय तक यह वहाँ पर शासन करते रहे।



राव जालनसीजी-भावाड

ई. राव जालनसीजी

वि० सं० १३८०-१३८५ (ई० सं० १३२३-१३२८) के बीच ?

६. राव सलखाजी

यह राव तीडाजी के छोटे पुत्र थे। जिस समय इनके बड़े भाई कान्हड़देवजी गद्दी पर बैठे उस समय उन्होंने इन्हें एक गांव जागीर में दिया था। यह गांव सलखाजी की जागीर में रहने के कारण 'सलखा-वासनी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इसके बाद जब कान्हड़देवजी के समय महेवे पर मुसलमानों का अधिकार हो गया, तब मौका पाकर इन्होंने महेवे का कुछ भाग उन (मुसलमानों) से छीन लिया और भिरड़कोट में रहकर अपने अधीनस्थ प्रदेश का शासन करने लगे। इन्होंने चौहानों को परास्त कर भीनमाल को भी लूटा था। इनके इस प्रकार बढ़ते हुए प्रताप को देखकर मुसलमानों ने इन पर अचानक चढ़ाई कर दी। इसी में राव सलखाजी मारे गए।

इनके ४ पुत्र थे। १ मल्लिनाथजी, २ जैतमालजी, ३ वीरमजी और ४ शोमितजी।

(१०) राव त्रिभुवनसीजी—यह राव कान्हड़देवजी के छोटे भाई थे और उनकी मृत्यु के बाद खेड़ की गद्दी पर बैठे। परन्तु शीघ्र ही इनके छोटे भ्राता सलखाजी के पुत्र मल्लिनाथजी ने, मुसलमानों की सहायता प्राप्त कर, इन पर चढ़ाई कर दी। युद्ध में घायल हो जाने के कारण त्रिभुवनसीजी हार गए और कुछ ही दिन बाद इनकी मृत्यु हो गई।

ख्यातों में लिखा है कि मल्लिनाथजी ने अपने बन्धु पद्मसी को आधे राज्य का प्रलोभन देकर उसके द्वारा त्रिभुवनसी के घरों में नीम के पत्तों के साथ विष का प्रयोग करवा दिया था। इससे शीघ्र ही इनकी मृत्यु हो गई। परन्तु कार्य हो जाने पर मल्लिनाथजी ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी और उसे केवल दो गाँव देकर ही ढाल दिया। त्रिभुवनसीजी के तीन पुत्र थे।

किसी किसी ख्यात में यह भी लिखा है कि राव तीडाजी के बाद पहले त्रिभुवनसीजी और उनके बाद कान्हड़देवजी गद्दी पर बैठे थे, तथा मल्लिनाथजी ने, जालोर के मुसलमान शासकों की सहायता से, इन्हीं कान्हड़देवजी को राज्यच्युत किया था। परन्तु यह क्रम ठीक प्रतीत नहीं होता।

१. कुछ ख्यातों में इनका वि० सं० १४२२ (ई० सं० १३६५) में, मंडोर के पड़िहारों की सहायता से, मुसलमानों को हरा कर महेवे पर अधिकार करना लिखा है।

२. किसी किसी ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १४३१ (ई० सं० १३७४) दिया है।

३. (११) रावल मल्लिनाथजी—यह सलखाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे और पिता की मृत्यु के बाद अपने तीनों छोटे भाइयों को साथ लेकर अपने चचा राव कान्हड़देवजी के पास जा रहे। थोड़े ही दिनों में इनकी कार्य कुशलता से प्रसन्न होकर उन्होंने राज्य का सारा प्रबन्ध इन्हें सौंप दिया। परन्तु कुछ दिन बाद इन्होंने महेवे पर अधिकार कर लेने का विचार किया और इसके लिये मुसलमानों की सहायता प्राप्त करना आवश्यक समझ, यह उसकी तलाश

१०. राव वीरमजी

यह सलखाजी के पुत्र और रावल मल्लिनाथजी के छोटे भाई थे। यद्यपि मल्लिनाथजी

में चल दिए। इसी समय इनके बड़े चचा कान्हड़देवजी का स्वर्गवास हो गया और छोटे चचा त्रिभुवनसीजी महेवे की गद्दी पर बैठे। जैसे ही इस घटना की सूचना मल्लिनाथजी को मिली, वैसे ही यह यवन-सेना के साथ वहां आ पहुँचे और त्रिभुवनसीजी को युद्ध में आहत कर खेड़ के स्वामी बन बैठे।

रावल मल्लिनाथजी एक वीर पुरुष थे। इससे जब इन्होंने मंडोर, मेवाड़, आबू और सिंध के बीच लूट मारकर मुसलमानों को तंग करना शुरू किया, तब उनकी एक बड़ी सेना ने इनपर चढ़ाई की। उस सेना में तेरह दल थे। परन्तु मल्लिनाथजी ने इस बहादुरी से उसका सामना किया कि यवन-सेना को मैदान छोड़ कर भाग जाना पड़ा। इस विषय का यह पद मारवाड़ में अबतक प्रचलित है:-

‘तेरह तुंगा भांगिया माले सलखाणी’

अर्थात्-सलखाजी के पुत्र मल्लिनाथजी ने सेना के तेरह दलों को हरा दिया। ख्यातों के अनुसार यह घटना वि० सं० १४३५ (ई० स० १३७८) में हुई थी। इस पराजय का बदला लेने के लिये मालवे के सूबेदार ने स्वयं इन पर चढ़ाई की। परन्तु मल्लिनाथजी की वीरता और युद्ध-कौशल के सामने वह भी कृतकार्य न हो सका।

मल्लिनाथजी ने सालोडी गांव अपने भतीजे (वीरमजी के पुत्र) चूंडाजी को जागीर में दिया था और उनके नागौर पर चढ़ाई करने के समय उनकी सहायता भी की थी।

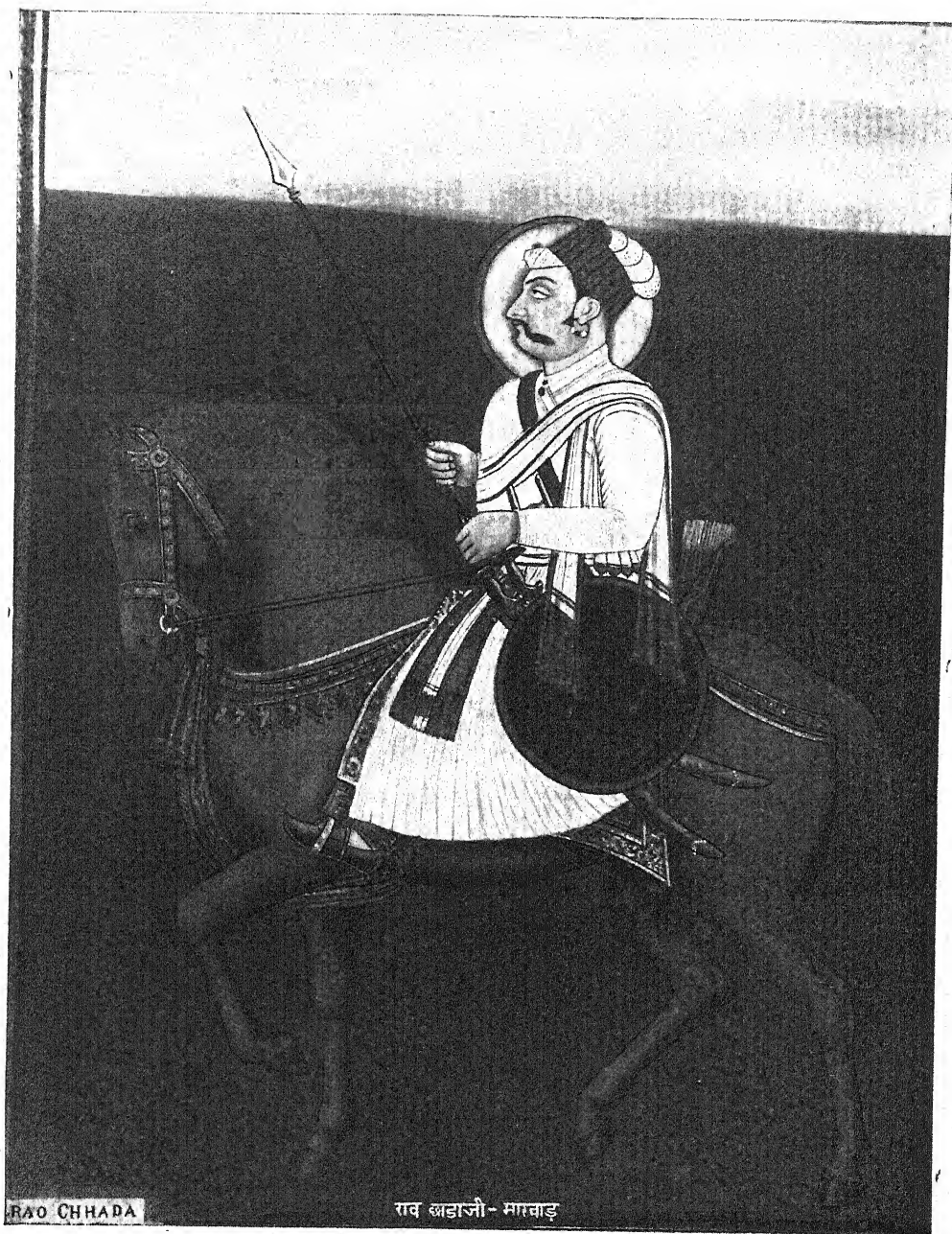
रावलजी ने सिवाना मुसलमानों से छीन कर अपने छोटे भाई जैतमाल को, खेड़ वीरमजी को (किसी किसी ख्यात में भिरड़कोट लिखा है) और ओसियां शोमितजी को जागीर में दी थी। वास्तव में ओसियां पर उस समय पँवारों का अधिकार था और मल्लिनाथजी की अनुमति से शोमितजी ने उन्हें हरा कर वहां पर अधिकार कर लिया था।

रावल मल्लिनाथजी का स्वर्गवास वि० सं० १४५६ (ई० स० १३९९) में हुआ। मारवाड़ के लोग इनको सिद्ध पुरुष मानते हैं। लुनी नदी के तट पर बसे तिलवाड़ा नामक गांव में इनका एक मन्दिर बना है और वहां पर चैत्र मास में एक मेला लगा करता है। इसमें घोड़े, बैल, ऊँट और गायों की लेवा-बेची होती है। इस अवसर पर बाहर के भी बहुत से खरीददार आया करते हैं।

इनके ५ पुत्र थे। १ जगमाल, २ कूपा, ३ जगपाल, ४ मेहा और ५ अडवाल।

(१२) रावल जगमालजी-यह मल्लिनाथजी के बड़े लड़के थे और उनकी मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी हुए। इन्होंने मल्लिनाथजी की जीवित अवस्था में ही गुजरात की मुसलमानी सेना को हरा कर उसके अधिनायक की कन्या गींदोली को छीन लिया था।

किसी किसी ख्यात में लिखा है कि एक बार गुजरात के यवन-शासक का पुत्र, सावन में भूला भूलने को नगर से बाहर इकट्ठी हुई, महेवे की कुछ लड़कियों को ले भागा था। इसका बदला लेने के लिये ही जगमालजी व्यापारी का वेष बना कर उसके राज्य में पहुँचे और ईद के दिन मौका पाकर उन



७. राव छाडाजी

वि० सं० १३८५-१४०१ (ई० सं० १३२८-१३४४)



ने इन्हें खेड़ की जागीर दी थी, तथापि जोहिया दला की रक्षा करने के कारण इनके और मल्लिनाथजी के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। इससे इन्हें खेड़ छोड़ देना पड़ा।

कन्याओं को मय बादशाह की लड़की के ले आए। इसी से वहां के शासक ने महेवे पर चढ़ाई की। परन्तु युद्ध में जगमालजी की मार से घबरा कर उसे अपने शिविर में घुस जाना पड़ा। उस समय का यह दोहा मारवाड़ में अब तक प्रसिद्ध है:—

“पग पग नेजा पाड़िया, पग पग पाड़ी ढाल।

बीबी पूछे खानने, जग केता जगमाल ॥”

अर्थात्—जगमाल के कदम-कदम पर शत्रुओं के नेजे तोड़ कर गिराने और कदम-कदम पर उनकी ढालें गिराने का हाल सुन कर बीबी खान से पूछती है कि यह तो बताओ, आखिर, दुनिया में कितने जगमाल हैं ?

जगमालजी ने राज्याधिकार प्राप्त करने के पूर्व ही सिवाना हस्तगत कर लेने की इच्छा से अपने चचा जैतमालजी को मार डाला था। परन्तु सिवाने पर इनका अधिकार न हो सका।

रावल जगमालजी की मृत्यु के बाद इधर इनका राज्य तो इनके पुत्रों में बँट गया और उधर इनके चचा वीरमजी के पुत्र राव चूँडाजी ने मंडोर पर अधिकार कर नया राज्य स्थापित किया। इस विषय की यह कहावत मारवाड़ में अब तक चली आती है:—

“माला रा मड़टे नै वीरम रा गड़टे -”

अर्थात्—मल्लिनाथजी के वंशज मालानी की मढ़ियों में रहे और वीरमजी के वंशज किले के मालिक (राजा) हुए।

जगमालजी के १० पुत्र थे। १ लुंका, २ वैरीसाल, ३ अज, ४ रिडमल, ५ ऊँगा, ६ भारमल, ७ कान्हा, ८ दूदा, ९ मांडलक और १० कुँभा।

१. किसी किसी ख्यात में खेड़ के स्थान पर भिरड़कोट का नाम लिखा है।

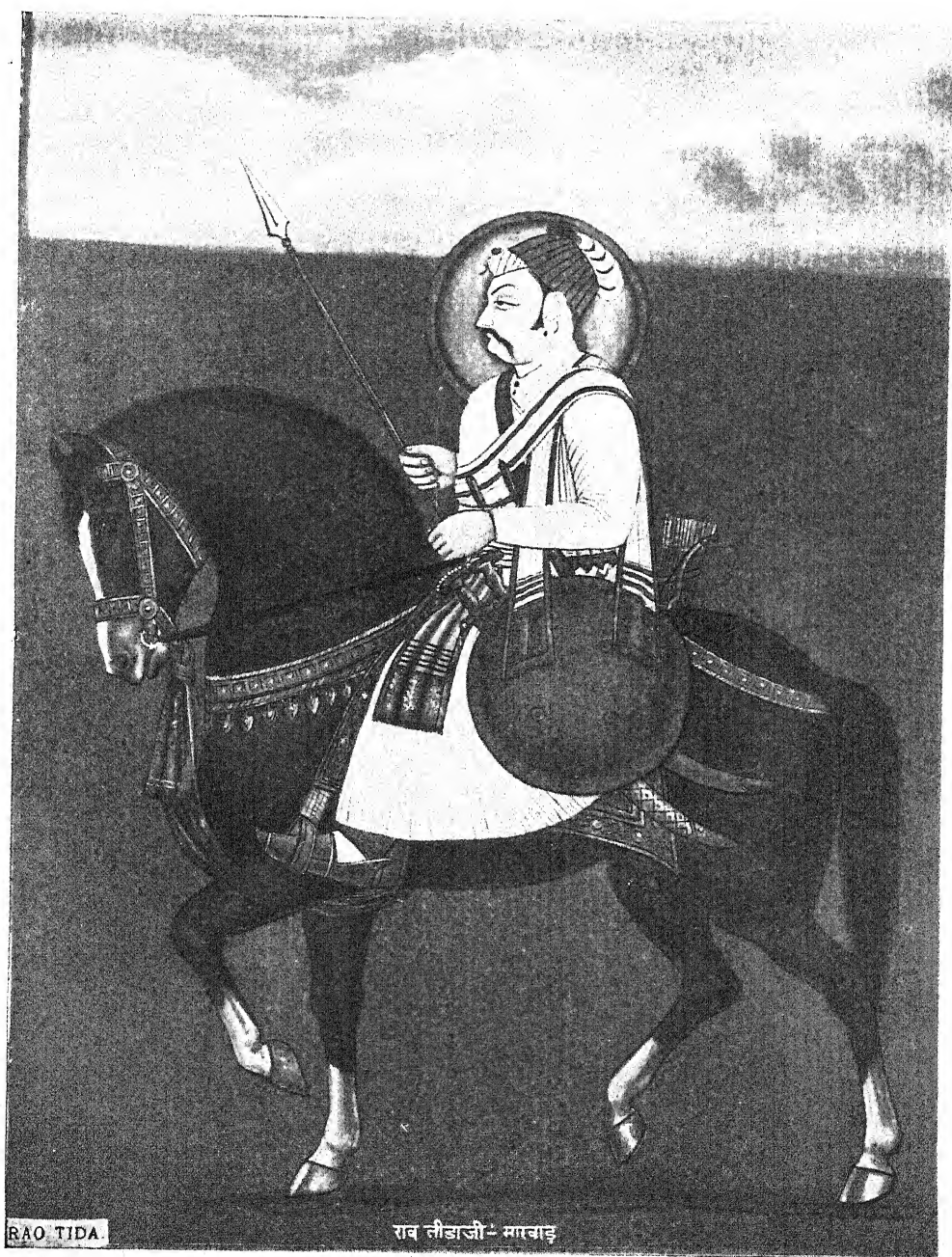
२. ख्यातों में लिखा है कि लखवेरा गांव के कुछ जोहिया (यौधेय) राजपूत मुसलमानी धर्म ग्रहण कर गुजरात के यवन-शासक की सेवा में रहते थे। उनके मुखिया का नाम दला था। एक बार वह बहुतसा माल-असबाब और एक बड़िया घोड़ी लेकर अहमदाबाद से निकल भागा। परन्तु मार्ग में जिस समय वह महेवे के पास पहुँचा, उस समय जगमालजी ने वह घोड़ी लेने की इच्छा प्रकट की। इस पर दला भाग कर वीरमजी के पास चला आया। इन्होंने भी शरणागत की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझ उसकी हर तरह से रक्षा की। इस उपकार से प्रसन्न होकर उसने वह घोड़ी वीरमजी को भेंट कर दी। जब इसकी सूचना जगमालजी को मिली, तब उन्होंने इनसे वह घोड़ी मांगी। परन्तु इन्होंने इस प्रकार भेंट में मिली वस्तु को देने से इनकार कर दिया। यही इनके और जगमालजी के बीच मनोमालिन्य का कारण हुआ।

मारवाड़ का इतिहास

वहां से पहले तो यह सेतरावा की तरफ गए और फिर चूँटीसरों में जाकर कुछ दिन रहे। परन्तु वहां पर भी घटनावश एक काफिले को लूट लेने के कारण शाही फौज ने इन पर चढ़ाई की। इस पर यह जांगल में सांखला ऊँदों के पास चले गए। इसकी सूचना मिलने पर जब बादशाही सेना ने वहां भी इनका पीछा किया, तब यह जोहियावाटी में जोहियों के पास जा रहे। जोहियों के मुखिया दला ने भी इनकी पहले दी हुई सहायता का स्मरण कर इनके सत्कार का पूरा-पूरा प्रबन्ध कर दिया। परन्तु कुछ ही दिनों में इनके और जोहियों के बीच झगड़ा हो गया। इसी में वि० सं० १४४० (ई० सं० १३८३) में यह लखबेरा गांव के पास वीर-गति को प्राप्त हुए। वीरमजी के ५ पुत्र थे।

१ देवराज, २ चूँडा, ३ जैसिंह, ४ विजा और ५ गोगादेव।

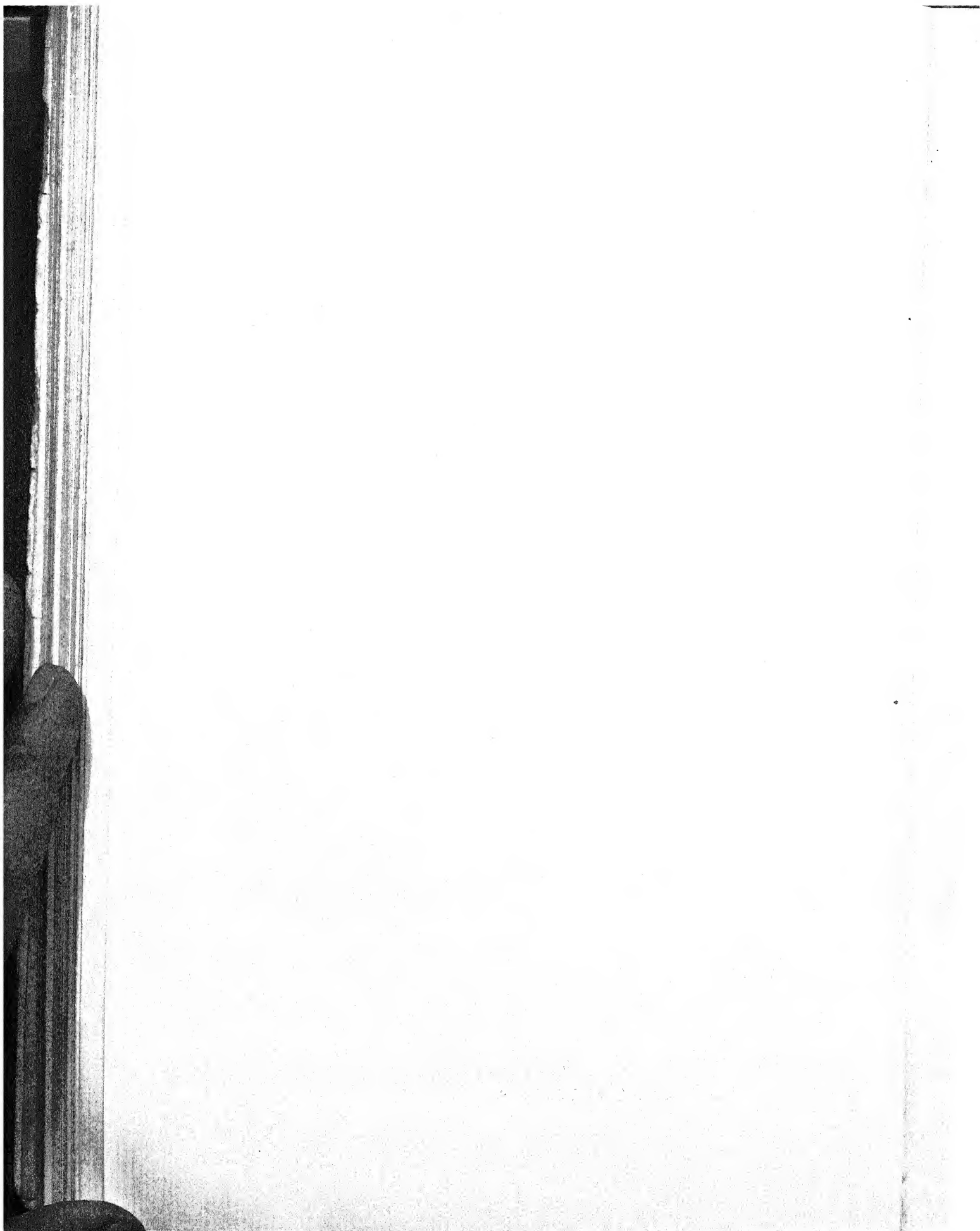
१. यह गांव वीरमजी ने उसी समय बसाया था। किसी-किसी ख्यात में वीरमजी का पहले वरिया नामक पर्वत के पास वीरमपुर बसाकर रहना और वहां से सेतरावे की तरफ जाना भी लिखा है।
२. यह गांव नागोर परगने में है। किसी-किसी ख्यात में इस गांव का नाम चूँडासर भी लिखा मिलता है। परन्तु इस समय नागोर प्रान्त में इस नाम का कोई गांव नहीं है।
३. वीरमजी ने ऊँदा को भी मल्लिनाथजी के विरुद्ध शरण दी थी। इसी उपकार का ध्यान कर उसने इन्हें अपने यहां रख लिया।
४. कुछ ख्यातों में लिखा है कि जिस समय यह सिन्ध में जोहियों के पास पहुँचे उस समय उन्होंने इनके खर्च के लिये सहवान का प्रान्त दे दिया था।
५. ढाढी जाति के बहादुर नामक कवि ने 'वीरमायण' नाम का भाषा का एक काव्य लिखा है। इसमें रावल मल्लिनाथजी का और उनके पुत्र जगमालजी का हाल लिख कर वीरमजी का इतिहास दिया है। और अन्त में उनके पुत्र गोगादेव का अपने पिता के वैर का प्रतिशोध कर युद्ध में वीर-गति प्राप्त करना वर्णित है।
६. देवराज—यह वीरमजी का ज्येष्ठ पुत्र था। पहले लिख चुके हैं कि वीरमजी अपने बड़े भाई मल्लिनाथजी से झगड़ा हो जाने के कारण, सेतरावा नामक गांव बसाकर कुछ दिन वहां रहे थे। परन्तु उसी झगड़े के कारण जब वह वहां से नागोर प्रान्त की तरफ चले, तब सेतरावा और उसके आस पास के २४ गांव अपने पुत्र देवराज को देकर उसकी रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर गए थे। इसके बाद वीरमजी का पीछा करनेवाली शाही सेना ने सेतरावे पर भी चढ़ाई की। परन्तु देवराज के रक्षकों ने बड़ी वीरता से उसका सामना किया।
७. गोगादेव—यह वीरमजी का छोटा पुत्र था। इसका जन्म वि० सं० १४३५ (ई० सं० १३७८) में हुआ था और यह कुण्डल के शासक भाटी वैरिसाल का दौहित्र था। इसने, आसायच राजपूतों को हराकर, सेखाला और उसके आस-पास के २७ गांवों पर अधिकार कर लिया था।



राव तीडाजी - मावाड

८. राव तीडाजी

वि० सं० १४०१-१४१४ (ई० सं० १३४४-१३५७)



राव वीरमजी

एक बार अनावृष्टि के कारण महेवे की बहुतसी प्रजा को अपनी गायों आदि को लेकर मालवे की तरफ जाना पड़ा। इन्हीं में गोगादेव का कृपापात्र वानर राठोड़ तेजा भी था। अगले वर्ष वर्षा हो जाने पर जिस समय वह वापिस लौट रहा था, उस समय उसके और वांत्तोलिया गांव के स्वामी मोयल माणकराव के बीच झगड़ा हो गया। तेजा ने गोगादेव के पास पहुँच उसकी शिकायत की। यह सुन गोगादेव ने स्वयं ही माणकराव पर चढ़ाई कर दी। युद्ध होने पर माणकराव को हार कर भागना पड़ा।

कुछ दिन बाद ही गोगादेव ने, अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये, जोहियों पर चढ़ाई की। पहली बार तो इसे बिना लड़े ही लौटना पड़ा। परन्तु दूसरी बार के आक्रमण के रात्रि में अचानक किए जाने और उस समय जोहियों के दूसरे मुखिया धीरदेव के पूँगल के भाटी राणोंदेव की कन्या से विवाह करने को गए होने से जोहियादला मारा गया। वहाँ से लौट कर जिस समय यह (गोगादेव) लच्छूसर गांव के पास ठहरा हुआ था, उसी समय, दला के पुत्र के द्वारा उपर्युक्त घटना की सूचना पाकर, धीरदेव और उसका श्वशुर राणोंदेव दोनों अपने दलबल सहित वहाँ आ पहुँचे, और मौका देख उन्होंने पहले तो जंगल में चरने को छोड़े हुए गोगादेव के घोड़ों को दूर भगा दिया और फिर वे एकाएक आगे बढ़ गोगादेव पर टूट पड़े। इस विषय का यह दोहा प्रसिद्ध है:-

भूका तिसिया थाकड़ा, राखी जे नैडाह।

दलिया हाथ न आवसी, गोगादे घोड़ाह ॥

यद्यपि इसने भी एक बार तो अपनी (रत्तली नामक) तलवार सज्जाल कर जोहियों और भाटियों के सम्मिलित दल का बड़ी वीरता से सामना किया, तथापि कुछ देर बाद यह जाँघों के कट जाने से पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसी समय राणोंदेव उधर आ निकला। उसे देख गोगादेव से न रहा गया और इसने उस अवस्था में होने पर भी उसे युद्ध के लिये ललकारा। परन्तु वह गोगादेव के पराक्रम से भली भाँति परिचित था। इसलिये दूर से ही दुर्वचन कहकर चला गया। इसके थोड़ी देर बाद धीरदेव भी किसी कार्यवश वहाँ आ पहुँचा और गोगादेव की ललकार को सुन बार करने के लिये इसकी तरफ झपटा। परन्तु अभी वह आगे बढ़ा ही था कि गोगादेव ने उछल कर अपनी तलवार का एक हाथ उस पर जमा दिया। इससे धीरदेव के दो टुकड़े हो गए। इस प्रकार शत्रु से बदला लेकर गोगादेव भी रक्त निकल जाने से वहीं शान्त हो गया। इसने मरते समय कहा था कि जोहियों से तो मैंने अपना बदला आपही ले लिया है, परन्तु भाटियों से बदला लेना बाकी है। आशा है इस कार्य को भी मेरे वंश का कोई न कोई सुपुत्र अवश्य ही पूरा करेगा। यह घटना वि० सं० १४५६ की ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० सं० १४०२ की ७ मई) की है। (परन्तु ख्यातों में का यह संवत् श्रावणादि हो तो वि० सं० १४६० की ज्येष्ठ सुदि ५ को ई० सं० १४०३ की २६ मई होगी।)

इस युद्ध में गोगादेव की तरफ का सांखला मेहराज का पुत्र आलगासी भी मारा गया था। इसलिये कुछ दिन बाद ही राणोंदेव ने मेहराज पर चढ़ाई कर दी। यह देख वह भाग कर राव चूंडाजी के पास चला गया। चूंडाजी ने उसका बड़ा आदर किया और निर्वाह के लिये जागीर देकर उसे अपने पास रख लिया।

मारवाड़ का इतिहास

११. राव चूडाजी

यह राव वीरमदेवजी के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १४३४ (ई० सन् १३७७) में हुआ था। इसलिये पिता की मृत्यु के समय इनकी अवस्था केवल ६ वर्ष की थी। इसके बाद ७ वर्ष तक तो यह अपनी माता के इच्छानुसार गुप्त रूप से कालाऊ में आल्हा चारण की देखभाल में रहे, और इसके बाद आल्हों ने इन्हें इनके चचा रावल मल्लिनाथजी के पास पहुँचा दिया। वहाँ पर कुछ ही दिनों में इन्होंने अपनी कुशलता से रावलजी को इतना प्रसन्न कर लिया कि उन्होंने सालोडी गाँव इन्हें जागीर में दे दिया, और साथ ही इनकी अवस्था छोटी होने से

ख्यातों में लिखा है कि राव चूडाजी की दी हुई जागीर की आय, उसकी जैसलमेर वाली पहली जागीर की आय से भी अधिक थी और उसका प्रधान गाँव भूँडेल था। जैसलमेर की ख्यातों में मेहराज को सुरजदे का स्वामी और जैसलमेर-नरेश का मामन्त लिखा है। उनमें यह भी लिखा है कि उसका पुत्र जैसा जैसलमेर रावल के भतीजे लूणकरण की तरफ से युद्ध कर भाटी राणादेव के हाथ से मारा गया था, उमी वैर का प्रतिशोध करने को वह (मेहराज) राव चूडाजी के पास जा कर रहा था।

१. पहले लिख आए हैं कि इनके पिता ने इनके बड़े भाई देवराजजी को सेतरावा नामक गाँव जागीर में दिया था।

२. यह मारवाड़ के शेरगढ़ परगने का गाँव है।

३. उस समय इनके छोटे भाई ननिहाल में थे। ख्यातों से ज्ञात होता है कि चूडाजी बचपन से ही होनहार थे, और इनकी रुचि भी अधिकतर राजसी खेलों में ही रहती थी।

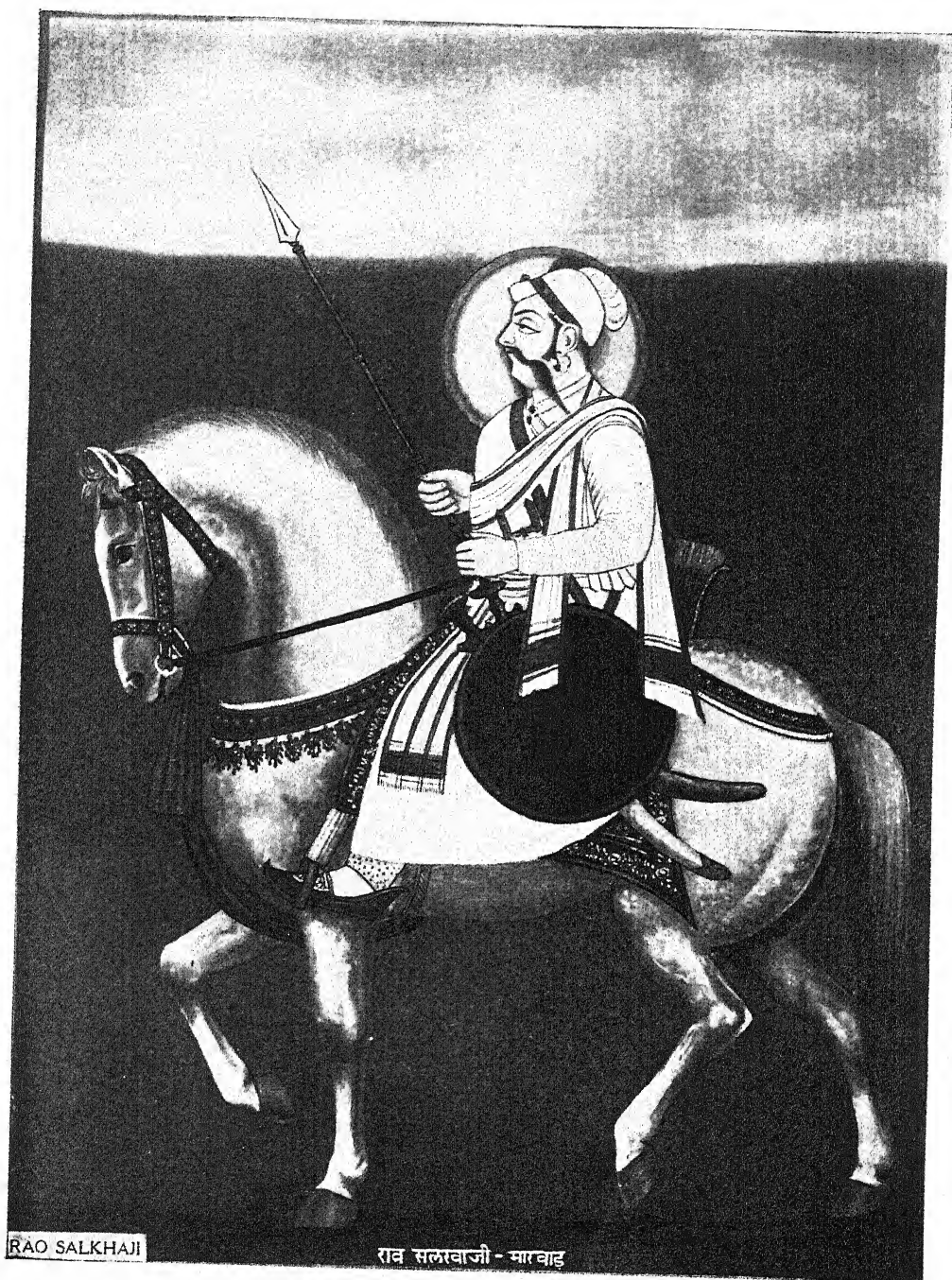
४. ख्यातों से प्रकट होता है कि जिस समय चूडाजी मंडोर के स्वामी हुए, उस समय इसी आल्हा ने वहाँ पहुँच अपनी की हुई सेवा की याद दिलाने के लिये यह मोरठा पढ़कर सुनाया था:-

चूँडा, नावै चीत, काचर कालाऊ तणा।

भूप भयौ मैभीत, मंडोवर रै मालियै।

अर्थात्-हे चूडाजी! इस समय तो आपको कालाऊ के कचरों की याद भी नहीं आती है; क्योंकि इस समय आप मंडोर के इस ऊँचे महल में राजा होकर पथर की दीवार से बने बैठे हैं (किसी की तरफ देखते तक नहीं)। यह सुन चूडाजी ने उमे अपने पास बुलवा लिया, और दान-मान आदि से संतुष्ट कर घर जाने की आज्ञा दी।

५. ख्यातों में लिखा है कि चूडाजी की चतुराई से प्रसन्न होकर जिस समय मल्लिनाथजी ने इन्हें सालोडी गाँव जागीर में दिया था, उस समय इनसे कहा था कि वहाँ से पूर्व की तरफ का जितना भी प्रदेश हस्तगत करोगे वह सब तुम्हारे ही अधिकार में रहेगा।



राव सलखाजी - मावाड

१. राव सलखाजी

वि० सं० १४१४-१४३१ ई० सं० १३५७-१३७४)

वहाँ के प्रबंध और इनकी निगरानी के लिये ईंदा (पड़िहार) शिखरा को नियुक्त कर दिया। यह शिखरा बड़ा चतुर व्यक्ति था। इसलिये कुछ ही दिनों में उसने लूट-खसोट द्वारा बहुतसा माल जमाकर चारों तरफ अपना आतंक जमा लिया। यह देख बीरे-बीरे बहुत से योद्धा भी उसके पास इकट्ठे हो गए। जब इस बात की शिकायत रावलजी के पास पहुँची, तब उन्होंने स्वयं जाकर इसकी जाँच करने का विचार किया। परंतु उनके मंत्री ने, जो चूंडाजी से प्रेम रखता था, सब बातों की सूचना पहले से ही इनके पास भेज दी। इससे शिखरा सावधान हो गया, और उसने मल्लिनाथजी के आने के पहले ही अपने सैनिकों आदि को इधर-उधर भेज दिया। इसलिये मल्लिनाथजी को, स्वयं वहाँ जाने पर भी, इनके वैभव का ठीक-ठीक हाल न मालूम हो सका, और वह चूंडाजी द्वारा किए गए सत्कार से प्रसन्न होकर लौट आए। इसके कुछ दिन बाद ही चूंडाजी के सैनिकों ने एक अरब-व्यापारी के घोड़े लूट लिए। यद्यपि इससे इनका सैनिक बल बहुत बढ़ गया, तथापि इस घटना से मल्लिनाथजी अप्रसन्न हो गए।

जहाँ तक हो, वहाँ से पश्चिम की तरफ के प्रदेश को हस्तगत करने का उद्योग न करना। परन्तु (मल्लिनाथजी के पुत्र) जगमाल को यह बात अच्छी न लगी, और वह चूंडाजी से द्वेष रखने लगा। इसके बाद एक रोज जिस समय जगमाल और चूंडाजी दोनों भाई कुछ साथियों को लेकर शिकार को चले, उस समय मार्ग में इन्हें एक बनेला सुअर मिला, जो इनको देख शीघ्र ही एक तरफ को भाग चला। इस पर यद्यपि सब लोगों ने मिलकर उसका पीछा किया, तथापि खुद शिकार करने की इच्छा से जगमाल ने साथ वालों को उस पर प्रहार करने से रोक दिया। परन्तु जब सायंकाल हो जाने पर भी जगमाल उसे अपनी मार में न ला सका, तब चूंडाजी ने आगे बढ़ उसे मार डाला। जगमाल ने इसे अपना अपमान समझा, और वह इनसे अधिक रुष्ट हो गया। इस गृह-कलह को मिटाने के लिये ही मल्लिनाथजी ने चूंडाजी को सालोडी में जाकर रहने की आज्ञा दी थी।

१. ख्याती से मालूम होता है कि जैसे ही मंडोर के शाही अधिकारी को घोड़ों के लूटे जाने की सूचना मिली, वैसे ही उसने मल्लिनाथजी को उनके लौटा देने का प्रबंध करने के लिये कहलाया। परन्तु मल्लिनाथजी की आज्ञा पहुँचने पर चूंडाजी ने जवाब में लिख भेजा कि वे घोड़े तो मैं अपने राजपूत सैनिकों में बाँट चुका हूँ, इसलिये वापस नहीं ले सकता। हाँ, मेरी सवारी का घोड़ा अवश्य मेरे पास है, आप चाहें तो उसे भंगवा सकते हैं। यह उत्तर पाकर मल्लिनाथजी इनसे अप्रसन्न हो गए। परन्तु उन्होंने फिर भी इनसे कुछ न कहा, और शाही अधिकारी को कुछ दे-दिलाकर भगाड़े को दवा दिया।

मारवाड़ का इतिहास

उस समय मंडोर पर माँझू के सूबेदार का अधिकार था, और वहाँ पर उसकी तरफ से एक अधिकारी रहा करता था। एक बार इसी अधिकारी ने आस-पास में रहनेवाले ईंदा (पड़िहार) राजपूतों से घोड़ों के लिये घास भेजने को कहलाया। इस आज्ञा से ईंदों ने अपना अपमान समझा, और इसलिये आपस में सलाहकर सौ गाड़ियाँ ऐसी तैयार कीं, जिनमें ऊपर से तो घास भरी हुई मालूम होती थी, परंतु भीतर प्रत्येक गाड़ी में शख्नों से सजे चार-चार योद्धा छिपे थे। इसी प्रकार गाड़ीवान के स्थान पर भी एक-एक योद्धा बैठा था, और उसके शख घास के भीतर छिपे थे। जब ये गाड़ियाँ क़िले में पहुँची, तब इनमें के पाँच सौ आदमियों ने निकलकर वहाँ पर उपस्थित यवन-सैनिकों को मार डाला। इससे क़िले पर ईंदा पड़िहारों का अधिकार हो गया। यह घटना वि० सं० १४५१ (ई० सन् १३६४) की है। इस कार्य में ईंदा शिखरा की सलाह से चूंडाजी के योद्धाओं ने भी भाग लिया था। इस प्रकार अपने खोए हुए क़िले के एक बार फिर अपने अधिकार में आ जाने पर ईंदों ने सोचा कि, यद्यपि इस समय तो हमने इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया है, तथापि जिस समय भागे हुए मुसलमान नागौर और अजमेर से सहायता प्राप्तकर क़िले पर प्रत्याक्रमण करेंगे, उस समय इसकी रक्षा करना अवश्य ही कठिन हो जायगा। इसलिये यदि चूंडाजी मंडोर का अधिकार मिल जाने पर हमारे ८४ गाँवों में हस्तक्षेप न करने की प्रतिज्ञा कर लें, तो यह क़िला उन्हें सौंप दिया जाय। इस प्रकार यवनों से इस दुर्ग की रक्षा भी हो जायगी, और इस पर अधिकार करते समय दी हुई चूंडाजी की सहायता का बदला भी उतर जायगा। इसके बाद शीघ्र ही सब बातें

१. उस समय मंडोर के राज्य में ३४२ गाँव थे। इनमें से ८४ पर ईंदा पड़िहारों का, ८४ पर बालेसों का, ८४ पर आसायचों का, ५५ पर मांगलियों का और ३५ पर कोटेचों का अधिकार था।

२. ख्यातों से ज्ञात होता है कि जिस समय ये गाड़ियाँ क़िले पर पहुँची, उस समय एक मुसलमान सैनिक ने यह मालूम करने के लिये कि इन गाड़ियों में अच्छी तरह से घास भरी गई है या नहीं, अपना बरछा एक गाड़ी में भरी घास में घुसेड़ दिया। यद्यपि उस बरछे की नोक घास के अंदर छिपे एक सैनिक की जाँघ में घुस गई, तथापि उसने बाहर खींचे जाने के पहले ही उसे कपड़े से पोंछ लिया। इससे उसमें लगे रुधिर का उस मुसलमान सैनिक को पता न चला। उलटा बरछे के बाहर खींचे जाने में रुकावट पड़ने से उसने समझा कि गाड़ी में घास खूब दबाकर भरी गई है।



राव वीरमजी - मणवाड

१०. राव वीरमजी

वि० सं० १४३१-१४४० (ई० सं० १३७४-१३८३)

तय कर ईदों ने अपने मुखिया राना उगमसी की पोती (गंगदेव की पुत्री) चूंडाजी को ब्याह दी, और उसके दहेज में मंडोर का क़िला भी इन्हें दे दिया। इस आशय का यह सोरठा मारवाड़ में अब तक प्रसिद्ध है:-

ईदारों उपकार, कमधज मत भूलौ कदे ।

चूंडो चँवरी चाद, दी मंडोवर दायजे ॥

इसके बाद ही राव चूंडाजी ने चावंडौ नामक गाँव में अपनी इष्टदेवी चामुंडा का मंदिर बनवाया। यह अब तक विद्यमान है। चूंडाजी के मंडोर प्राप्त करने की सूचना पाकर रावल मल्लिनाथजी स्वयं इनसे मिलने को मंडोर आए। चूंडाजी ने भी उनका यथायोग्य सत्कार किया। उनके कुछ दिन रहकर लौट जाने पर यह (चूंडाजी) बड़ी तत्परता से अपने अधिकृत क़िले की रक्षा का प्रबंध करने लगे।

उन दिनों दिल्ली पर तुग़लकों का अधिकार था। परंतु उनकी शक्ति के क्षीण हो जाने से चूंडाजी को अच्छा मौका मिल गया। कुछ दिनों में मंडोर के प्रबंध से छुट्टी पाकर इन्होंने आस-पास के मुसलमानों को भी तंग करना शुरू किया।

१. किसी-किसी ख्यात में इसका नाम राय धवल लिखा है।
२. कर्नल टॉड ने चूंडाजी का पड़िहार-नरेश को मारकर मंडोर पर अधिकार करना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, क्रुक-संपादित, भा० १, पृ० १२०; और भा० २, पृ० ६४४), परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता।
३. यह गाँव जोधपुर से ७ कोस वायुकोण में है।
४. इस मंदिर की बग़ल में एक पहाड़ी गुफा है। उसका आधा भाग मंदिर में आ गया है, और आधा खुला है। उसी खुले हुए भाग की एक तरफ़ कौ चट्टान पर एक लेख खुदा है, जिसमें केवल निम्नलिखित पंक्तियाँ ही पढ़ी जाती हैं:-

संवत् १४५१ वर्षे मार्गसिर सुदि ३ त्रि(तृ) ति(ती) या वृहस्पतिवारे उत(त्त) राषाढा नक्षत्रे मध्ये मि(मी)न लग्ने मकरस्थे चन्द्र (न्द्रे) उच्च(च्च)नक्षत्रे.....(आगे एक कुंडली बनी है। उसके पहले घर में १२ का अंक और 'वृ' लिखा है, दूसरे और तीसरे घरों में क्रमशः १ और २ के अंक खुदे हैं, और कुंडली के बीच में 'श्री' लिखा है)।

इससे ज्ञात होता है कि चूंडाजी ने इस तिथि के पूर्व ही मंडोर पर अधिकार कर लिया था। परन्तु किसी-किसी ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १४५२ भी लिखा है। फिर भी उपर्युक्त तिथि ही अधिक प्रामाणिक प्रतीत होती है।

उपर्युक्त लेख में की वि० सं० १४५१ की मंगसिर सुदी ३ को ई० सन् १३६४ की २६ नवंबर थी।

मारवाड़ का इतिहास

इसकी सूचना मिलने पर वि० सं० १४५३ (ई० सन् १३६६=हि० सन् ७६८) में गुजरात के सूबेदार जफरख़ाँ ने आकर मंडोर के क़िले को घेर लिया। परंतु जब एक वर्ष और कुछ महीने घेरे रहने पर भी क़िले के हाथ आने की आशा नहीं दिखाई दी, तब वह चूंडाजी से आगे मुसलमानों को तंग न करने की नाम-मात्र की प्रतिज्ञा करवाकर ही लौट गया।

उससे निपटकर चूंडाजी ने कोटेचा राठोड़ भान को मार डाला, और उसके अधिकृत प्रदेशों को अपने राज्य में मिला लिया।

इस प्रकार इधर तो धीरे-धीरे राव चूंडाजी अपना बल बढ़ा रहे थे, और उधर वि० सं० १४५५ (ई० सन् १३६८=हि० सन् ८०१) के तैमूर के हमले के कारण दिल्ली की बादशाहत कमज़ोर हो रही थी। इससे वि० सं० १४५६ (ई० सन् १३६९) में इन्होंने खोखर को हराकर नागोर पर भी अधिकार कर लिया।

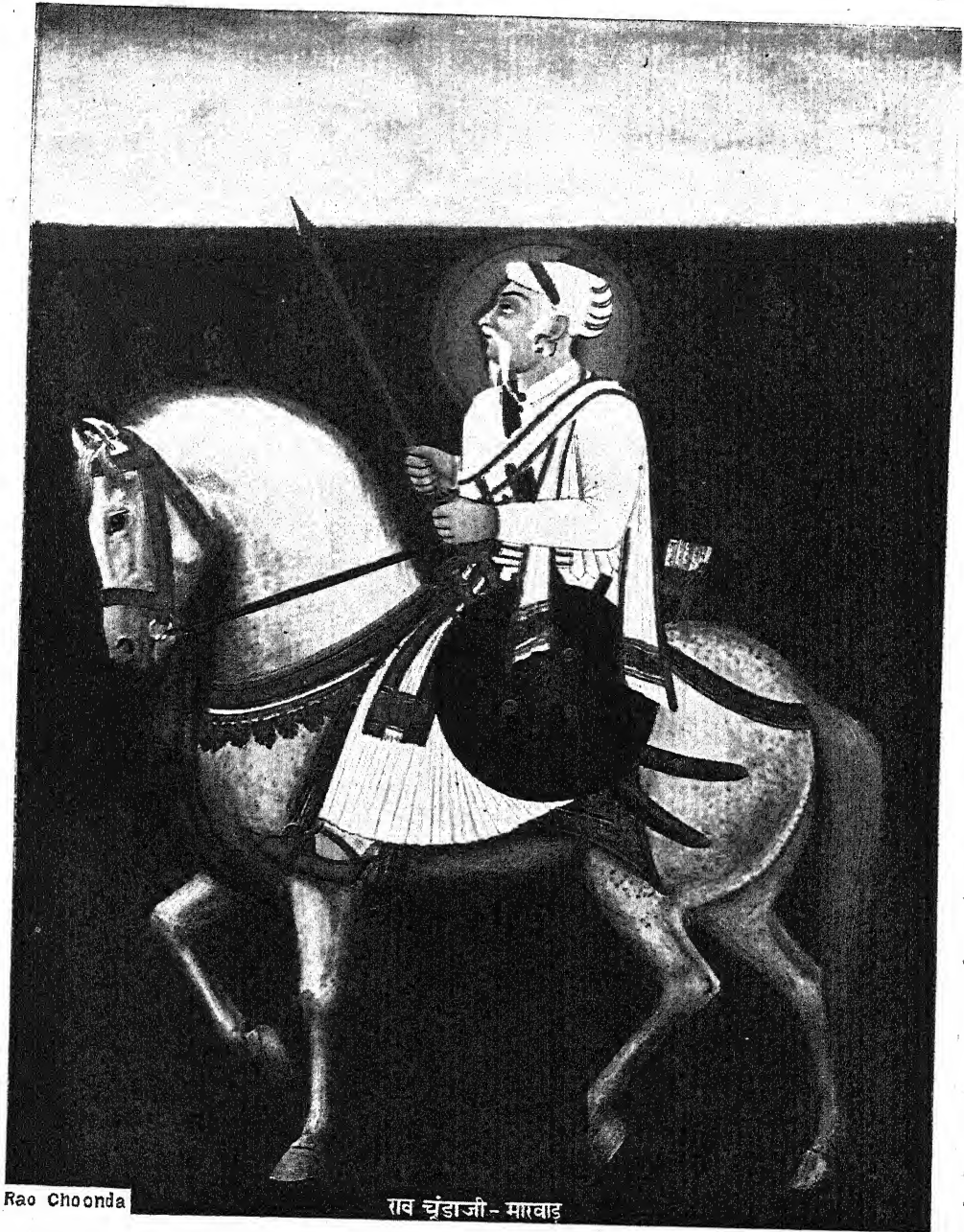
१. 'मिराते-सिकंदरी' में भी इस घटना का उल्लेख मिलता है। परन्तु उसमें भूल से मंडोर के स्थान पर माँडू लिख दिया गया है (देखो पृ० १३)। उस समय माँडू पर हिन्दुओं का अधिकार न होकर मुसलमानों का ही अधिकार था।

'मिराते-सिकंदरी' के लेखक ने जफरख़ाँ का ज़ियारत (तीर्थ-यात्रा) के लिये माँडू से अजमेर जाना लिखा है (देखो पृ० १३)।

इससे भी उपर्युक्त अनुमान की ही पुष्टि होती है, क्योंकि अजमेर मंडोर से ही नज़दीक पड़ता है।

२. भान का राज्य मंडोर से ५ कोस वायुकोण में कैरू के पास था। उसके रहने की जगह आज भी 'भान का भाकर' (पर्वत) के नाम से प्रसिद्ध है। ख्यातों में लिखा है कि एक बार जब चूंडाजी शिकार से लौटते हुए उसके यहाँ पहुँचे, तब उसने अपने घोड़ों के लिये तैयार किया हुआ हलवा इनके सामने लाकर रख दिया। चूंडाजी ने इसे अपना अपमान समझा, और एक नाई को द्रव्य देकर हजामत बनवाने समय उसे मरवा डाला।

३. खोखर के विषय में बड़ा मतभेद चला आता है। किसी ख्यात में उस समय नागोर पर खोखर राठोड़ों का अधिकार होना लिखा है, और उसमें यह भी लिखा है कि वहाँ के उस समय के शासक को चूंडाजी की मौसी (या साली) व्याही थी। किसी में उस समय वहाँ पर खोकर मुसलमानों का शासन होना प्रकट किया है। फिर किसी में वहाँ पर माँडू के शासक की तरफ़ से ख़ाँजादा आज़म के हाकिम होने का उल्लेख है। परन्तु यह अंतिम बात संभव नहीं हो सकती, क्योंकि नागोर के ख़ाँजादों का संबंध माँडू के शासक से न होकर गुजरात के शासक मुजफ़्फ़रशाह प्रथम से था, और पहले-पहल वि० सं० १४६४ (ई० सन् १४०८) में मुजफ़्फ़र का भाई शम्सख़ाँ (दंदानी) नागोर का हाकिम बनाया गया था।



Rao Choonda

राव चूंडाजी - मारावाड

११. राव चूंडाजी

वि० सं० १४५१-१४८० (ई० सं० १३६४-१४२३)

इस कार्य में इन्हें इनके चचा रावल मन्निनाथजी ने भी सहायता दी थी। इसके बाद इन्होंने नागौर के उत्तरी प्रदेश को विजयकर वहाँ पर अपने नाम पर चूडासरी गाँव बसाया, और कुछ ही समय में शाही हाकिमों को मारकर खाटू, डीडवाना, सौभर और अजमेर पर भी कब्जा कर लिया। इसी तरह कुछ दिनों में नाडोल भी इनके अधिकार में आ गया।

‘तवकाते-अकबरी’ (पृ० ४४८) और ‘गिरातेसिकंदरी’ (पृ० १७-१८) में लिखा है—
“जब तातारखों (मोहम्मदशाह) मर गया, और गुजरात का शासन दुबारा जफरखों (आज़म हुमायूँ मुज़फ्फरशाह प्रथम) के हाथ में आया, तब उसने मलिक जलाल खोकर की जगह अपने छोटे भाई शम्सखों दंदानी को नागौर का हाकिम बनाकर भेजा।” उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र से चूडाजी ने दुबारा नागौर छाना था। ख्यात-लेखकों ने इन दोनों घटनाओं को एक समझकर ही शायद यह गड़बड़ की है।

१. यह स्थान (बीकानेर के ईशानकोण में) गजनेर के पास है। यहीं पर इनका बनवाया चूडासर तालाब भी है। इसके उत्तर की तरफ के टीले पर दो स्तंभ खड़े हैं। कहते हैं, चूडाजी ने अपने घोड़े की लंबी छलांग की यादगार में ये पाषाण-स्तंभ खड़े करवाए थे। इससे यह भी प्रकट होता है कि इन्होंने जांगलू के सांखलों, मोहिलों और भाटियों की कुछ भूमि पर भी अवश्य ही अधिकार कर लिया था। साथ ही इन्होंने जोहियों से भी अपने पिता का बदला अवश्य लिया होगा।
२. इन्होंने अजमेर वि० सं० १४६२ (ई० सन् १४०५) में लिया था। वहाँ के छतारी गांव में इस समय भी चूडावत राठोड़ पुराने जागीरदार (भोमियों) के रूप में विद्यमान हैं।
३. (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६४४)। ‘तवारीख़ पालनपुर’ में लिखा है कि राव चूडा ने जालोर के मलिक बीसलदेव चौहान को अपनी कन्या के साथ विवाह करने के लिये मंडोर बुलवाया, और जब वह जालोर का क़िला बिहारी पठान मलिक खुर्रम को सौंपकर वहाँ गया, तब पहले से किए निश्चय के अनुसार चूडा के पाँचवें पुत्र पुंजा ने उसे मार डाला। इसके बाद उन्होंने जालोर पर अधिकार करने का इरादा किया। परंतु मलिक खुर्रम ने बीसलदेव की रानी पोपांबाई को गद्दी पर बिठाकर उनका इरादा पूरा न होने दिया। फिर भी कुछ दिन बाद, लोगों के कहने से, पोपांबाई ने बिहारी पठानों को धोका देकर मरवा डालने का इरादा किया। जैसे ही इस बात का पता मलिक खुर्रम को लगा, वैसे ही उसने पोपां के महल को घेर लिया। परंतु अंत में पोपां के पक्ष वाले हार गए और पोपां क़िला खाली कर अपने दो पुत्रों के साथ सिरोही के पहाड़ों में चली गई। वहाँ से जब वह ईडर पहुँची, तब वहाँ के स्वामी राठोड़ राव रणमल्ल ने उसके पुत्रों को जोरामीरपुर गांव जागीर में दे दिया। पोपांबाई के चले जाने पर जालोर बिहारी पठानों के अधिकार में चला गया (खंड १, पृ० ४-६)। संभव है, जालोर पर की चढ़ाई के समय बिहारियों के कारण वहाँ पर तो इनका अधिकार न हो सका हो, परंतु नाडोल इनके हाथ लग गया हो।

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १४६४ (ई० सन् १४०८=हि० सन् ८१०) में शम्सखाँ ने अपने भाई (गुजरात के शासक मुजफ्फरशाह प्रथम) की सहायता से नागोर पर अधिकार कर लिया। इस पर चूंडाजी मंडोर चले आए।

जिस समय राव चूंडाजी ने डीडवाना और साँभर पर चढ़ाई की, उस समय इनके कहने से इनके अन्य भाइयों ने भी इन्हें उस कार्य में यथासाध्य सहायता दी थी। परंतु इनका भाई जैसिंह चुप बैठ रहा था। इसी से वि० सं० १४६८ (ई० सन् १४११) में इन्होंने सेना भेजकर फलोधी का अधिकार उससे छीन लिया।

शम्सखाँ के मरने पर नागोर पर उसके पुत्र फीरोजखाँ का अधिकार हो गया। परंतु वि० सं० १४७८ (ई० सन् १४२१) के करीब इन्होंने उसको भगाकर नागोर पर दुबारा अधिकार कर लिया।

राव चूंडाजी के और पंगल के भाटियों के बीच बहुत दिनों से झगड़ा चला आता था। इसीसे उन्होंने मुलतान के सेनानायक सलीम की सहायता प्राप्त कर नागोर पर चढ़ाई की। जांगलू के सांखलों और जैसलमेर के भाटियों ने भी उनका साथ दिया। जब यह सम्मिलित दल नागोर के पास पहुँचा, तब भाटियों ने धोका देने की नियत से आगे बढ़ चूंडाजी से मेलजोल की बातें शुरू कीं। भाटियों के इस रुख को देख जिस समय चूंडाजी स्वयं उनसे मिलने को नगर से बाहर आए, उसी समय पीछे ठहरी हुई शत्रु-सैन्य ने एकाएक आगे बढ़ इनको घेर लिया। इस पर यद्यपि रावजी ने और उनके साथ के राठोड़ों ने बड़ी वीरता से शत्रु-दल का सामना किया, तथापि अंत में अपनी संख्याधिकता के कारण शत्रु विजयी हुए, और

१. 'तबकाते-अकबरी' पृ० ४४८ और 'मिराते-सिकंदरी' पृ० १८।

२. हि० सन् ८१६ (वि० सं० १४७४=ई० सन् १४१६) में जिस समय गुजरात के शासक अहमदखाँ ने बुरहानपुर पर चढ़ाई की थी, उस समय शम्सखाँ ने उसे एक पत्र लिखा था ('मिराते-सिकंदरी' पृ० ३३)। इससे उस समय तक नागोर पर शम्सखाँ का ही अधिकार होना प्रकट होता है।

३. यह शायद देहली के बादशाह की तरफ से मुलतान में नियत था। किसी-किसी ख्यात में इसे मुलतान के हाकिम का सेनापति लिखा है।

४. उस समय जैसलमेर की गद्दी पर महारावल लखमशाजी थे। और, ओडीट के मोहिलों ने भी इस चढ़ाई में भाग लिया था।

राव चूडाजी सन्मुख रण में वीर-गति को प्राप्त होगए। यह घटना वि० सं० १४८० की चैत्र-सुदी ३ (ई० सन् १४२३ की १५ मार्च) की है।

राव चूडाजी का, वि० सं० १४७८ का, एक ताम्रपत्र बडली (जोधपुर परगने) से मिला है। उसमें उक्त गांव के दान का उल्लेख है।

१. कर्नल टॉड ने चूडाजी का वि० सं० १४३८ (ई० सन् १३८२) में गद्दी बैठना और वि० सं० १४६५ (ई० सन् १४१६) में मारा जाना लिखा है। उसने यह भी लिखा है कि बादशाह खिजूरख़ाँ ने भी, जो उस समय मुलतान में था, भाटियों की सहायता की थी (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६४५ और ७३३)। परन्तु यह ठीक नहीं है। खिजूरख़ाँ वि० सं० १४७१ (ई० सन् १४१४=हि० सन् ८१७) में दिल्ली के तख़्त पर बैठा था, और वि० सं० १४७८ (ई० सन् १४२१=हि० सन् ८२४) में मरा था; ऐसी हालत में वि० सं० १४६५ (ई० सन् १४०८) में खिजूरख़ाँ की मदद से चूडाजी का मारा जाना संभव नहीं हो सकता।

२. इस ताम्रपत्र की लिखावट महाजनी होने से इसमें मात्राओं आदि का बहुत कम प्रयोग किया गया है। परन्तु यथास्थान मात्राएँ आदि लगा देने से उसमें का लेख इस प्रकार पढ़ा जाता है:—

१. श्री राव चूडाजी रो दत्त बडली गांव।
२. प्रोयत सादा नै दीधो संवत् १४ व—
३. रस आठतरो काती सुद पूनम रै।
४. दिन वार सूरज पुष्करजी माथे।
५. पुण्यार्थ कीदो महाराज चूडाजी।
६. दुवो तेवीस हजार वीगा जमी नी—
७. म सीम समेत ईश्वर प्रीत्ये
८. गांव दीधो हिंदू नै गऊ मुसलमा [न नै]
९. सूर माताजी चामुंडाजी सँ वेमुख।
१०. आल-औलाद अग्यारी कोई गोती पोतो।
११. ईश्वर सँ वेमुख प्रोयत सादानै।
१२.

(उसमें का पीछे का लेख इस प्रकार है)

१३. राव चूडाजी रै भंडारी शिवचंद।
१४. कहते हैं, राव चूडाजी ने कई गांव दान किए थे:—

१ बंभोर-पुरोहितां, २ बडली, ३ चावंडां, ४ बाड़िया, ५ भैंसर-चावंडां, ६ भाटेलाई-पुरोहितों का बास, ७ दिंगोला (जोधपुर परगने के) पुरोहितों को और ८ भांडू-

मारवाड़ का इतिहास

राव चूडाजी के १४ पुत्र थे—१ रिडमल (रणमल), २ सत्ता, ३ रणधीर, ४ हरचंद, ५ भीम, ६ कान्ह, ७ अड़कमल, ८ पूना, ९ सहसमल, १० अज,

चारणां, ११ सीयादां (शेरगढ़ परगने के), १० गडवाडा (पाली परगने का) और कालाऊ (शेरगढ़ परगने का) की भूमि चारणां को। परन्तु इस विषय में निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कह सकते।

१. कर्नल टॉड ने चूडाजी के पुत्रों में पूना के स्थान में पुंजका और हरचंद के स्थान में बाघ का नाम लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६४५)। इसी प्रकार ख्यातों में इनके पुत्रों में राजधर, माला, मूला, गोपा और चाचिगदेव के नाम भी दिए हैं। इसी प्रकार कहीं-कहीं इनके पुत्रों में मांडणा, डूंग और रावत के नाम भी लिखे मिलते हैं।

२. इसने पिता की मृत्यु के बाद नागौर छोड़कर अर्बल्ली-पर्वत की उपत्यका में बसे म्हाडोल नामक गांव में अपना निवास कायम किया। (यह गांव खारची-मारवाड़ जंक्शन से २१ मील पर मेवाड़-राज्य में था।) इस पर जब वहां के स्वामी माला हम्मीर ने आपत्ति की, तब इसके मंत्री (ईंदा पड़िहार) ऊदा ने कुछ दिन तक तो उसे वादों में भुला रक्खा। परन्तु जब वह इस पर चढ़कर आ गया, तब इसने उसे मार डाला। इसी बीच इसके भाई राव सत्ता ने इसे मंडोर में बुलवा लिया। इसलिये इस घटना के बाद यह वहां चला गया।

३. वि० सं० १४६१ (ई० सन् १४०४) में जिस समय इसने दशहरे के दिन चासुंडा के बलिदान के लिये लाए हुए महिष की गर्दन तलवार के एक ही वार में काट गिराई, उस समय लोग इसकी प्रशंसा करने लगे। परन्तु राव चूडाजी ने कहा कि मैं तो इसे तभी वीर समझूंगा, जब यह पूंगल के भाटी राणैगदेव से अपने चचा गोगादेव का बदला ले लेगा। यह सुन अड़कमल ने इस कार्य को करने की प्रतिज्ञा कर ली। ख्यातों में लिखा है कि (लाडणा के निकट के) छपर-द्रोणपुर के स्वामी मोहिल (चौहान) माणक राव का विचार पहले अपनी कन्या का विवाह अड़कमल से करने का था। परन्तु बाद में उसने उसे भाटी राणैगदेव के पुत्र सादा से व्याह देना निश्चित किया। यद्यपि चूडाजी के भय से राणैगदेव स्वयं तो इस संबंध को करने के लिये सहमत नहीं हुआ, तथापि उसके पुत्र सादा ने यह बात स्वीकार कर ली। कुछ दिन बाद जब सादा विवाह करने को ओडींट की तरफ गया, तब मेहराज ने (जिसका पुत्र भाटी राणैगदेव के हाथ से मारा गया था) इसकी सूचना अड़कमल के पास पहुँचा दी। यह सुन विवाह कर लौटते हुए सादा को मार्ग में ही दंड देने की नियत से अड़कमल भी कुछ चुने हुए योद्धाओं और मेहराज को साथ लेकर रवाना हुआ। जिस समय यह जसरसर और सादासर गांवों के पास पहुँचा, उस समय इसका सामना नव-वधू को लेकर लौटते हुए सादा से हो गया। युद्ध होने पर सादा मारा गया, और उसकी

११ विजेमल, १२ लुंभा, १३ शिवराज और १४ रामदेव।

नव-विवाहिता पत्नी कोड़मदे उसके साथ सर्ती हो गई। उन्हीं में यह भी लिखा है कि चिता-प्रवेश के पूर्व कोड़मदे ने अपनी एक भुजा काटकर श्वशुर के चरणों पर रखने के लिये भेज दी थी। राणोंगदेव ने उसकी दाह-क्रिया करवाकर उसी में पहने हुए जूवरों से वहाँ पर कोड़मदे-सर-नामक तालाब बनवाया। यह बीकानेर से ८ कोस पश्चिम में है। परन्तु वास्तव में यह तालाब जोधराजी की माता ने बनवाया था। यह बात वहाँ से मिले वि० सं० १५१६ (ई० सन् १४५६) के जोधराजी के लेख से सिद्ध होती है।

उपर्युक्त युद्ध वि० सं० १४६२ (ई० सन् १४०६) में हुआ था (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ७३२)। अड़कमल की इस प्रतिज्ञा-पूर्ति से प्रसन्न होकर चूडाजी ने उसे डीडवाना जागीर में दे दिया।

कुछ ख्यातों में अड़कमल का इस युद्ध में अधिक घायल हो जाने से छ महीने बाद मर जाना लिखा है। परन्तु कुछ में इसका राणमल्लजी की चाचा और मेरा पर का चढ़ाई के समय उनके साथ रहना और मार्ग में तलवार के एक ही बार से एक शेरनी को मारना लिखा है।

इस घटना के बाद उपर्युक्त वैर का बदला लेने के लिये राणोंगदेव ने मेहराज पर चढ़ाई की। यद्यपि इसकी सूचना मिलते ही राव चूडाजी स्वयं उसकी रक्षा को चले, तथापि इनके पहुँचने के पूर्व ही वह मेहराज को मार और उसकी जागीर के गाँव को लूटकर लौट गया। यह देख चूडाजी ने उसका पीछा किया, और (जैसलमेर-राज्य के) सिरदौ-नामक गाँव के पास उसे जा घेरा। युद्ध होने पर राणोंगदेव मारा गया, और चूडाजी उसका डेरा लूट वि० सं० १४६२ (ई० सन् १४०६) में ही नागौर लौट आए।

ख्यातों में लिखा है कि इस प्रकार अपने पुत्र और पति के राठोड़ों के हाथ से मारे जाने पर राणोंगदेव की स्त्री ने यह निश्चय किया कि जो कोई राव चूडाजी से इन दोनों का बदला लेगा, उसी को मैं पूंगल का राज्य सौंप दूंगी। यह सुन जैसलमेर-रावल केहर का पुत्र केलण, जो अपने बड़े भाई रावल लखमण से मनोमालिन्य हो जाने के कारण बीकमपुर में रहता था, पूंगल जाकर राणोंगदेव की स्त्री (सोढी) से मिला, और वहाँ का अधिकार प्राप्त करने के बाद मुलतान के सेनानायक की सहायता प्राप्त कर चूडाजी को धोके से मारने में सफल हुआ।

कर्नल टॉड ने राणोंगदेव के दो पुत्रों का मुसलमानी धर्म ग्रहण कर खिजरखँ से सहायता प्राप्त करना और केलहण का उनके साथ मिलकर अपनी लड़की का विवाह चूडाजी से करने के बहाने चूडाजी को नगर से बाहर बुलवाकर मारना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ७३३-७३४)।

२. किसी-किसी ख्यात में लिखा है कि इसने जालोर-नरेश चौहान बीसलदेव को बाथ (भुजाओं) में पकड़कर मारा था। इसलिये यह 'बाथपंचायण' (बाथपंचानन=शेर की-सी भुजाओंवाला) के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मारवाड़ का इतिहास

१२. राव कान्हाजी

यह चूँडाजी के पुत्र थे और ज्येष्ठ पुत्र न होते हुए भी, उनकी इच्छानुसार, उनके उत्तराधिकारी हुए। इनका जन्म वि० सं० १४६५ (ई० सं० १४०८) में हुआ था।

चूँडाजी की मृत्यु के बाद जौगलू का सांखला पुनपाल स्वाधीन बन इधर-उधर लूट मार करने लगा था। यह देख कान्हाजी ने उसे मार कर फिर से उसके अधिकृत प्रदेश पर कब्जा कर लिया और इसके बाद नागोर के आसपास के प्रदेशों को भी, जो चूँडाजी की मृत्यु के कारण राठोड़ों के हाथ से निकल गए थे, दुबारा विजय किया। इस पर उन प्रदेशों के शासक शम्भूखों के पुत्र खँजादे फीरोज से मिल कर उसे नागोर पर चढ़ा लाए। युद्ध होने पर नागोर उसके अधिकार में चला गया और कान्हाजी को अपना निवास मंडोर में कायम करना पड़ा। यह करीब ११ महीने राज्य कर वहीं पर स्वर्गवासी हुए।

१. राव चूँडाजी ने कान्हाजी की माता के आग्रह से ही, अपने ज्येष्ठ पुत्र रणमहजी की सम्मति लेकर, कान्हाजी को अपना उत्तराधिकारी नियत किया था।

२. राजपूताने के इतिहास में लिखा है कि—‘राव चूँडा के मरने पर उसका छोटा पुत्र मंडोवर का स्वामी हुआ। (देखो पृ० ५८४) परन्तु वास्तव में उस समय नागोर भी कान्हाजी के ही अधिकार में था। चूँडाजी की मृत्यु के बाद शत्रुदल नागोर में केवल लूटमार करके ही लौट गया था।

३. यह प्रदेश नागोर से २५ कोस उत्तर में है। उस समय इसकी सीमा नागोर प्रान्त की सीमा से मिली हुई थी।

४. कुछ ख्यातों में कान्हाजी का करणी नाम की चारण जाति की स्त्री के शाप से नागोर में ही स्वर्गवासी होना लिखा है। उनके लेखानुसार इनकी मृत्यु के बाद वहाँ पर फीरोज का अधिकार हुआ था।

(करणी राजपूतों और चारणों में देवी की तरह पूजी जाती है। इसका जन्म वि० सं० १४४४ (ई० सं० १३८७) में हुआ था। यह (फलोदी प्रान्त के) सुवाप निवासी (किनिया शाखा के) चारण मेहा की कन्या थी और साठीका निवासी (वीठू शाखा के) चारण दीपा को व्याही गई थी।

इसकी मृत्यु का वि० सं० १५६५ (ई० सं० १५३८), में होना माना जाता है। बीकानेर-नरेश जैतसीजी का बनवाया इसका एक मन्दिर देसणोक (बीकानेर-राज्य) में अब तक विद्यमान है।

१३. राव सत्ताजी

यह राव चूँडाजी के द्वितीय पुत्र थे और अपने भाई कान्हाजी की मृत्यु के समय रणमल्लजी के मेवाड़ में होने के कारण मंडोर की गद्दी पर बैठे^३। इन्होंने अपने भाई रणधीर को, भाडोल (मेवाड़ राज्य में) से बुलवा कर, राज्य का सारा काम सौंप दिया था। परन्तु सत्ताजी का पुत्र नरवद इस प्रबन्ध से सन्तुष्ट न था। इस से कुछ ही दिनों में उसने सत्ताजी को भी उस (रणधीर) से नाराज कर दिया। यह देख रणधीर रणमल्लजी के पास मेवाड़ पहुँचा और उन्हें समझाने लगा कि पिता की आज्ञानुसार आपने राज्य का अधिकार कान्हाजी को दिया था। परन्तु उनकी मृत्यु हो जाने से अब उस पर आप ही का हक है। सत्ताजी उसमें कुछ भी नहीं मांगते। यह बात रणमल्लजी की समझ में भी आ गई। इसीलिये उन्होंने राना मोकलजी से सहायता लेकर मंडोर पर चढ़ाई कर दी। युद्ध होने पर नरवद जखमी हुआ और मंडोर पर रणमल्लजी का अधिकार हो गया। यह घटना वि० सं० १४८४ (ई० सं० १४२७) की है।

-
१. कहते हैं कि इन्होंने (जोधपुर परगने का) खारा नामक गाँव एक चारण को दान में दिया था।
 २. किसी-किसी ख्यात में लिखा है कि राव चूँडाजी ने जिस समय कान्हाजी को अपना उत्तराधिकारी नियत किया था, उसी समय सत्ताजी को मंडोर जागीर में दिया था।
 ३. ख्यातों में लिखा है कि नरवद ने रणधीर के पुत्र नापा को विष दिलवा कर मरवा डाला था।
 ४. किसी-किसी ख्यात में कान्हाजी के मरने पर रणमल्लजी और राना मोकलजी का एक बार पहले भी मंडोर पर चढ़ाई करना लिखा है। उनमें यह भी लिखा है कि उस समय तक सत्ताजी ने रणधीर से आधा राज्य देने का वादा कर रखा था। इसलिये वह (रणधीर) नागौर जाकर खूँजादा फीरोज़ को अपनी सहायता में ले आया और इस प्रकार उसने मेवाड़ की सेना को सफल-मनोरथ न होने दिया। परन्तु कुछ दिन बाद ही नरवद के कहने से सत्ताजी ने वह आधा राज्य देने का वादा तोड़ दिया। इसी से रणधीर रणमल्लजी से मिल गया। और उन्हें समझा बुझा कर मंडोर पर चढ़ा लाया। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता। क्योंकि यदि ऐसा होता तो रणधीर को रणमल्लजी के पास जाकर कान्हाजी के बाद राज्य पर उन्हीं का हक सिद्ध करने की आवश्यकता न होती।

मारवाड़ का इतिहास

इसके कुछ दिन बाद सत्ताजी और नरबद दोनों मेवाड़ में महाराणा मोकलजी के पास चले गए। उन्होंने भी इन्हें निर्वाह के लिये जागीर देकर अपने पास रख लिया।

१४. राव रणमल्लजी

यह मारवाड़-नरेश राव चूडाजी के बड़े पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १४४६ की वैशाख सुदी ४ (ई० सन् १३६२ की २८ अप्रैल) को हुआ था। वि० सं० १४६५ (ई० सन् १४०८) में यह पिता की आज्ञा से अपना राज्याधिकार छोड़कर जोजावर नामक गांव में जा बसे। ख्यातों के अनुसार उस समय इनके पास करीब ५०० योद्धा थे। कुछ दिन बाद यह (वहां से धणाला (सोजत-प्रान्त में) होते हुए मेवाड़ में महाराणा लाखाजी के पास चले गए। महाराणा लाखाजी ने इनकी योग्यता से प्रसन्न होकर इन्हें अपने पास रख लिया, और खर्च के लिये धणाला के साथ ही अन्य कई गांव जागीर में दिए। इसी समय इन्होंने महाराणा की सेना लेकर अजमेर

१. ख्यातों में लिखा है कि युद्ध में नरबद की एक आँख फूट गई थी।

मंडोर विजय हो जाने पर रणमल्लजी ने मेवाड़ की सेना और उसके साथ के सरदारों के लिये किले के बाहर ही ठहरने का प्रबंध करवा दिया था। उनका विचार था कि जब तक किले की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध न होले, तब तक दूसरे राज्य की सेना को किले में घुसने देना उचित न होगा। परन्तु मेवाड़ वालों इससे मनही मन नाराज़ हो गए और लौटते समय नरबद को भी अपने साथ मेवाड़ ले गए।

उन्हीं में यह भी लिखा है कि मंडोर पर रणमल्लजी का अधिकार होजाने पर भी सत्ताजी कुछ दिन वहीं रहे और इसके बाद यह आसोप की तरफ चले गए। युद्ध में लगे धावों के ठीक हो जाने पर नरबद भी मेवाड़ से पिता के पास आसोप चला आया और कुछ दिन बाद सत्ताजी को साथ लेकर मेवाड़ लौट गया। वहीं कुछ समय बाद राव सत्ताजी का देहान्त हुआ।

२. राजपूताने के इतिहास में लिखा है कि राना मोकल ने सत्ता और नरबद को एक लाख की कायलाणे की जागीर देकर अपना सरदार बना लिया था। (देखो पृ० ५८४) परन्तु यह घटना राना कुंभा के समय, रणमल्लजी के मारे जाने पर, जोधाजी को पैतृक-राज्य से वंचित करने का उद्योग करने के समय की प्रतीति होती है।

३. मारवाड़ की ख्यातों में इनका नाम रिडमलजी लिखा है।

४. उस समय यह प्रान्त मेवाड़ राज्य में था, परन्तु इस समय मारवाड़ राज्य में है। सोजत पर उस समय हुल राजपूतों (गहलोतों की एक शाखा) का अधिकार होना पाया जाता है। परन्तु कर्नल टॉडने हुलों को गहलोतों से भिन्न माना है। (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० १, पृ० १४४)

५. कहीं इनकी संख्या ४० और कहीं ५० लिखी है।



૧૪. રાવ રણમલ્લ (રિડમલ) જી
 વિ. સં. ૧૪૮૫-૧૪૯૫ (ઈ. સં. ૧૪૨૮-૧૪૩૮)

पर चढ़ाई की, और वहां पर अधिकार कर उसे महाराणा के राज्य में मिला दिया। इससे महाराणा इनसे और भी प्रसन्न हो गए। कुछ दिन बाद इन्होंने महाराणा लाखाजी के ज्येष्ठ पुत्र चूंडा के आग्रह से अपनी बहन हंसाबाई का विवाह लाखाजी के साथ कर दिया। परन्तु उस समय महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र चूंडा से यह प्रतिज्ञा ले ली गई कि यदि इस विवाह से राणाजी के पुत्र होगा, तो राज्य का मालिक वही समझा जायगा। इसके करीब एक वर्ष बाद ही हंसाबाई के गर्भ से मोकलजी का जन्म हुआ।

रणमल्लजी के उद्योग से ही मेवाड़ की सेना ने अनेक बार मुसलमानों पर विजय पाई थी, इसीसे राणाजी उनका अत्यधिक सम्मान किया करते थे।

पहले लिख चुके हैं कि हंसाबाई के विवाह के समय ही उनके गर्भ से उत्पन्न होनेवाले पुत्र को मेवाड़ का राज्याधिकार दिया जाना निश्चित हो चुका था, इसलिये वि० सं० १४७७ (ई० सन् १४२०) के करीब राणा लाखाजी की मृत्यु हो जाने से रणमल्लजी के भानजे राणा मोकलजी मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। उस समय उनकी अवस्था दस-न्यारह वर्ष की थी। इससे कुछ दिनों तक मेवाड़ राज्य का सारा प्रबन्ध

१. श्रीयुत हरविलास सारडाने रणमल्लजी का, ई० सन् १३६७ और १४०६ (वि० सं० १४५४ और १४६६) के बीच, राणा मोकलजी के बाल्यकाल में, अजमेर विजय करना लिखा है (अजमेर पृ० १५७)। परन्तु राणा लाखाजी के वि० सं० १४७५ (ई० सन् १४१८) के कोट सोलंकियान वाले लेख के मिलने से मोकलजी के पिता राणा लाखाजी का वि० सं० १४७५ (ई० सन् १४१८) तक जीवित रहना सिद्ध होता है (जर्नल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, भाग १२, पृ० ११५)।

२. इस घटना के समय (मारवाड़ के) राव चूंडाजी विद्यमान थे। ऐसी हालत में कुछ लेखकों का रणमल्लजी को (उस समय) राव लिखना भूल है।

मुहम्मद नैणसी ने और कर्नल टॉड ने एक स्थान पर महाराणा लाखाजी का विवाह रणमल्लजी की कन्या से होना लिखा है (देखो, क्रमशः हस्तलिखित 'नैणसी की ख्यात', पृ० १६३, और ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० १, पृ० ३२३-३२५)। रतनू रामनाथ ने अपने 'इतिहास राजस्थान' (पृ० ३४) में, सूर्यमल्ल ने अपने 'वंश-भास्कर' (भा० ४, पृ० २६११) में और 'तोहफ़ा राजस्थान' (पृ० ६१) में भी यही बात लिखी है। परन्तु यह ठीक नहीं है। कर्नल टॉड ने दूसरे स्थान पर हंसाबाई को रणमल्लजी की बहन लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६४५)। यही ठीक प्रतीत होता है।

'इतिहास राजस्थान' (पृ० ३५) में हंसाबाई का महाराणा लाखाजी के साथ सती होना लिखा है। यह भी ग़लत है।

मारवाड़ का इतिहास

उनके बड़े भाई रावत चूडा की देखभाल में रहा। परन्तु अन्त में हंसाबाई के चित्त में उसकी तरफ से सन्देह हो जाने के कारण वह मांडूके सुलतान होशंग के पास चला गया।

इसके बाद महाराणा मोकलजी के छोटे होने के कारण मेवाड़ राज्य का सारा प्रबन्ध उनके मामू रणमल्लजी को सौंपा गया। इन्होंने खास-खास पदों पर विश्वासपात्र लोगों को नियत कर वहां का प्रबन्ध इतने अच्छे ढंग से किया कि युवावस्था प्राप्त कर लेने पर भी महाराणा ने उसमें किसी प्रकार के हेर-फेर करने की आवश्यकता नहीं समझी।

इन कामों से निश्चिन्त हो वि० सं० १४८० (ई० सन् १४२३) में रणमल्लजी अपने पिता राव चूडाजी से मिलने को नागोर की तरफ चले। परन्तु उनके वहां पहुँचने के पूर्व ही राव चूडाजी युद्ध में वीरगति प्राप्त कर चुके थे। इसलिये यह पिताकी आज्ञानुसार अपने छोटे भाई कान्हाजी को वहां की गद्दी देकर, मंडोर होते हुए, अपनी जागीर की देखभाल के लिये धराले चले गए। साथ ही इन्होंने पिताकी मृत्यु का बदला लेने के लिये खीवसी को भेज कर, नागोर से अजमेर जाते हुए, सलीम को मरवा डाला।

१. मोकलजी की अवस्था का छोटा होना राजपूताने के इतिहास में की इन पंक्तियों से भी सिद्ध होता है:—

“इस समय आप (हंसाबाई) का सती होना अनुचित है; क्योंकि महाराणा मोकल कम उम्र है, अतएव आपको राजमाता बनकर राज्य का प्रबन्ध करना चाहिए।”

(पृ० ५८३)

इसके अलावा यदि मोकल की अवस्था छोटी न होती तो पहले कुछ दिन के लिये चूडा को और उसके बाद रणमल्लजी को मेवाड़ के प्रबन्ध करने का अवसर ही क्यों मिलता।

२. कर्नल टॉड ने लिखा है कि राव रणमल्ल अपने दौहित्र राणा मोकल को गोद में लेकर बापा रावल के सिंहासन पर बैठता था (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० २, पृ० ३२२)। परन्तु यह ठीक नहीं है। राजपूताने के इतिहास में उस समय मोकलजी की अवस्था का कमसे कम १२ वर्ष का होना माना है (देखो, पृ० ५८३, टिप्पणी १)। परन्तु हम वि० सं० १४६५ (ई० सन् १४०८) में कान्हाजी के जन्म समय रणमल्लजी का राज्याधिकार छोड़कर मेवाड़ जाना, वहां पर उनकी बहन का विवाह महाराणा लाखाजी से होना और इसके बाद अगले वर्ष वि० सं० १४६६ (ई० सन् १४०९) में उसके गर्भ से मोकल का जन्म लेना मानकर वि० सं० १४७७ (ई० सन् १४२०) के करीब लाखाजी की मृत्यु-समय मोकलजी की अवस्था का करीब १०-११ वर्ष की होना अनुमान करते हैं।

३. किसी-किसी ख्यात में सलीम का अजमेर से लौटते हुए मारा जाना लिखा है।

रणमल्लजी के बढ़ते हुए प्रताप को देख सोनगरों (चौहानों) के चित्त में द्वेष ने घर कर लिया था। इसी से उन्होंने इनको अपने वंश की कन्या के साथ विवाह करने के लिये बुलवाकर मार डालने का इरादा किया। परन्तु बातके प्रकट हो जाने से यह बचकर निकल गए, और कुछ ही दिनों में इन्होंने सोनगरों को मारकर नाडोल पर अधिकार कर लिया। ख्यातों के अनुसार यह घटना वि० सं० १४८२ (ई० सन् १४२५) में हुई थी^१।

पहले लिखा जा चुका है कि राव चूडाजी के मारने में जैसलमेर के भाटियों का भी हाथ था। इसी का बदला लेने के लिये रणमल्लजी ने उनके प्रदेशों को लूटना शुरू किया। यह देख वहां के रावल लक्ष्मणजी घबरा गए, और उन्होंने दंड के रुपये देना स्वीकार कर इनसे सुलह कर ली।

वि० सं० १४८३ (ई० सन् १४२६) में इनकी सेना ने सीधल राठोड़ों से जैतारण छीन लिया, और बाद में हुलों को भगाकर सोजत पर भी अधिकार कर लिया। सोजत पर अधिकार करते समय रणमल्लजी का ज्येष्ठ पुत्र अखेरराज भी सेना के साथ गया था, इसलिये वहां की देखभाल का भार उसी को सौंपा गया।

इसी समय राव सत्ताजी के और उनके भाई रणधीर के बीच झगड़ा हो गया। इसपर रणधीर रणमल्लजी के पास मेवाड़ चला आया, और उसने समझा-बुझाकर, और कान्हाजी के बाद राज्य पर इन्हीं का हक बतलाकर, इन्हें मंडोर पर चढ़ाई करने के लिये तैयार कर लिया। इसके बाद रणमल्लजी ने अपनी और मेवाड़ की सम्मिलित सेना लेकर मंडोर पर चढ़ाई की। नजदीक पहुँचने पर इनका और राव सत्ताजी के पुत्र नरबद का मुकाबला हुआ। यद्यपि नरबद ने बड़ी वीरता से इनका सामना किया, तथापि उसके घायल हो जाने से मंडोर पर रणमल्लजी का अधिकार हो गया। यह घटना वि० सं० १४८५ (ई० सन् १४२८) की है।

१. किसी-किसी ख्यात में इस घटना का वि० सं० १४८० (ई० सन् १४२३) में होना लिखा है।

२. रणधीर ने इन्हें समझाया कि आपने पिता की आज्ञा से कान्हाजी को राज्याधिकार दिया था। परन्तु उनके अपुत्र मरने पर अब उसपर आपका ही हक है। छोटे होने के कारण सत्ताजी का उसपर अधिकार कर बैठना बिलकुल अनुचित है।

मारवाड़ का इतिहास

इस प्रकार मंडोर का राज्य प्राप्त कर लेने पर भी यह कुछ दिन के लिये मेवाड़ जाकर राजकाज की देखभाल में महाराणा मोकलजी को सहायता दिया करते थे। जिस समय मोकलजी ने नागोर के शासक फीरोज़ख़ाँ पर चढ़ाई की, उस समय भी यह उनके साथ थे। इसी प्रकार इन्होंने मोकलजी को सवालख, जालोर, सांभर, जहाज़पुर आदि की चढ़ाइयों में और मुहम्मद (गुजरात के शासक अहमदशाह के पुत्र) के साथ के युद्ध में भी सहायता दी थी।

वि० सं० १४८७ (ई० सन् १४३०) में राव रणमल्लजी ने एक बार फिर जैसलमेर पर चढ़ाई की। इसपर वहां के महारावल लक्ष्मणजी ने एक चारण के^३ द्वारा संधि का प्रस्ताव भेज, अपनी कन्या इन्हें व्याह दी।

१. ख्यातों में इसी समय राव रणमल्लजी का नागोर पर अधिकार कर लेना भी लिखा है, परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

२. इसका पिता अहमदशाह वि० सं० १४६६ (ई० सन् १४४२) तक जीवित था, परन्तु सम्भवतः उसने इसे नागोर के शासक फीरोज़ख़ाँ की सहायता में भेजा होगा।

३. ख्यातों में इस चारण का नाम भोजा लिखा है। उसने आकर रणमल्लजी को यह छप्पय सुनाया था—

“तै गंजे पीरोज ढाल गौ महमंद ढाले,
तै गंजे चहुवाँ धरा चावडां उद्राले।
तै गंजे भाटियाँ कोट जाजपुर संघारे,
तै गंजे पतिसाह नहीं गंजिया अवारे।
मो सीख एक सांभल श्रवण तूं आरंभै आप बल,
रिडमल अगंजी गंजिया केवी गंजि अगंजि बल।”

अर्थात्—तूने (नागोर के शासक) फीरोज़ख़ाँ को हराया, तेरे सामने (गुजरात के शासक अहमद का पुत्र) मुहम्मद भाग खड़ा हुआ, तूने (नागोर के सोनगरा) चौहानों को परास्त किया, तेरे प्रताप से चावड़ों के राज्य की पृथ्वी कांपती है, तूने भाटियों को मारा, जहाज़पुर के किले को नष्ट किया, और (सलीम को मारकर) सुलतान के गर्व को तोड़ा। परन्तु तूने कभी साधारण लोगों को कष्ट नहीं दिया। हे रिडमल (रणमल्ल)! तू मेरी एक बात सुन। तू सब काम स्वयं अपने ही भरोसे पर करता है। तूने सिर उठानेवालों को ही दबाया है, और आगे भी तुझे ऐसा ही करना चाहिए। (अर्थात्—जब भाटी तेरा सामना करने को तैयार नहीं हैं, तब उन पर क्रोध करना व्यर्थ है।)

इसके बाद यह अपने पुत्र जोधाजी और कांधल को साथ लेकर गंगा और गया की यात्रा को गए और लौटते हुए कुछ दिन आंबेर में ठहर मंडोर चले आए ।

उस समय इनका अधिकार मंडोर, पाली, सोजत, जैतारण और नाडोल पर था । परन्तु मेवाड़ के निकट होने के कारण यह अधिकतर सोजत में ही रहा करते थे ।

जालोर का शासक विहारी पठान हसनख़ाँ उन दिनों आसपास के प्रदेशों में उपद्रव करने लगा था । यह देख रणमल्लजी की आज्ञा से इनके सेनापति राठोड़ उदा ने उस पर चढ़ाई की । कुछ दिनों तक तो हसनख़ाँ भी क़िले का आश्रय लेकर राठोड़-सेना का सामना करता रहा, परन्तु अन्त में रसद आदि का पूरा प्रबन्ध न हो सकने के कारण उसे हार मानकर संधि करनी पड़ी ।

वि० सं० १४६० (ई० सन् १४३३) में मेवाड़ नरेश महाराणा मोकलजी को (उनके दादा महाराणा खेताजी की पासवान के पुत्र) चाचा और मेरा ने मदारिया नामक स्थान के पास मारडाला, और इसके बाद ही मेवाड़ राज्य पर अधिकार कर लेने की इच्छा से चित्तौड़ के क़िले को जा घेरा । उस समय कुम्भाजी की अवस्था करीब ६ वर्ष की थी, इसलिये उनके पक्षियों ने शीघ्र ही इस घटना की सूचना राव

१. मुख्य उपपत्ती ।

२. इतिहास से सिद्ध होता है कि वि० सं० १४६५ (ई० सन् १४०८) में कान्हाजी का जन्म हुआ था, और उसी समय रणमल्लजी पिता की आज्ञा से राज्याधिकार छोड़कर मेवाड़ चले गए थे । वहीं पर इनकी बहन हंसाबाई का विवाह महाराणा लाखाजी के साथ हुआ । ऐसी हालत में मोकलजी का जन्म जल्दी-से-जल्दी वि० सं० १४६६ (ई० सन् १४०९) में हुआ होगा, और वि० सं० १४६० (ई० सन् १४३३) में, मृत्यु के समय, उनकी अवस्था अधिक से अधिक २४ वर्ष की रही होगी । साथ ही यदि महाराणा मोकलजी की १७-१८ वर्ष की आयु में उनके पुत्र कुम्भाजी का जन्म होना मान लिया जाय, तो पिता (महाराणा मोकलजी) की मृत्यु के समय (वि० सं० १४६०=ई० सन् १४३३ में) वह ६-७ वर्ष से अधिक के न रहे होंगे । ऐसी हालत में राजपूताने के इतिहास में लिखी ये पंक्तियाँ कि—“महाराणा कुम्भाने गद्दी पर बैठते ही सबसे पहले अपने पिता के मारनेवालों से बदला लेना निश्चय कर, चाचा, मेरा आदि के छिपने की जगह का पता लगते ही उनको मारने के लिये सेना भेजने का प्रबन्ध किया—” (देखो, पृ० ५६२-५६३)—ठीक प्रतीत नहीं होती । ‘राजपूताने के इतिहास’ में राज्य पर बैठते समय—महाराणा मोकलजी की अवस्था का १२ वर्ष की होना लिखा है (देखो पृ० ५८३, टिप्पणी १) । ऐसी हालत में महाराणा लाखाजी का स्वर्गवास वि० सं० १४७८ (ई० सन् १४२१) में मानना होगा । परन्तु यदि

मारवाड़ का इतिहास

रणमल्लजी के पास भेज कर इन्हें सहायता के लिये बुलवाया। यह खबर पाकर रणमल्लजी तत्काल चुने हुए ५०० वीरों के साथ मेवाड़ जा पहुँचे। परन्तु उनके आनेकी सूचना मिलते ही चाचा और मेरा पाई कोटड़ा के पहाड़ों में जा छिपे। इस पर राव रणमल्लजी ने वहाँ भी उनका पीछा किया, और ६ महीने तक उक्त पहाड़ को घेरे रहने के बाद वहाँ के भीलों की सहायता से चाचा और मेरा को, मय उनके साथियों के, मार डाला। परन्तु महपा पँवार, जो इस षड्यन्त्र में सम्मिलित था, पहले से ही स्त्री का भेस बनाकर निकल भागा, और महाराणा मोकलजी के ज्येष्ठ भ्राता रावत चूँडा की सहायता से मांडू के सुलतान के पास जा पहुँचा। इसके बाद राव रणमल्लजी चाचा और मेरा के पक्ष के स्वामिद्रोही सीसोदियों की कन्याओं को लेकर देलवाड़े आए, और उन्हें अपने साथ के राठोड़ वीरों को व्याह दिया।

इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाने पर वे चित्तौड़ लौट आए और बालक महाराणा कुम्भाजी के पास रह कर मेवाड़ का प्रबन्ध करने लगे^३। कुछ ही दिनों में इन्हें रावत चूँडा के छोटे भाई राघवदेव पर भी शक हो गया। इसलिये इन्होंने राजपक्ष के लोगों से सलाह कर उसे दरबार में बुलवाया, और वहाँ महाराणा कुम्भाजी के सामने ही उसे मरवा डाला।

लाखाजी की मृत्यु जल्दी-से-जल्दी वि० सं० १४७६ (ई० सन् १४१६) में मानकर उस समय ही मोकलजी की अवस्था १२ वर्ष की मानली जाय और उनकी १७-१८ वर्ष की आयु में (अर्थात् वि० सं० १४८१-८२=ई० सन् १४२४-२५ में) कुम्भाजी का जन्म होना स्वीकार कर लिया जाय, तो भी महाराणा मोकलजी की मृत्यु के समय (वि० सं० १४६०=ई० सन् १४३३ में कुम्भाजी की अवस्था ८-९ वर्ष से अधिक नहीं हो सकती।

१. ख्यातों में लिखा है कि राव रणमल्लजी ने मोकलजी के मारे जाने का समाचार सुन अपने सिर से पगड़ी उतार कर, साफा बाँध लिया था, और यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक हत्याकारियों को दंड न दे लूँगा, तब तक सिर पर पगड़ी न बाँधूँगा।
२. मारवाड़ की ख्यातों के अनुसार इसी अवसर पर रणमल्लजी के भाई अड़कमल ने, तलवार के एक ही वार से, एक शेरनी को मारा था।
३. कर्नल टॉड ने लिखा है कि—“यद्यपि मोकलजी की हत्या का कारण केवल व्यंग्य वचन ही कहा जाता है, तथापि उसके उत्तराधिकारी बालक कुम्भा के किए अपनी रक्षा के प्रबन्ध को देख, मानना पड़ता है कि यह अवश्य ही एक गहरे षड्यन्त्रका प्रारम्भ था। स्वामिद्रोही लोग माद्री के निकटके सुरक्षित स्थान में चले गए, और कुम्भाने इस आवश्यकता के समय मारवाड़-नरेश की मित्रता और सहायता पर विश्वास किया।

इसके बाद जैसे ही रणमल्लजी को महपाके मांडूके सुलतान महमूद खिलजी (प्रथम) के निकट होने की सूचना मिली, वैसे ही इन्होंने दूत भेजकर उसे कहलाया कि या तो वह महाराणा के अपराधी महपा को मेवाड़ भेज दे, या युद्ध की तैयारी करे। परन्तु जब इसका सन्तोषजनक उत्तर न मिला, तब वि० सं० १५६४ (ई० सन् १५३७) के करीब इन्होंने मेवाड़ और मारवाड़ की सम्मिलित सेना लेकर मांडू पर चढ़ाई की। यद्यपि इसकी सूचना मिलते ही महमूद भी इनके मुकाबले को, सारंगपुर के पास तक, आगे बढ़ आया, तथापि युद्ध में राजपूतों की मार न सह सकने के कारण उसकी सेना भाग चली। इसलिये महमूद को हार माननी पड़ी। इस विजय के कारण मेवाड़ में राव रणमल्लजी का प्रभाव और भी बढ़ गया। परन्तु जिन लोगों के स्वार्थ-साधन में इससे बाधा पहुँचती थी, वे लोग इनके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे।

उस विश्वास का बदला भी उसे अच्छा ही मिला।” (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान, भा० १, पृ० ३३२)

उन्होंने यह भी लिखा है कि—“ (मेवाड़ के) कवि लोग अपने नरेश (कुंभा) के पिता की मृत्यु का बदला लेने के कार्य को अपने राज्य की रक्षा के कार्य के समान समझ कर, सहयोग करने के लिये मारवाड़-नरेश की बहुत-कुछ प्रशंसा करते हैं” (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान, भा० १, पृ० ३३४)।

मेवाड़ के इतिहास से ज्ञात होता है कि महाराणा मोकलजी के मारे जाने पर सिरौही-नरेश महारावल सैसमलजी ने अपने राज्य की सीमा से मिला मेवाड़ का कुछ प्रदेश दबा लिया था। परन्तु रणमल्लजी ने सेना भेज कर उक्त प्रदेश के साथ ही आबू और उसके आसपास के प्रदेश मेवाड़-राज्य में मिला लिए।

१. कर्नल टॉड ने इस युद्ध में महमूद का कैद किया जाना लिखा है। (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान, भा० १, पृ० ३३५) ‘वीरविनोद’ में लिखा है कि—“सुलतान भागकर मांडू के किले में जा रहा, और उसने महपा को वहाँ से चले जाने को कहा। जिस पर वह गुजरात की तरफ चला गया। कुंभाने मांडू का किला घेर लिया। अन्त में सुलतान की सेना भाग निकली, और महाराणा महमूद को चित्तौड़ ले आए। फिर छै महीने तक कैद रखा, और कुछ भी दंड न लेकर उसे छोड़ दिया—” (राजपूताने का इतिहास, पृ० ५६८-५६९)। अस्तु, जैसा कुछ भी हुआ हो, परन्तु यह सब राव रणमल्लजी की ही वीरता और शाकुन्तला का फल था, क्योंकि कुंभाजी की अवस्था उस समय करीब १०-११ वर्ष की थी।

२. ‘वीरविनोद’ में लिखा है कि—“चाचा और भैया का मारने और महमूद को कैद करने से रणमल्ल का अखिलियार दिन-दिन बढ़ता ही गया।” इससे प्रकट होता है कि मेवाड़ दरबार के ऐतिहासिक भी इन कार्यों का श्रेय राव रणमल्लजी को ही देते हैं।

मारवाड़ का इतिहास

उन्हीं लोगों के सहारे से महाराणा मोकलजी के हत्याकारी चाचा का पुत्र आका और पँवार महपा भी कुछ ही दिनों में मेवाड़ लौट आए, और रणमल्लजी के विरोध करने पर भी, लोगों के आग्रह से, महाराणा कुम्भाजी ने उनके अपराध क्षमा कर दिए। इसके बाद एक रोज महपा ने, रणमल्लजी के मेवाड़ राज्य को दबा बैठने का भय दिखलाकर, कुम्भाजी को इनके विरुद्ध भड़काना चाहा। परन्तु जब यह वार खाली गया, तब आकाने एक नई युक्ति सोच निकाली। एक दिन वह लेटे हुए महाराणा के पैर दबाते हुए रोने लगा। टांगों पर आंसुओं के गिरने से चौंकर जब महाराना ने उससे इसका कारण पूछा, तब उसने कहा कि राव रणमल्लजी के मेवाड़-राज्य पर अधिकार कर बैठने के गुप्त षड्यन्त्र की तरफ आपका ध्यान न देख मातृभूमि के दुःख से मेरे आंसू निकल पड़े हैं। यह सुनकर बालक महाराणा कुम्भाजी^१ उसके बहकावे में आ गए और उन्होंने राव रणमल्लजी को धोके से मार डालने की आज्ञा दे दी। इसके बाद षड्यन्त्रकारियों ने रावत चूड़ा को भी मांडू से वहां बुला लिया।

इधर यह कपटजाल विछाया जा रहा था और उधर इसकी कुछ भनक रणमल्लजी के कानों तक भी पहुँच चुकी थी। इसलिये उन्होंने अपने पुत्र जोधाजी आदि को बतला दिया कि आजकल लोग हमारे विरुद्ध महाराणा को भड़का रहे हैं। सम्भव है, सांसारिक अनुभव के अभाव से वह उनके कहने में आ जाय। इससे तुमको सावधान किए देता हूँ कि यदि किसी दिन मैं राणाजी के आग्रह से तुम लोगोंको किलेमें आनेके लिये कहला भी दूँ, तो भी तुम टाल जाना। इसके बाद सचमुच ही महाराणा ने जोधाजी आदि को किले में बुलवा लेने का आग्रह करना शुरू किया। परन्तु जब रणमल्लजी के एक दो-बार कहलाने पर भी वे न आए, तब षड्यन्त्रकारियों को अपनी गुप्त मन्त्रणा के प्रकट हो जाने का सन्देह होने लगा। इसलिये वि० सं० १४६५ की कार्तिक वदि ३० (ई० सन् १४३८ की २ नवम्बर) की रातको उन्होंने बेखबर सोते हुए राव रणमल्लजी को पलंग से बांधकर इनका वध कर डाला।

१. उस समय कुम्भाजी की अवस्था हमारे मतानुसार केवल ११-१२ वर्ष की और राजपूताने के इतिहास के अनुसार १३-१४ वर्ष की थी।

२. 'वीरविनोद' में इस घटना का वि० सं० १५०० (ई० सन् १४४३) में होना लिखा है। परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि रामपुर (गोड़वाड़) के जैन-मंदिर से मिले वि० सं० १४६६ (ई० सन् १४३९) के महाराना कुम्भा के लेख से उस समय के पूर्व ही मंडोर पर कुम्भाजी का अधिकार हो जाना सिद्ध होता है (आर्कियॉलॉजीकल सर्वे ऑफ़

राव रणमल्लजी उदार, चतुर और वीर पुरुष थे। इन्होंने पिता की आज्ञा से पैतृक राज्य तक छोड़ दिया था। इन्हीं की कुशलता और वीरता से महाराणा मोकलजी और विशेषकर कुम्भाजी की विपत्ति के समय मेवाड़-राज्य की रक्षा हुई थी।

इंडिया की १९०७-१९०८ की वार्षिक रिपोर्ट, पृ० २१४)। कर्नल टॉड और सूर्यमल्ल ने राव रणमल्लजी का महाराणा मोकलजी के समय मारा जाना लिखा है। (देखो क्रमशः एनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० १, पृ० ३३२; और 'वंशभास्कर', भा० ३, पृ० १८७२) यह भी ठीक नहीं है।

'वीरविनोद' और मुहणोंत नैगासी की ख्यात में लिखा है कि महपा आदि के आक्रमण करते ही रणमल्लजी चारपाई से बंधे होने पर भी उसको लिए हुए उठ खड़े हुए, और कई शत्रुओं को मारकर वीरगति को प्राप्त हुए। कहीं-कहीं उनका लेटे-लेटे ही कई शत्रुओं को मारकर स्वर्ग सिंघारना लिखा है।

१. कहते हैं कि राव रणमल्लजी ने निम्नलिखित गांव दान दिए थे:—१ कुंवारडा (जालोर परगने का), २ धर्मद्वारी ३ पुनायतां (पाली परगने के) पुरोहितों को और ४ बीसा-वास (जोधपुर परगने का) चारणों को।
२. प्रसिद्धि है कि रणमल्लजी ने अपने राज्य-भर में एक ही प्रकार के नाप और तोलका प्रचार किया था।
३. इनकी वीरता का प्रमाण राणापुर (गोडवाड़) से मिला वि० सं० १४६६ (ई० सन् १४३६) का महाराणा कुम्भाजी का लेख है। उसमें महाराणा कुम्भाजी के प्रथम सात वर्षों के कार्यों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उन्होंने सारंगपुर (मालवा), नागौर, गागरौन, नराणा (जयपुर), अजमेर, मंडोर, मांडलगढ़, बूंदी, खाटू, चाटसू (जयपुर) आदि विजय किए थे। परन्तु वास्तव में इस लेख के लिखे जाने तक भी कुम्भाजी की अवस्था करीब १२-१३ वर्ष की ही थी। इसलिये मंडोर को छोड़कर, जहां पर रणमल्लजी की मृत्यु के बाद रावत चूड़ाने अधिकार किया था, बाकी सब स्थानों की वि० सं० १४६५ (ई० सन् १४३८) तक की, विजयों का श्रेय, मेवाड़ के एक मात्र निरीक्षक राव रणमल्लजी को ही देना होगा। इसकी पुष्टि राजपूताने के इतिहास में की इन पंक्तियों से भी होती है:—

“चूड़ा के चले जाने पर रणमल्ल ने राज्य का सारा काम अपने हाथ में कर लिया और सैनिक विभाग में राठोड़ों को उच्च पद पर नियत करता रहा।”

(पृ० ५८४)

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि रणमल्लजी के समय उनके नियत किए इन्हीं राठोड़-सेनापतियों ने उनकी अधीनता में अनेक प्रदेशों को जीत मेवाड़-नरेश को गौरवशाली बनाया था।

मारवाड़ का इतिहास

राव रणमल्लजी के २६ पुत्र थे । १ अखैराज, २ जोधाजी, ३ कांभल, ४ चांपा, ५ लाखा, ६ भाखरेंसी, ७ डूंगरसी, ८ जैतमाल, ९ मंडलौ, १० पाता, ११ रूपा, १२ करैण, १३ सांडा, १४ मांडल, १५ उदा, १६ वैरा, १७ हापा, १८ अडवाल, १९ जगमाल, २० नाथा, २१ करमचन्द, २२ सींधा, २३ तेजसी, २४ सायर, २५ सगता और २६ गोयन्द ।

१. इनकी मुख्य जागीर बगड़ी है ।

२. इसने अपने भतीजे राव बीकाजी को बीकानेर का नया राज्य स्थापन करने में सहायता दी थी ।

३. मंडोर से १५ कोस पूर्व का कापरड़ा नामक गांव इसी ने बसाया था । राव रणमल्लजी के मारे जाने के समय यह भी चित्तौड़ में था । इसके बाद वहां से मंडोर होता हुआ काहूनी नामक गांव में पहुँच, जोधाजी के साथ हो लिया । इसने उन्हें मंडोर पर अधिकार करने और चित्तौड़ पर सफल आक्रमण करने में भी सहायता दी थी । वि० सं० १५१६ (ई० सन् १४५६) में गोडवाड़-प्रान्त के सींधल, बालिया और सोनगरों ने मिल कर इसकी गाँव पकड़ लीं । परन्तु इस ने उनके सम्मिलित दल को हराकर उन्हें वापस छुड़वा लिया । वि० सं० १५२२ (ई० सन् १४६५) में इस ने, गुजरात होकर दिल्ली जाते हुए, मांडू के सुलतान महमूद खिलजी से, पूनागर की पहाड़ी के पास, बहादुरी से युद्ध किया था ।

वि० सं० १५३६ (ई० सन् १४७६) में महाराणा रायसिंहजी की सहायता से सींधल राजपूतों ने इस पर चढ़ाई की । मणियारी के पास युद्ध होने पर उसी में यह मारा गया ।

४. ख्यातों में लिखा है कि इसके पुत्र बाला ने जोधाजी की मेवाड़ की चढ़ाई के समय वहां के सेठ पदमशाह को पकड़ने में भाग लिया था । वहां से लौट कर जब जोधाजी खैरवा नामक गांव में पहुँचे, तब उस सेठने बहुतसा द्रव्य भेंट कर रिहाई हासिल कर ली । सेठ से मिले हुए द्रव्य से ही जोधपुर का किला बनना प्रारम्भ हुआ था । इसी से जोधाजी ने उसी के पास सेठ के नाम पर पदमसर नामक एक तालाब बनवा दिया । चांपा के मारे जाने के समय भी यह उसके साथ था, और अन्त में इसी ने सींधलों को भगा कर अपने चचा का बदला लिया ।

५. इसने भी अपने भतीजे बीकाजी को बीकानेर का नया राज्य स्थापन करने में सहायता दी थी ।

६. रणमल्लजी के मारे जाने पर जब मेवाड़ की सेना ने जोधाजी का पीछा किया, तब इसने कपासण के मुकाम पर उसका सामना कर उसे रोका । इसी युद्ध में घायल होने से इसकी मृत्यु हुई ।

७. इसी के वंश में राठोड़-वीर दुर्गादास उत्पन्न हुआ था ।

८. यह बाल्यावस्था में ही मर गया था । कहीं-कहीं इसके भाई सायर और सगता का भी बाल्यावस्था में मरना लिखा है ।

राव रणमल्लजी की मृत्यु के कारण पर विचार ।

मेवाड़ के कुछ इतिहास-लेखक महाराणा कुम्भाजी की गलती को छिपाने के लिये राव रणमल्लजी पर कुम्भाजी को मार कर मेवाड़-राज्य पर अधिकार कर लेने के इरादे का दोष लगाते हैं, और इसीके आधार पर उनके मारे जाने को न्याय्य सिद्ध करते हैं । परन्तु यह कहाँ तक ठीक है, इसका निर्णय नीचे लिखे दो पहलुओं पर विचार करने से हो सकता है:—

१. महाराणा लाखाजी की मृत्यु के समय मोकलजी की अवस्था किसी भी हालत में ग्यारह-बारह वर्ष से अधिक न थी और रावत चूँडा के शीघ्र ही नाराज होकर मांडू चले जाने पर मेवाड़-राज्य का सारा प्रबन्ध कई वर्षों तक रणमल्लजी के ही हाथों में रहा था । इसके बाद महाराणा मोकलजी के मारे जाने के समय उनके पुत्र कुम्भाजी केवल छै-सात वर्ष के थे और मेवाड़ में अराजकता भी फैल गई थी । परन्तु रणमल्लजी के कठिन परिश्रम से चाचा और मेरा मारे गए और कुम्भाजी को वहाँ की गद्दी मिली । इसके बाद भी रणमल्लजी ने लगातार पांच वर्षोंतक मेवाड़ राज्य का जैसा कुछ प्रबन्ध किया, उसका हाल राणपुर (गोडवाड़) से मिले, वि० सं० १४६६ (ई० सन् १४३२) के, महाराणा कुम्भाजी के समय के लेख से प्रकट हो जाता है । यदि सचमुच में ही रणमल्लजी का मेवाड़ राज्य पर अधिकार कर लेने का विचार होता, तो वे मोकलजी के समय अथवा उनके मारे जाने से उत्पन्न हुई विकट परिस्थिति के समय, अपनी इच्छा पूर्ण कर सकते थे । कुम्भाजी के युवा होने तक ठहरे रहना तो इस कार्य के लिये उलटा हानिकारक था ।

२. इतिहास से सिद्ध है कि जिस समय महाराणा लाखाजी का विवाह हंसाबाई के साथ हुआ था, उस समय वह वृद्ध हो चुके थे । ऐसी हालत में सम्भव है कि विमाता के गर्भ से उत्पन्न होनेवाले भाई के लिये अपना राज्याधिकार छोड़ने की प्रतिज्ञा करते समय (लाखाजी के ज्येष्ठ पुत्र) चूँडा के चित्त में मोकल के उत्पन्न होने की सम्भावना ही न रही हो । फिर यह भी सम्भव है कि उसके उत्पन्न हो जाने से, पूर्व प्रतिज्ञानुसार, राज्याधिकार छोड़ देने को बाध्य होने पर भी उसके चित्त में उसे फिर से प्राप्त कर लेने की इच्छा उत्पन्न हो गई हो । इसके बाद जब मोकलजी के मारने का

मारवाड़ का इतिहास

पड़्यन्त्र करने पर भी राव रणमल्लजी के कारण उसे सफलता न हुई (जैसा इतिहास से प्रकट होता है), तब उसने कम-से-कम उनसे बदला लेने और अपने पैतृक-राज्य में लौट कर बसने के लिये ही इनको मरवाने का उद्योग किया हो। यह हमारा अनुमान मात्र है। परन्तु नीचे उद्धृत घटनाओं से इसकी पुष्टि होती है:—

राजमाता का चूंडा से राजकार्य ले लेना, इसके बाद चूंडा का मेवाड़ के सहज-शत्रु मांडू के सुलतान के पास जाकर रहना, मोकल की हत्या होने पर भी चूंडा, उसके भाई राववदेव और मेवाड़ के सरदारों का चुपचाप बैठ रहना, मोकलजी के हत्याकारियों में से महपा का भागकर चूंडा के पास मांडू जाना और उसके द्वारा वहां के सुलतान का आश्रय पाना, महपा के कारण कुम्भाजी और सुलतान के बीच विरोध होने पर भी चूंडा का सुलतान के पास ही रहना आदि।

इनके अलावा 'वीरविनोद' (भा० १, पृ० ३२३-२४) और 'राजपूताने के इतिहास' (भा० २, पृ० ६०३) में लिखा है—“जोधा की यह दशा देखकर महाराणा की दादी हंसाबाई ने कुम्भा को अपने पास बुलाकर कहा कि मेरे चित्तौड़ व्याहे जाने में राठोड़ों का सब प्रकार से नुकसान ही हुआ है। रणमल्ल ने मोकल को मारनेवाले चाचा और मेरा को मारा, मुसलमानों को हराया और मेवाड़ का नाम ऊँचा किया; परन्तु अन्त में वह भी मरवाया गया, और आज उसी का पुत्र जोधा निस्सहाय होकर मरुभूमि में मारा-मारा फिरता है। इस पर महाराणा ने कहा कि मैं प्रकट रूप से तो चूंडा के विरुद्ध जोधा को कोई सहायता नहीं दे सकता, क्योंकि रणमल्ल ने उसके भाई राववदेव को मरवाया है; आप जोधा को लिख दें कि वह मंडोवर पर अपना अधिकार कर ले, मैं इस बात पर नाराज न होऊँगा।”

इससे भी स्पष्ट होता है कि राव रणमल्लजी ने पड़्यन्त्रकारियों से मेवाड़ की रक्षा करने के साथ ही मांडू के सुलतान महमूद खिलजी प्रथम को हराकर हर तरह से महाराणाओं का उपकार ही किया था। परन्तु महाराणा कुम्भाजी ने चूंडा के पन्त-बालों के बहकाने में आकर उन्हें झूल से मरवा डाला। यद्यपि इसके बाद शीघ्र ही महाराणा को अपनी गलती मालूम हो गई, तथापि उस समय तक वह चूंडा के दबाव में जा चुके थे। ऐसी हालत में राव रणमल्लजी पर झूठा दोष लगाना सूर्यपर धूल उड़ालने के समान ही प्रतीत होता है।

राव जोधाजी

यह राव रणमल्लजी के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १४७२ की वैशाख वदी ४ (ई० सन् १४१५ की २६ मार्च) को हुआ था।

वि० सं० १४८४ (ई० सन् १४२७) में जिस समय रणमल्लजी ने राव सत्ताजी से मंडोर का अधिकार छीना, उस समय जोधाजी की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी। परन्तु फिर भी यह पिता के साथ रणस्थल में गए थे। इसके बाद वि० सं० १४९० (ई० सन् १४३३) में जब राव रणमल्लजी महाराना भोवलजी की हत्या का बदला लेने को मेवाड़ गए, तब भी यह उनके साथ थे।

वि० सं० १४९५ की कार्तिक वदी ३० (ई० सन् १४३८ की २ नवंबर) की रात में जैसे ही इन्हें राव रणमल्लजी के धोके से मारे जाने का समाचार मिला, वैसे ही यह अपने भाइयों और ७०० राठोड़-योद्धाओं को साथ लेकर चित्तौड़ से मारवाड़ की तरफ चल दिए। परन्तु इनके चीतरोड़ी पहुँचते-पहुँचते पीछा करनेवाली मेवाड़ की सेना भी वहाँ आ पहुँची। उस विशाल सेना का संचालक, महाराना कुंभाजी का चचा, स्वयं रावत चूड़ा था। इस प्रकार शत्रु के एकाएक आ पहुँचने से दिन-भर तो दोनों तरफ से मारकाट होती रही, परन्तु रात्रि के अंधकार में युद्ध बंद होते ही राठोड़ों ने मारवाड़ का मार्ग लिया। यह देख मेवाड़ की सेना भी इनके पीछे चली। यद्यपि मार्ग में दोनों के बीच कई लड़ाइयाँ हुईं, तथापि कपासण पहुँचने पर एक बार फिर दोनों तरफ से जमकर तलवार चलाई गई। इसी युद्ध में आहत हो जाने से वरजगँ मेवाड़ वालों के हाथ पड़ गया। इस प्रकार शत्रु से लड़ते-मिड़ते

१. कर्नल टॉड ने इनका जन्म वि० सं० १४८४ (ई० सन् १४२७) में होना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृष्ठ ६४७)। परन्तु यह ठीक नहीं है।

२. ख्यातों में लिखा है कि उस समय जोधाजी का चचा (राव चूड़ाजी का पुत्र) भीम नगरी में होने से पीछे हट गया। इसका विवाह महाराना के कुटुम्ब में हुआ था। इससे वहाँवालों ने इसे क्रोध कर लिया। परन्तु कुछ दिन बाद जोधपुर-राजधरान के पुरोहित दमा ने पहुँच इसे छल से छुड़वा लिया।

३. इसी युद्ध में जोधाजी का भाई पाता मारा गया।

४. यह जोधाजी का चचेरा भाई और भीम का पुत्र था।

मारवाड़ का इतिहास

राठोड़-वीर जिस समय सोमेश्वर की नाल (घाटी) के पास पहुँचे, उस समय इनके ६०० योद्धा मारे जा चुके थे। परन्तु फिर भी मेवाड़वालों ने पीछा न छोड़ा। यह देख राठोड़ों ने भी वहाँ की तंग घाटी का आश्रय ले एक बार फिर सीसोदियों की सेना का सामना किया, और उसके बहुसंख्यक योद्धाओं का संहारकर स्वयं भी वीर-गति को प्राप्त हुए।

ख्यातों से प्रकट होता है कि मेवाड़ से चले राठोड़ों के दल में से जोधाजी सहित केवल आठ व्यक्ति ही भिन्न-भिन्न मार्गों से मारवाड़ तक पहुँच सके थे।

इस युद्ध के बाद मेवाड़ की सेना को मंडोर पर अधिकार करने में बाधा देने वाला कोई न रहा। इसी से रावत चूडा ने आगे बढ़ वहाँ पर अधिकार कर लिया, और उसकी रक्षा के लिये गोडवाड़ से लेकर मंडोर तक अपनी चौकियाँ बिठा दीं।

उधर जिस समय मेवाड़वाले मंडोर पर अधिकार करने को बढ़े चले आ रहे थे, इधर उस समय जोधाजी के मांडल पहुँचने पर उनकी भेट उनके भाई काँधल से हो गई। इसके बाद जोधाजी मय अपने अन्य साथियों के, जो इधर-उधर से आकर साथ हो लिए थे, सोजत और मंडोर की तरफ होते हुए काहुँनी (जाँगलू के एक गाँव) की तरफ चले, और वहाँ पहुँचने पर अवकाश मिलते ही इन्होंने अपने पिता राव रणमल्लजी का और्ध्वदैहिक कर्म आदि किया।

जोधराजी के उस तरफ जाने के अनेक कारण थे। उनमें से पहला उस प्रदेश का रेतीला और निर्जल होना था; क्योंकि इससे वहाँ पर शत्रुओं के आक्रमण का भय बहुत कम था। दूसरा चूडासर आदि आस-पास के कुछ प्रदेशों पर पहले से ही

१. ख्यातों में यह भी लिखा है कि यहीं पर चौहान (बेलण का पुत्र) समरा ३०० योद्धाओं के साथ आकर राठोड़ों के शरीक हो गया था। परन्तु इस युद्ध में वह अपने २५० वीरों के साथ मारा गया। इसके बाद उसका पुत्र नरा अपने बचे हुए ५० आदमियों को साथ लेकर मार्ग में जोधाजी से आ मिला, और इन्हीं के साथ सोजत की तरफ गया। इसी सेवा के कारण जोधाजी ने मंडोर पर अधिकार हो जाने पर उसे अपना मंत्री बनाया था।

२. यह स्थान देसरी से ६ कोस पर है।

३. उस समय तक मंडोर पर शत्रुओं का अधिकार हो चुका था।

४. यह स्थान (आधुनिक) बीकानेर से १० कोस पर है।



राव जोधाजी - जोधपुर (मारवाड़)

१५. राव जोधाजी

वि० सं० १५१०-१५४६ (ई० सं० १४५३-१४८६)

राठोड़ों का अधिकार चला आता था। तीसरा जौंगलू के सांगवले और पूंगल के भाटी आदि इनके संबंधी थे।

जब रावत चूंडा ने मंडोर का प्रबंध अच्छी तरह कर लिया, तब उसने महाराना कुंभाजी को लिखा कि वह सोजत पर सेना भेज कर मारवाड़ को सदा के लिये मेवाड़-राज्य में मिला सकते हैं। इसी के अनुसार महाराना ने जोधाजी के चचेरे भाई राघवदेव को, सोजत जागीर में देकर, वहाँ पर अधिकार करने के लिये भेज दिया, और उसे यह लालच भी दिया कि यदि वह वहाँ का प्रबंध अच्छी तरह से कर लेगा, तो मंडोर भी उसी के अधिकार में दे दिया जायगा। इस पर राघवदेव ने शीघ्र ही मेवाड़ की सेना के साथ जाकर सोजत, बगड़ी, कापरड़ा आदि पर अधिकार कर लिया, और विपक्षियों के आक्रमण से उनकी रक्षा करने के लिये चौकड़ी और कोसाना पर सैनिक-चौकियाँ कायम कर दीं।

इसके बाद नरवद ने, मेवाड़वालों की सहायता से, काहुनी पर चढ़ाई की। परन्तु पहले से सूचना मिल जाने के कारण जोधाजी वहाँ से और भी आगे के निर्जल और रेतीले प्रांत में घुस गए। यह देख नरवद को वापस लौटना पड़ा, और उसके निराश होकर लौटते ही जोधाजी फिर काहुनी चले आए।

कुछ समय बाद जब संबंधियों और बांधवों की सहायता से जोधाजी के पास काम के लायक योद्धा एकत्रित हो गए, तब यह शत्रु के अधिभूत गाँवों को लूट कर धन-संग्रह करने लगे, और जैसे-जैसे इनका धन-जन का संग्रह बढ़ता गया, वैसे-ही-वैसे

१. यह मारवाड़-नरेश राव चूंडाजी का पौत्र और सहस्रमल का पुत्र था।

२. सोजत का लक्ष्मीनारायण का मन्दिर राघवदेव ने ही बनवाया था।

३. यह राव सत्ताजी का पुत्र था। ख्यातों में लिखा है कि जिस समय नरवद मेवाड़ में था, उस समय उसकी दान-वीरता की प्रशंसा सुन महाराना कुंभाजी ने उसकी परीक्षा लेने का विचार किया। इसी से एक दिन उन्होंने अपना आदमी भेज नरवद से उसकी आँख निकाल कर भेज देने को कहलाया। यद्यपि नरवद की एक आँख युद्ध में पहले ही फूट चुकी थी, और महाराना की इच्छा भी वास्तव में उसकी दूसरी आँख निकलवाकर उसे अंधा करने की न थी, तथापि उसने तत्काल अपनी आँख निकालकर महाराना के भेजे नौकर को दे दी। इसकी सूचना मिलने पर महाराना को बड़ा दुःख हुआ।

इसके बाद महाराना ने नरवद को कायलाने की जागीर दी। यह जागीर संभवतः मंडोर पर उनका अधिकार होने के बाद ही दी गई होगी।

मारवाड़ का इतिहास

यह नर्वान उत्साह के साथ अपने विपक्षियों को तंग करने लगे। इसी बीच जोधाजी का चचेरा भाई वरजौंग भी महाराना की कैद से निकलकर काहुनी चला आया था।

इस प्रकार लगातार १५ वर्षों के निज के परिश्रम, भाई-बंधुओं के उद्योग और संबंधियों की सहायता से जब जोधाजी का बल खूब बढ़ गया, तब इन्होंने मंडोर पर अधिकार करने का निश्चय किया। इसके लिये सेना के तीन भाग किए गए। एक भाग वरजौंग के साथ मंडोर की तरफ भेजा गया। दूसरे भाग ने चाँपा की अधीनता

१. ख्यातों में लिखा है कि युद्ध में ज़ख्मी होकर बेहोश हो जाने के कारण वरजौंग को मेवाड़वालों ने कैद कर लिया था। परन्तु वहाँ पर वह अपने ज़ख्मों पर बाँधी जानेवाली पट्टियों को इकट्ठा करता रहता था। जब उसके घाव भर गए, और उसके पास काफी पट्टियाँ जमा हो गईं, तब वह उनकी रस्सी बटकर उसी के द्वारा जेल के बाहर निकल गया, और मार्ग में अपना विवाह गागरून के स्वामी खीची (चौहान) चाचिगदेव की कन्या से कर जोधाजी के पास चला आया।

२. मंडोर पर अधिकार करने में जोधाजी को इनके भाइयों, बंधुओं—मल्लानी के राठोड़ों, सिवाने के जैतमालोतों, पौकरन के पौकरना राठोड़ों, सेतरावा के देवराजोतों, संबंधियों—साँखला हड़बू, रूण के साँखलों, ईदावाटी के ईदों, सेखाला (शेरगढ़ परगने) के गोगादे चौहानों, गागरून के खीचियों, बीकपुर और पूंगल के भाटियों, भाटी शत्रुसाल (रणमल्लजी ने इसे चित्तौड़ का किलेदार बनाया था। इसकी मृत्यु रावत चूंडा के हाथ से हुई थी।) के पुत्र (बादशाही कृपा-पात्र) अर्जुन, जैसलमेर रावल केहरजी के पौत्र (कलकर्ण के पुत्र) भाटी जैसा आदि ने सहायता दी थी।

ख्यातों में लिखा है कि यह जैसा हड़बू का भानजा और भाथेड़ा का स्वामी था। जोधाजी ने उसकी सहायता की एवज़ में उसे खास मंडोर को छोड़ उसके साथ के अन्य सारे प्रदेश का चौथा हिस्सा देने का वादा किया था। परन्तु जब उसकी बहन का विवाह जोधाजी के पुत्र सूजाजी से हुआ, तब इन्होंने वह हिस्सा उससे दहेज़ में माँग लिया। यद्यपि इससे जोधाजी को मंडोर-राज्य पर अधिकार कर लेने पर भी उसका चौथा भाग जैसा को न देना पड़ा, तथापि जैसा नाराज़ होकर महाराना के पास मेवाड़ चला गया, और इनके कई बार बुलवाने पर भी लौटकर न आया। यह देख जोधाजी ने उसके पुत्र जोधा को बालरवा जागीर में दिया।

ख्यातों में यह भी लिखा है कि जिस समय जोधाजी, सेतरावे के स्वामी (देवराज के पुत्र) रावत लूणकर्ण के पास सहायता माँगने गए, उस समय उसने इधर-उधर की बातें कर इन्हें टालना चाहा। परन्तु उसकी स्त्री ने, जो रिश्ते में जोधाजी की मौसी थी, इस बात की सूचना मिलते ही उसे जनाने में बुलवा लिया, और जोधाजी को चुने हुए १४० घोड़े देने की आज्ञा चुपचाप बाहर भिजवा दी।

में कोसाना पर हमला किया, और तीसरा भाग स्वयं जोधाजी के सेनापतित्व में चौकड़ी पर चला ।

कोसाना और चौकड़ी पर के हमले अर्द्धरात्रि में अचानक किए गये थे । इससे वहाँ पर की मेवाड़ की सेनाओं में शीघ्र ही गड़बड़ मच गई, और वे युद्ध में मुखियाओं के मारे जाते ही अपना साज-सामान छोड़ भाग खड़ी हुई । इसके बाद शीघ्र ही दोनों भाई (जोधाजी और चाँपा) अपने विजित प्रदेशों का प्रबंध कर वरजाँग के पास जा पहुँचे, और प्रातःकाल होने के पूर्व ही तीनों ने मिलकर मंडोर पर भी अधिकार कर लिया । यह घटना वि० सं० १५१० की है ।

राव रणमल्लजी की मृत्यु से लेकर मंडोर विजय करने तक राठोड़ों की तरफ से अपने देश की स्वाधीनता के लिये जितने कार्य किए गए थे, उन सबमें जोधाजी ने ही मुख्य भाग लिया था, और इनके १५ वर्ष के लगातार परिश्रम से ही यह विजय प्राप्त हुई थी । इसलिये मंडोर के किले पर अधिकार होते ही इनके बड़े भ्राता अखैराज ने तत्काल अपने अँगूठे को तलवार से चीरकर उसके रुधिर से जोधाजी के ललाट

१. ख्यातों से ज्ञात होता है कि जिस समय चौकड़ी पर आक्रमण हुआ था, उस समय राघवदेव भी वहीं था । परन्तु वह मेवाड़वालों की पराजय हो जाने से भागकर सोजत चला गया ।

२. मंडोर के युद्ध में राना कुंभाजी के चचा रावत चूंडा के दो पुत्र कुंतल और सूआ, चचा का पुत्र आका और आहाडा हिंगोला आदि मारे गए । हिंगोला पर बनी छतरी बालसमंद तालाब पर अब तक विद्यमान है ।

उदयपुर के इतिहासलेखकों ने लिखा है कि महाराना कुंभाजी ने, अपनी दादा हंसाबाई के समझाने से, अपने चचा रावत चूंडा से कुछ न कह सकने पर भी, जोधाजी को मंडोर पर अधिकार कर लेने का इशारा करवा दिया था । परन्तु उनका यह लिखना केवल महाराना की पराजय को छिपाने का प्रयत्न करना है; क्योंकि वास्तव में यह विजय जोधाजी ने युद्ध के बाद ही प्राप्त की थी ।

किसी-किसी ख्यात में यह भी लिखा है कि राव वीरमर्जा का एक विवाह मांगलिया-शाखा के सीसोदियों के यहाँ हुआ था । इसी से मेवाड़ की देख-भाल के लिये वहाँ रहने के समय रणमल्लजी के और मांगलिया कल्याणसिंह के बीच घनिष्ठ मित्रता हो गई थी । इस घटना के समय यही कल्याणसिंह मंडोर का कोतवाल था । इसने पुरानी मैत्री का विचार कर मंडोर के किले का द्वार खुलवा दिया । इसी से जोधाजी को उस पर अधिकार करने में अधिक विलंब न लगा ।

मारवाड़ का इतिहास

पर राज-तिलक लगा दिया। इस पर जोधाजी ने भी मेवाड़वालों से छीन कर बगड़ी का अधिकार उसे वापस सौंप देने की प्रतिज्ञा की।

इस प्रकार अपने पैतृक-राज्य को प्राप्त कर राव जोधाजी ने अपने आता चाँपा को कापरड़े पर और वरजाँग को रोहट पर अधिकार करने की आज्ञा दी। उन्होंने भी शीघ्र ही दल-बल सहित वहाँ पहुँच उन स्थानों पर अधिकार कर लिया।

इसके बाद वीर वरजाँग रोहट से आगे बढ़ पाली, खैरवा आदि विजय करता हुआ नाडोल और नारलाई (गोडवाड़-प्रांत) तक जा पहुँचा। इसी युद्ध-यात्रा में मेवाड़ की सेना का सेनापति (रावत चूंडा का पुत्र) मौँजा मारा गया। इससे शत्रुओं का उत्साह बिलकुल शिथिल पड़ गया।

इसी बीच स्वयं जोधाजी ने राघवदेव को भगा कर सोजत ले लिया, और उस नगर के मेवाड़ के निकट होने से वहीं पर अपना निवास नियत कर, नए भरती किए सैनिकों द्वारा, मेवाड़ की तरफ़ के मार्गों की रक्षा का प्रबंध शुरू किया। इसी अवसर पर इन्होंने, अपनी की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार, बगड़ी का अधिकार अपने बड़े भाई अखैराज को सौंप दिया।

सोजत से भगाए जाने पर राघवदेव ने एक बार फिर मेवाड़ के बिखरे हुए सैनिकों को इकट्ठा कर नारलाई में वरजाँग से लोहा लिया। परन्तु अंत में वरजाँग के साथियों की मार सहने में असमर्थ हो उसे मैदान से भागना पड़ा। इस युद्ध में वरजाँग स्वयं अधिक घायल हो गया था। इसकी सूचना मिलते ही जोधाजी ने अपने भाई वैरसल को वहाँ के प्रबंध के लिये भेज दिया, और वरजाँग को रोहट जाकर इलाज करवाने की आज्ञा दी। वैरसल ने वहाँ पहुँच मेवाड़ के मार्गों को रोक दिया, और घाणेराम को उजाड़ कर वहाँ के निवासियों को गूँदोच में ला बसाया। वरजाँग भी तीन मास में ठीक होकर फिर गोडवाड़ जा पहुँचा।

१. उसी दिन से मारवाड़ में यह प्रथा चली है कि जब कभी किसी महाराजा का स्वर्गवास होता है, तब बगड़ी ज़ब्त करने की आज्ञा दे दी जाती है, और नए महाराजा के गद्दी बैठने के समय बगड़ी ठाकुर द्वारा अपना अँगूठा चौरकर रुधिर का तिलक कर देने पर वह आज्ञा वापस ले ली जाती है।

(यह रुधिर से तिलक करने की प्रथा स्वर्गवासी महाराजा सरदारसिंहजी के समय उठा दी गई थी।)

२. इसी बीच जोधाजी ने अपने भाई काँवल को मेड़ते पर अधिकार करने के लिये भेज दिया।

राव जोधाजी

उन दिनों महाराना कुंभाजी और मालवे के सुलतान के बीच झगड़ा छिड़ा हुआ था। इसी से मारवाड़-राज्य के हाथ आकर निकल जाने पर भी वह उस पर फिर से अधिकार करने के लिये नई सेना न भेज सके।

इसप्रकार गोडवाड़ तक अपना अधिकार हो जाने से राव जोधाजी ने आगे बढ़ मेवाड़ पर हमला करने का इरादा किया। परन्तु इसी बीच वरजाँग के और जसोल के रावल बीदा के बीच घोड़ों के लिये झगड़ा हो गया। इसमें बीदा और उसका पुत्र मारा गया।

इसके बाद शीघ्र ही सोजत में चुने हुए योद्धाओं की दो सेनाएँ तैयार की गई। उनमें से एक का सेनापतित्व काँधल को और दूसरी का वरजाँग को सौंपा गया। राव जोधाजी का इरादा सिरियारी के मार्ग से मेवाड़ पर आक्रमण करने का था, परन्तु इसी समय, गुजरात के बादशाह से धन की सहायता मिल जाने के कारण, नरबद मंडोर पहुँचा, और वहाँ के दुर्ग-रक्षकों को लालच देकर किले में घुस बैठा। इसकी सूचना मिलते ही राव जोधाजी ने काँधल के दल को मंडोर की तरफ जाने की आज्ञा दी, और साथ ही एक दूत भेजकर मंडोर के दुर्ग-रक्षकों को कहलाया कि हमने मंडोर पर फिर से अधिकार करने को सेना रवाना कर दी है। परन्तु उसके वहाँ पहुँचने के पूर्व ही तुम्हें सोच लेना चाहिए कि नरबद के समान अंधे स्वामी का आश्रय लेकर तुम लोग अधिक समय तक हमारा विरोध करने में सफल हो सकोगे या नहीं? यह बात उन लोभ में पड़े योद्धाओं की समझ में भी आ गई,

१. परन्तु किसी-किसी ख्यात में कुंभाजी का दुबारा मंडोर-विजय करने के लिये चढ़ाई करना और आगे वर्णन की गई राटोड़ों के गाड़ियों में बैठकर लड़ने को जानेवाली घटना का इस अवसर पर होना लिखा है।

२. ख्यातों में लिखा है कि एक बार वरजाँग के कुछ घोड़े, जो जंगल में चरा करते थे, रोहट में तलवाड़े की तरफ चले गए, और उन्हें जसोल के रावल बीदा के पुत्र ने पकड़ लिया। इसकी सूचना मिलने पर वरजाँग के आदमी उन्हें ले आने को वहाँ गए। परन्तु रावल के पुत्र ने उन्हें देने से साफ़ इनकार कर दिया। इस पर वरजाँग को तलवाड़े पर चढ़ाई करनी पड़ी। उस समय रावल बीदा कहीं बाहर गया हुआ था, इससे वरजाँग का मुकाबला उसके पुत्र से हुआ। कुछ देर के युद्ध में कुँवर मारा गया, और विजयी वरजाँग अपने घोड़े लेकर वापस चला आया। परन्तु बाहर से लौटने पर जब बीदा को इस घटना की खबर मिली, तब उसने कुँवर का बदला लेने के लिये वरजाँग पर चढ़ाई की। रोहट के पास युद्ध होने पर बीदा भी मारा गया।

मारवाड़ का इतिहास

और उन्होंने नरवद का साथ छोड़ जोधाजी के सैनिकों को किला सौंप देने में ही अपनी कुशल समझी। उनके इस विचार की सूचना मिलने पर नरवद स्वयं गुजरात को लौट गया। परन्तु वह लौटकर बादशाह के पास न पहुँच सका। मार्ग में ही उसका देहान्त हो गया। काँधल के वहाँ पहुँचने पर बिना लड़े-भिड़े ही मंडोर का किला उसे सौंप दिया गया। इस पर वह भी वहाँ का प्रबंध अधिक विश्वास-योग्य पुरुषों को सौंप सोजत लौट आया।

इसके बाद जोधाजी ने मेवाड़ पर चढ़ाई की। ख्यातों में लिखा है कि इन्होंने रात के समय चित्तौड़ पर आक्रमण कर वहाँ के किले के द्वार को जला दिया। मेवाड़ के गाँवों को लूट पीछोला तालाब (मेवाड़ की आधुनिक राजधानी उदयपुर के पास) तक धावा मारा, और लौटते हुए यह मेवाड़ के सेठ पद्मचंद को पकड़ लाएँ।

इस घटना ने महाराना को राव जोधाजी पर चढ़ाई करने के लिये लाचार कर दिया। इसी से वह इस अपमान का बदला लेने के लिये दल-बल-सहित नारलाई (गोडवाड़-प्रांत) में पहुँचे। राव जोधाजी इसके लिये पहले से ही तैयार थे। इससे जैसे ही इन्हें कुंभाजी की चढ़ाई का समाचार मिला, वैसे ही इन्होंने, उनके मुकाबले के लिये, पाली में अपनी सेना इकट्ठी की, और सब प्रबंध हो जाने पर यह वहाँ से आगे बढ़ नाडोल (गोडवाड़-प्रांत) में जा पहुँचे। उस समय रावजी के साथ करीब बीस हजार रणबाँकुरे राठोड़ योद्धा थे। परन्तु इतने घोड़ों का प्रबंध न हो सकने के कारण उनमें से बहुत-से बैल-गाड़ियों पर बैठकर रणक्षेत्र की तरफ गए थे^१। इन्हें देख मेवाड़वालों को निश्चय हो गया कि ये राठोड़ वीर साधारण मार-काट मचाकर लौट जाने के इरादे से न आकर मरने-मारने का निश्चय करके ही आए हैं। यह देख साँखला नापा ने कुंभाजी को समझाया कि इस समय राव जोधाजी

१. 'चीतोड तथा चूंडाहरै किमाडह परजालिया' (प्राचीन छप्पय)

२. 'जोधे जंगम आपरा पीछोले पाया।' (रामचंद्र ढाढी-कृत नीशांशी)

३. 'पद्मचंद सेठ लायौ पकड़ दाह मेवाड़ा उरदयौ।' (प्राचीन छप्पय) इस सेठ ने खैरवा पहुँचने पर बहुत-सा द्रव्य भेंट कर अपना छुटकारा हासिल किया था। इसी धन से जोधपुर का किला बनवाना प्रारंभ किया गया, और सेठ की यादगार में किले के पास पद्मसर नामक तालाब बनवाया गया।

४. 'जोधतयै सांमुडै जातौ गाढां भैहाथिया गया।' (प्राचीन गीत)

से विरोध बढ़ाना उचित न होकर मेल कर लेना ही अधिक उत्तम है। क्योंकि इधर यह अपने पिता का वैर लेने को तुले हुए हैं, और उधर मालवे के सुलतान से झगड़ा चल रहा है। ऐसे समय राठोड़ों से संधि कर लेना ही उचित है। राठोड़ों के गाड़ियों में बैठकर राण-क्षेत्र में आने से यह तो निश्चय ही है कि वे मरने-मारने का इरादा करके आए हैं। ऐसी हालत में हम जीते भी, तो यह विजय बहुत महँगी पड़ेगी। इसके अलावा इस युद्ध में हमारे योद्धाओं के हताहत हो जाने से मालवे के सुलतान को मेवाड़ को विध्वंस करने का मौका मिल जायगा। यह बात महाराना कुंभाजी की समझ में भी आ गई। इससे उनके आज्ञानुसार राजकुमार ऊदा (उदयसिंह) जी और सौखला नापा ने राव जोधाजी के शिविर में पहुँच, बहुत-सी कहा-सुनी के बाद, संधि की शर्तें तय कर डालीं। बाँवल (बबूल) के पेड़वाली पृथ्वी जोधाजी को सौंप दी गई, और आँवलवाली ज़मीन महाराना के अधिकार में रही। इस प्रकार आपस में संधि हो जाने पर कुंभाजी लौट कर चित्तौड़ चले गए, और राव जोधाजी ने खैरवा पहुँच सीधल राठोड़ों पर सेना भेजी। उसने शीघ्र ही उनके पाली-परगने के ३० गाँव छीन लिए।

इसके बाद सब झगड़ों से निपट जाने पर वि० सं० १५१५ (ई० सन् १४५८) में मंडोर के किले में राव जोधाजी का शाखानुसार राज्याभिषेक किया गया, और

१. हि० सन् ८४६ (वि० सं० १५००=ई० सन् १४४३) और हि० सन् ८६१ (वि० सं० १५१३=ई० सन् १४५६) के बीच की सुलतान महमूद खिलजी की मेवाड़ पर की चढ़ाईयों से इसकी पुष्टि होती है।
२. ख्यातों में लिखा है कि संधि के समय महाराना कुम्भाजी ने अपने एक बंधु की कन्या का विवाह राव जोधाजी के साथ कर दिया था।
३. किसी-किसी ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १५१२ (ई० सन् १४५५) लिखा है।
४. 'राणा कुम्भा भजिगा, वीर खेत चलाया;
'नाङ्गलाई निहसिया, दम्भामावाया।'
(ढाढी रामचंद्र-कृत नीशांशी) इसमें कवि ने कुछ अतिशयोक्ति अवश्य कर दी है।
५. राव जोधाजी की मेवाड़ पर की चढ़ाई के समय इन्होंने साथ देने से इनकार कर दिया था। इसी से यह सेना भेजी गई थी। ख्यातों के अनुसार यह सेना वीसलपुर के स्वामी जसा पर गई थी।

ख्यातों में जोधाजी का जैतारण के सीधलों को हराकर उन्हीं को अपनी तरफ से वहाँ का अधिकार देना भी लिखा मिलता है।

मारवाड़ का इतिहास

जिन लोगों ने विपत्ति के समय सहायता दी थी, उन सबको यथायोग्य दान और मान से संतुष्ट किया गया। कहते हैं, इसी समय इन्होंने मंडोर के पास अपने नाम पर जोधेलाव-नामक तालाव बनवाया था।

वि० सं० १५१६ की ज्येष्ठ-सुदी ११ शनिवार (ई० सन् १४५६ की १२ मई) को राव जोधाजी ने मंडोर से ६ मील दक्षिण में नया किला बनवाना प्रारंभ किया, और उसी के पास अपने नाम पर जोधपुर-नगर आबाद किया।

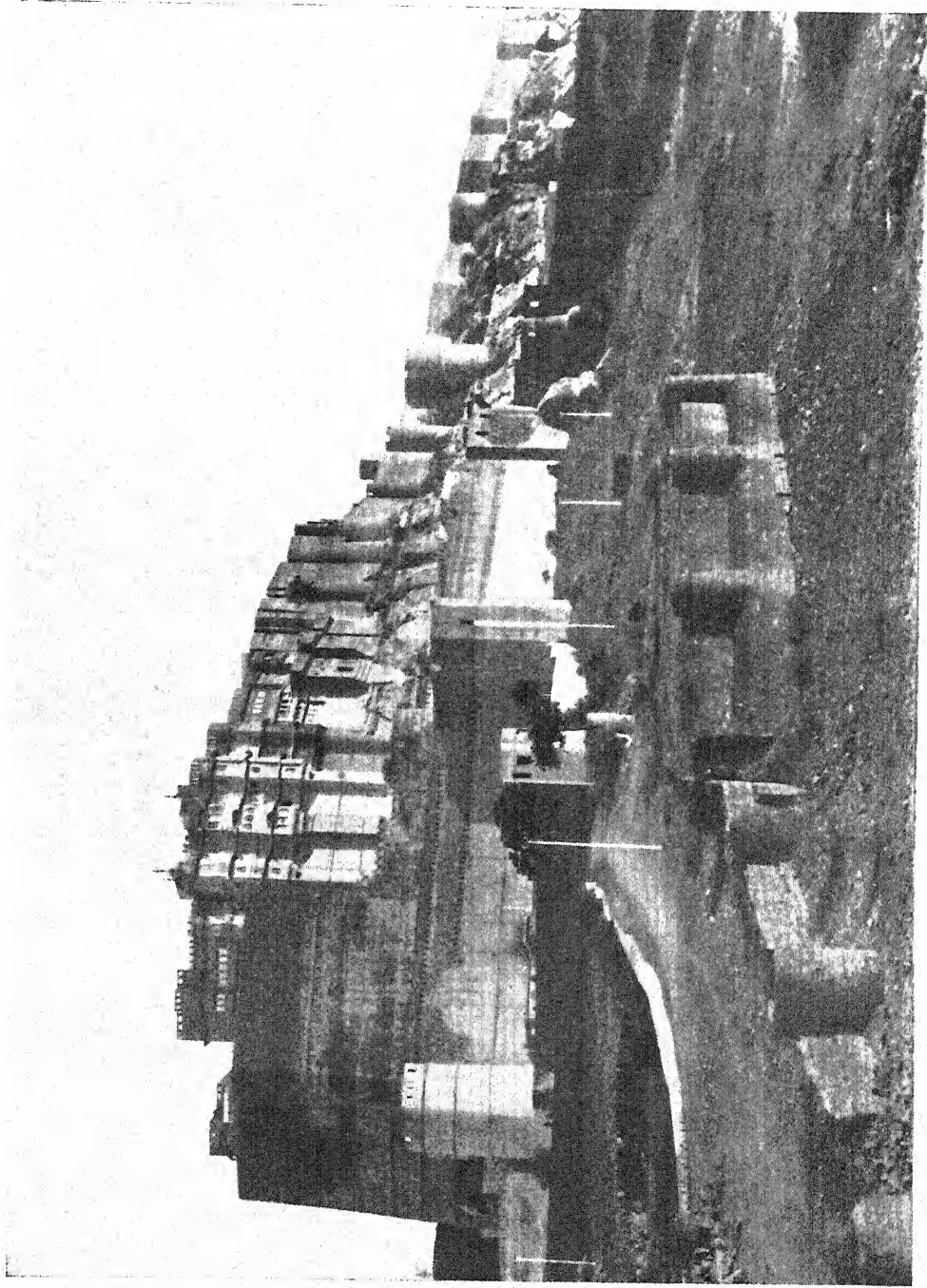
१. ख्यातों में लिखा है कि पहले जोधाजी का विचार मसूरिया-नामक पर्वत-शृंग पर किला बनाने का था। परंतु वहां आस-पास जल की कमी होने से यह विचार स्थगित करना पड़ा। उसी समय उस पर्वत-शृंग पर रहनेवाले एक फकीर ने इन्हें पचेटिया-नामक पर्वत-शृंग पर किला बनवाने की सलाह दी। यह बात रावजी को भी पसंद आ गई। कहते हैं, इसके एवज में उस फकीर ने रावजी से दो प्रार्थनाएँ की थीं। एक यह कि रामदेवजी के दर्शनार्थ रुणेचा जानेवाले वे यात्री, जो इधर से निकलें, पहले उसके आश्रम पर आवें, और दूसरी यह कि राज्य की तरफ से साल में दो बार उसके आश्रम में भेट भेजी जाय। रावजी ने उसकी ये दोनों प्रार्थनाएँ स्वीकार कर लीं।

प्रचलित प्रथा के अनुसार जोधपुर के किले की दीवार के नीचे दो जीवित पुरुष गाड़े गए। ये जाति के चमार थे। इसकी एवज में उनकी संतान को कुछ खास सुविधाएँ और भूमि दी गई। किसी किसी ख्यात में किले की दीवार के नीचे राजिया-नामक चमार का गाड़ा जाना लिखा है।

प्रसिद्धि है कि जिस पर्वत पर जोधपुर का किला बनवाया गया है, उस पर के मरने के पास चिडियां नाथ नामक एक योगी रहा करता था। परंतु जब उसका आश्रम किले के भीतर ले लिया गया, तब वह आस-पास जल का अभाव रहने का शाप देकर वहां से नौ कोस अग्निकोण में स्थित पालासनी गांव में चला गया। वहीं पर उसकी समाधि बनी है। राव जोधाजी को जब योगी के इस प्रकार अप्रसन्न होकर जाने का समाचार मिला, तब इन्होंने (आधुनिक सरदार मारकैट के पास) उसके लिये एक मठ बनवाकर उसे वापस ले आने के लिये अपने आदमी भेजे। परंतु उसने कुछ दिन बाद आने का वादा कर उन्हें लौटा दिया। अंत में वह आकर कुछ दिन उस मठ में ठहरा, और उसी के पास उसने एक शिवालय बनवाया। उसी योगी के कहने से जोधाजी ने नित्य एक रोठ बनवाकर किसी साधु-संन्यासी को देने की प्रथा प्रचलित की थी। (वि० सं० १६७१ [ई० सन् १६१४] में, राज्य की तरफ से, उस शिवालय का जीर्णोद्धार किया गया।)

जिस मरने के पास वह योगी रहा करता था, उसके निकट ही राव जोधाजी ने एक कुण्ड और एक छोटा-सा शिव का मंदिर बनवा दिया था। यद्यपि आजकल वह मरनेश्वर महादेव का स्थान बहुत कुछ सुन्दर बना दिया गया है, तथापि वहां के मरने का जल कम हो गया है।

ख्यातों में वि० सं० १५१५ की ज्येष्ठ-सुदी ८ को बलिदान देकर ज्येष्ठ-सुदी ११ को जोधपुर के किले का प्रारंभ करना और ज्येष्ठ सुदी १३ को उसके द्वार की प्रतिष्ठा करना लिखा मिलता है। परंतु यह श्रावणादि संवत् है। इसलिये उस समय चैत्रादि संवत् १५१६ था।



जोधपुर का क़िला

यह क़िला, जो पृथ्वीतल से ४०० फुट ऊँची पहाड़ी पर बना है, राजपूताने का एक सुन्दर दुर्ग है। इसकी दीवारों की ऊँचाई २० से १२० फुट और मुटाई १२ से ७० फुट तक है। इस दुर्ग की लम्बाई ५०० गज और चौड़ाई २५० गज तक है।

राव जोधाजी

इसी समय इनकी एक रानी हाडी जसमादेवी ने किले के पास 'रानीसागर'-नामक तालाब बनवाया, और दूसरी रानी सोनगरी (चौहान) चाँदकुँवरी ने एक बावली बनवाई। यह 'चाँदबावड़ी' (चौहान-बावड़ी) के नाम से प्रसिद्ध है।

ख्यातों के अनुसार वि० सं० १५१६ की आषाढ़-सुद्री ६ (ई० सन् १४५६ की ६ जून) को इस नवीन किले की प्रतिष्ठा की गई।

इसके बाद राव जोधाजी ने अपने पुत्र सातल को फलोदी और नीवा को सोजत का प्रबंध करने के लिये भेजा।

ख्यातों में यह भी लिखा है कि किले के द्वार की स्थापना का मुहूर्त निश्चित हो जाने पर, उपयुक्त शिला के समय पर न लाई जा सकने के कारण, वहीं पास में स्थित एक छँट चरानेवाले के बाड़े से द्वार की शिला लाकर स्थापित की गई थी। उस शिला में बाड़े के द्वार को बंद करने के लिये लगाए जानेवाले डंडों के छेद बने हैं।

यह स्थान जोधाजी के फलसे के नाम से प्रसिद्ध है। घोड़े पर बैठकर किले में जानेवालों में से महाराज लोग लोहापौल के आगे की किलेदार की चौकी के आगे के प्यादबख्शियों के दालान के सामने, रावराजा लोग लोहापौल के पास, सिरायत (लाइन के सिरे पर बैठनेवाले) सरदार जोधाजी के फलसे के आगे (लाठ के पास?), हाथके कुरबे वाले जोधाजी के फलसे के भीतर, ताज़ीम और 'बांहपसाव' वाले, जिनका सामने की 'ओल' (लाइन) में बैठने और मरने पर रथी के आगे घोड़ा निकालने का अधिकार है, वे जोधाजी के फलसे के बाहर, अन्य ताज़ीम और बांहपसाव वाले चौहानों के दालान के पहले कौने के पास या इमरतीपौल के पास, दीवान और बख्शी के दरजे के मुत्सद्दी इमरती पौल की अगली महाराज के नीचे और बाकी मुत्सद्दी इसके पीछे घोड़े से उतर जाते हैं। परन्तु महाराजा की इच्छानुसार इसमें परिवर्तन होता रहता है।

किसी-किसी ख्यात में करनीजी नाम की चारणजाति की प्रसिद्ध महिला द्वारा किले का स्थान बताया जाना और उसी के द्वारा उसका शिलारोपण होना भी लिखा है।

१. इस रानी ने एक कुआँ भी खुदवाया था।

-
- (१) जिनके भुक कर अभिवादन करने पर महाराजा अपना हाथ अपने सीने तक लाकर अभिवादन ग्रहण करते हैं।
 - (२) जिनका अभिवादन महाराजा खड़े होकर ग्रहण करें। इसके दाँ भेद हैं। इकहरी ताज़ीम वालों के आने के समय ही महाराजा खड़े होकर अभिवादन ग्रहण करते हैं और दुहेरी ताज़ीम वालों के आते और जाते दोनों समय महाराजा खड़े होते हैं।
 - (३) जिनके भुक कर पैरों पर हाथ लगाने के समय महाराजा अपना हाथ उनके कंधे पर लगाते हैं।

भारवाड़ का इतिहास

इसी वर्ष जिस समय जोधाजी साँखला नापाजी की सहायता के लिये जांगल की तरफ गए, उस समय इन्होंने अपनी माता के बनवाए 'कोडमदे-सर'-नामक तालाब की प्रतिष्ठा कर वहाँ पर एक कीर्ति-स्तंभ स्थापित किया, और वहाँ से लौटकर अपने कुल-पुरोहित को एक नया दानपत्र लिख दिया ।

१. कहते हैं, इस सहायता की आवश्यकता बल्लोचों के आक्रमण के कारण पड़ी थी ।

२. यह तालाब इनकी माता कोडमदेवी ने बनवाया था । वह वीकूपुर और पूंगल के स्वामी भाटी केल्हण की कन्या थी, और रणमल्लजी के मारे जाने की सूचना मिलने पर इसी तालाब के तट पर सती हुई थी । वहाँ पर स्थापित कीर्ति-स्तंभ में लिखा है:—

संवत् १५१६ [वर्ष] सा (शा) के १३८ [१]

प्रवर्तमाने: (ने) [महा] मांगल्य

भाद्रवा सु [दि] [६] सोमदिने

हस्त नि (न) [चित्रे] सुक [ल] (शुक्र) जो

(यो) ने

[कौ] लव [करणे]

राठ [ड] [म] हाधिराय श्री

रा [य श्री] जोधा

राय श्रीरामल सु [त] त [डा]

उ [ग] पत्रिस्टा (प्रतिष्ठा) कार (रि) ता । माता श्रीकोडमदे [नि] मिति (चं) की-
रति (र्ति) स्तंभ [:] था [पि] ता: (स्थापित:)

सु (शु)

मं भवतु: (तु) कल्यणं (ल्याण) म

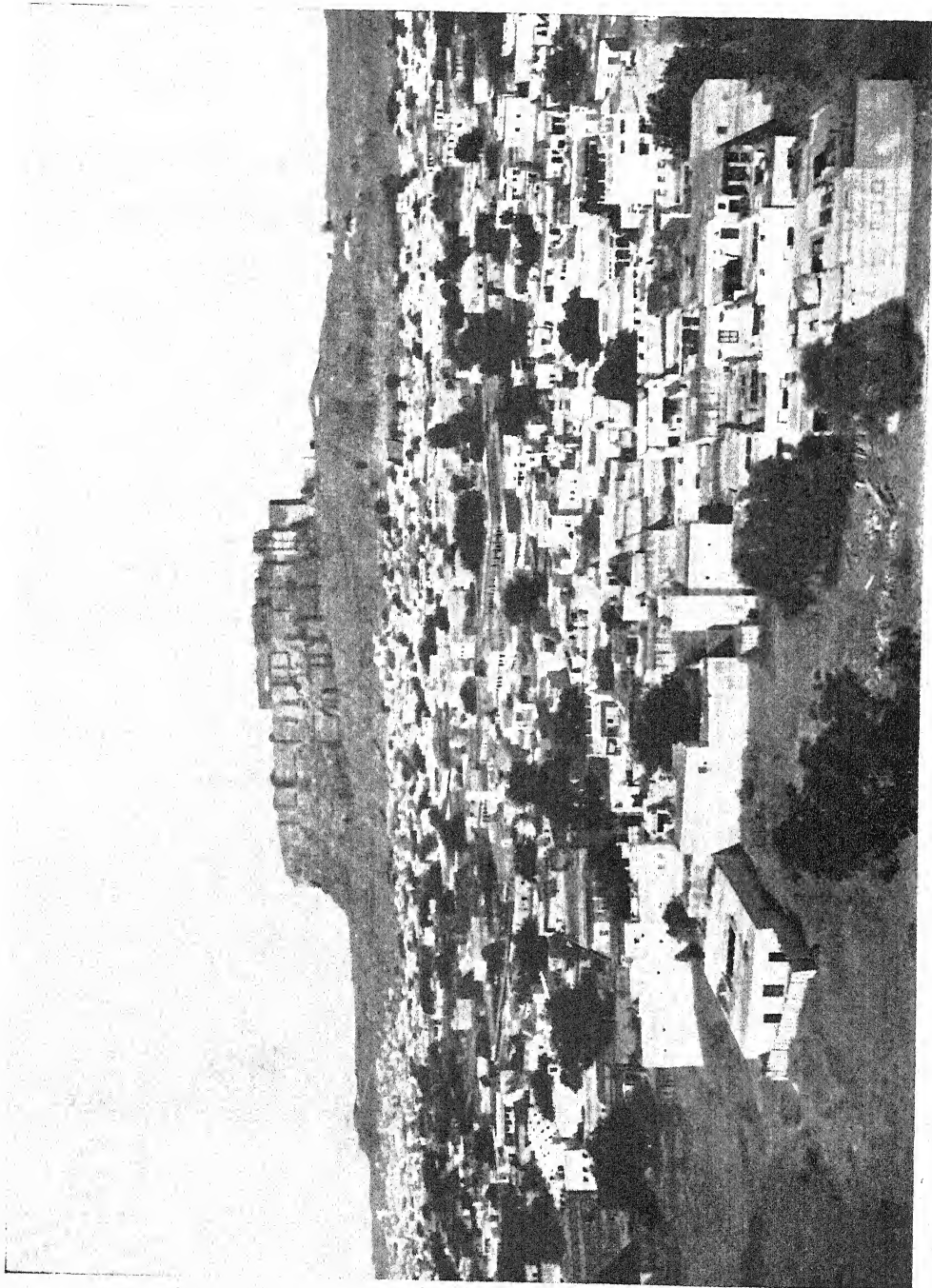
स्त (स्तु)

(जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १३ [ई० सन् १९१७], पृष्ठ २१७-२१८)

ख्यातों में जोधाजी द्वारा राव रणमल्लजी के बारहवें दिन के कृत्य का भी इसी तालाब पर किया जाना लिखा है । इससे ज्ञात होता है कि यह तालाब उस समय के पूर्व ही बन चुका था ।

कुछ ख्यातों में इस तालाब का भाटी सादा की स्त्री कोडमदेवी की यादगार में उसके स्वशुर द्वारा बनवाया जाना लिखा है । परंतु यदि वास्तव में ऐसा होता, तो राव जोधाजी को उसकी प्रतिष्ठा करवाकर वहाँ पर कीर्ति-स्तंभ स्थापित करवाने की आवश्यकता ही न होती ।

३. यद्यपि यह दानपत्र, जिस पर उपर्युक्त दानपत्र लिखवाया गया था, इस समय नष्ट हो चुका है, तथापि राजा उदयसिंहजी की सनद से ज्ञात होता है कि वि० सं० १६३५



जोधपुर-नगर का ऊपरी दृश्य
इस नगर की स्थापना राव जोधाजी ने वि० सं० १५१६ (ई० स० १४५६) में की थी।

राव जोधाजी

वि० सं० १५१७ (ई० सन् १४६०) में इन्होंने मंडोर की चामुंडा की मूर्ति को मँगवाकर जोधपुर के किले में स्थापित किया, और अगले वर्ष (वि० सं० १५१८=ई० सन् १४६१ में) अपने पुत्र वरसिंह और दूदा को मेड़ता नामक नगर पर अधिकार करने के लिये भेजा। उस समय यह नगर और प्रांत अजमेर के सूबेदार के शासन में था। परन्तु दोनों भाइयों ने वहाँ पहुँच उक्त नगर के साथ ही उस प्रांत के ३६० गाँवों पर भी अधिकार कर लिया। इसके बाद प्राचीन बस्ती के दक्षिण में नया मेड़ता नगर बसाया गया।

इस प्रकार राज्य के कामों से निबट कर इसी वर्ष (वि० सं० १५१८=ई० सन् १४६१ में) राव जोधाजी ने गया की यात्रा की। मार्ग में जिस समय यह आगरे पहुँचे, उस समय बादशाह बहलोल लोदी के कृपापात्र राठोड़ कर्ण ने इन्हें अपना

(ई० सन् १५७६) तक यह विद्यमान था। आगे एक पुरानी बही से इस दानपत्र की नकल उद्धृत की जाती है—

श्रीमहामायाजी
श्रीनागणेचीयांजी

श्रीरामजी
श्रीकीसनजी

सही

महारावजी श्रीजोधाजी वचनायते तथा कनोज सुं सेवग लुंवरिसी जातरो सारसुत ओजो ल्होड सेवा लेने आयौ सु राठौड वंसरा सेवगए है ठेडु कदीम सुं मुलगा यांरो सेवगपणों इयां रो है। पहली वंसरै माताजी श्रीआदपंखणीजी चक्रेश्वरीजी पछै रावजी श्रीधूहडजी नैं वर दीधो नागरा रूप सुं दरसण दीधौ तरे नागणेचियां कहांणी सु धूहडजीरो तांवापत्र ओजा रिषवदेव श्रीपतरा बेटा कने थौ सु वाचनै में ही तांवापत्र करदीधौ उण मुजव राठौड वंसरे सेवग पणारौ लवाजमो जायां परणियां नेग दापौ राजलोक रावलै करै सु वरत वड्डलियाँ सरवेत इयांरो नेग है नैं राठौड वंस गीतमस गोत्र अकरूर साखारी लार इतरा जणा है पीरोत सेवड ओजा सेवग लोड मथेरण रुदरदेवा सो देस परदेस मांहरा आल ओलाद पीडी दरपीडी ओजा रिषवदेव री आल ओलाद ने सेवग कर मानसी मांहरा आल ओलाद असलवंस होसी सु इयांनु दत देसी। लिखतं पं। हरीदास आईदासोत महारावजी रा हुकम सुं सं० १५१६ रा मीगसर सुद २ दुवै श्रीमुख परवानगी राठौड करमसी मुकाम सुखवास जोधपुर। सिलोक। सहदत परदत जे लोपंती वीसंधरा ते नरा नरग जावंती जबलग चंद दीवाकरा ॥ १ ॥ साख है ॥ दुवो ॥ अखरज चांपो करमसी सको भायांरी साख, राव समण्यो रीत सुं उथपै तिकां तलाक ॥ २ ॥

१. यह पड़िहारों की कुल-देवी थी। परंतु राठौड़ों ने भी मंडोर का राज्य प्राप्त कर इसकी उपासना प्रारंभ कर दी थी।
२. उस समय यह मांडू के बादशाह की तरफ से नियत था।
३. ख्यातों में इस घटना का समय वि० सं० १५१६ (ई० सन् १४६२) लिखा है।
४. यह कन्नौज के राठोड़-घराने का था, और बहलोल लोदी ने इसे शम्सावाद (खोर) का सूबेदार बना दिया था (तारीख-फरिश्ता, पृष्ठ १७४ और १७६)।

मारवाड़ का इतिहास

बंधु समझ हर तरह से इनका आदर सत्कार किया। उसी के द्वारा यह बादशाह से मिले, और समय पर सहायता देने का वादा कर इन्होंने यात्रियों पर लगनेवाला शाही कर माफ़ करवा दिया।

यहाँ से आगे बढ़ जब यह गया की तरफ़ चले, तब मार्ग में इनकी मुलाकात जौनपुर के बादशाह हुसैनशाह से हुई। बातचीत के सिलसिले में इन्होंने लौटते समय ग्वालियर के आस-पास के उपद्रवियों को दंड देने का वादा कर गया के यात्रियों पर लगनेवाला कर भी छुड़वा दिया।

घोसूंडी (मेवाड़) से मिले महाराणा रायमल्ल के वि० सं० १५६१ (ई० सन् १५०४) के लेख में लिखा है—

“श्रीयोधक्षितिपतिरुग्रखड्गधारा-

निर्घातिप्रहतपठाणपारशीकः ॥ ५ ॥

पूर्वानताप्सीद्रयया विमुक्तया

काश्यां सुवर्णैर्विपुलैर्विपश्चितः ।”

अर्थात्-जोधजी की तलवार से अनेक पठान मारे गए। इन्होंने गया के यात्रियों पर लगनेवाले कर को छुड़वा कर अपने पूर्वजों को और काशी में सुवर्ण दान कर वहाँ के विद्वानों को संतुष्ट किया।

ख्यातों के अनुसार इन्होंने प्रयाग, काशी, गया और द्वारका आदि तीर्थों की यात्रा की, और लौटते हुए हुसैनशाह के शत्रुओं की गढ़ियों को नष्ट-भ्रष्ट कर अपनी प्रतिज्ञा निवाही।

इसी बीच भाद्राजन के सीधल आपमल ने राव जोधाजी के कुँवर शिवराज को सिवाना दिलवाने का बहाना कर वहाँ के स्वामी विजा को मार डाला, और सिवाने पर स्वयं अधिकार कर लिया। परन्तु जैसे ही इसकी सूचना विजा के पुत्र देवीदास को मिली, वैसे ही उसने जाकर फिर से सिवाना छीन लिया। जोधपुर लौटने पर

रामपुर (एटा-ज़िले में) की तवारीख़ में लिखा है कि १५ वीं शताब्दी में जब जौनपुर के बादशाह ने आठवें राजा कर्ण को शम्साबाद से निकाल दिया, तब वह उसे (बदायूँ-ज़िले) में क़िला बनवाकर रहने लगा। वहाँ पर उसकी तीन पीढ़ी ने राज्य किया।

१. उस समय गया पर हुसैनशाह का अधिकार था।

२. जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० ५६, अंक १, नं० २।

राव जोधाजी

जब रावजी को इस भगड़े का हाल मालूम हुआ, तब यह आपमल से नाराज हो गए। यह देख देवीदास ने भाद्राजन पर चढ़ाई कर दी, और आपमल को मार पिता का बदला लिया।

वि० सं० १५२१ (ई० सन् १४६४) में (बीसलपुर का स्वामी) सीधल जैसा पाली के मवेशी पकड़ ले गया। इसकी सूचना मिलते ही कुँवर नीवा ने सोजत से उस पर चढ़ाई की, और मार्ग में (बटोवड़ा गाँव के पास) उसे जा पकड़ा। यद्यपि युद्ध में सीधल जैसा मारा गया, तथापि अधिक घायल होजाने के कारण पाँच महीने बाद कुँवर नीवा का भी स्वर्गवास हो गया। इस घटना की सूचना से रावजी को बहुत दुःख हुआ। परन्तु अंत में इन्होंने ईश्वर की इच्छा ऐसी ही समझ धैर्य धारण किया, और कुँवर सूजाजी को फलोदी से बुलवाकर सोजत का प्रबंध करने के लिये भेज दिया।

इसी वर्ष छापरा-द्रोणपुर के स्वामी मोहिल अजितसिंह ने अपने मंत्रियों के बहकाने में आकर मारवाड़ में उपद्रव करना शुरू किया। कुछ दिन तक तो राव जोधाजी, उसे अपना दामाद समझ, चुप रहे। परन्तु जब मामला बढ़ता ही गया, तब लाचार हो इन्हें उपद्रव को दबाने के लिये सेना भेजनी पड़ी। गगराणे के पास मुक्काबला होने पर अजितसिंह मारा गया, और उसका भतीजा बछराज छापरा-द्रोणपुर का स्वामी हुआ।

१. सोजत का कोट इसी ने बनवाया था।

२. यह अपने बड़े भाई सातलजी के पास फलोदी में रहा करते थे।

३. ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १५२१ (ई० सन् १४६४) में अजितसिंह अपनी सुसराल जोधपुर आया। परन्तु जब कई दिन हो जाने पर भी उसने लौटने का इरादा नहीं किया, तब उसके मंत्रियों ने उसे छापरा-द्रोणपुर पर जाटों के हमला करने की झूठी खबर कह सुनाई। इस पर वह जोधाजी से मिले बिना ही अपने राज्य की रक्षा के लिये तत्काल रवाना हो गया। परन्तु जिस समय वह अपने राज्य के निकट पहुँचा, उस समय उन मंत्रियों ने अपनी जान बचाने के लिये उससे कहा कि राठोड़ों का विचार आपको मारकर आपके अधिकृत प्रदेश को ले लेने का था। इसी से, आपको उनके पंजे से बचाने के लिये, हम लोगों ने यह चाल चली थी। अजितसिंह ने उनके कहने को सच मान लिया, और इसी का बदला लेने के लिये वह मारवाड़ में उपद्रव करने लगा।

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १५२२ (ई० सन् १४६५) में राव जोधाजी के पुत्र बीकाजी अपने चचा काँधलजी आदि को साथ लेकर जांगलू की तरफ गए, और कुछ वर्ष बाद वहीं पर उन्होंने अपना नया राज्य कायम किया। इस समय वह बीकानेर राज्य के नाम से प्रसिद्ध है।

वि० सं० १५२३ (ई० सन् १४६६) में छापरा-द्रोणपुर के स्वामी बछुराज ने अपने चचा का बदला लेने के लिये मारवाड़ में लूटमार शुरू की। इस पर जोधाजी की आज्ञा से इनकी सेना ने बछुराज को मारकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। परन्तु कुछ मास बाद बछुराज के पुत्र मेघा ने रावजी से मेल कर लिया। इससे प्रसन्न होकर इन्होंने उसका सारा प्रदेश उसे वापस लौटा दिया।

१. ख्यातों में लिखा है कि एक रोज काँधल और बीकाजी दोनों दरबार में बैठे बातें कर रहे थे। इतने में राव जोधाजी वहाँ आ गए, और इनको बातों में लगा देख हँसी में कहने लगे कि क्या आज चचा-भतीजे मिलकर किसी नए प्रदेश को दबाने की सलाह कर रहे हैं? यह सुन काँधल ने उत्तर दिया कि यह कोई बड़ी बात नहीं है। ईश्वर चाहेगा, तो ऐसा ही होगा। हां, इसका निश्चय हो जाना जरूरी है कि यदि मैं युद्ध में किसी के हाथ से मारा जाऊँ, तो उससे बदला लेने में ढील न की जाय। यह बात जोधाजी ने स्वीकार कर ली।

इसके बाद सांखला नापा और जाट निकोदर की सलाह से ये लोग, कुछ चुने हुए वीरों के साथ, जांगलू की तरफ चले। उस समय उस प्रदेश का बहुत-सा हिस्सा जाटों के अधिकार में था, और वे आपस में एक दूसरे से लड़ा करते थे। मार्ग में मंडोर पहुँचने पर बीकाजी ने अपने इष्टदेव भैरव की मूर्ति को भी साथ ले लिया। इसके बाद यह देसणोक पहुँचे। वहाँ पर करणीजी ने इन्हें सफलता होने का आशीर्वाद दिया। वहाँ से चलकर कुछ समय तक तो ये लोग चूडासर में रहे, और फिर इन्होंने कोडमदे-सर में जाकर निवास किया। उसी स्थान पर वह भैरव की मूर्ति स्थापित की गई।

धीरे-धीरे करीब २० वर्ष के लगातार परिश्रम से इन लोगों ने आस-पास के जाटों, सांखलों और भाटियों को हराकर उनके बहुत-से प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इसके बाद वि० सं० १५४२ (ई० सन् १४८५) में बीकाजी ने एक उचित स्थान चुनकर वहाँ पर नए किले का शिलारोपण किया, और उसी के पास अपने नाम पर बीकानेर-नगर बसाया। इस नगर की शहरपनाह वि० सं० १५४५ (ई० सन् १४८८) में बनाई गई थी।

२. किसी-किसी ख्यात में जोधाजी का अपने दामाद अजितसिंह को मारकर उसके राज्य पर अधिकार करने का इरादा होना लिखा है। परन्तु यदि ऐसा होता, तो मेघा को वह प्रदेश क्यों सौंपा जाता।

राव जोधाजी

वि० सं० १५२४ (ई० सन् १४६७) के करीब राव जोधाजी के पुत्र करमसी, रायपाल और वणवीर नागोर के शासक कायमख़ाँनी फ़तनख़ाँ के पास पहुँचे। उसने करमसी को खीवसर और रायपाल को आसोप जागीर में देकर अपने पास रख लिया। वणवीर अपने बड़े भाई करमसी के साथ रहा। परंतु जोधाजी को सूचना मिलने पर इन्होंने उन्हें फ़तनख़ाँ की दी हुई जागीरों को छोड़कर वापस चले आने की आज्ञा लिख भेजी। इसलिये तीनों भाई फ़तनख़ाँ का साथ छोड़ वीकाजी के पास चले गए। परंतु फ़तनख़ाँ ने इसमें अपना अपमान समझा, और इसीसे क्रुद्ध होकर वह रावजी की प्रजा पर अत्याचार करने लगा। यह देख रावजी ने नागोर पर चढ़ाई की। फ़तनख़ाँ हारकर भूँभनू की तरफ़ भागा, और रावजी ने नागोर पर अधिकार करने के बाद अपनी तरफ़ से, करमसी को, खीवसर और रायपाल को आसोप की जागीर दी।

वि० सं० १५२५ (ई० सन् १४६८) में, मेड़ते का प्रबंध ठीक हो जाने पर, वरसिंह तो वहां का शासक बना, और दूदा अपने भाई वीकाजी के पास चला गया।

इसी वर्ष महाराना कुम्भाजी के पुत्र उदाजी अपने पिता को मारकर मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। परंतु उन्होंने सोचा कि जिस तरह रणमल्लजी ने आकर मोकलजी के हत्याकारियों से बदला लिया था, उसी तरह कहीं जोधाजी आकर कुम्भाजी की हत्या का बदला लेने का उद्योग करने लगे, तो मेवाड़ के सरदारों को, जो मुझसे पहले ही अप्रसन्न हो रहे हैं, और भी मौका मिल जायगा। यह सोच उन्होंने जोधाजी को, शांत रखने के लिये, अजमेर और सांभर के प्रांत सौंप दिए।

छापर-द्रोणपुर के स्वामी मेधा के (वि० सं० १५३०=ई० सन् १४७३ में) मरने पर उसका पुत्र वैरसल वहां का स्वामी हुआ। परंतु वह एक निर्बल शासक था। इसी से उसके भाई-बंधु, स्वाधीन होकर, इधर-उधर लूट-मार करने लगे। यह देख वि० सं० १५३१ (ई० सन् १४७४) में जोधाजी ने उन पर चढ़ाई की। वैरसल

१. अजमेर के लिये मेवाड़ वालों और मुसलमानों के बीच सदा ही झगड़ा रहता था। संभव है, उदाजी ने इस झगड़ से छूटने के लिये ही उसे जोधाजी को दे दिया हो। सांभर के चौहान शासक अजमेर वालों के अधीन थे। इससे शायद अजमेर के साथ ही वह प्रांत भी इनको मिल गया हो।

ख्यातों में लिखा है कि वरसिंह ने एक बार सांभर के चौहानों को हराया था।

मारवाड़ का इतिहास

और उसका छोटा भाई नरबद भागकर फ़तनख़ाँ के पास फ़तेपुरे भूँभनू चले गए, और छापरा-द्रोणपुर (जोधपुर-राज्य के लाडनू-प्रांत में) पर राव जोधाजी का अधिकार हो गया ।

इसके बाद रावजी ने फ़तनख़ाँ पर चढ़ाई की । तीन दिन के भीषण युद्ध के बाद फ़तनख़ाँ हार गया, और फ़तेपुर जला दिया गया । यह देख वैरसल मेवाँड़ होता हुआ दिल्ली के बादशाह बहलोल लोदी के पास पहुँचा, और नरबद जौनपुर के बादशाह हुसैनशाह से सहायता प्राप्त करने गया । कुछ ही दिनों में दोनों बादशाहों ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर कुछ फौज उनके साथ कर दी । लौटने पर फ़तेपुर-भूँभनू के पास उनका जोधाजी से मुकाबला हुआ । इस अवसर पर बीकाजी भी अपनी सेना लेकर पिता की सहायता को आ पहुँचे थे । कई दिनों के भीषण युद्ध के बाद शाही सेनाओं को मैदान छोड़कर भागना पड़ा । यहां से लौटकर रावजी द्रोणपुर गए, और कुछ दिन बाद वहां का प्रबन्ध अपने द्वितीय पुत्रें जोगा को सौंप जोधपुर चले आए । परंतु जोगा से वहां का प्रबंध न हो सका, इसी से मोहिलों को वहां पर उपद्रव करने का मौका मिल गया । जैसे ही इसकी सूचना राव जोधाजी को मिली, वैसे ही इन्होंने अपने पुत्र बीदा को वहां का प्रबंध करने के लिये भेज दिया । उसने वहां पहुँच शीघ्र ही मोहिलों के उपद्रव को दबा दिया ।

वि० सं० १५३५ (ई० सन् १४७८) में जालोर के शासक उसमानख़ाँ और सिरौही के रावल लाखाजी ने मारवाड़ में लूट-मार शुरू की । इस पर जोधाजी ने

१. जोधाजी ने नरबद को, अपने भाई कांथल का दौहित्र समझ, कहलाया था कि यदि वह उनके पास आ जाय, तो उसे छापरा का राज्य दिया जा सकता है । परंतु उसने यह बात स्वीकार नहीं की ।
२. कहते हैं, फ़तनख़ाँ ने वि० सं० १५१० (ई० सन् १४५३=हि० सन् ८५७) में अपने नाम पर यह नगर बसाया था ।
३. कहते हैं, वैरसल महाराना कुम्भाजी का दौहित्र था । इसी से वह सहायता प्राप्त करने को वहां गया । परंतु महाराना रायमलजी ने जोधाजी से विरोध करना अंगीकार नहीं किया ।
४. रावजी के बड़े पुत्र नींवा का स्वर्गवास पहले ही हो चुका था ।
५. ख्यातों में लिखा है कि रावजी को वहां का प्रबंध ठीक न हो सकने की सूचना पहले-पहल स्वयं उनकी पुत्र-वधू (जोगा की स्त्री) ने ही भिजवाई थी ।
६. इसी से वह प्रदेश जो पहले मोहिलवाटी कहलाता था, बीदावाटी कहलाने लगा ।
७. चौहानों की एक शाखा ।

राव जोधाजी

अपने चचेरे भाई वरजांग को उनके मुकाबले को भेजा। कुछ ही दिनों में बिहारियों और देवड़ों को राठोड़ों से संधि करनी पड़ी।

वि० सं० १५४३ (ई० सन् १४८६) में आमेर-नरेश चंद्रसेनजी ने सांभर पर अधिकार करने के लिये सेना भेजी। परंतु राव जोधाजी के समय पर उसकी रक्षा का प्रबंध कर देने से वह सफल न हो सकी।

वि० सं० १५४४ (ई० सन् १४८७) में जोधाजी की आज्ञा से उनके पुत्र दूदा ने जैतारण के सींधल मेधा पर चढ़ाई की। युद्ध होने पर मेधा मारा गया।

इसी वर्ष (जोधराजी का भाई) कांधल अपने भतीजे बीकाजी की तरफ से एक प्रदेश के बाद दूसरा प्रदेश विजय करता हुआ, हिसार तक जा पहुँचा। उस समय वहाँ पर बहलोल लोदी का अधिकार था, और उसकी तरफ से सारंगखँ उस प्रदेश की देख-भाल करता था। कांधल की चढ़ाई के कारण जब वहाँ पर अराजकता फैलने लगी, तब सारंगखँ ने एक रोज अचानक हमला कर उसे मार डाला। इसकी खबर मिलते ही जोधपुर से जोधाजी ने और बीकानेर से बीकाजी ने सारंगखँ पर चढ़ाई की। यद्यपि युद्ध के समय उसकी तरफ से भी खूब दृढ़ता से मुकाबला किया गया, तथापि अंत में उसके मारे जाने से उसकी फौज को मैदान छोड़कर भागना पड़ा। इसके बाद लौटते समय राव जोधाजी बीकानेर में ठहरे, और बीकाजी को बीकानेर का और बीदा को छ्वापर-द्रोणपुर का स्वतंत्र शासक बना दिया। साथ ही बीकाजी को

१. वि० सं० १५३८ (ई० सन् १४८१) में राव जोधाजी का पुत्र वणवीर अपनी सुसराल सिरौही गया था। परंतु उसी समय वहाँ पर शत्रु के हमला कर देने के कारण वह भी देवड़ों की तरफ से लड़ता हुआ युद्ध में मारा गया।

(इसकी मृत्यु के समय का सूचक एक लेख खींवसर के पूरासर तालाब पर लगा है।)

२. मेधा के पिता नरसिंह ने राव सत्ताजी के पुत्र (नरवद के भाई) आसकरन को मारा था। इसी का बदला लेने के लिये यह चढ़ाई की गई थी।

३. ख्यातों में लिखा है कि लौटते समय मार्ग में एक हकले और तुतले चमार को अपनी तारीफ़ करते देख जोधाजी ने उसे वहीं आस-पास की कुछ भूमि दे दी। इसके बाद उसी भूमि पर उस चमार ने जोधावास गाँव बसाया, जो अब तक उसके वंशजों के अधिकार में है।

४. उस समय जोधाजी ने उस प्रांत के लाडनू-नामक नगर को जोधपुर-राज्य के अंतर्गत कर लिया।

मारवाड़ का इतिहास

राव की पदवी देकर जोधपुर से उनके लिये छत्र, चँवर आदि राज-चिह्नों के भेजने का वादा किया।

इसी समय जैसलमेर नरेश रावल देवीदासजी की आज्ञा से उनकी सेना ने शिव पर अधिकार कर लिया। इसकी सूचना मिलते ही जोधाजी ने वरजांग को उसके मुक्ताबले को भेजा। उसने वहां पहुँच शीघ्र ही जैसलमेर वालों को भगा दिया, और उसके बाद आगे बढ़ जैसलमेर पर आक्रमण करने का विचार किया। परंतु इसी बीच भाटियों ने दंड के रूप में कुछ रुपए देकर राठोड़ों से सुलह कर ली।

वि० सं० १५४५ की वैशाख सुदी ५ (ई० सन् १४८८ की १६ अप्रैल) को, ७३ वर्ष की अवस्था में, जोधपुर में, राव जोधाजी का स्वर्गवास हो गया।

राव जोधाजी बड़े उद्योगी, साहसी, वीर, दानी और बुद्धिमान् नरेश थे। अपनी ७३ वर्ष की अवस्था में से २३ वर्ष तक तो यह पिता की सेवा में रहे, १५ वर्ष तक इन्हें घोर विपत्तियों का सामना करना पड़ा और इसके बाद ३५ वर्ष तक यह अपने राज्य की उन्नति में लगे रहे। इनके समय से पूर्व ही दिल्ली की बादशाहत शिथिल हो चली थी। इसी से गुजरात, मालवा, जौनपुर, मुलतान आदि के सूबेदार स्वतंत्र होकर अपने अधिकार-विस्तार के लिये एक दूसरे से लड़ने लगे थे। उनके इसी गृह-कलह के कारण जोधाजी को भी अपने राज्य-विस्तार का अच्छा मौका मिल गया। उस समय इनके अधिकार में मंडोर, जोधपुर, मेड़ता, फलोदी, पौकरन, महेवा, भाद्रा-जन, सोजत, गोडवाड़ का कुछ भाग, जैतारन, शिव, सिवाना, सांभर, अजमेर और

कर्नल टॉड ने लिखा है कि बीका का भाई बीदा भी कुछ आदमियों को साथ ले अपने लिये कोई नया प्रदेश प्राप्त करने को चला। पहले उसका विचार गोडवाड़-प्रांत को, जो उस समय मेवाड़वालों के अधिकार में था, हस्तगत करने का था। परंतु वहां पहुँचने पर उसका इतना आदर सत्कार किया गया कि उसे अपना वह इरादा छोड़ उत्तर की तरफ लौटना पड़ा। वहां पर उसने छापरे के मोहिलों को धोका देकर मार डाला, और उनके किले पर अधिकार कर लिया। इसके बाद शीघ्र ही जोधपुर से और मदद पहुँच गई। इसी सहायता के एवज में बीदा ने लाडनू और उसके साथ के बारह गांव अपने पिता को सौंप दिए। ये अब तक जोधपुर-राज्य में सम्मिलित हैं (ऐनाल्स ऐंड ऐंटीक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृष्ठ ११४४)। इसी बीदा के नाम पर उक्त प्रदेश बीदावाटी कहलाता है।

‘तवारीख़ राज श्रीबीकानेर’ में बीकाजी का अपने पिता को लाडनू भेंट करना लिखा है। (पृष्ठ १०२-१०३)।

१. कहीं-कहीं वैशाख के बदले माघ लिखा मिलता है। परंतु वह ठीक नहीं है।

राव जोधाजी

नागोर प्रांत का बहुत-सा भाग था। बीकानेर और छापरा-झोणपुर इनके पुत्रों के अधिकार में थे। इस प्रकार इनके राज्य की पश्चिमी सीमा जैसलमेर तक, दक्षिणी सीमा अर्बली तक और उत्तरी सीमा हिसार तक पहुँच गई थी।

रावजी ने अनेक गांव दान किए थे^१।

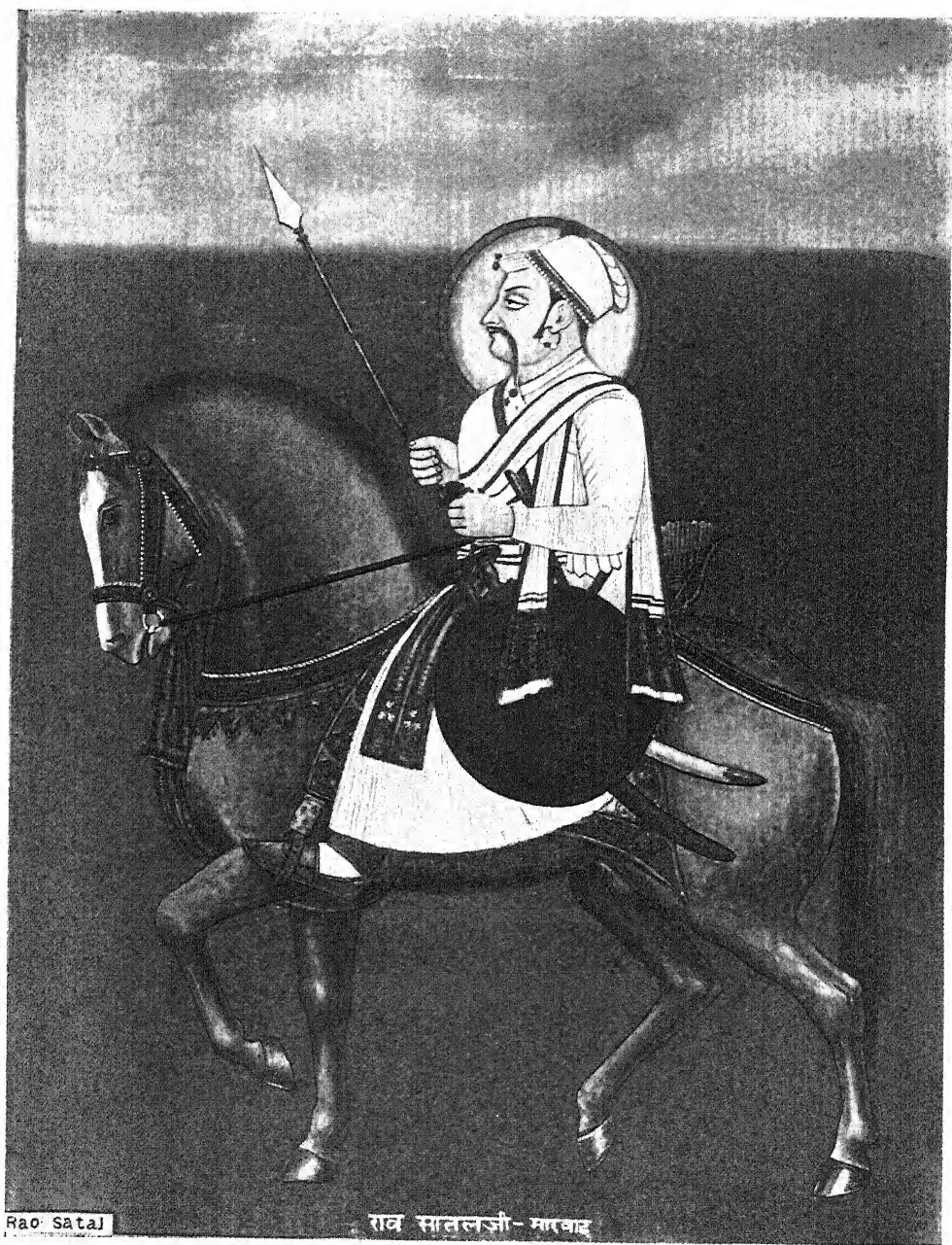
राव जोधाजी के २० पुत्र थे—१ नीवा, २ जोगा, ३ सातल, ४ सूजा, ५ बीका, ६ बीदा, ७ वरसिंह, ८ दूँदा, ९ करमसी, १० वणवीर, ११ जसवंत, १२ कूंगा, १३ चांदराव, १४ भारमल, १५ शिवराज, १६ रायपाल, १७ सांवतसी, १८ जगमाल, १९ लक्ष्मण और २० रूपसिंह।

१. कर्नल टॉड ने इनके राज्य का विस्तार ८०,००० मील की लंबाई-चौड़ाई तक होना लिखा है। (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृष्ठ ६५१)।
२. १ कैवलियां, २ खगड़ी (जेतारण परगने के), ३ रेपडावास (सोजत परगने का), ४ साकडावास (पाली परगने का), ५ मथाणिया ६ बेवटा ७ बडलिया (जोधपुर परगने के), ८ चांचलवा (शेरगढ़ परगने का) चारणों को, ९ जाटियावास कलां (बीलाड़ा परगने का), १० धोलेरिया (जालोर परगने का), ११ खरावेरा १२ बासणी १३ मोडी बड़ी १४ तोलेयासर १५ तिवरी १६ मांडियाई खुर्द १७ बासणी सेपां १८ थोब (जोधपुर परगने के), १९ कोलू-पुरोहितों का वास (फलोदी परगने का) पुरोहितों को, २० खोडेचां (बीलाड़ा परगने का), २१ लूंडावास २२ बासणी नरसिंह (सोजत परगने के) ब्राह्मणों को और २३ साटीका कलां (नागोर परगने का) माताजी के मंदिर को दिए थे।
३. इनका जन्म वि० सं० १४६७ की प्रथम सावन सुदि १५ (ई० सं० १४४० की १४ जुलाई) को हुआ था। बीकानेर की ख्यातों में इनका जन्म वि० सं० १४६५ (ई० सं० १४३८) में होना लिखा मिलता है, परन्तु यह जोधपुर की ख्यातों आदि से सिद्ध नहीं होता।
४. इसके वंशज इस समय म्हाबुवा (मालवे में) के राजा हैं।
५. इसका जन्म वि० सं० १४६७ की आश्विन सुदि १५ को हुआ था। (कहीं-कहीं आषाढ लिखा मिलता है) इसी के पुत्र रत्नसिंह की कन्या प्रसिद्ध मीराबाई थी, जिसका विवाह महाराना सांगाजी (प्रथम) के पुत्र भोजराज से हुआ था।
६. लक्ष्मण और रूपसिंह शायद छोटी अवस्था में ही मर गए थे।

१६. राव सातलजी

यह राव जोधाजी के तृतीय पुत्र थे और उनके बाद वि० सं० १५४५ की ज्येष्ठ सुदी ३ (ई० सन् १४८८ की १४ मई) को गद्दी पर बैठे। इनका जन्म वि० सं० १४६२ (ई० सन् १४३५) में हुआ था। इनकी स्त्री कुंडल के स्थानी भाटी देवीदासजी की कन्या थी। इसी से वि० सं० १५१४ (ई० सन् १४५७) के करीब जब देवीदासजी जैसलमेर के रावल हो गए, तब उन्होंने कुंडल का प्रांत अपने दामाद सातलजी को सौंप दिया। इसका पुष्टि वि० सं० १५१५ (ई० सन् १४५८) के कोलू (फलोदी) परगने से मिले लेख से भी होती है।

१. राव जोधाजी के ज्येष्ठ पुत्र नीवा की मृत्यु उनके जीते-जी हो गई थी। दूसरा पुत्र जोगा, जिसका कुछ हाल पहले लिखा जा चुका है, बड़ा आलसी था। इसी से राज-तिलक का समय आ जाने पर भी वह नहाने-धाने से फ़ारिग न हो सका। अंत में मुहूर्त को टलता देख सरदारों ने उसके छोटे भाई सातलजी को गद्दी बिठा दिया। इसलिये जोगा को बाद में (बोलाड़े परगने के) खारिया आदि कुछ गांव जागीर में लेकर ही संतोष करना पड़ा। वहीं से मिले एक लेख से जोगा का वि० सं० १५७० (ई० सन् १५१३) में स्वर्गवासी होना प्रकट होता है।
- कहते हैं, राव सातलजी ने अपने राज्याभिषेक के समय (जोधपुर परगने का) लूणावा-चारणा नामक गांव एक चारण को दान दिया था।
२. राव सातलजी की भटियानी रानी फूलकुंवर ने (वि० सं० १५४७=ई० सन् १४६० में) जोधपुर नगर का फुलेनाव-तालाब बनवाया था।
३. यह प्रदेश फलोदी के पास है। पौकरन के पौकरना राठोड़ों और भाटियों के बीच बराबर लड़ाइयां होती रहती थीं। इसी से तंग आकर देवीदासजी ने उक्त प्रदेश सातलजी को सौंप दिया।
४. वहां पर इस समय धांधल राठोड़ों का अधिकार है।
५. वि० सं० १२३६ (ई० सन् ११७६) के कल्याणरायजी के मंदिर से मिले लेख से उस समय फलोदी-नगर का नाम अजयपुर होना और वहां पर चौहान-नरेश पृथ्वीदेव का राज्य होना प्रकट होता है।
(जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १२, पृ० ६३)
६. यह लेख धांधल के पुत्र पाबू के मंदिर के कीर्तिस्तंभ पर खुदा है। उस पर एक तरफ तो वि० सं० १५१५ को भादों सुदी ११ (ई० सन् १४५८ की २० अगस्त) को उस कीर्ति-स्तंभ के स्थापन करने आदि का उल्लेख है, और दूसरी तरफ "महाराय जोधासुत राय श्री सातल विजय राज्य" लिखा है। (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १२, पृ० १०८)



१६. राव सातलजी

वि० सं० १५४६-१५४६ (ई० सं० १४८६-१४८२)

राव सातलजी

राव सातलजी ने पुत्र न होने के कारण अपने भतीजे (सूजाजी के पुत्र) नरा को गोद लेने के विचार से अपने पास रख लिया था। कहते हैं, पौकरन के पास का सातलमेर शहर राव सातलजी ने ही अपने नाम पर बसाया था।

वि० सं० १५४७ (ई० सन् १४६०) में अजमेर के हाकिम मल्लूखाँ (मलिक यूसुफ़) ने राव सातलजी के भाई वरसिंह को अजमेर बुलवा कर धोके से पकड़ लिया। इसकी सूचना मिलते ही जोधपुर से राव सातलजी ने और बीकानेर से राव बीकाजी^६ और दूदाजी ने अजमेर पर चढ़ाई की। इस पर मल्लूखाँ ने उस समय तो वरसिंह को छोड़ दिया, परन्तु शीघ्र ही तैयारी कर इसका बदला लेने के लिये

इसकी लिखावट से ज्ञात होता है कि सातलजी उस समय भी स्वतंत्र रूप से वहाँ का शासन करते थे।

१. कर्नल टॉड ने नरा को सूजा का पौत्र (और वीरमदेव का पुत्र) लिखा है। (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६५२) परन्तु यह ठीक नहीं है।
२. वि० सं० १५३२ (ई० सन् १४७५) का एक लेख फलोदी के क़िले के तीसरे दरवाजे पर खुदा है (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १२, पृ० ६४)। इससे ज्ञात होता है कि (नरसिंह) नरा ने इसी वर्ष उस क़िले का जीर्णोद्धार करवा कर यह द्वार बनवाया था। इस लेख में नरा के पिता का नाम राय सूरजमल लिखा है। इससे प्रकट होता है कि राव सातलजी ने उसे उस समय तक भी गोद नहीं लिया था।
३. यह नगर इस समय बिलकुल उजड़ी हुई दशा में है। किसी-किसी ख्यात में इस नगर का नरा द्वारा सातलजी की यादगार में बसाया जाना भी लिखा मिलता है।
४. किसी-किसी ख्यात में इसका नाम सिरियाखाँ लिखा है।
५. ख्यातों में लिखा है कि उस वर्ष मारवाड़ में अकाल होने के कारण वरसिंह ने मेड़ते से जाकर साँभर को लूट लिया। इस पर जब वहाँ के चौहान शासक ने मल्लूखाँ के पास शिकायत लिख भेजी, तब उसने वरसिंह को अजमेर बुलवा कर क़ैद कर लिया। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उस समय अजमेर पर मुसलमानों का अधिकार था, और साँभर के चौहान अजमेरवालों के अधीन थे।
६. मिस्टर एल० पी० टैसीटोरी ने एक पुराना गीत उद्धृत किया है। उससे प्रकट होता है कि राव सातलजी ने, जैसलमेर रावल देवीदासजी और पूंगल के राव शेखा आदि के साथ मिल कर, राव बीकाजी के विरुद्ध चढ़ाई की थी। परन्तु उसमें यह सफल न हो सके (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १३, पृ० २३५-२३६)। परन्तु इतिहास से इसकी पुष्टि नहीं होती।

मारवाड़ का इतिहास

मेड़ते पर चढ़ाई कर दी। यह देख वरसिंह जोधपुर चला आया। मल्लूखों भी मेड़ते को लूट जोधपुर की तरफ चला। जैसे ही उसके इस इरादे की खबर राव सातलजी के पास पहुँची, वैसे ही यह भी अपने भाई सूजाजी को साथ ले उसके मुकाबले को चले। मल्लूखों मार्ग में पीपाड़ को लूटता हुआ कोसाना के पास पहुँचा। वहीं पर उसका और राव सातलजी का मुकाबला हो गया। उस समय तक रावजी का भाई दूदा भी अपने योद्धाओं को लेकर वहाँ आ गया था। इसके बाद राठोड़-सरदारों ने सलाह करे यवन-सेना पर नैश आक्रमण किया। इससे घबराकर वह मैदान से भाग चली, और इसी अचानक विपत्ति में पड़ स्वयं मल्लूखों को भी अजमेर की तरफ भागना पड़ा। यद्यपि इस युद्ध में विजय राव सातलजी के ही हाथ रही, तथापि

१. वरसिंह के मरने पर उसका पुत्र सीहा मेड़ते का स्वामी हुआ। परन्तु उसकी शिथिलता से लाभ उठा कर अजमेर के सूबेदार ने मेड़ते पर अधिकार कर लेने का इरादा किया। यह देख वि० सं० १५५२ (ई० सन् १४६५) में उस (सीहा) के चचा दूदा ने वहाँ का शासन अपने हाथ में ले लिया।

मेड़ते पर दूदा का कब्ज़ा हो जाने से सीहा रीयाँ चला गया। परन्तु फिर उसने वहाँ से अजमेर की तरफ जाकर वि० सं० १५५४ (ई० सन् १४६७) में मिनाय पर अधिकार कर लिया, और २५ वर्ष तक वह वहाँ का शासन करता रहा। इसी सीहा के चौथे वंशज केशवदासजी को बादशाह जहाँगीर ने वि० सं० १६६४ (ई० सन् १६०७) में मावुआ जागीर में दिया था।

२. ख्यातों में लिखा है कि मल्लूखों जिस समय पीपाड़ पहुँचा, उस समय वहाँ की कई सुहागन स्त्रियाँ गौरी की पूजा करने को नगर के बाहर आई हुई थीं। इसलिये मुसलमानों ने उन्हें पकड़ लिया। परन्तु राव सातलजी ने कोसाने के पास रात को हमला कर उन्हें छुड़वा लिया।

३. इस युद्ध में दूदा ने बड़ी वीरता से शत्रु का मुकाबला किया था।

४. ख्यातों में लिखा है कि आक्रमण करने के पहले राव जोधाजी का चचेरा भाई वरजांग स्वयं भेस बदलकर शत्रु-सैन्य का भेद जान आया था।

५. ऐसा प्रसिद्ध है कि जोधपुर में चैत्र-बदी ८ को जो 'घुड़ले' का मेला होता है, वह इस युद्ध में मारे गए एक यवन-सेनापति (घुड़ले) की यादगार में प्रचलित किया गया था। उस दिन औरतें कुम्हार के यहाँ से एक चारों तरफ छेदवाली मटकी लाकर और उसमें दीपक जलाकर गीत गाती हैं। चैत्र-सुदी ३ को वह मटकी तोड़ या पानी में डुबा दी जाती है। मटकी के छेदों से शायद घुड़ले के शरीर में लगे घावों का बोध करवाया जाता है और दीपक से उसकी जीवात्मा का।

अत्यधिक घायल हो जाने के कारण उसी रात को इनका स्वर्गवास हो गया। यह घटना वि० सं० १५४८ की चैत्र सुदी ३ (ई० सन् १४६१ की १३ मार्च) की है।

१७. राव सूजाजी

यह राव सातलजी के छोटे भाई थे और उनके बाद वि० सं० १५४८ की वैशाख सुदी ३ (ई० सन् १४६१ की १२ अप्रैल) को, ५२ वर्ष की अवस्था में, उनके उत्तराधिकारी हुए। इनका जन्म वि० सं० १४६६ की भादों बदी ८ (ई० सन् १४३६ की २ अगस्त) को हुआ था। वि० सं० १५२१ (ई० सन् १४६४) में राव जोधाजी ने सोजत का प्रबन्ध इन्हें सौंप दिया था। इससे वि० सं० १५४५ (ई० सन् १४८८) में जब वहाँ पर मुसलमानों ने आक्रमण किया, तब इन्होंने बड़ी वीरता से उनका सामना कर उस प्रदेश की रक्षा की।

राव सातलजी ने इनके पुत्र नरा को गोद लेने के इरादे से अपने पास रख लिया था। परन्तु उन (सातलजी) की मृत्यु के बाद यह तो उनके उत्तराधिकारी के रूप में जोधपुर की गद्दी पर बैठे, और नरा को, समझाकर, फलोदी का प्रान्त जागीर में दे दिया। इसके बाद वि० सं० १५५५ (ई० सन् १४९८) में जब बाहड़मेर के राठोड़ों की सहायता से पौकरनाँ राठोड़ों ने नरा को मार डाला, तब राव सूजाजी ने चढ़ाई कर बाहड़मेर, कोटड़ा आदि को लूट लिया।

१. कर्नेल टॉड ने सातलजी का सहरिया (सराई) जाति के खूँ को मारकर मरना, इस घटना का वि० सं० १५७२ (ई० सन् १५१६) में राव सूजाजी के समय होना और इस युद्ध में उन (सूजाजी) का मारा जाना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६५० और ६५२), परन्तु यह ठीक नहीं है।
२. जोधपुर-राज्य की तरफ़ से पहले चैत्र सुदी ३ को गौरी और ईश्वर दोनों की मूर्तियों का पूजन किया जाता था। परन्तु सातलजी के उस दिन स्वर्गवास करने के बाद से केवल गौरी की मूर्ति का ही पूजन होता है।
३. ख्यातों में लिखा है कि तुँवर अजमाल के पौत्र (ख्यसी के पुत्र) रामदेव ने तुँवरवाटी (जयपुर-राज्य) की तरफ़ से आकर पौकरन पर अधिकार कर लिया था। कुछ वर्ष बाद जब उसने अपनी भतीजी (या कन्या) का विवाह रावल मझिनाथजी के पौत्र (जगमाल के पुत्र) हम्मीर से किया, तब पौकरन उसे दहेज़ में दे दिया, और स्वयं वहाँ से ५ मील उत्तर ख्योचे में जा बसा। वहीं पर उसकी और उसके पूर्वजों की

मारवाड़ का इतिहास

ख्यातों से ज्ञात होता है कि राठोड़ भीम के पुत्र वरजौंग की साजिश से बीकानेर के राव बीकाजी ने जोधपुर पर चढ़ाई की थी। परन्तु अन्त में, लोगों के समझाने से, दोनों भाइयों में मेल हो गया और बीकाजी बिना लड़े-भिड़े ही वापस लौट गए।

इसके बाद राव सूजाजी की आज्ञा से इनके पुत्र शेखा ने रायपुर के सीधल खंगार पर चढ़ाई की। यद्यपि शुरू में उसने भी बड़ी वीरता से शेखा का सामना किया, तथापि १८ वें दिन, रसद आदि के समाप्त हो जाने से, उसे हार माननी पड़ी, और उसने इस चढ़ाई का खर्च देकर रावजी की अधीनता स्वीकार कर ली। इस

समाधियां बनी हैं। उनमें से एक पर कुरान की आयत खुदी है। इसमें ईश्वर की सर्व-शक्तिमत्ता का वर्णन है। भादों सुदी ११ को वहाँ पर बड़ा मेला लगता है, और दूर-दूर से लोग यात्रार्थ आते हैं। यह रामदेव रामसापीर के नाम से प्रसिद्ध है, और उसके वंशज मरने पर जलाए जाने के बजाय गाड़े जाते हैं।

ऊपर जिस हम्मीर का उल्लेख किया गया है, उसके वंशज, पौकरन के शासक होने के कारण, पौकरना राठोड़ कहाए। वि० सं० १५५१ (ई० सन् १४९४) में नरा ने अचानक जाकर पौकरन पर अधिकार कर लिया था। इसी से वि० सं० १५५५ (ई० सन् १४९८) में, बाहड़मेर के राठोड़ों की सहायता से, पौकरना राठोड़ खींवा और उसका पुत्र लूँका पौकरन के मवेशी पकड़ कर ले गए। इसकी सूचना मिलते ही नरा ने उनका पीछा किया, परन्तु मार्ग में सामना होने पर नरा मारा गया। इसके बाद राव सूजाजी ने नरा के पुत्र गोविन्ददास को पौकरन और हम्मीर को फलोदी जागीर में दी। इसके बाद इन्होंने (रावजी ने) खींवा और लूँका को भी कुछ गांव जागीर में देकर शान्त कर दिया।

वि० सं० १५७३ (ई० सन् १५१६) का एक लेख फलोदी के किले के बाहर के द्वार पर खुदा है। उससे वहाँ पर, उस समय, हम्मीर का अधिकार होना पाया जाता है। (जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, भा० १२, पृ० ६५)

१. ख्यातों से ज्ञात होता है कि राव जोधाजी ने जिस समय अपने पुत्र बीकाजी को राव की पदवी देकर बीकानेर का स्वतंत्र शासक बनाया था, उस समय उनके लिये जोधपुर से छत्र, चँवर आदि राज्य-चिह्न भेजने की प्रतिज्ञा की थी। इसी के अनुसार राव बीकाजी ने राव सूजाजी के समय उन वस्तुओं के ले आने को अपना आदमी भेजा। परन्तु सूजाजी के देने से इनकार करने पर उन्होंने जोधपुर पर चढ़ाई कर दी। इसी बीच लोगों ने बीच-बचाव कर दोनों भाइयों में मेल करवा दिया।

२. ख्यातों में लिखा है कि रायपुर के सीधलों ने राव सत्ताजी के पुत्र नरबद की मान-हानि की थी। इसका बदला लेना भी इस चढ़ाई का एक कारण था।

(१) हम्मीर की रानी ने फलोदी का रानीसर तालाब बनवाया था।



राव सूजाजी - मारवाड़

१७. राव सूजाजी

वि० सं० १५४६-१५७२ (ई० सं० १४६२-१५१५)

युद्ध में चाणोद के सींघलों ने भी रायपुर वालों का साथ दिया था। इसी का बदला लेने के लिये वि० सं० १५६० (ई० सन् १५०३) में उनपर सेना भेजी गई। पाँच दिन तक तो चाणोदवालों ने भी उसका सामना किया, परन्तु छूटे दिन उनका सरदार सूजा स्वयं आकर रावजी की सेना में उपस्थित हो गया, और उनके साथ ही जोधपुर चला आया। यह देख राव सूजाजी ने चाणोद की जागीर उसे ही लौटा दी।

राव सूजाजी के बड़े राजकुमार का नाम बाघाजी था। इनका जन्म वि० सं० १५१४ की वैशाख बदी ३० (ई० सन् १४५७ की २३ अप्रैल) को हुआ था। वि० सं० १५६७ (ई० सन् १५१०) में जिस समय महाराना सांगाजी ने सोजत पर अधिकार करने के लिये सेना भेजी, उस समय रावजी की आज्ञा से बाघाजी ने उसे मार्ग से ही मार भगाया।

वि० सं० १५७१ की भादों सुदी १४ (ई० सन् १५१४ की ३ सितम्बर) को, युवराज अवस्था में ही, बाघाजी का स्वर्गवास हो गया। इससे राव सूजाजी के स्वास्थ्य को बड़ा धक्का लगा, और वि० सं० १५७२ की कार्तिक बदी १ (ई० सन् १५१५ की २ अक्टोबर) को ७६ वर्ष की अवस्था में, यह भी स्वर्ग को सिंघार गए।

राव सूजाजी का अधिकार जोधपुर, फलोदी, पौकरन, सोजत और जैतारन के परगनों पर था।

१. कहीं-कहीं पौष भी लिखा है।

२. कर्नल टॉड ने इनका ई० सन् १४६१ से १५१६ तक २७ वर्ष राज्य करके पीपाड़ के युद्ध में मारा जाना लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भाग २, पृ० ६५२)। परन्तु यह ठीक नहीं है। इनके समय का वि० सं० १५५२ (ई० सन् १४९५) का एक शिला-लेख आसोप से और वि० सं० १५६८ (चैत्रादि संवत् १५६६) की ज्येष्ठ-सुदी २, सोमवार (ई० सन् १५१२ की १७ मई) का दूसरा साथीय (बीलाड़ा परगने) से मिला है।

३. कहते हैं कि राव सूजाजी ने १ डोली-कांकाणी २ मोडी-मनाणा (जोधपुर परगने के), ३ बावड़ी-खुर्द और ४ बावड़ी-कलां (फलोदी परगने के) पुरोहितों को दान दिए थे।

मारवाड़ का इतिहास

इनके १० पुत्र थे^१ । १ बाघा, २ शेखा, ३ नरा, ४ देवीदास, ५ ऊदा,
६ प्रयागदास, ७ साँगा, ८ नापा, ९ पृथ्वीराज और १० तिलोकेसी ।

१. कर्नल-टॉड ने इनके पाँच पुत्रों के नाम इस प्रकार लिखे हैं—

१. बाघा, २ ऊदा, ३ सागा, ४ प्रयाग और ५ वीरमदेव (ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़
ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० ६५२) ।

२. इनके ७ पुत्र थे । १ वीरम, २ गाँगाजी, ३ प्रताप, ४ भीम, ५ खेतसी, ६ सींगण और
७ जैतसी ।

ख्यातों में लिखा है कि जिस समय कुँवर बाघाजी सख्त बीमार हुए, और उनके बचने की
आशा न रही, उस समय उन्होंने अपने पिता राव सूजाजी से अपने स्थान पर अपने पुत्र वीरम को
राज्य का उत्तराधिकारी बनाने की प्रार्थना की थी, और सूजाजी ने बाघाजी के छोटे भ्राता शेखा की
सम्मति से इसे स्वीकार कर लिया था । इसी के अनुसार समय आने पर सब सरदार वीरम का
राज्याभिषेक करने को किले पर इकट्ठे हुए । मुहूर्त में देर होने से जब उनके साथ के लड़कों को,
जो उत्सव देखने को किले पर आए थे, भूख लगी, तब सरदारों ने वीरम की माता से उनके लिये
भोजन का प्रबन्ध करवा देने की प्रार्थना की । परन्तु उसने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया ।
इसके बाद जैसे ही इसकी सूचना गाँगाजी की माता को मिली, वैसे ही उसने ताज़ा भोजन बनवाकर
उन बालकों और सरदारों के लिये भिजवा दिया । इस पर सरदारों ने मुहूर्त के ठीक न होने का
बहाना कर वीरम का राज्याभिषेक रोक दिया, और शीघ्र ही गाँगाजी को मेवाड़ से बुलवा कर जोधपुर
की गद्दी पर बिठा दिया । इसके बाद वीरम को सोजत का परगना जागीर में मिला । उसी दिन से
मारवाड़ में यह कहावत चली है—“रिड़मलां थापिया तिके राजा ।” अर्थात् रिड़मलजी के वंशज
सरदारों ने जिसे गद्दी पर बिठा दिया, वही राजा हो गया ।

३. इसने राव सूजाजी के राज्य-समय सीधलों से जैतारण छीन लिया था ।

४. कहीं-कहीं इसके एवज़ में गोपीनाथ और जोगीदास नाम मिलते हैं ।

१८. राव गाँगाजी

यह राव सूजाजी के पौत्र और राजकुमार बाबाजी के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १५४० की वैशाख सुदी ११ (ई० सन् १४८३ की १८ अप्रैल) को हुआ था, और राव सूजाजी के बाद वि० सं० १५७२ की मँगसिर वदी ३ (ई० सन् १५१५ की २५ अक्टोबर) को यह जोधपुर की गद्दी पर बैठे।

वि० सं० १५७४ (ई० सन् १५१७) में महाराणा साँगाजी की प्रार्थना पर यह अपनी सेना लेकर उनकी सहायता को गए, और इन्होंने गुजरात के शासक मुजफ्फरशाह द्वितीय के प्रतिनिधिको भगाकर राव रायमलजी को ईंडर की गद्दी दिलाने में उनकी सहायता की। इसके बाद वि० सं० १५७७ (ई० सन् १५२०) में

१. कहीं-कहीं इस घटना का समय मँगसिर सुदी १२ (१८ नवम्बर) लिखा मिलता है। ख्यातों में लिखा है कि उन दिनों महाराणा साँगाजी और गुजरात के सुलतान के बीच, ईंडर के लिये, झगड़ा चल रहा था। इसीसे राव सूजाजी ने इन्हें (गाँगाजी को) अपनी सेना साथ देकर राणाजी की सहायता में मेवाड़ भेज दिया था। सरदारों के बुलाने पर वहीं से आकर यह जोधपुर की गद्दी पर बैठे।

२. कहीं-कहीं इस घटना का समय वि० सं० १५७३ (ई० स० १५१६) भी लिखा मिलता है। उस समय ईंडर पर (राव सीहाजी के पुत्र) सोनगजी के वंशजों का अधिकार था। जिस समय ईंडर-नरेश सूरजमलजी का देहान्त हुआ, उस समय उनके पुत्र रायमलजी गद्दी पर बैठे। परन्तु उनकी अवस्था छोटी होने के कारण उनके चचा भीमजी ने शीघ्र ही उन्हें हटा कर वहाँ पर अपना अधिकार कर लिया। यह देख रायमलजी महाराणा साँगाजी के पास चले गए। उन्होंने भी अपनी कन्या का विवाह उनके साथ करना निश्चित कर उन्हें अपने पास रख लिया। वि० सं० १५७१ (ई० स० १५१४) में जब राव भीमजी मर गए और उनके पुत्र भारमलजी गद्दी पर बैठे, तब राव रायमलजी ने महाराणा साँगाजी और जोधपुर वालों की सहायता से ईंडर पर फिर अधिकार कर लिया। परन्तु अगले वर्ष गुजरात के सुलतान मुजफ्फरशाह द्वितीयने रायमलजी को हटाकर भारमल को वहाँ का अधिकार दिलवा दिया। इसीसे साँगाजी ने रायमलजी को फिर से ईंडर का राज्य दिलवाने के लिये डूंगरसिंह को भेज कर राव गाँगाजी को भी अपनी सहायता में बुलवाया था। वि० संवत् १५७४ (ई० सन् १५१७) में दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी ने मेवाड़ पर चढ़ाई की थी, और उसमें उसे हार कर भागना पड़ा था। सम्भव है, वि० सं० १५७४ (ई० सन् १५१७) की उपर्युक्त घटना का इसी अवसर से सम्बन्ध हो।

मारवाड़ का इतिहास

जिस समय महाराणा ने निजामुलमुल्क (मुबारिजुल मुल्क) को भगाकर ईडर का अधिकार फिर से राव रायमलजी को दिलवाया, उस समय भी राव गांगाजी ने ७,००० सवारों के साथ पहुँच उनका साथ दिया।

वि० सं० १५८२ (ई० सन् १५२५) में जब सिकंदरख़ाँ जालोर की गद्दी पर बैठा, तब गज़नीख़ाँ ने राव गांगाजी की सहायता प्राप्तकर जालोर पर चढ़ाई की^३। परन्तु सिकंदरख़ाँ ने फौज-खर्च के रुपये देकर जोधपुर की फौज को वापस लौटा दिया।

वि० सं० १५८३-८४ (ई० सन् १५२७) में जिस समय महाराणा साँगाजी और बाबर के बीच युद्ध हुआ, उस समय भी इन्होंने ४,००० सैनिकों से महाराणा की सहायता की थी^४; परन्तु अनेक कारणों से इस युद्ध में सफलता न हो सकी।

वि० सं० १५८५ (ई० सन् १५२८) में (रावजी के चचा) शेखाने^५ नागोर के शासक ख़ाँझादा दौलतख़ाँ की सहायता से जोधपुर पर चढ़ाई की। जैसे ही इसकी

१. किसी-किसी स्थान पर इस घटना का समय वि० सं० १५७६ (ई० सं० १५१९) भी लिखा मिलता है।

२. महाराणा सांगा, पृ० ७६।

३. तारीख पालनपुर, भा० १, पृ० ५६।

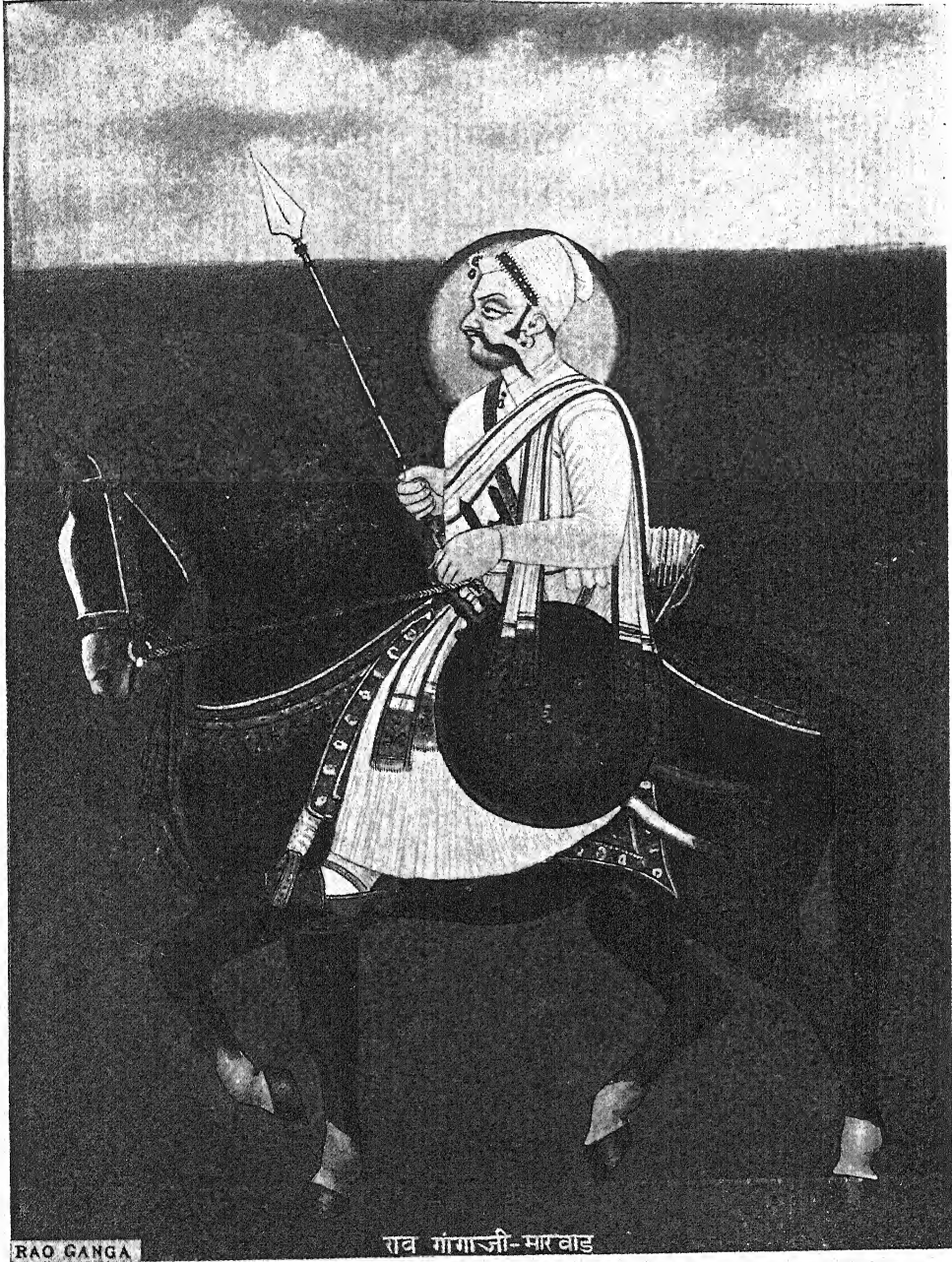
४. कहीं-कहीं ३,००० सैनिक लिखे हैं।

५. इस युद्ध में (राव जोधाजी का पौत्र और राव दूदा का पुत्र) राव वीरम भी मड़ते से ४,००० सैनिक लेकर साँगाजी की सहायता को गया था। इसी में राव वीरम के भाई रायमल और रत्नसिंह बड़ी वीरता से लड़ कर मारे गए। ख्यातों में इन दोनों भाइयों (रायमल और रत्नसिंह) का राव गाँगाजी की सेना के साथ मेवाड़ जाना लिखा है।

कनैल टॉड ने रायमल को मारवाड़ का राजकुमार (गाँगाजी का पौत्र) लिखा है (ऐनाल्स ऐंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० १, पृ० ३५७ और भा० २, पृ० ६५३)। इसी प्रकार श्रीयुत हरविलास सारडाने भी रायमल को एक स्थान पर जोधपुर का सेनापति और दूसरे स्थान पर राज्य का उत्तराधिकारी लिखा है (महाराणा सांगा, पृ० १४४ और १४८)। परन्तु यह ठीक नहीं है। सम्भवतः दूसरे स्थान पर जिस रायमल का उल्लेख है, वह राव गाँगाजी का पौत्र और मालदेवजी का पुत्र रायमल हो। परन्तु जब स्वयं मालदेवजी का जन्म वि० सं० १५६८ (ई० सन् १५११) में हुआ था, तब वि० सं० १५८३-८४ (ई० सन् १५२७) के युद्ध में उनके पुत्रका सम्मुख रण में लड़ कर मारा जाना असम्भव ही है।

राव वीरम ने वि० सं० १५७४ (ई० सन् १५१७) की ईडर की चढ़ाई के समय भी महाराणा साँगाजी की सहायता की थी।

६. राजकुमार बाबाजी के इच्छानुसार उनके छोटे भाई शेखा ने अपना हक छोड़ अपने भतीजे (बाबाजी के ज्येष्ठ पुत्र) वीरम को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने की अनुमति दी थी।



राव गांगाजी-मारवाड

१८. राव गांगाजी

वि० सं० १५७२-१५८६ (ई० सं० १५१५-१५३२)

सूचना गाँगाजी को मिली, वैसे ही इन्होंने सेवकी (गाँव) तक आगे बढ़ उसका सामना किया^१। युद्ध होने पर शेखा मारा गया, और दौलतख़ाँ भागकर नागोर चला गया। इस युद्ध में बीकानेर नरेश राव जैतसीजी ने भी, जो अपनी कुलदेवी के दर्शनार्थ नागाने की तरफ़ गए हुए थे, राव गाँगाजी का पक्ष लिया था। यह घटना वि० सं० १५८६ (ई० सन् १५२६) की है।

परन्तु सरदारों ने चुपचाप गाँगाजी को गद्दी पर बिठा दिया। इसीसे शेखा राव गाँगाजी से नाराज़ था। दूसरा वीरम के पक्ष वालों को जब-जब मौका मिलता था, तब-तब वे उसे राव गाँगाजी के विरुद्ध भड़काते रहते थे। किसी-किसी ख्यात में सिरौही के राव अख़ैराजजी की शिकायत पर शेखा की जागीर पीपाड़ के एक गाँव के ज़ब्त किए जानेके कारण और किसी में ऊहड़ हरदास द्वारा उकसाए जाने के कारण इस युद्ध का होना लिखा है।

१. ख्यातों में लिखा है कि युद्ध के आरम्भ में जब सरदारों ने राव गाँगाजी को तामजाम में ऊँघते हुए देखा, तब उन्होंने इनसे सचेत हो जाने की प्रार्थना की। इस पर रावजीने उन्हें आश्वासन देकर कहा कि हमने इस गृह-कलह में आप लोगों की सहानुभूति किसके पक्षमें है, यह जानने के लिये ही ऐसा अभिनय किया था। किन्तु अब हमें आप लोगों पर विश्वास हो गया है। इतना कहकर वे शीघ्र ही घोड़े पर सवार हो लिए और शत्रु के सामने पहुँच उससे युद्ध करने लगे। कुछ ही देर में इनके तीरसे ज़ख्मी होकर दौलतख़ाँ का एक हाथी भड़क गया, और उसकी सेनाको कुचलता हुआ मेड़ते की तरफ़ भाग चला। उसके वहाँ पहुँचने पर (दूदा के पुत्र) राव वीरम ने उसे पकड़वा कर अपने यहाँ रख लिया।

राव गाँगाजी ने मेड़ते के राव वीरम को भी इस युद्ध में साथ देने के लिये बुलवाया था। परन्तु उसने इस गृह-कलह में भाग लेने से इनकार कर दिया। इससे राव गाँगाजी उससे अप्रसन्न हो गए। इसके बाद जब इन्हें रणक्षेत्र से भागे हुए दौलतख़ाँ के हाथी के मेड़ते पहुँचने का समाचार मिला, तब इन्होंने (गाँगाजीने) उस हाथी को ले आने के लिये अपने आदमी वहाँ भेजे। परन्तु वीरमने उसके देने से इनकार कर दिया। इससे इनकी अप्रसन्नता और भी बढ़ गई। इसके कुछ दिन बाद, जिस समय राव गाँगाजी और राजकुमार मालदेवजी शिकार करते हुए मेड़ते की तरफ़ जा निकले, और वीरमने इन्हें अपने यहाँ चलकर भोजन करने के लिये कहा, उस समय भी कुँवर मालदेवजी ने उस हाथी के लिये बिना भोजन करना स्वीकार न किया। अन्तमें जब राव गाँगाजी और राजकुमार मालदेवजी जोधपुर लौट आए, तब वीरम ने इस झगड़े को शान्त करने के लिये वह हाथी जोधपुर भेज दिया। परन्तु अभिम्यवश वह मार्ग में ही मर गया। इससे यद्यपि रावजी तो सन्तुष्ट हो गए, तथापि कुँवर मालदेवजी को इसमें राव वीरम के षड्यन्त्र का सन्देह हो जाने से वह उससे और भी अधिक नाराज़ हो गए।

२. मरते समय शेखाने राव गाँगाजी से कहा था कि सूरचन्द के चौहानोंने मेरे एक आदमी को, उधर से जाते समय पकड़कर देवी की बलि चढ़ा दिया था। इसलिये हो सके, तो उनसे इसका बदला ले लेना। इसीके अनुसार कुछ दिन बाद, इन्होंने अपने आदमियों

मारवाड़ का इतिहास

ख्यातों से ज्ञात होता है कि राव गाँगाजी के और उनके बड़े भाई वीरम के बीच बहुधा झगड़ा चलता रहता था। इसीसे रावजी ने उसकी (सोजत की) जागीर के कई गाँव छीन लिए, और धोलेराव आदि में अपनी चौकियाँ बिठा दीं।

वि० सं० १५८७ (ई० सन् १५३१) में होली के अवसर पर, जिस समय धोलेराव की चौकी के सरदार अपनी-अपनी जागीर के गाँवों में गए हुए थे, उस समय वीरम के पक्षियों ने आक्रमण कर उस चौकी को लूट लिया। इसकी सूचना मिलने पर वि० सं० १५८८ (ई० सन् १५३१) में स्वयं राव गाँगाजी ने सोजत पर चढ़ाई की। युद्ध होने पर वीरम का प्रधान कर्मचारी मूता रायमल मारा गया, और सोजत पर रावजी का अधिकार हो गया। इसके बाद इन्होंने वीरम को निर्वाह के लिये बाला नामक गाँव जागीर में देकर उसे वहाँ रहने के लिये भेज दिया। इस घटना के बाद राज्य में पूर्ण शान्ति हो गई।

को समझाकर देवी के मन्दिर की तरफ़ भेजा। यह देख वहाँ के चौहानों ने अपने कार्यकर्ताओं को उनके रहने आदि का प्रबन्ध कर देने की आज्ञा दी। परन्तु रावजी के भेजे हुए पुरुषों ने चौहानों के भेजे हुए उन (चौदह) आदमियों को मारकर शेखा के साथ के बैर का बदला ले लिया।

किसी-किसी ख्यात में शेखा का युद्ध में हारकर मेवाड़ जाना और वहाँ पर महाराणा की तरफ़ से किसी युद्ध में लड़कर वीरगति प्राप्त करना भी लिखा मिलता है। परन्तु नहीं कह सकते, यह कहाँ तक ठीक है।

इस युद्ध में ऊहड़ हरदास भी मारा गया। यह राजकुमार मालदेवजी से नाराज़ होकर पहले वीरम के पास सोजत पहुँचा, और उसे राव गाँगाजी के विरुद्ध भड़काने लगा। बाद में इसीने शेखा के पास जाकर उसे रावजी से युद्ध करने के लिये तैयार किया।

१. राव गाँगाजी ने खयाल किया कि जैता की बगड़ी की जागीर सोजत में होने से कहीं यह भी वीरमदेव से न मिल जाय; इसीलिये उसे बगड़ी छोड़कर पीपाड़ में आ जाने की सलाह दी। इसपर उसके प्रधान रेडा ने रावजी का संदेह मिटाने के लिये वीरमदेव के प्रधान मूता रायमल को धोका देकर मारने का उद्योग किया। परन्तु इसमें उसे सफलता नहीं हुई, उलटा रायमल के हाथ से वह खुद मारा गया।

इसके बाद राव गाँगाजी ने जैताजी के मारफ़्त कूँपाजी को भी जो वीरमजी की तरफ़ थे अपने पास बुलवा लिया। इससे वीरमदेव का बल बहुत घट गया।

२. ख्यातों में लिखा है कि वीरम की सहायता के लिये मेवाड़ से महाराणा रत्नसिंहजी (द्वितीय) ने भी सेना भेजी थी। परन्तु राव गाँगाजी ने उसे सारण (गाँव) के युद्ध में हरा दिया। इसके बाद रावजीने मेवाड़वालों से गोडवाड़ का बहुत-सा प्रदेश भी छीन लिया।

वि० सं० १५८८ की ज्येष्ठ सुदी ५ (ई० सन् १५३१ की २१ मई) को जिस समय राव गाँगाजी महल की एक खिड़की के पास बैठ शीतल वायु का सेवन कर रहे थे, उस समय कुछ तो अफीम के सेवन के प्रभाव से और कुछ गरमी की मौसम में शीतल वायु के लगने से उन्हें झपकी आ गई, और उसी में वे खिड़की से नीचे गिर पड़े । इससे उसी समय इनका देहान्त हो गया ।

जोधपुर शहर का 'गाँगेलाव' तालाव और 'गाँगा की बावड़ी' ^२ इन्होंने ही बनवाई थी । इनकी रानी पद्मावती ^३ सिरौही के राव जगमाल की कन्या थी । उसी के कहने से राव गाँगाजी ने (वि० सं० १५७२=ई० सन् १५१५ में) विवाह के समय अपने श्वसुर से श्यामजी की मूर्ति माँग ली थी । यही मूर्ति जोधपुर में, गाँगाजी द्वारा लाई जाने के कारण, गँगश्याम के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

राव गाँगाजी बड़े वीर और दानी थे । कहते हैं, इन्होंने कई गाँव दान किए थे ^४ । इनके ६ पुत्र थे—१ मालदेव, २ वैरसल, ३ मानसिंह, ४ किशनसिंह, ५ सादूल और ६ कान्ह ।

१. ख्यातों में इनका मालदेवजी के धक्के से गिरना भी लिखा मिलता है ।

२. राव गाँगाजी की रानी नानकदेवी ने जोधपुर में अचलेश्वर महादेव का मन्दिर बनवाया था । यह बावड़ी इसी के पास है ।

३. सिरौही के इतिहास (पृ० २०५) में लिखा है कि इसी पद्मावती ने जोधपुर का पदमलसर तालाव बनवाया था । परन्तु वास्तव में यह तालाव मेवाड़ के सेठ पद्मचन्द के रुपये से बना था; जिसे राव जोधाजी ने मेवाड़ की चढ़ाई के समय पकड़ा था । सम्भव है, इस रानीने इसके घाट आदि बनवाए हों । परन्तु किसी-किसी ख्यात में इसका महाराणा साँगाजी (प्रथम) की कन्या पद्मावती-द्वारा बनवाया जाना भी लिखा मिलता है । सम्भव है, उसने भी इसमें कुछ सुधार किया हो ।

४. कहते हैं कि इस मूर्ति के साथ ही इसके पुजारी भी आए थे । ये सेवक के नाम से प्रसिद्ध हैं ।

पहले पहल इस मूर्ति की स्थापना जोधपुर के क़िले में की गई थी । परन्तु महाराजा जसवन्त-सिंहजी (प्रथम) की मृत्यु के बाद जोधपुर पर औरंगजेब का अधिकार हो जाने से, उक्त सेवकोंने इसे अपने घर में छिपा रक्खा था । परन्तु महाराजा अजितसिंहजी ने, जोधपुर का शासन हाथ में लेते ही सेवकों के घरों के पास ही एक साथ ५ मन्दिर बनवा कर बीच के मुख्य मन्दिर में इस मूर्ति की स्थापना की । इसके बाद महाराजा विजयसिंहजी ने वहीं पर की शाही ज़माने की बनी मसजिद को गिरवाकर उसी के स्थान पर (वि० सं० १८१८=ई० स० १७६० में) एक विशाल मन्दिर बनवाया और उसी में इस मूर्ति को स्थापित किया ।

५. १ चारवास २ तालका ३ धूडासणी (सोजत परगने के), ४ खाराबेरा (जो पहले जोधाजी ने दिया था), ५ वेवड़ा ६ सुराणी आभी, ७ चटियाला (जोधपुर परगने के) पुरोहितों को,

१६. राव मालदेवजी

यह मारवाड़-नरेश राव गाँगाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे, और उनके बाद वि० सं० १५८८ की आषाढ़ वदी ५ (ई० सन् १५३१ की ५ जून) को सोजत में गद्दी पर बैठे। इनका जन्म वि० सं० १५६८ की पौष वदी १ (ई० सन् १५११ की ५ दिसम्बर) को हुआ था। जिस समय यह गद्दी पर बैठे, उस समय इनका अधिकार केवल सोजत और जोधपुर के परगनों पर ही था। परन्तु उसी वर्ष इन्होंने भाद्राजन के सींघलों पर सेना भेजी। इस पर मेड़ते के स्वामी वीरमदेव ने भी अपनी सेना के साथ आकर इसमें योग दिया। कई दिनों के युद्ध के बाद भाद्राजन का स्वामी वीरा मारा गया और वहाँ पर मालदेवजी का अधिकार हो गया। इसके बाद इसी सेना ने रायपुर के सींघलों पर चढ़ाई की और वहाँ के शासक को मारकर उक्त प्रदेश पर भी अधिकार कर लिया।

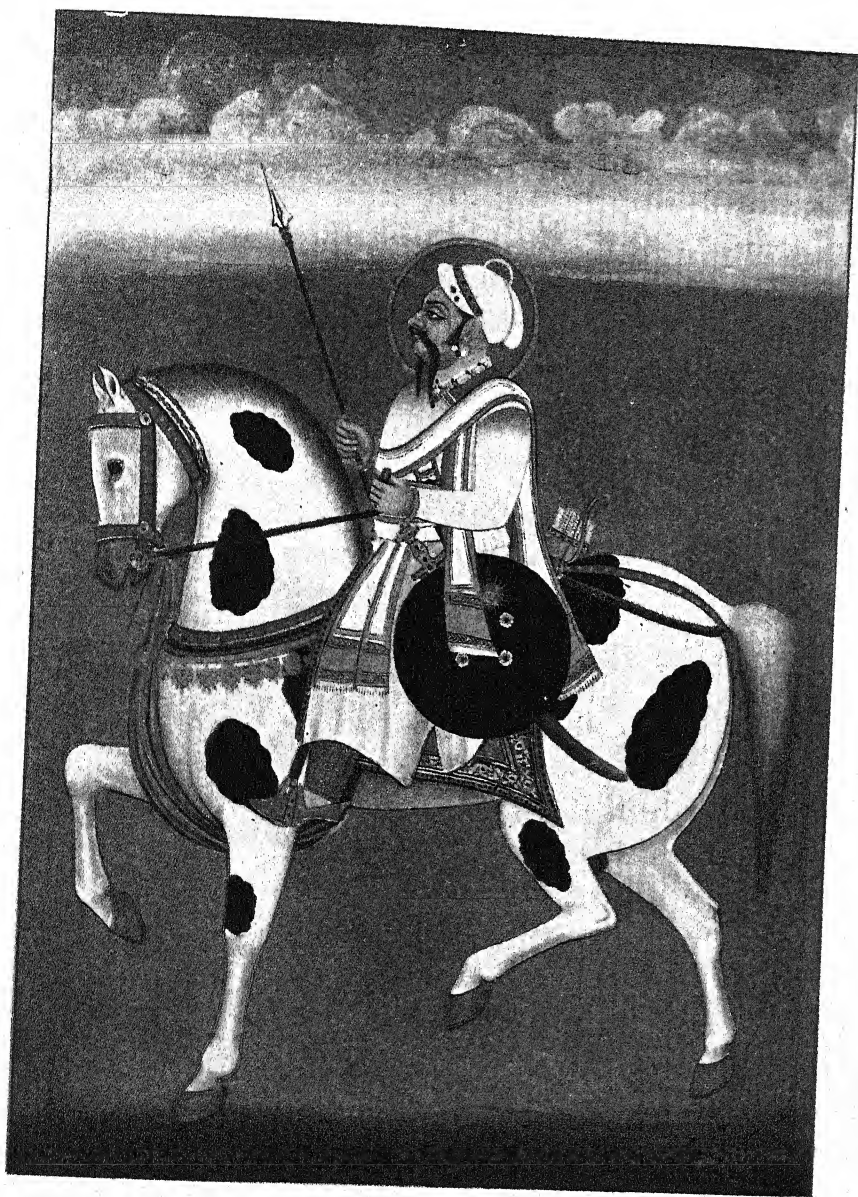
वि० सं० १५८९ (ई० स० १५३२) में जिस समय गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने मेवाड़ पर चढ़ाई की, उस समय मालदेवजी ने भी अपनी राठोड़-वाहिनी को उसके मुकाबले में भेज कर राना विक्रमादित्य की अच्छी सहायता की।

८ चंगावडा (जोधपुर परगने का) चारणों को और ६ काकेलाव व्यासों का (जोधपुर परगने का), १० अनन्तवासणी (सोजत परगने का) ब्राह्मणों को। इसी प्रकार इनके अन्य गाँवों के दान का उल्लेख भी मिलता है। परन्तु इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

१. उस समय जैतारण, पौकरण, फलोदी, बाहड़मेर, कोटड़ा, खेड़, महेवा, सिवाना और मेड़ता आदि के स्वामी, समय उपस्थित होने पर केवल सैन्य आदि से जोधपुर-नरेश की सहायता कर दिया करते थे। परन्तु अन्य सब प्रकार से वे अपने-अपने अधिकृत प्रदेशों के स्वतंत्र शासक थे।

इसके अलावा भाद्राजन आदि के सींघल तो पहले से ही मेवाड़वालों से सम्बन्ध रखने लगे थे। परन्तु इन दिनों मेड़तावालों का सम्बन्ध भी उनसे बढ़ गया था। अजमेर, जालोर और नागौर पर मुसलमानों का अधिकार था।

२. कहीं-कहीं पर इस सहायता का चित्तौड़ के 'दूसरे शाके' के समय अर्थात् वि० सं० १५६१ (ई० स० १५३४) में दिया जाना लिखा है।



१६. राव मालदेवजी

वि० सं० १५८६-१६१६ (ई० सं० १५३२-१५६२)

इसके बाद जब नागोर के शासक दौलतख़ाँ ने मेड़ते पर अधिकार करने के इरादे से वीरमदेव पर चढ़ाई की, तब राव मालदेवजी ने सेना-सहित हीरावाड़ी में पहुँच, वहाँ पर अपना शिविर कायम किया और वहाँ से आगे बढ़ नागोर पर

१. जिस समय रावजी के विजयी सैनिकों ने नागोर विजय कर इधर-उधर के गाँवों को लूटना प्रारम्भ किया, उस समय हीरावाड़ी में सेनापति जैता का मुकाम होने से वहाँ पर किसी ने भी गड़बड़ नहीं की। इससे प्रसन्न होकर वहाँ के मुख्य पुरुषों ने अपनी कृतज्ञता के प्रदर्शनस्वरूप उक्त सेनापति को १५,००० रुपयों की एक थैली भेंट की। इसी द्रव्य से रजलानी गाँव के समीप की बावली बनवाई गई थी। यह बावली इस समय भूतों की बावली के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें इसकी समाप्ति के समय का वि० सं० १५६७ (ई० सं० १५४०) का एक लेख लगा है।

इस लेख के पूर्व भाग में १७ श्लोक हैं। इनमें देवताओं आदि की स्तुति है। परन्तु दूसरे भाग में—

“इति श्री विक्रमायीत साके १४४० संवत् १५६७ वर्षे काती वदि १५ दिने रउबारे राज श्री मालदेवराःराठड रा वारा वावडी रा कमठण ऊधरता राजी श्री रिणमल राठवड़ गेत्ते (गोत्रे) तत् पुत्र राजी अखैराज, अखैराज सूतन राज श्री पंचायण पंचायण सूतन राजश्री जैताजी वावड रा कमट (ठा) ऊधंता—”

लिखकर आगे जैता के कुटुम्बियों के नाम दिये हैं।

इसके बाद की पंक्तियों से पता चलता है कि इस बावली के कार्य का प्रारम्भ वि० सं० १५६४ की मंगसिर वदी ५ रविवार को हुआ था। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि इसके बनाने में १५१ कारीगरों के साथ-साथ १७१ पुरुष और २२१ स्त्रियाँ मजदूरी का काम करती थीं।

इसी लेख में आगे उक्त बावली के बनवाने में जो सामान लगा है, उसकी सूची दी है। उसे भी हम यहाँ पर उद्धृत कर देना उचित समझते हैं—

१५ मन सूत, ५२० मन लोहा (पाउओं—Clamps और गोलियों के लिये। ये गोलियाँ खोदनेवालों के हथौड़ों के मुँह पर लगाई जाती थीं। आज भी यहाँ पर यह रिवाज प्रचलित है। इससे हथौड़ा खराब नहीं होता।) साथ ही इस लोहे को आढावला (अर्बली) पहाड़ से उक्त स्थान तक लाने के लिये ३२१ गाड़ियों की ज़रूरत हुई थी; और २५ मन घी (सामान लानेवाली उक्त गाड़ियों के पहियों में देने के लिये) तथा १२१ मन सन (रस्से वगैरह के लिये) काम में लाया गया था। इनके अलावा २२१ मन पोस्त, ७२१ मन नमक, ११२१ मन घी, २५५५ मन गेहूँ, ११,१२१ मन दूसरा नाज और ५ मन अफीम कारीगरों और मजदूरों के खाने में खर्च हुई थी। इस लेख में शक सर्व्वत् १४४० अशुद्ध है। वास्तव में श० सं० १४६२ होना चाहिए। इसी प्रकार कार्तिक वदि अमावास्या को रविवार न होकर शुक्रवार था। हाँ, कार्तिक सुदि १५ को रविवार अवश्य था। लेख में १५ का अंक भी पूर्णिमा का ही द्योतक है। आगे इसी लेख में वि० सं० १५६४ की मंगसिर वदी ५ को रविवार लिखा है। परन्तु वास्तव में उस रोज मंगलवार आता है। (लेख की छाप इस समय पास न होने से इस विषय में कुछ नहीं लिख सकते।)

मारवाड़ का इतिहास

अधिकार कर लिया। यह सूचना पा दौलतख़ाँ लौटकर इनके मुकाबले को आया। परन्तु अंत में उसे हारकर अजमेर की तरफ़ भागना पड़ा। यह घटना वि० सं० १५६१ (ई० सन् १५३४) के पूर्व की है।

इस प्रकार नागोर पर कब्ज़ा हो जाने के बाद शत्रु के आक्रमण से उसकी रक्षा करने के लिये उसके इर्द-गिर्द के प्रदेशों में थाने बिठला दिए गए। यद्यपि इसके कुछ दिन बाद दौलतख़ाँ ने एक बार नागोर विजय का मार्ग साफ़ करने के लिये भावँडा गांव के थाने पर हमला भी किया, तथापि हर समय सावधान रहनेवाली राठोड़-सेना के सम्मुख उसे सफलता नहीं मिली।

वि० सं० १५६१ (ई० सं० १५३५) में वीरमदेव ने गुजरात के बादशाह बहादुरशाह की तरफ़ के हाकिम शमशेरलमुल्क को हराकर अजमेर पर अधिकार कर लिया। जब इस बात की सूचना मालदेवजी को मिली, तब इन्होंने वीरमदेव से कहलाया कि तुम इस नगर को हमें सौंप दो। वरना यदि गुजरात के बादशाह की सेना ने इस पर दुबारा चढ़ाई की, तो तुम्हारे लिये इसकी रक्षा करना कठिन हो जायगा। परन्तु उसने इस बात को न माना। इससे रावजी अप्रसन्न हो गए और इन्होंने अपने सेनापति जैता और कूँपों की अध्यक्षता में मेड़ते पर सेना भेज दी।

इसी लेख में इस बावड़ी के बनवाने में १,२१,१११ फदिए खर्च होना लिखा है और इतिहास में १५,००० रुपयों का उल्लेख है। इससे अनुमान होता है कि उस समय १ रुपये के करीब ८ फदिये आते थे। इस हिसाब से एक फदिया दो आने के करीब माना जा सकता है। परन्तु आजकल साधारणतः फदिए को एक आने के बराबर मानते हैं।

१. ख्यातों में लिखा है कि नीतिचतुर मालदेवजी ने स्वयं ही दौलतख़ाँ को उसके हाथी की याद दिलाकर वीरमदेव को दण्ड देने के लिये उकसाया था। (जब राव गोंगाजी के समय उनके और दौलतख़ाँ के बीच युद्ध हुआ था, तब दौलतख़ाँ की सेना का मुख्य हाथी भागकर मेड़ते चला गया था और वीरमदेव ने उसे पकड़ लिया था) परन्तु जब दौलतख़ाँ मेड़ते पर अधिकार करने की चेष्टा करने लगा, तब वीरम ने मालदेवजी से सहायता की प्रार्थना की और इसी से इन्होंने मौका देख नागोर पर अधिकार कर लिया।

२. इस युद्ध में राठोड़ अखैराज का पौत्र (पंचायण का पुत्र) अचलसिंह मारा गया। यह बड़ा वीर था और नागोर-विजय के समय इसने वहाँ के क़िले के दरवाज़े उतरवाकर जोधपुर भेज दिए थे।

३. इसका जन्म वि० सं० १५३४ की मँगसिर सुदि १४ को हुआ था।

४. मुँहणोत नैणसी ने वीरमदेव का परमारों से अजमेर लेना लिखा है। वह ठीक नहीं प्रतीत होता।

५. इसका जन्म वि० सं० १५५६ की मँगसिर सुदी १२ को हुआ था।

यह देख वीरमदेव भी युद्ध के लिये तैयार हो गया। परन्तु अन्त में लोगों के समझने से वह मेड़ता छोड़कर अजमेर चला गया और मेड़ते पर मालदेवजी का अधिकार हो गया।

उपर्युक्त घटना के अवसर पर रावजी ने राठोड़ वरसिंह के पौत्र सहसा को रीयाँ की जागीर दी थी। इससे वीरम उससे असंतुष्ट था। एक रोज जिस समय वीरम वींटली (अजमेर) के किले पर खड़ा था, उस समय उसकी दृष्टि दूर से रीयाँ की पहाड़ी पर जा पड़ी और साथ ही पहले की घटना के याद आ जाने से उसके हृदय में प्रतीकार की आग धधक उठी। इसीसे उसने लोगों के समझाने पर कुछ भी ध्यान न देकर रीयाँ पर चढ़ाई कर दी। परन्तु जैसे ही यह समाचार नागौर में मालदेवजी को मिला, वैसे ही इन्होंने अपनी सेना को सहसा की सहायता के लिये भेज दिया। यद्यपि वीरम ने रीयाँ के पास पहुँच बड़ी वीरता से युद्ध किया, तथापि मालदेवजी की विशाल सेना के आ जाने से वह सफल न हो सका। सहसा सम्मुख रण में मारा गया और वीरम लौट कर अजमेर चला गया।

इस घटना के बाद मालदेवजी ने अपने सेनापति जैता और कूपा को सेना लेकर अजमेर पर चढ़ जाने और वीरम को हटा कर वहाँ पर अधिकार कर लेने की आज्ञा दी। यद्यपि इन दोनों के वहाँ पहुँचने पर वीरम ने भी बड़ी वीरता से इनका सामना किया, तथापि अन्त में उसे अजमेर छोड़ना पड़ा और वहाँ पर राव मालदेवजी का अधिकार हो गया। ये सारी घटनाएँ भी वि० सं० १५६१ (ई० स० १५३५) में ही हुई थीं।

इस प्रकार अजमेर के भी हाथ से निकल जाने पर वीरम डीडवाने की तरफ चला गया। परन्तु रावजी की सेना ने फिर भी उसका पीछा किया। इससे दोनों के बीच फिर एक बार घोर युद्ध हुआ। अंत में डीडवाने पर भी राव मालदेवजी का अधिकार हो गया। इसके बाद वीरम फतैपुर-भूँकराँ की तरफ खाना हुआ। परन्तु मार्ग में जिस समय वह नराणा नामक गाँव में पहुँचा, उस समय वहाँ के सेखावत (कछुवाहा) रायमल ने वीरम का बहुत कुछ आदर-सत्कार कर उसे अपने पास रख लिया। करीब एक वर्ष तक वीरम वहीं रहा। इसके बाद उसने बोयल और वणहड़ा नाम के गाँवों पर अधिकार कर वहाँ पर अपना निवास कायम किया।

१. वि० सं० १५७५ (ई० स० १५१८) का, इसके पिता तेजसी की मृत्यु के समय का एक लेख रीयाँ की गढ़ीवाली पहाड़ी के उत्तर में मिला है।

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १५६३ (ई० सं० १५३६) में मालदेवजी का विवाह जैसलमेर के रावल की कन्या से हुआ। यद्यपि इस अवसर पर रावल लूणाकरणी ने इनको मारने

१. इस रानी का नाम उमादे था। यह जैसलमेर के रावल लूणाकरणी की कन्या थी। विवाह की रात्रि को ही घटनावश यह रानी रावजी से रूठ गई और इनके बहुत कुछ अनुनय विनय करने पर भी इसने जीते जी अपना मान नहीं छोड़ा। वि० सं० १५६६ (ई० सं० १५३९) में अजमेर के डेरे पर एक बार रावजी की आज्ञा से बारठ ईश्वरदास के अत्यधिक अनुनय विनय करने पर उमादे का मान कुछ नरम हो गया था। परन्तु उसी अवसर पर रावजी को बीकानेर की चढ़ाई का प्रबन्ध करने के लिये जोधपुर आना पड़ा। अतः वह बात वहीं रुक गई। इसके बाद वि० सं० १५६६ (ई० सं० १५४२) में जब रावजी को अपने विरुद्ध शेरशाह की चढ़ाई की सूचना मिली, तब इन्होंने ईश्वरदास को लिखा कि तुम उमादे को तो हिफाजत के साथ अजमेर से जोधपुर ले आओ और वहाँ के किले में शीघ्र ही युद्ध-सामग्री एकत्रित की जाने का प्रबंध करवा दो। यह समाचार सुन उमादे ने ईश्वरदास से कहा कि शत्रु का आगमन जान लेने के बाद मेरा किला छोड़ कर चला जाना बिल्कुल अनुचित होगा। इससे मेरे दोनों कुलों अर्थात् नैहर और सुसराल पर कलंक लगेगा। अतः आप रावजी को लिख दें कि वह यहाँ का सब प्रबंध मुझी पर छोड़ दें। वह यह भी विश्वास रखें कि शत्रु का आक्रमण होने पर मैं राना साँगा की रानी हाडी कर्मावती के समान अग्नि में प्रवेश न कर शत्रु को मार भगाऊँगी और यदि इसमें सफल न हुई तो वीर चत्रियाणी की तरह सम्मुख रण में प्रवृत्त होकर प्राण त्याग कलूँगी। जब रावजी को पत्र द्वारा इस बात की सूचना मिली, तब इन्होंने ईश्वरदास को लिखा कि तुम हमारी तरफ से रानी को कह दो कि अजमेर में तो हम स्वयं शेरशाह से लड़ेंगे। इसलिये वहाँ का प्रबंध तो हमारे ही हाथ में रहना उचित होगा। हाँ, जोधपुर के किले का प्रबंध हम तुम्हें सौंपते हैं। अतः तुम शीघ्र ही यहाँ चली आओ। रानी ने भी अपने पति की इस आज्ञा को मान लिया और वह अजमेर का किला रावजी के सेनापतियों को सौंप जोधपुर की तरफ़ रवाना हो गई। परन्तु जैसे ही यह समाचार रावजी की अन्य रानियों को मिला, वैसे ही वे सौतिथा डाह से घबरा गई। अतः उन्होंने उसके जोधपुर आगमन में बाधा डालने के लिये बारठ आसा को रवाना किया। यह आसा बारठ ईश्वरदास का चचा था। रानियों ने इसे बहुत कुछ लालच देकर इस कार्य के लिये तैयार किया था।

इसके बाद जिस समय उमादे की सवारी जोधपुर से १५ कोस पूर्व के कोसाना गांव में पहुँची, उस समय आसा भी उसकी पीनस के पास जा पहुँचा। संयोगवश ईश्वरदास उस समय कहीं इधर-उधर गया हुआ था। इससे मौका पाकर आसा ने यह दोहा ज़ोर से पढ़ा—

“माँन रखे तो पीव तज, पीव रखे तज माँन।

दोय गयंदन बंध ही, एकण खंभे ठाँण।”

राव मालदेवजी

का इरादा कर लिया था, तथापि किसी तरह यह बात लूणकरणी की रानी को मालूम हो गई। अतः उसने अपने पुरोहित राघवदेव के द्वारा इसकी सूचना राव मालदेवजी के पास भिजवा दी। इससे यह सावधान हो गए और वहांवालों को इन पर घात करने का मौका ही न मिला।

पहले लिखे अनुसार जिस समय मालदेवजी ने नागौर पर चढ़ाई की थी, उस समय सिवाना और मल्लानी के सरदारों को भी सहायतार्थ बुलवाया था। परंतु उन लोगों ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसीसे वि० सं० १५६५ (ई० सन् १५३८) में इन्होंने सिवाना गांव पर अधिकार करने के लिये एक सेना भेज दी।

यह सुन रानी ने कोसाने में ही डेरा डालने की आज्ञा दे दी और आगे जाने से साफ़ इनकार कर दिया। यद्यपि ईश्वरदास ने आकर फिर भी अनेक तरह से समझाया और शेरशाह की सेना का भय भी दिखलाया, परंतु मानवती और वीरपत्नी उमादे ने एक बात की भी परवा न की। इसके बाद उसने रावजी को कहलवा दिया कि मुझे यहीं रहने की आज्ञा दी जाय। साथ ही यदि कुछ सेना भी दे दी जाय, तो मैं यहीं से जोधपुर के किले की रक्षा का प्रबंध कर सकती हूँ। इस पर राव मालदेवजी ने जोधपुर के हाकिम को कुछ फौज देकर वहां का प्रबंध करने के लिये भेज दिया। अंत में जब शेरशाह विजयी हुआ, तब युद्ध से लौटे हुए बहुत-से राठोड़ कोसाने में आकर जमा हो गए। कुछ दिन बाद जब ख्वासख़ाँ ने जोधपुर पर भी अधिकार कर लिया, तब वह कोसाने की तरफ़ चला। परंतु रानी उमादे के सरदारों के जमघट को देख उसकी युद्ध करने की हिम्मत न हुई। अंत में वि० सं० १६०० (ई० स० १५४३) में वह अपनी सेना के पड़ाव के स्थान पर ख्वासपुरा-नामक गांव बसाकर वापस लौट गया। यह गांव कोसाने से दो-तीन कोस के फासले पर अब तक आबाद है। इस गांव को बसाने के पूर्व उसने रानी उमादे से भी इस विषय में सम्मति ले ली थी।

वि० सं० १६०४ (ई० स० १५४७) में यह रानी अपने बड़े पुत्र राम (यह मालदेवजी की कछवाहा-वंश की रानी के गर्भ से जन्मा था। परंतु उमादे इसे अपना दत्तक पुत्र समझती थी) के साथ गूंदोज चली गई और वहां से उसी के साथ केलवा जाकर वहीं रहने लगी। परंतु वि० सं० १६१६ (ई० स० १५६२) में जब इसे मालदेवजी के स्वर्गवास की सूचना मिली, तब इसने वहीं पर सती होकर पति का अनुगमन किया।

१. किसी-किसी ख्यात में इस बात का पहले पहल उमादे को मालूम होना और उसका राघवदेव के द्वारा राव मालदेवजी के पास सूचना भिजवाना लिखा है।

किसी-किसी ख्यात में इस रानी का कोसाने से रामसर जाकर कुछ दिन वहां रहना भी लिखा मिलता है। जैसलमेर की तवारीख में उमादे का जैसलमेर से ही राम के साथ मेवाड़ जाना लिखा है।

२. राव मालदेवजी जब विवाह कर सकुशल मारवाड़ को लौटे, तब अपने साथ इस राघवदेव को भी ले आए थे। इसका पुत्र चंडू ज्योतिषशास्त्र का अच्छा ज्ञाता था। उसका चलाया हुआ चांद्रपक्षीय चंद्र-पंचांग अब तक मारवाड़ से प्रकाशित होता है और लोगों में आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

मारवाड़ का इतिहास

वहां का राना ढूँगरसी^१ भी बड़ा वीर था। अतः इस सेना को विशेष सफलता नहीं मिली। यह देख रावजी ने स्वयं ही उस (सिवाना) पर चढ़ाई की और वहां के किले को घेरकर उसका सारा बाहरी संबंध काट दिया। इससे जब किले का भीतरी सामान समाप्त हो गया, तब ढूँगरसी को किला छोड़कर निकल जाना पड़ा और उस पर मालदेवजी का अधिकार हो गया। इसी विजय का सूचक एक लेख उक्त किले में विद्यमान है।

वि० सं० १५६५ (ई० सन् १५३८) में जालोर के शासक बिहारी पठान सिकंदरख़ाँ ने, जिसे बल्लोचों ने हराकर भगा दिया था, राव मालदेवजी से सहायता की प्रार्थना की। इस पर इन्होंने उसे अपने पास बुलाकर दुनाड़ा नामक गांव जागीर में दे दिया। परंतु कुछ समय बाद ही सिकंदरख़ाँ को मालदेवजी की तरफ से संदेह हो गया, अतः उसने यहां से भागकर इधर-उधर उपद्रव मचाने का प्रबंध किया। इसकी सूचना पाते ही राव मालदेवजी ने अपनी सेना उसके पीछे भेज दी। सिकंदरख़ाँ के सहायक लोदी पठान तो गुजरात की तरफ भाग गए, परंतु सिकंदरख़ाँ पकड़ा जाकर कैद कर लिया गया और इसी कैद में उसकी मृत्यु हुई^३।

वि० सं० १५६६ (ई० सन् १५३९) में जिस समय मालदेवजी बीकानेर पर चढ़ाई करने का प्रबंध कर रहे थे, उसी समय बंगाल में बादशाह हुमायूँ और शेरख़ाँ

१. यह जैतमाल राठोड़ था।

२. स्वति श्रे (श्री) गणेश प्रा (प्र) सादातु (त्) समतु (संवत्) १५६४ वर्षे आसा (षा) ढ वदि ८ दिने बुधवा (स) रे मह (हा) राज (जा) धिराज मह (हा) राय (ज) श्रीमालदे (व) विजै (जय) राजे (ज्ये) गढसि (-)

वणे (वाणो) लिये (यो) गढरि (री) कु (कू) चि मं (मां) गलिये देवे मादाउतु (भदावत) रे हाथि (थ) दि (दी) नी

गढ थं (स्तं) भेराज पंचा (चो) ली अचल गदाधरे (ण) तु रावले वहीदार लिष (खि) तं सूत्रधार करमचंद परलिय

सूत्रधार केसव।

यद्यपि इस लेख में संवत् १५६४ लिखा है, तथापि इसको मारवाड़ का उस समय का प्रचलित आचारादि संवत् मान लेने से चैत्रादि संवत् १५६५ आता है। साथ ही लेख में यद्यपि अष्टमी तिथि ही पढ़ी जाती है, तथापि बुधवार सप्तमी को आता है।

३. तारीखे पालनपुर, जिल्द १, पृ० ६२-६३।

के बीच भगड़ा उठ खड़ा हुआ। इस मौके से लाभ उठाने के लिये इन्होंने भी बीकानेर की चढ़ाई का ध्यान छोड़ पूर्व की तरफ के देश विजय करने का विचार किया। इसी के अनुसार यह अपनी सेना को सजाकर हिंदौन से आगे बढ़ गए और बयाने तक के प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया।

पहले लिखा जा चुका है कि वीरम ने बोयल और वणहड़े में अपना निवास कायम किया था। परंतु कुछ समय बाद जब वहां पर उसका प्रभाव बढ़ने लगा, तब मालदेवजी ने उसका अधिकृत प्रदेश छीन लेने के लिये अपनी सेना भेज दी। यह देख वीरम वि० सं० १५६७ (ई० सं० १५४०) में मांडू के बादशाह सुलतान क़ादिर के पास चला गया और उसकी सलाह से आगे दिल्ली के बादशाह शेरशाह के पास जाने को रवाना हुआ। मार्ग में रणथंभोर के हाकिम से उसकी मित्रता हो गई। इससे उसी के साथ वह दिल्ली जा पहुँचा। वहीं पर वि० सं० १५६८ (ई० सं० १५४१) में इसकी मित्रता बीकानेर के स्वर्गवासी राव जैतसीजी के छोटे पुत्र भीम से हुई। अतः ये दोनों मिलकर शेरशाह को मालदेवजी के विरुद्ध भड़काने लगे।

रावजी की सेना ने भी वीरम के बोयल से भाग जाने पर टोंक और टोडे की तरफ के सोलंकीयों पर चढ़ाई की और उनसे दंड लेकर आगे जौनपुर (मेवाड़) में अपनी चौकी कायम की। फिर वहां से पूरब की तरफ जाकर सांभर, कासली, फ़तेपुर, रेवासा, छोटा उदैपुर (जैपुर राज्य में), चाटसू, लवाण और मलारणा आदि पर अधिकार कर लिया और अनेक स्थानों पर रक्षा के लिये क़िले भी बनवा लिए। इन कार्यों से निपटकर इस सेना ने सांचोर के चौहानों को हराया और फिर गुजरात की तरफ राधनपुर और खाबड़ तक के प्रदेशों पर अधिकार कर नाबरा गांव को लूट लिया।

१. वी० ए० स्मिथ ने लिखा है कि ई० सं० १५३६ के जून में शेरशाह ने हुमायूँ को गंगा के किनारे चौसा में (जो शाहाबाद ज़िले में है) हराकर भगा दिया था (ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ३२६)।

२. इस प्राचीन छप्पय से इन विजयों की पुष्टि होती है—

जोधपुरे ऊठिये चढ़े सेना चतुरंगों।
समियाणौ घूघरोट अणी चाडियौ अलंगों।
भाद्राजण पाधरी कियौ हय पाय उलंडे।
जालोरी सांचोर धरात्रय खाबड़ खंडे।
मरुधराधीश भ्रम मालदे वैराई भाखर वले।
दीधा प्रथम भड मारकै कलह पाण नाबर कले।

मारवाड़ का इतिहास

इसी बीच मेवाड़ के सरदारों ने दासीपुत्र बगवीर से दूषित होते हुए चित्तौड़ के राजवंश को बचाने का इरादा किया और इसी के अनुसार महाराना विक्रमादित्य के छोटे भ्राता उदयसिंह को चित्तौड़ की राजगद्दी पर विठाने का प्रबंध करने लगे। परंतु यह कार्य किसी बड़े पड़ोसी नरेश की सहायता के बिना असंभव था। अतः उन्होंने उस समय के प्रतापी नरेश राव मालदेवजी से इस कार्य में सहायता प्राप्त करने का विचार किया, और इसके लिये पाली के ठाकुर सोनगरा चौहान अखैराज को उनसे प्रार्थना करने को भेजा। रावजी ने भी उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपने सेनापति कूपा और खीवकरण को लिख दिया कि वे शीघ्र जाकर मेवाड़ की गद्दी प्राप्त करने में उदयसिंहजी की सहायता करें। अंत में राठोड़ों और राजभक्त सीसोदियों की सहायता से बगवीर भाग गया, और महाराना उदयसिंह मेवाड़ की गद्दी के स्वामी हुए। इसके बाद जब महाराना उदयसिंहजी ने राठोड़ सरदारों को विदा किया, तब इस उपकार के बदले मालदेवजी की भेंट के लिये ४०,००० फीरोज़ी सिक्के और वसंतराय नामक एक हाथी भेजा। यह घटना वि० सं० १५६७ (ई० सं० १५४०) की है।

राव मालदेवजी का एक विवाह खैरवे के स्वामी भाला जैतसिंह की कन्या से हुआ था। इसीसे एक बार यह शिकार करते हुए अपनी सुसराल जा पहुँचे, और वहाँ पर इन्होंने अपनी छोटी साली के रूप और गुणों को देख उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की। इस पर इनके श्वसुर ने भी इसे अंगीकार कर लिया और इस कार्य की तैयारी के लिये दो मास की अवधि चाही। परंतु जब मालदेवजी लौटकर जोधपुर चले आए, तब उसने गुढे में जाकर चुपचाप उस कन्या का विवाह मेवाड़ के

१. यह महाराना रायमल के पुत्र पृथ्वीराज का उपरसी-पुत्र था।

२. यह मारवाड़-नरेश का सामंत था।

३. उस समय कूपा और नींबाज ठाकुर खीवकरण २,५०० सवारों के साथ मदारिया के थाने पर थे। जिस समय बगवीर ने मेवाड़ की गद्दी दबाई थी, उस समय मालदेवजी ने अपनी सेना को भेजकर गोदवाड़, बदनोर, मदारिया, कोसीथल आदि मेवाड़ के बहुत-से स्थानों पर अधिकार कर लिया था, और उन्हीं की रक्षा के लिये मदारिये में राठोड़ों का प्रबल थाना रक्खा गया था।

४. मालदेवजी के सामंत सोनगरा अखैराज और जैताजी ने भी इस कार्य में मेवाड़वालों को सहायता दी थी।

५. मालदेवजी ने ही इसे खैरवे की जागीर दी थी।

राव मालदेवजी

महाराणा उदयसिंहजी के साथ कर दिया। इसकी सूचना पाकर मालदेवजी को बड़ा क्रोध आया और इन्होंने इसका बदला लेने के लिये अपनी सेना को खैरवे और कुंभलगढ़ पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। यद्यपि कुंभलगढ़ खास पर तो इनका अधिकार न हो सका, तथापि वहां तक का गोदवाड़ का सारा प्रदेश और खैरवा इनके अधिकार में आ गया।

वि० सं० १५६८ (ई० सं० १५४१) में राव मालदेवजी ने २०,००० सैनिकों को साथ लेकर बीकानेर पर चढ़ाई की। इसकी सूचना पाकर वहां के राव जैतसीजी भी इनके मुकाबले को चले। मार्ग में जब दोनों सेनाएँ एक दूसरी के करीब पहुँचीं, तब पहली ने 'पही' नामक गांव में और दूसरी ने 'सूवा' में अपना डेरा डाल दिया। परंतु रात्रि में ही किसी आवश्यक कार्य के लिये जैतसीजी को बीकानेर लौटने की आवश्यकता प्रतीत हुई। यद्यपि वह अपने दो-एक विश्वस्त सरदारों से प्रातःकाल तक लौट आने का वादा कर चुपचाप ही रवाना हुए थे, तथापि किसी तरह इस बात की खबर उनके अन्य सरदारों तक भी पहुँच गई। इस पर वे सब किसी भावी आशंका से घबरा गए और उनमें से बहुत-से अपने सैनिकों के साथ रात्रि में ही युद्धस्थल छोड़ इधर-उधर निकल गए। राव मालदेवजी के गुप्तचरों ने भी यथासमय इसकी सूचना अपने सेनानायकों के पास पहुँचा दी थी। अतः जैसे ही प्रातःकाल के अँधेरे में जैतसीजी लौटकर अपने शिविर 'सूवा' में पहुँचे, वैसे ही राव मालदेवजी की सेना ने आगे बढ़ उन्हें घेर लिया। थोड़ी देर के युद्ध में ही राव जैतसीजी तो वीरता से लड़-कर मारे गए और राव मालदेवजी ने बीकानेर की तरफ प्रयाण किया। इसकी सूचना पाते ही बीकानेर के किलेदार ने जैतसीजी के पुत्र कल्याणमलजी और भीमराज को मग उनके कुटुम्बवालों और २०० सैनिकों के सिरसे की तरफ भेज दिया। जोधपुर की सेना ने बीकानेर पहुँच वहां के किले को घेर लिया। तीन दिन तक तो किलेवाले किले में रहकर ही इनका सामना करते रहे। परंतु चौथे दिन वे लोग बाहर निकल सम्मुख युद्ध में प्रवृत्त हुए। अंत में उन सबके मारे जाने पर किला जोधपुरवालों के

-
१. ख्यातों में लिखा है कि राव जैतसीजी ने उन्हीं दिनों पठानों से २,००० घोड़े खरीदे थे। परंतु उनके रुपये अभी तक बाकी थे। अतः जब पठानों को जैतसीजी के युद्ध में जाने का समाचार मिला, तब वे वहां पहुँच उनसे उन रुपयों के बाबत आग्रह करने लगे। इसी झगड़े को तय करने के लिये राव जैतसीजी को बीकानेर लौटने और अपने कर्मचारियों से उनका हिसाब साफ करवा देने की आवश्यकता आ पड़ी थी।

मारवाड़ का इतिहास

हाथ आ गया। इसके बाद इन्होंने आगे बढ़ भूमण्डल पर भी अधिकार कर लिया। इस युद्ध में राठोड़ कुँपा ने खास तौर पर भाग लेकर वीरता दिखलाई थी। इससे प्रसन्न होकर राव मालदेवजी ने भूमण्डल की जागीर के साथ ही बीकानेर के प्रबंध का अधिकार भी उसे ही दे दिया।

वि० सं० १५६६ (ई० स० १५४२) में हुमायूँ (सिन्ध की तरफ से उच्च होता हुआ) राव मालदेवजी से मदद प्राप्त करने की आशा से मारवाड़ की तरफ चला और मार्ग में तीन दिन देरावर के किले में रहा।

वहाँ से वह फलोदी होकर देईभरें नामक गाँव में पहुँचा और जोगीतीर्थ पर मुकाम किया। इस पर राव मालदेवजी ने भी अतिथि के योग्य ही खिलअत और मोहरें (अशरफियाँ) आदि भेजकर उसका स्वागत किया, और हर प्रकार से मदद देने का वादा कर उसे बीकानेर का परगना खर्च के लिये सौंप देने की प्रतिज्ञा की। इसी बीच शेरख़ाँ ने अपना वकील भेज मालदेवजी को अपनी तरफ मिलाने की कोशिश शुरू

१. यह शेखावाटी प्रान्त में है।

२. उस समय राव मालदेवजी का प्रताप बहुत ही बढ़ाचढ़ा था। 'तुजुक्त जहांगीरी' की भूमिका में लिखा है कि 'राव मालदेव एक बहुत बड़ा प्रभावशाली राजा था। उसकी सेना में ८०,००० सवार थे। यद्यपि राना सांगा, जो कि बाबर से लड़ा था, धन और साज-सामान में मालदेव की समानता करता था, तथापि राज्य के विस्तार और सेना की संख्या में राव मालदेव उससे बढ़कर था। इसके अलावा जब-जब मालदेव के सैनिकों का राना सांगा से मुकाबला हुआ, तब-तब प्रत्येक बार विजय मालदेव के ही हाथ रही।'—(देखो पृ० ७)

'तबक़ाते अकबरी' में लिखा है कि बादशाह हुमायूँ लाचार होकर मालदेव की तरफ, जो उस समय हिंदुस्थान के बड़े राजाओं में था और जिसकी ताक़त और फौज की बराबरी दूसरा कोई राजा नहीं कर सकता था, रवाना हुआ।—(देखो पृ० २०५)

३. यह क़िला उस समय मारवाड़ और जैसलमेर की सरहद पर था और इस पर मालदेवजी का अधिकार था। हुमायूँ का आफ़ताबची जौहर अपनी 'तज़करे अल् वाक़यात' नामक पुस्तक में लिखता है कि 'देरावर के क़िले को देखकर शेख़ अलीबेग ने बादशाह से पूछा कि क्या यह क़िला मैं ले लूँ? इस पर उसने जवाब दिया कि इस क़िले को लेने से तो मैं दुनिया का बादशाह न हो सकूँगा, पर राव मालदेव ज़रूर ही नाराज़ हो जायगा' (अंगरेज़ी अनुवाद पृ० ५३)।

४. यह गाँव जोधपुर से ४ कोस ईशान कोण में है।

५. हुमायूँ की बहन गुलबदन बेगम-लिखित (हुमायूँ-नामा) इतिहास में इस घटना का उल्लेख है। (नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित हिंदी-अनुवाद, पृ० १०२)।

की। इससे हुमायूँ को संदेह हो गया और वह फलोदी होता हुआ उमरकोट की तरफ चला गया।

१. फारसी तवारीखों में लिखा है कि शेरशाह के प्रलोभनों से राव मालदेवजी ने हुमायूँ को पकड़कर उसके हाथ सौंप देने का इरादा कर लिया था और इसी से जब हुमायूँ उमरकोट की तरफ भागने लगा, तब इन्होंने उसको पकड़ने के लिये अपनी सेना उसके पीछे रवाना की। परंतु इसमें उसे असफल हो लौटना पड़ा।

मारवाड़ की हस्तलिखित ऐतिहासिक पुस्तकों में यह घटना इस प्रकार लिखी मिलती है—

शेरशाह से हारकर जब बादशाह हुमायूँ मालदेवजी से सहायता प्राप्त करने को जोधपुर के निकट आकर ठहरा, तब रावजी ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। इसके बाद हुमायूँ ने जोधपुर के निकट रहना अनुचित समझ फलोदी में अपना मुकाम करने की इच्छा प्रकट की। इसे इन्होंने भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। जब इसी के अनुसार वह देईभर से फलोदी को रवाना हुआ, तब मार्ग के ग्रामों में होनेवाले उपद्रव को रोकने के लिये इन्होंने अपने कुछ सैनिक भी उसके पीछे भेज दिए। परन्तु शाही लश्कर को इससे उलटा यह संदेह हो गया कि शायद ये लोग मार्ग में हमको मारकर शाही खज़ाना लूटने को ही साथ हुए हैं।

इसके बाद एक दुर्घटना और हो गई। जिस समय हुमायूँ फलोदी पहुँचा, उस समय उसके कुछ सैनिकों ने मिलकर एक गाय को मार डाला। इससे रावजी की सेना में घोर असंतोष फैल गया। यह देख हुमायूँ का संदेह और भी बढ़ गया और वह फलोदी को छोड़ सिंध की तरफ चल पड़ा। परन्तु रावजी के सैनिकों ने समझा कि हिन्दुओं के धर्म का अपमान करने को ही शाही सैनिकों ने यह गोवध किया है। इससे वे लोग उत्तेजित हो गए और उन्होंने जाते हुए बादशाह का पीछा किया। सातलमेर में पहुँचते-पहुँचते दोनों पक्षों के बीच मुठभेड़ हो गई। परन्तु अंत में अपने पुरुषों की संख्याधिकता के कारण हुमायूँ बचकर निकल गया और जैसलमेर होता हुआ उमरकोट जा पहुँचा।

हमारी समझ में मारवाड़ की ख्यातों का लेख ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है, क्योंकि यदि वास्तव में राव मालदेवजी शेरशाह से मिलकर बादशाह हुमायूँ को, जो कि अपने बिगड़े हुए समय में जोधपुर से ४ कोस के फासले पर ठहरा हुआ था, पकड़ना चाहते, तो न तो मालदेवजी के ८०,००० सैनिकों के व्यूहसे बचकर उसका निकल भागना ही संभव होता, न उसके फलोदी जाने के समय वे इतने थोड़े सैनिक ही उसके पीछे भेजते कि जिससे सातलमेर में इतनी आसानी से वह बचकर निकल जाता। 'अकबरनामे' के अनुसार उस समय हुमायूँ के साथ केवल २० अमीर और कुछ थोड़े अनुचर तथा सैनिक थे। उसमें यह भी लिखा है कि मालदेव के विरोध का हाल मालूम होने पर हुमायूँ ने तरदुदी बेगखाँ और मुनअमखाँ को कुछ फौज देकर हुक्म दिया कि वे लोग सामने जाकर मालदेव की सेना का मार्ग रोकें। परन्तु ये अमीर रास्ता भूलकर दूसरी तरफ निकल गए। इससे जैसे ही बादशाह फलोदी से चलकर सातलमेर के पास पहुँचा, वैसे ही उसे मालदेव की सेना दिखाई दी। इस पर बादशाह ने जनानी सवारियों को पैदल करके उनके घोड़े अपने सैनिकों को सवारी के लिये दे दिए और उनके ३ दल बनाकर फतेहअलीबेग को उसके ३-४ भाइयों के

मारवाड़ का इतिहास

पहले लिखा जा चुका है कि वीरमदेव और भीम नित्य ही शेरशाह को मालदेवजी के विरुद्ध भड़काते रहते थे। परन्तु इस हुमायूँ वाली घटना से उन्हें इसके लिये और भी अच्छा मौका मिल गया। इस प्रकार उन के बहुत कुछ कहने-सुनने और प्रलोभन देने से वि० सं० १६०० (ई० सन् १५४३) में शेरशाह ने आगरे से मालदेवजी पर चढ़ाई करदी। इसकी सूचना पाते ही ये भी अपनी सेना तैयार कर अजमेर की तरफ आगे बढ़े और उसके आने की प्रतीक्षा करने लगे। उस समय रावजी के पास ८०,०००^१ वीर योद्धा थे। जब इनके इस प्रकार तैयार होकर सम्मुख रणांगण में प्रवृत्त होने का समाचार शेरशाह को मिला, तब उसका सारा उत्साह ठंडा पड़ गया और वह मार्ग से ही लौट जाने का विचार करने लगा। परन्तु वीरमदेव आदि ने

साथ शत्रुसेना के सामने भेजा। उसने भी तत्काल वहाँ पहुँच एक तंग जगह से निकलती हुई मालदेवजी की सेना पर हमला कर दिया। इससे थोड़ी ही देर के युद्ध में राजपूत सैनिक परास्त होकर भाग गए। इसके बाद बादशाह जैसलमेर की तरफ रवाना हुआ और उसके वहाँ पहुँचते-पहुँचते रास्ता भूले हुए वे अमीर भी लौटकर उससे आ मिले।

(देखो भाग १, पृ० १८१)

परन्तु 'तबकाते अकबरी' में मालदेवजी की सेना के मुकाबले में जानेवाले शाही सैनिकों की संख्या कुल २२ ही लिखी है। यहाँ पर 'तबकाते अकबरी' की एक घटना का उल्लेख कर देना और भी उचित समझते हैं। इससे राव मालदेवजी के वीर सैनिकों की वीरता का कुछ अनुमान हो जायगा:-

'जिस समय बादशाह हुमायूँ मालदेव के इलाके से उमरकोट की तरफ रवाना हुआ, उस समय राव के दो हिन्दू जासूस शाही सेना में आए हुए थे। परन्तु जब वे पकड़े जाकर बादशाह के सामने लाए गए और बादशाह ने उनसे असली हाल जानने की कोशिश शुरू की, तब उन दोनों ने अपने को बंधन से छुड़वाकर पास में खड़े हुए दो मनुष्यों के कटार छीन लिए और तत्काल शाही सेना के १७ पुरुषों और बादशाह की सवारी के घोड़े के साथ कई अन्य घोड़ों को मारकर वे वीरगति को प्राप्त हुए।'

(देखो पृ० २०६)

गुलबदन बेगम के 'हुमायूँनामे' से भी इस बात की पुष्टि होती है।

(देखो पूर्वोक्त अनुवाद, पृ० १०३)

हुमायूँ के उमरकोट पहुँचने पर उसी की मदद से सोढा राजपूतों ने फिर से उमरकोट पर अधिकार कर लिया था।

१. 'तबकाते अकबरी' और 'तारीख़ फ़रिश्ता' में राव मालदेवजी की सेना में ५०,००० सैनिकों का होना लिखा है।

(देखो क्रमशः पृ० २३२ और जिल्द १, पृ० २२७)

उन सरदारों को भी, जिनके प्रदेशों पर मालदेवजी ने जबरदस्ती अधिकार कर लिया था, शेरशाह से मिलाया और हर तरह से उसका उत्साह बढ़ाकर उसे पीछे लौटने से रोक दिया। इसके बाद शेरशाह ने एक सुभीते के स्थान पर अपनी छावनी डाल दी और उसकी रक्षा के लिये रेत से भरे बोरो को चारों तरफ ऊपर-तले रखवाकर सुदृढ़ कोट-सा तैयार करवा लिया। करीब एक मास तक दोनों सेनाएँ मोरचे बाँधे एक दूसरे के सामने पड़ी रहीं। हाँ, समय-समय पर इन दोनों के बीच अनेक छोटे-बड़े युद्ध भी होते रहते थे, परन्तु राव मालदेवजी की वीर राठोड़वाहिनी के सामने शेरशाह की एक न चली। इससे हताश होकर वह एक बार फिर लौट जाने का विचार करने लगा। यह देख वीरम ने उसे बहुत कुछ समझाया। जब इस पर भी वह सम्मुख युद्ध में लोहा लेने की हिम्मत न कर सका, तब अंत में वीरम ने उसे यह भय दिखाया कि यदि आप इस प्रकार घबराकर लौटेंगे, तो रावजी की सेना पीठ पर आक्रमण कर आपके बल को आसानी से नष्ट कर डालेगी। परन्तु जब इतने पर भी शेरशाह युद्ध के लिये सहमत न हुआ, तब वीरमदेव ने एक कपटजाल रचा। उसने मालदेवजी के बड़े-बड़े सरदारों के नाम कुछ झूठे फरमान लिखवाकर रावजी की सेना में मिला दिए और साथ ही ऐसा प्रबंध करवा दिया कि वे सब फरमान उन सरदारों के पास न पहुँच कर रावजी के पास पहुँच गए। इससे रावजी को अपने सरदारों पर संदेह

१. मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि इधर तो वीरम ने इन फरमानों को ढालों के अन्दर की गहियों में सिलवा कर उन्हें अपने गुप्तचरों द्वारा मालदेवजी के सरदारों के हाथ बिकवा दीं और उधर रावजी को सूचना दी कि यद्यपि आपने मेरे साथ बहुत ज़्यादाती की है, तथापि मैं आपको सूचना दे देना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि आपके सारे सरदार शेरशाह से मिल गए हैं। यदि आपको विश्वास न हो तो, उनकी नई ढालों की गहियाँ फड़वाकर स्वयं देख लें। इस पर रावजी ने जब वे ढालें मँगवा कर उनकी गहियाँ खुलवाईं, तब उनमें से वे जाली फरमान निकल आए।

मारवाड़ की तबारीखों में यह भी लिखा है कि जिस समय यह कपट रचा गया था, उस समय बादशाह का मुकाम सुमेल और मालदेवजी का गिररी में था।

‘मुन्तख़िबुल्लुबाब’ में लिखा है कि ये जाली पत्र चालाकी से राव के पास पहुँचा दिए गए थे। इनमें एक पत्र गोविंद (कूँपा) के नाम का भी था। इस गोविंद (कूँपा) ने राव के युद्धस्थल से हट जाने पर पठानों से ऐसी वीरता से युद्ध किया कि उनके हजारों आदमी मार डाले। साथ ही उसके हमलों से शेरशाह की फ़ौज के पैर उखड़ गए और वह युद्धस्थल से भाग ही चुकी थी कि इतने में नई फ़ौज के साथ जलालख़ाँ जलवानी एकाएक वहाँ आ पहुँचा। इससे पठान विजयी हो गए।

(देखो जिल्द १, पृ० १००-१०१)

मारवाड़ का इतिहास

हो गया। यद्यपि सरदारों ने हर तरह से अपने स्वामी का समाधान करने की चेष्टा की, तथापि उनका संदेह निवृत्त न हो सका और यह रात्रि में ही पीछे लौट पड़े। यह देख इनके जैता, कूँपा आदि कई सरदारों ने गिररी (जैतारण परगने के गाँव) से पीछे हटने से इनकार कर दिया। उन्होंने निवेदन किया कि इसके आगे का प्रदेश तो स्वयं आपने ही विजय किया था, इसलिये यदि उसे छोड़ दिया जाय, तो हमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। परन्तु यहाँ से पीछे का देश आपके और हमारे पूर्वजों का विजय किया हुआ है, इसलिये यहाँ से हटना हमें किसी प्रकार भी अंगीकार नहीं हो सकता। इस पर भी मालदेवजी का उनके कहने पर विश्वास नहीं हुआ और ये जोधपुर की तरफ़ रवाना हो गए। यह देख जैता, कूँपा आदि कुछ सरदार १२,००० सवारों के साथ पलट पड़े और रात्रि के अंधकार में ही शेरशाह की सेना पर हमला कर देने को रवाना हुए। परन्तु भाग्य की कुटिलता से ये लोग अंधकार में मार्ग भूल गए, अतः प्रातःकाल के समय इनमें से आधे के करीब योद्धा सुमेल के पास शेरशाह के मुकाबले पर पहुँचे। यद्यपि ऐसे समय ६,००० राजपूत सैनिकों का ८०,००० पठान सैनिकों से भिड़ जाना बिल्कुल ही अनुचित था, तथापि वीर राठोड़ों ने इसकी कुछ भी परवा नहीं की और अपनी मर्यादा की रक्षा के लिये शत्रुसेना में घुसकर वह तलवार बजाई कि एक बार तो पठानों के पैर ही उखड़ गए। शेरशाह भी अपनी इस पराजय से दुःखित हो भागने को तैयार हो गया। परन्तु इतने ही में उसका एक सरदार जलालख़ाँ जलवानी एक बड़ी और ताज्जुदम फ़ौज लेकर वहाँ आ पहुँचा। राठोड़ सरदार तो पहले से ही संख्या में अल्प थे और अब तक के युद्ध में उनकी संख्या और भी अल्पतर हो चुकी थी। इससे पासा पलट गया। सारे-के-सारे राठोड़ योद्धा अपने देश और मान की रक्षा के लिये सम्मुख रण

कहीं-कहीं पत्रों के साथ ही सामान ख़रीदने के बहाने रावजी की सेना में फ़ीरोज़ी सिक्कों के भिजवा देने का भी उल्लेख मिलता है।

१. 'तबकाते अकबरी' में २०,००० सैनिक लिखे हैं। परन्तु उसमें यह भी लिखा है कि इन बीस हजार सवारों में से रात में रास्ता भूल जाने के कारण सिर्फ़ ५ या ६ हजार सवार शेरशाह की सेना के करीब पहुँचे। बड़ी घमसान लड़ाई हुई। यहाँ तक कि राजपूत घोड़ों से उतरकर शेरशाह की फ़ौज से चिमट गए और कटार तथा जमधर से ख़ूब लड़े। परन्तु शेरशाही फ़ौज बहुत ज़्यादा थी। इसी से उसने चारों ओर से घेरकर बहुत-से राजपूतों को मार डाला। इस फ़तेह के पीछे, जो शेरशाह की ताक़त से बाहर थी, वह (शेरशाह) रणथंभोर की तरफ़ रवाना हुआ।—(देखो पृ० २३२)

में जूझकर मर मिटे । जब यह संवाद शेरशाह को मिला, तब इस पर पहले तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ; परन्तु कुछ देर बाद उसके दिल का बोझ हलका हो जाने पर उसके मुँह से ये शब्द निकल पड़े ।

“खुदा का शुक्र है कि किसी तरह फतह हासिल हो गई, वरना मैंने एक मुद्दी बाजरे के लिये हिन्दुस्थान की बादशाहत ही खोई थी ।”

जिस समय राव मालदेवजी को अपने सरदारों की इस वीरता और स्वामिभक्ति का सच्चा समाचार मिला, उस समय यह बहुत ही दुखी हुए । परन्तु समय हाथ से निकल चुका था । साथ ही प्रधान-प्रधान सरदार भी युद्ध में मारे जा चुके थे । अतः सिवा चुप रहने के और कोई मार्ग ही नहीं था । इससे वे सिवाने की तरफ चले गए ।

इस प्रकार कपट और भाग्य की सहायता से विजयी होकर शेरशाह ने जोधपुर के किले को घेर लेने का प्रबंध किया । यद्यपि वहाँ के सरदारों ने भी बड़ी बहादुरी के साथ इसका मुकाबला किया, तथापि अंत में वे सब-के-सब मारे गए । इस प्रकार वि० सं० १६०१ (ई० स० १५४४) में यह किला भी शेरशाह के अधिकार में चला गया । इसी अवसर पर उसने मेड़ता राव वीरमदेव को और बीकानेर राव कल्याणमलजी को लौटा दिया, तथा अपनी विजय की यादगार में जोधपुर में दो

१. इस युद्ध में राठोड़ जैताँ, राठोड़ कुंयों, राठोड़ खीँवकरायों ऊदावत, राठोड़ पंचायतों करमसोत, सोनगरा अलैराजें और जैसा भाटी नीर्बा आदि अनेक राजपूत सरदार और वीर मारे गए थे ।

२. इस युद्ध का हाल अधिकतर फारसी तवारीख़ फ़रिश्ता और ‘मुन्तख़िबुल्लुबाब’ से ही लिया गया है ।

(तवारीख़ फ़रिश्ता, भा० १, पृ० २२७-२२८ और मुन्तख़िबुल्लुबाब, हिस्सा १, पृ० १००-१०१)

३. उस समय किले की रक्षा करने में जो सरदार मारे गए थे, उनमें के राठोड़ अचला शिवराजोत, राठोड़ तिलोकसी वरजांगोत, भाटी जैतमाल और भाटी शंकर सूरवत की छतरियाँ अब तक किले में विद्यमान हैं ।

(१) यह बगड़ी का ठाकुर था ।

(२) इसके वंशज आसोप आदि के ठाकुर हैं ।

(३) इसके वंशज रायपुर वगैरा के ठाकुर हैं ।

(४) इसके वंशज खीँवसर वगैरा के स्वामी हैं ।

(५) यह पाली का ठाकुर था ।

(६) इसके वंशज लवरे के स्वामी हैं ।

मारवाड़ का इतिहास

मसजिदें बनवाने की आज्ञा दी । इनमें की एक तो क़िले पर और दूसरी फुलेलाव तालाब के पास बनवाई गई थी । इसी प्रकार उसके सेनापति ने क़िले के उत्तर-पूर्व की तरफ़ से बाहर आने-जाने के लिये एक रास्ता भी निकाला था । इसके बाद चारों तरफ़ अपने थाने बिठाकर और जोधपुर का प्रबंध ख्वासख़ाँ को सौंप कर वह (अजमेर से) रणथंभोर की तरफ़ चला गया । परन्तु वि० सं० १६०२ (ई० सन् १५४५) में ही कालिंजर में उसकी मृत्यु हो गई ।

क़रीब डेढ़ वर्ष तक मारवाड़ में मुसलमानों का ही ज़ोर रहा । परन्तु इसके बाद राव मालदेवजी ने जालोर और परबतसर के परगनों से सेना संग्रह कर पाती-नामक गाँव (भाद्राजण के पास) में अपना निवास कायम किया और कुछ समय के भीतर सब प्रबंध ठीक हो जाने पर वि० सं० १६०३ (ई० स० १५४६) में भांगेसर (पाली परगने) के शाही थाने पर हमला कर दिया । कुछ ही देर के घमसान युद्ध के बाद पठान भाग गए । इस प्रकार वहाँ पर रावजी का अधिकार हो जाने पर इन्होंने जोधपुर से भी पठानों को मार भगाया ।

अगले वर्ष (वि० सं० १६०४=ई० सन् १५४७ में) इनकी सेना ने हम्भीर से फलोदी छीन ली ।

इसी वर्ष राव मालदेवजी के और उनके ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह के बीच मनोमालिन्य हो गया । इससे इन्होंने रामसिंह और उसकी माता (कछवाहीजी) को गूंदोज (पाली परगने) में भेज दिये । भटियानी उमादे ने इस राम को अपना दत्तक पुत्र मान लिया था । इसलिये वह भी उसी के साथ वहाँ चली गई ।

१. पहली मसजिद का चिह्नस्वरूप एक छोटा-सा पीर का स्थान जैपोल से क़िले में घुसते ही दाहिने हाथ की तरफ़ अब तक मौजूद है और दूसरी का अवशिष्टांश शहर में फुलेलाव तालाब के दरवाजे के भीतर का पीर का ताक़ है ।

२. ख्यातों के अनुसार उसी समय नागोर पर भी शेरशाह का अधिकार हो गया था ।

३. इसकी क़बर आजकल शहर में ख्वासख़ाँ (खासगा) पीर की दरगाह के नाम से प्रसिद्ध है ।

४. यह राव सूजाजी का पौत्र और नरा का पुत्र था ।

५. कुछ दिन बाद महाराणा उदयसिंहजी ने अपने जामाता राम को मेवाड़ में बुलवा कर अपने पास रख लिया और बाद में उसे केलवा की जागीर दी । इस पर वह भी सकुदुम्ब वहीं जाकर रहने लगा ।

ख्यातों से ज्ञात होता है कि वि० सं० १६०५ (ई० सन् १५४८) में रावजी की आज्ञा से जैतावत राठोड़ पृथ्वीराज ने फिर मुसलमानों को भगाकर अजमेर पर अधिकार कर लिया था। यह देख महाराना उदयसिंहजी ने उसे इनसे छीन लेने के लिये अपनी सेना खाना की। परन्तु युद्ध में हारकर उसे लौटना पड़ा।

वि० सं० १६०७ (ई० सन् १५५०) में मालदेवजी ने राठोड़ नगा और बीदा को सेना देकर पौकरण पर अधिकार करने के लिये भेजा। उस समय वहाँ पर जैतमाल का अधिकार था। यद्यपि उसने भी रावजी की सेना का सामना करने में कोई कसर उठा न रखी, तथापि अंत में वहाँ पर मालदेवजी का अधिकार हो गया और जैतमाल कैद कर लिया गया। परन्तु जब कुछ ही समय बाद उसे छुटकारा मिला, तब फिर उसने अपने श्वसुर जैसलमेर के रावल मालदेवजी की सहायता से फलोदी पर अधिकार कर लिया। इसकी सूचना पाने पर स्वयं राव मालदेवजी ने फलोदी पर चढ़ाई की। यद्यपि जैतमाल के सहायक भाटियों ने फलोदी की रक्षा का बहुत कुछ उद्योग किया, तथापि राठोड़ वीरों के सामने उन्हें भागना पड़ा और वहाँ पर फिर मालदेवजी का अधिकार हो गया। जिस समय ये भागे हुए भाटी मार्ग में बाहड़मेर के पास पहुँचे, उस समय इनकी विशृंखलित दशा को देख वहाँ के रावत भीम ने इनके १,००० ऊँट पकड़ लिए। परन्तु रावजी की आज्ञा के अनुसार कुछ ही दिन बाद राठोड़ जैसा और जैतावत पृथ्वीराज ने आकर भीम से वे ऊँट छीन लिए। इस अवसर पर रावत भीम स्वयं भी पृथ्वीराज के हाथ से घायल होकर पकड़ा गया। परन्तु रावजी के पास लाए जाने पर इन्होंने उसे छोड़ दिया और पृथ्वीराज की वीरता से प्रसन्न होकर उसे अपने सेनापति का पद दिया।

परन्तु रावत भीम ने इस अपमान का बदला लेने के लिये बाहड़मेर पहुँचते ही मालदेवजी के राज्य में उपद्रव शुरू कर दिया। यह देख वि० सं० १६०९ (ई० सन् १५५२) में रावजी ने राठोड़ रतनसी और सिंगण को सेना देकर बाहड़मेर पर अधिकार कर लेने की आज्ञा दी। इसी के अनुसार उन्होंने वहाँ पहुँच बाहड़मेर और

१. ये बाला राठोड़ भारमल के पुत्र थे।

२. यह राव सूजाजी के पुत्र नरा का पौत्र और गोविंददास का पुत्र था। तथा समय-समय पर मालदेवजी के राज्य में लूटमार किया करता था। इसी से यह चढ़ाई की गई थी।

३. कहीं-कहीं पर पूंगल के भाटी जैसा का भी फलोदी पर चढ़ाई करना और हासकर लौटना लिखा मिलता है।

मारवाड़ का इतिहास

कोटड़े पर अधिकार कर लिया। रावत भीम हार कर जैसलमेर पहुँचा और उसने रावलजी से कहा कि बाहड़मेर और कोटड़ा जैसलमेर के द्वाररूप हैं। यदि वहाँ पर मालदेवजी के पैर जम गए, तो कुछ काल में ही वे जैसलमेर को भी दबा बैठेंगे। इसलिये आपको पुराना वैर भूल कर मेरी सहायता करनी चाहिए। यह सुन रावल मालदेवजी ने अपने पुत्र हरराज को मय सेना के उसके साथ कर दिया। जब इसकी सूचना रावजी को मिली, तब इन्होंने भी रतनसी और सिंघण को उनका सामना करने की आज्ञा भेज दी। युद्ध होने पर कुछ समय तक तो भाटियों ने भी जमकर राठोड़ों का सामना किया; परन्तु अंत में उनके पैर उखड़ गए और भीम का सारा साज-सामान लूट लिया गया।

जैसलमेरवाले अब तक दो बार मालदेवजी के विरुद्ध सेना भेज चुके थे। अतः राव मालदेवजी ने उन्हें दंड देने का निश्चय किया। इसी के अनुसार जब सेना की तैयारी हो चुकी, तब इन्होंने चांपावत (भैरूदास के पुत्र) जैसा और जैतावत पृथ्वीराज को जैसलमेर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। इन दोनों ने वहाँ पहुँच जैसलमेर को घेर लिया। इसके बाद कुछ ही दिनों के धावों में नगर पर राठोड़ों का अधिकार हो गया और रावलजी को किले में घुस कर बैठना पड़ा। अंत में रावलजी ने दण्ड के रूप में कुछ रुपये देकर राव मालदेवजी से सुलह करली।

वि० सं० १६१० (ई० सन् १५५३) में मालदेवजी ने वीरमदेव के पुत्र और मेड़ते के शासक जैमल को जोधपुर में उपस्थित होने की आज्ञा भेजी^१। परन्तु

१. यह पुराना वैर भागते हुए भाटियों से १,००० ऊँटों के छीन लेने का था। इसका उल्लेख ऊपर आ चुका है।
२. कहते हैं कि इस युद्ध में एक बार पृथ्वीराज एक बड़ के दरख्त की आड़ से शत्रुओं पर आक्रमण कर रहा था। यह देख शत्रुओं ने उस बड़ को ही काट डालने का इरादा किया। परन्तु वीर पृथ्वीराज ने उन्हें सफल नहीं होने दिया। इसी से वह बड़ का वृक्ष 'पृथ्वीराज के बड़' के नाम से मशहूर हो गया।
३. इसका जन्म वि० सं० १५६४ की आश्विन सुदी ११ को हुआ था।
४. किसी-किसी ख्यात में मालदेवजी का वि० सं० १६०३ (ई० सं० १५४६) में भी मेड़ते पर फौज भेजना और उसी समय बीकानेरवालों का मेड़तेवालों की सहायता करना लिखा मिलता है। परन्तु वि० सं० १६१० (ई० सं० १५५३) की चढ़ाई के समय उक्त सहायता का उल्लेख छोड़ दिया गया है। इसी प्रकार राव वीरम की मृत्यु का समय भी कहीं पर वि० सं० १६०० और कहीं पर १६०४ लिखा मिलता है।

जब उसने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, तब रावजी ने क्रुद्ध होकर स्वयं मेड़ते पर चढ़ाई की और उक्त नगर को घेर लिया। यह देख जयमल भी युद्ध के लिये तैयार हुआ। इसी बीच उसने दूत द्वारा बीकानेर के राव कल्याणमलजी के पास भी सहायता के लिये सेना भेजने की प्रार्थना लिख भेजी। युद्ध होने पर यद्यपि एक बार तो नगर पर रावजी की सेना का अधिकार हो गया, तथापि बाद में बीकानेरवालों की सहायता पहुँच जाने से इन्हें वहाँ से लौट आना पड़ा। इस युद्ध में मालदेवजी का सेनापति पृथ्वीराज और भारमल का पुत्र राठोड़ नगा मारा गया था। अतः वीर देवीदास ने अपने भाई पृथ्वीराज का बदला लेने का विचार कर मालदेवजी से मेड़ते पर चढ़ाई करने की आज्ञा माँगी। इन्होंने भी उसकी प्रार्थना स्वीकार करली और अपने पुत्र चंद्रसेनजी को सेना देकर उसके साथ कर दिया। ये लोग मार्ग के गाँवों को लूटते हुए मेड़ते पहुँचे। यह देख जयमल भी युद्ध के लिये तैयार हो गया। इसी अवसर पर विवाह करने को बीकानेर जाते हुए महाराना उदयसिंहजी उधर आ निकले और उन्होंने इस गृहकलह को शांत करने के लिये समझा-बुझाकर देवीदास को तो जोधपुर की तरफ लौटा दिया और जयमल को अपने साथ ले लिया। इससे मेड़ते पर बिना युद्ध के ही मालदेवजी का अधिकार हो गया।

पहले लिखा जा चुका है कि वि० सं० १५६५ (ई० सन् १५३८) के पूर्व ही जालोर पर बल्लोचों का अधिकार हो गया था और पठान भागकर गुजरात की तरफ चले गए थे। परन्तु वि० सं० १६०६ (ई० सन् १५५२) के करीब मलिकख़ाँ की अधीनता में पठानों ने जालोर पर प्रत्याक्रमण कर वहाँ के बहुत-से बल्लोचों को मार डाला। इस पर बल्लोचों के कामदार गंगादास ने सींधलों से मिलकर मालदेवजी से सहायता माँगी। इन्होंने भी अपनी सेना के द्वारा उन्हें क़िले से सही सलामत निकलवा कर पाटन (गुजरात में) पहुँचा दिया और जालोर के क़िले पर अपना अधिकार कर लिया। परन्तु राठोड़ सेना उस क़िले में पूरी तौर से अपने पैर भी न जमाने पाई थी कि मलिकख़ाँ ने उस पर आक्रमण कर दिया। पठान लोग क़िले में रह चुकने के कारण वहाँ की हरएक बात से परिचित थे। इसलिये राठोड़ों को लाचार होकर क़िला छोड़ देना पड़ा। यह घटना वि० सं० १६१० (ई० सन् १५५३) की है। इसके कुछ काल बाद ही अगली पराजय का बदला लेने के लिये रावजी की सेना ने फिर जालोर पर चढ़ाई की। मलिकख़ाँ क़िला

मारवाड़ का इतिहास

छोड़ कर भाग गया, और वहाँ पर रावजी का अधिकार हो गया। परन्तु दो वर्ष बाद इधर-उधर के लोगों को जमा कर मलिकख़ाँ ने एक बार फिर क़िले पर चढ़ाई कर दी। यद्यपि इस अचानक होनेवाले आक्रमण से मालदेवजी की सेना क़िले में घिर गई, तथापि वह बराबर सात दिन तक शत्रु का सामना करती रही। परन्तु इसी बीच इधर तो रसद की कमी हो गई और उधर क़िले के कुछ अन्य निवासी विश्वास घात कर पठानों के प्रलोभनों में पड़ गए। इस पर लाचार हो राठोड़-सेना को क़िला छोड़ना पड़ा।

वि० सं० १६१३ (ई० सन् १५५६) में राव मालदेवजी ने बगड़ी के ठाकुर जैतावत देवीदास की अधीनता में हाजीख़ाँ पर सेना भेजी। यह देख उसने महाराना उदयसिंहजी से सहायता माँगी। उन्होंने भी इसे स्वीकार कर अपने सैनिक उसकी मदद में भेज दिए। राठोड़ सेनानायक ने पहले से ही अपनी सेना की संख्या कम होने और महाराना के हाजीख़ाँ से मिल जाने के कारण युद्ध करना उचित न समझा। इसी अवसर पर जैमल ने भी महाराना की मदद से मेड़ते पर फिर से अधिकार कर लिया। परन्तु इसके कुछ ही दिनों बाद महाराना उदयसिंहजी के और हाजीख़ाँ के बीच झगड़ा हो गया और स्वयं महाराना ने बीकानेर के राव कल्याणमलजी और जयमल को साथ लेकर हाजीख़ाँ पर चढ़ाई कर दी। यह देख ख़ाँ ने मालदेवजी से सहायता चाही। इस पर रावजी ने पहले के अपमान का बदला लेने के लिये देवीदास की अधीनता में १,५०० सवार हाजीख़ाँ की मदद को भेज दिए। हरमाड़ा गाँव (अजमेर प्रांत) के पास पहुँचने पर रानाजी की सेना से इनका

१. तारीख पालनपुर, जिल्द १ पृ० ७३-७६।

२. वि० सं० १६१२ के आग़ा (ई० सं० १५५५ की जुलाई) में ईरान की सेना की मदद से हुमायूँ ने दिल्ली और आगरे पर फिर अधिकार कर लिया था। परन्तु वि० सं० १६१२ के माघ (ई० सं० १५५६ की जनवरी) में उसकी मृत्यु होगई और उसका पुत्र अकबर गद्दी पर बैठा। इस पर पठान हाजीख़ाँ ने जो शेरशाह का गुलाम था अलवर से आकर अजमेर और नागौर पर अधिकार कर लिया। उस समय अजमेर रानाजी के अधिकार में था।

(ईलियट्स हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, भा० ६, पृ० २१)

३. कहते हैं कि महाराना उदयसिंहजी ने मालदेवजी के विरुद्ध दी हुई मदद के बदले हाजीख़ाँ से रंगराय नामक नर्तकी को माँगा था। परन्तु हाजीख़ाँ के उसको देने से इनकार कर देने पर रानाजी नाराज़ हो गए और उस पर चढ़ाई कर दी।

मुकाबला हुआ। यद्यपि सीसोदिये सरदार भी बड़े बहादुर थे, तथापि वे राठोड़ों की तलवार का तेज न सह सके और कुछ ही देर बाद युद्ध से भाग खड़े हुए। इस युद्ध में रानाजी की तरफ के योद्धाओं में बालेचा सूजा भी मारा गया था। यह युद्ध वि० सं० १६१३ की फाल्गुन वदी ६ (ई० सन् १५५७ की २४ जनवरी) को हुआ था।

इसी बीच रावजी ने मेड़ते पर भी एक सेना भेज दी थी। अतः जिस समय जयमल लौट कर मेड़ते पहुँचा, उस समय तक वहाँ पर मालदेवजी का अधिकार हो चुका था और राव मालदेवजी का पुत्र जैमल और वीरवर देवीदास वहाँ की रक्षा पर नियत थे। इससे उसे मेड़ते की आशा छोड़ कर महाराना के पास वापस लौट जाना पड़ा। इसपर उदयसिंहजी ने उसकी वीरता और सेवाओं का विचारकर उसे बदनोर की जागीर दे दी।

१. ख्यातों में लिखा है कि बालेचा सूजा मेवाड़ से आकर मालदेवजी की सेवा में रहने लगा था। परन्तु जिस समय इन्होंने वि० सं० १६०७ (ई० सन् १५५०) के करीब कुंभलगढ़ पर चढ़ाई की, उस समय वह इनका साथ देने से इनकार कर मेवाड़ को वापस लौट गया। इस पर महाराना ने उसे फिर अपने पास रख लिया। जिस समय रावजी ने देवीदास को इस युद्ध में भेजा था, उस समय उसे सूजा से बदला लेने का खास तौर से आदेश दे दिया था। इसके बाद जब मेवाड़ की सेना को परास्त कर और सूजा को मारकर देवीदास वापस लौटा, तब रावजी ने उसकी वीरता की बड़ी प्रशंसा की और उसे मेड़ते की रक्षा के लिये भेज दिया।

२. इसी वर्ष (वि० सं० १६१३=हि० सं० १६४=ई० सन् १५५७ में) अकबर की आज्ञा से मुहम्मद कासिमख़ाँ नेशापुरी ने हाजीख़ाँ से अजमेर और नागौर छीन लिया।

(ईलियट्स हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, भा० ६, पृ० २२)

३. वि० सं० १६१५ (ई० सं० १५५८) का एक शिलालेख इस (महाराज-कुमार) जैमल का मेड़ते परगने के रैण नामक गाँव से मिला है। इसमें राव मालदेवजी के राज्य समय उक्त राजकुमार (जैमल) के द्वारा भूमिदान किए जाने का और साथ ही इस दान के जगमाल के द्वारा पालन किए जाने का उल्लेख है। इस लेख में का जगमाल मेड़तिया राठोड़ जयमल का छोटा भाई था और उसको मालदेवजी ने मेड़ते का आधा हिस्सा जागीर में दे दिया था। वि० सं० १६१८ (ई० सं० १५६१) में जब बादशाह अकबर की सेना ने मेड़ता विजय करते समय मालकोट की दीवार को सुंग से उड़ा दिया, उस समय यह जगमाल अपने कुटुम्बियों के साथ बाहर निकल गया था।

४. कहीं-कहीं वि० सं० १६११ के आश्विन (ई० सं० १५५४ के सितम्बर) मास में इस जागीर का दिया जाना लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि जिस समय देवीदास और

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १६१४ (ई० सन् १५५७=हि० सन् १६५) में कासिमख़ाँ (अजमेर के सूबेदार) की आज्ञा से सैयद मेहमूद बाराह और शाह कुलीख़ाँ ने जैतारण पर चढ़ाई की। इसपर वहाँ के स्वामी ऊदावत रतनसी ने मालदेवजी से सहायता माँगी। परन्तु रावजी ने उससे अप्रसन्न होने के कारण इधर ध्यान ही नहीं दिया। इससे युद्ध में रतनसी मारा गया और जैतारण पर मुसलमानों का अधिकार हो गया।

इसके बाद राव मालदेवजी ने मेड़ते में के वीरमदेव और जयमल के बनवाए हुए स्थानों को गिरवाकर वहाँ पर एक नया क़िला बनवाया और उसका नाम अपने नाम पर मालकोट रक्खा। साथ ही वहाँ के नगर को भी नए सिरे से बसाया।

ख्यातों से ज्ञात होता है कि वि० सं० १६१६ (ई० सन् १५५९) में जैतावत देवीदास को जालोर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी गई थी। इसी के अनुसार पहले तो उसने बिहारी पठानों से जालोर छीन लिया और इसके बाद बदनोर पर आक्रमण कर दिया। इससे जैमलजी को उक्त प्रदेश छोड़ देना पड़ा।

वि० सं० १६१८ (ई० सन् १५६१) में जिस समय अकबर बादशाह अजमेर को आता हुआ मार्ग में सांभर में ठहर हुआ था, उस समय जयमल जाकर उससे मिला और अपना सारा वृत्तांत कह कर अपने पैतृक राज्य मेड़ते पर अधिकार करने में सहायता चाही। बादशाह ने भी आपस की फूट से अपने पिता का बदला

महाराजकुमार चंद्रसेनजी ने मेड़ते पर चढ़ाई की थी और महाराना उदयसिंहजी बीच बचावकर जयमल को अपने साथ बीकानेर ले गए थे, उस समय वहाँ से उदयपुर लौटने पर ही शायद यह जागीर उसे दी गई होगी।

१. वि० सं० १६१० (ई० स० १५५३) में मेड़ता विजय करते समय यद्यपि रतनसी राव मालदेवजी की तरफ़ से युद्ध में सम्मिलित हुआ था, तथापि लड़ाई के समय उसने जयमल के पक्ष के ऊदावत डूंगरसी को वार में आ जाने पर भी अपना कुटुम्बी सम्पत्त छोड़ दिया था। इसी से मालदेवजी उससे नाराज़ हो गए थे।

२. ईलियट्स हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, भा० ६, पृ० २२ (अकबरनामा दफ़ा २, पृ० ६६)

मारवाड़ की ख्यातों में इस घटना का कासिमख़ाँ द्वारा वि० सं० १६१६ (ई० स० १५५९) में होना लिखा है। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

३. 'तबकाते अकबरी' में लिखा है—

जब हि० स० १६७ (वि० सं० १६१७=ई० स० १५६०) में बादशाह अकबर ख़ाँखाना बेहरामख़ा से नाराज़ हो गया, तब उसको हज़ का बहाना करना पड़ा। परन्तु जिस समय वह इस यात्रा के लिये गुजरात की तरफ़ चला, उस समय उसे ख़याल आया कि इस मार्ग में तो मेरा प्रबल

लेने का अवसर आया देख तत्काल ही मिरजा शरफुद्दीन को मय सेना के उसके साथ कर दिया। इन लोगों ने मेड़ते पहुँच वहाँ के क़िले को घेर लिया। परन्तु कई दिन बीत जाने पर भी जब वे लोग राठोड़ों की वीरता के सामने सीधी तरह क़िले पर अधिकार न कर सके, तब उन्होंने सुरंग लगाकर क़िले का एक बुर्ज उड़ा दिया। इसके बाद शाही सैनिक इस रास्ते से अंदर घुसने का जी तोड़ प्रयत्न करने लगे। परन्तु मुट्ठी-भर राठोड़ वीरों ने वह बहादुरी दिखलाई कि शाही सेना को ठिठककर रुक जाना पड़ा। रात्रि में युद्ध बंद हो जाने पर क़िलेवालों ने बड़ी कोशिश के साथ वह बुर्ज फिर से खड़ा कर लिया, इससे शाही सेना का सब प्रयत्न विफल हो गया। परन्तु इसके कुछ दिन बाद जब क़िले की रसद बिलकुल ही समाप्त हो चुकी, तब बचे हुए राठोड़ों ने क़िला छोड़ कर बाहर निकल जाने का इरादा प्रकट किया। शाही सेना के अफ़सर तो इन वीरों की वीरता का लोहा पहले से ही मान चुके थे। अतः उन्होंने इसमें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की और वे क़िले के दरवाज़े से हटकर खड़े हो गए। इस पर जगमाल तो क़िले से निकल कर चला गया। परन्तु जिस समय देवीदास अपने ४०० सवारों-सहित शाही सेना के सामने से जाने लगा, उस समय लोगों के भड़काने से मिरजा ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी और उसके निकलने पर उसका पीछा किया। कुछ ही दूर जाने पर जब देवीदास को इस बात

शत्रु जोधपुर का राजा मालदेव निवास करता है, जिसके पास बहुत अधिक साज-सामान है। यह सोच उसने अपना रास्ता बदल लिया और वह नागौर से बीकानेर चला गया। वहाँ पर कल्याणमल और उनके पुत्र रायसिंह ने उसकी बड़ी मेहमानदारी की। इसलिये वहाँ पर कुछ दिन आराम कर वह पंजाब की तरफ़ चला गया।—(देखो पृ० २५२)

१. कहीं-कहीं यह भी लिखा है कि राव मालदेवजी ने अपने महाराजकुमार चंद्रसेनजी को सेना देकर मेड़तेवालों की सहायता के लिये भेज दिया था। परन्तु वहाँ पहुँचने पर उनके साथ के सरदार अपने से कहीं बड़ी शाही सेना से सामना करना हानिकारक जान उन्हें जोधपुर वापस ले आए।

इसी प्रकार ख्यातों में यह भी लिखा है कि मेड़तेवालों की सहायता के लिये रियां के राठोड़ साँवलदास ने भी अपनी सेना लेकर अचानक ही शाही फ़ौज पर हमला कर दिया था। परन्तु युद्ध में घायल हो जाने के कारण उसे लौट जाना पड़ा। इसका बदला लेने को यवन सेना के एक भाग ने जाकर रियां को घेर लिया। इन्हीं के साथ के युद्ध में साँवलदास मारा गया।

२. 'अकबरनामे' में लिखा है कि उस समय मेड़ते पर मालदेव का अधिकार था, जो उस समय के सब से बड़े राजाओं में से था और उसकी तरफ़ से वहाँ की रक्षा का भार एक

मारवाड़ का इतिहास

का पता चला, तब वह वीर राठोड़ वापिस लौटकर उससे भिड़ गया। यद्यपि उस समय राजपूतों ने बड़ी बहादुरी से मुगलों का सामना किया, तथापि संख्या की अधिकता के कारण विजय मुसलमानों के ही हाथ रही। वीर देवीदास युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। यह युद्ध सोगावास और मेड़ते के बीच हुआ था।

इसके बाद शरफुद्दीन ने मेड़ते का अधिकार जयमल को सौंप दिया, परन्तु स्वयं उसे साथ लेकर नागौर पहुँचा। वहीं पर इन दोनों के बीच किसी बात पर झगड़ा हो गया। इस पर जयमल उसे छोड़कर चित्तौड़ चला गया। कुछ ही काल के भीतर बादशाह अकबर ने अजमेर के सूबे का प्रबंध कर मारवाड़ के परबतसर और

बड़े सरदार जगमाल को सौंपा हुआ था। साथ ही उसकी मदद के लिये ५०० सवारों के साथ वीरवर देवीदास भी नियत था।

(देखो भा० २, पृ० १६०)

‘तबक़ाते अकबरी’ में उस समय मेड़ते के क़िले का जैमल के अधिकार में होना लिखा है (देखो पृ० २५६)। यह ठीक नहीं है। उस समय के वहाँ के क़िलेदार का नाम जगमाल ही था।

‘अकबरनामे’ में यह भी लिखा है कि देवीदास संधि के विरुद्ध अपना साज-सामान जलाकर क़िले से निकला था। इसीलिये शरफुद्दीन ने उसका पीछा किया। उसी पुस्तक में आगे लिखा है कि देवीदास ने युद्ध में वह काम किया कि रस्तम का नाम और निशान तक दुनिया से मिटा दिया। अंत में युद्ध करता हुआ वह घोड़े से गिर पड़ा। इसी समय बहुत-से सैनिकों ने धावा कर उसे मार डाला (देखो भाग २, पृ० १६२)।

मारवाड़ की ख्यातों और फ़ारसी तवारीख़ों में देवीदास का एक संन्यासी द्वारा बचाया जाना और कुछ वर्ष बाद चंद्रसेनजी के समय वि० सं० १६३३ (ई० सं० १५७६) में वापिस लौटकर आना भी लिखा है।

‘मुन्तख़िबुल लुबाब’ नामक इतिहास में लिखा है कि हि० सं० ६६८ (वि० सं० १६१८) में बादशाह अकबर ने मिरजा शरफुद्दीन को मारवाड़ फ़तह करने के लिये मालदेव पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। इसपर उसने जोधपुर पहुँच वहाँ के क़िले को घेर लिया। कुछ दिन बाद मालदेव ने संधि का प्रस्ताव किया। इस पर यह तय हुआ कि मालदेव तो जाकर सिवाने के क़िले में रहे और उसका छोटा भाई ७ दिन में अपने परिवार को हटाने का प्रबन्ध करके साज-सामान-सहित क़िला शाही सैनिकों को सौंप दे। परंतु मालदेव के चले जाने पर उसके भाई और शरफुद्दीन के बीच किसी बात पर झगड़ा हो गया। इससे राव का भाई ५०० सवारों के साथ क़िले से निकलकर सम्मुख राय में मारा गया। (देखो पृष्ठ १५६-१६०)

हमारी समझ में इस इतिहास के लेखक ने ग़लती से मेड़ते पर की चढ़ाई को जोधपुर की चढ़ाई लिख दिया है और देवीदासवाली घटना का सम्बन्ध मालदेवजी के भाई के साथ कर दिया है।

मेड़ते^१ के परगनों पर अधिकार कर लिया। इस पर समय का प्रभाव देख मालदेवजी ने शांति धारण कर ली। वि० सं० १६१६ की कार्तिक सुदी १२ (ई० स० १५६२ की ७ नवंबर) को इन प्रबल पराक्रमी नरेश राव मालदेवजी का स्वर्गवास हो गया।^२

राव मालदेवजी बड़े वीर और प्रतापी थे। जिस समय यह राज्य के अधिकारी हुए, उस समय इनका प्रताप उदय होते हुए बाल रवि के समान अदूरव्यापी अर्थात्-केवल जोधपुर और सोजत प्रांतों तक ही फैला हुआ था। परन्तु होते-होते १० वर्षों के भीतर इनका वही बालप्रताप मध्याह्न के सूर्य के प्रखर तेज के समान समग्र राजस्थान को पारकर दिल्ली और आगरे के पास तक अर्थात्-हिंडौन, बयाना, फतैपुर, सीकरी और मेवात तक फैल गया था। इसी से हुमायूँ जैसे बादशाह को भी शेरशाह-रूपी अंधकार से त्राण पाने के लिये इन्हीं की शरण लेनी पड़ी थी। यदि मूर्ख शाही सैनिकों ने कुछ समझ से काम लिया होता और गोवध न कर क्षत्रिय राठोड़ वीरों का दिल न दुखाया होता तथा वीरमजी के और मालदेवजी के बीच फूट का बीज न उत्पन्न हुआ होता, तो उस समय का भारतीय इतिहास भी कुछ और ही दृश्य दिखलाता। परन्तु ईश्वर की माया-मरीचिका के प्रभाव से इन घटनाओं के हो जाने के कारण एकाएक पासा पलट गया और साथ ही वि० सं० १६०० (ई० स० १५४३) में

१. वि० सं० १६२० (हि० स० ६७१) में बादशाह अकबर मिर्जा शर्फुद्दीन से नाराज हो गया। इसी से उसने उसके स्थान पर हुसैन कुली को नियत कर दिया। इस पर हुसैन कुली ने मिर्जा को भगाकर अजमेर, जालोर, नागौर और मेड़ते के परगने उससे छीन लिए। इसके बाद उसने बादशाह की आज्ञा से मेड़ता जयमल से लेकर जगमाल को दे दिया। यह देख जयमल मेवाड़ की तरफ चला गया और वि० सं० १६२४ (ई० सन् १५६७) में महाराना उदयसिंहजी के किला छोड़कर पर्वतों में चले जाने पर चित्तौड़ के किले की रक्षा करता हुआ अकबर के हाथ से मारा गया। यद्यपि 'अकबरनामा' (भा० २, पृ० १६६) आदि फ़ारसी तवारीखों में जयमल से मेड़ता लेने का उल्लेख है, तथापि वास्तव में मेड़ता जयमल से न लिया जाकर शर्फुद्दीन से ही लिया गया था। जयमल तो शर्फुद्दीन से नाराज होकर पहले ही नागौर से मेवाड़ की तरफ चला गया था।

२. उस समय इनके पुत्र चंद्रसेनजी सिवाने में थे। अतः इनकी मृत्यु का समाचार पाते ही वह वहाँ से जोधपुर चले आए। कार्तिक सुदी १३ को मंडोर में रावजी की अंत्येष्टिक्रिया की गई। इनके पीछे १० रानियाँ सती हुई थीं।

मारवाड़ का इतिहास

शेरशाह्रूपी राहु के संयोग से पूर्ण ग्रहण का योग आ उपस्थित हुआ । यद्यपि कुछ ही काल में राव मालदेवजी ने अपने को उसके ग्रास से बचाकर एकबार फिर तेज प्रकट किया, तथापि वह ढलते हुए सूर्य के समान ही रहा । उसमें वह प्रचंडता न आ सकी ।

इन्होंने अपने राज्यकाल में कुल मिलाकर ५२ युद्ध किए थे और एक समय छोटे-बड़े ५८ परगनों पर इनका अधिकार रहा था । उनके नाम इसप्रकार लिखे मिलते हैं:—

१ सोजत, २ मेड़ता, ३ अजमेर, ४ सांभर, ५ बदनोर, ६ रायपुर, ७ भाद्राजगं, ८ नागौर, ९ खाटू, १० लाडगू, ११ डीडवाना, १२ फतेपुर, १३ कासली, १४ रेवासा, १५ चाटसू, १६ जहाजपुर, १७ मदारियाँ, १८ टोंक, १९ टोडा, २० चित्तौड़ के पास के प्रदेश, २१ पाली, २२ वणवीरपुर, २३ सिवार्ना, (अणखला), २४ लोहगढ़, २५ नाडोल, २६ जोजावर, २७ कुंभलमेर (के पास का प्रदेश), २८ जालोर, २९ सांचोर, ३० भीनमाल, ३१ बीकानेर, ३२ पौकरन, ३३ फलोदी, ३४ चौहटन, ३५ पारकर, ३६ कोटड़ी, ३७ बाहडमेर, ३८ खाबर्ड, ३९ अमरसर, ४० उदयपुर (पंवारों का—छोटा), ४१ उमरकोट, ४२ छापरा, ४३ भूँभण, ४४ जेखल, ४५ जैतारण, ४६ जोधपुर, ४७ नारनौल, ४८ नराणा, ४९ बँवली (बोनली), ५० मल्हारणा, ५१ समईगाँव, ५२ सातलमेर, ५३ मालपुरी, ५४ कोसीथल, ५५ केकड़ी, ५६ पुरमांडल, ५७ लालसोट, ५८ राधनपुर ।

इनके अलावा किसी-किसी ख्यात में मालदेवजी का सिरौही के प्रांत को विजय कर वहाँ के रावल को वापस सौंप देना भी लिखा मिलता है ।

१. वीरमदेव से, २. बादशाही हाकिम से, ३. रानाजी से, ४. सीधल राठोड़ों से, ५. सीधल राठोड़ों से, ६. खानजादों से, ७. रानाजी से, ८. जैतमालोत राठोड़ों से, ९. रानाजी से, १०. विहारी पठानों से, ११. चौहानों से, १२-१३. पवारों से, १४-१५. मल्लिनाथजी के वंशज राठोड़ों से, १६. पवारों से, १७. शेखावादी के कछवाहों से, १८. सोढों से, १९. ऊदावत राठोड़ों से, २०. पवारों से, २१. रानाजी से, २२-२३. शाही हाकिम से और २४. पवारों से छीने थे । २५. इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता ।

राव मालदेवजी ने अनेक किले आदि भी बनवाए थे । उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

पहले पहल जोधपुर के किले का विस्तार बढ़ाकर उसके पास के रानीसर नामक तालाब के इर्द-गिर्द कोट बनवाया । इससे युद्ध के समय किलेवालों को पानी का सुभीता हो गया । इसी प्रकार चिड़ियानाथ के झरने को भी कोट से घेरकर किले का एक भाग बना दिया । जोधपुर नगर के चारों तरफ शहर-पनाह बनवाई । कहते हैं कि इन सबके बनवाने में ६,००,००० फदिए (करीब १,१२,५०० रुपये) लगे थे ।

इसके बाद वि० सं० १६०८ (ई० सं० १५५१) में इन्होंने पौकरण का नया किला बनवाया । इसके बनवाने में सातलमेर के पुराने किले का सामान काम में लाया गया था । इसी प्रकार वि० सं० १६१४ (ई० सं० १५५७) में मेड़ते में अपने नाम पर मालकोट-नामक किला बनवाना प्रारंभ किया । यह किला वि० सं० १६१६ (ई० सं० १५५९) में समाप्त हुआ था ।

इनके अलावा सोजत, सारन, रायपुर (वहाँ के पहाड़ पर), पीपलोद, रीयाँ, फलोदी (यहाँ का किला नरा के पुत्र हम्मीर के, वि० सं० १५४५=ई० सं० १४८८ में, बनवाए किले पर ही बनवाया गया था ।), चाटसू और बीकानेर आदि में भी किले बनवाए । भाद्राजण, सिवाना, और नाडोल में शहर-पनाहें बनवाई । नागोर की शहरपनाह का जीर्णोद्धार करवाया । अजमेर के किले में बीटली का कोट और बुर्ज बनवाए और वहाँ से किले पर पानी चढ़ाने का प्रबंध किया । इनके अलावा गूँदोज, पीपाड़ और दूनाड़ा आदि में भी निवासस्थान बनवाए ।

इनकी रानी झाली स्वरूपदेवी ने अपने नाम पर स्वरूपसागर नामक तालाब बनवाया था । यह आजकल बहूजी के तालाब के नाम से प्रसिद्ध है ।

राव मालदेवजी के २२ पुत्र थे ।

१. यह तालाब कागे से मंडोर की तरफ जाते हुए बाएँ हाथ पर है ।

मारवाड़ का इतिहास

१ राम, २ रायमल, ३ रत्नसिंह, ४ भोजराज, ५ उदयसिंहजी, ६ चंद्रसेनजी, ७ भाण, ८ विक्रमादित्य, ९ आसकराण, १० गोपालदास, ११ जसवंतसिंह, १२ महेशदास, १३ तिलोकसी, १४ पृथ्वीराज, १५ डूंगरसी, १६ जैमल, १७ नेतसी, १८ लिखमीदास, १९ रूपसी, २० तेजसी, २१ ठाकुरसी, २२ कल्याणदास ।

रावजी ने छोटे-बड़े अनेक गाँव दान किए थे ।

१. इसका जन्म वि० सं० १५८६ की फागुन सुदि १५ को हुआ था । परन्तु इसके तरुण होने पर राव मालदेवजी को इसके बागी होकर राज्य पर अधिकार कर लेने के विचार की सूचना मिलने से उन्होंने इसे मारवाड़ से बाहर चले जाने की आज्ञा देदी । इसने हि० सं० १८० (वि० सं० १६२६=ई० सन् १५७२) में बादशाही सेना के साथ रहकर इब्राहीम हुसेन मिर्जा को हराने में अच्छी वीरता दिखाई थी । (अकबरनामा, भा० ३, पृ० ३५ और तबक़ाते अकबरी, पृ० ३०१) इसी राम ने अथवा इसके वंशज ने अममेरे (मालवे) में एक छोटे राज्य की स्थापना की थी । परन्तु वि० सं० १६१४ (ई० सन् १८५७) में वहाँ के शासक के बागियों के साथ मिल जाने से भारत-सरकार के द्वारा वह राज्य सिंधिया के हवाले कर दिया गया ।

२. इसका जन्म वि० सं० १५८६ की आश्विन सुदि ८ को हुआ था ।

३. इसका जन्म वि० सं० १५९० की मँगसिर सुदि ८ को हुआ था ।

४. १ बीकरलाई-आधी २ मोराई (जैतारण परगने के), ३ बाड़ा-खुर्द (बीलाड़ा परगने का), ४ केलणकोट ५ सीतली (पचपदरा परगने के), ६ नैरवा (जालोर परगने का), ७ खैड़ापा ८ बीगवी ९ मैसेर-कोटवाली १० मैसेर-कुतडी ११ बासणी भाटियां १२ ढंडोरा (जोधपुर परगने के), १३ धोलेरिया-खुर्द १४ सूकरलाई (पाली-परगने के), १५ माल-पुरिया कलां १६ रूपावास १७ बडियाला १८ तालका १९ चारवा (सोजत परगने के) पुरोहितों को; २० खिनावड़ी-आधी (जैतारण परगने की), २१ जोधड़ावास (नागोर परगने का), २२ इकराणी २३ रीछोली २४ रवाडा-मयां २५ रवाडा-बारठां २६ मेडी-वासण (पचपदरा परगने के), २७ साकडावास (पाली परगने का), २८ घांवा खेड़ा २९ जोधड़ावास-खुर्द आधा (मेड़ता परगने के), ३० खारी-कलां चारणां ३१ चौपासणी चारणां ३२ रलावास ३३ लाखड़ थूब (जोधपुर परगने के), ३४ ढीगारिया (डीडवाना परगने का) चारणां को; ३५ कानावास ३६ मालपुरिया खुर्द (सोजत परगने के), ३७ बीदासणी ३८ लोरडी-डोलियावास ३९ सूरजवासणी (जोधपुर परगने के), ४० कारोलिया (जैतारण परगने का) ब्राह्मणों को ।

फारसी तबारीखों से राव मालदेवजी के प्रभाव, पराक्रम और ऐश्वर्य के विषय के कुछ अवतरण ।

मालदेव, जो उसकी १६वीं पुस्त में है, बहुत बड़ा-चढ़ा है । करीब था शेरख़ाँ का भी उसके मुक्ताबले में काम तमाम हो जाता । वैसे तो इस मुल्क में बहुतसे क़िले हैं; लेकिन उनमें अजमेर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, उमरकोट, आबूगढ़ और जालौर के क़िले खास हैं ।

(आईने अकबरी, दफ्तर २, पे० ५०८)

हि० सन् १६६, साल जुलूस ७, में बादशाह (अकबर) ने मिर्ज़ा शर्फुद्दीन हुसैन को मेड़ते का परगना और क़िला फतेह करने के लिये भेजा और उसकी मदद के लिये बहुतसे बड़े-बड़े शाही अमीर साथ किए गए । यह मेड़ते का क़िला उस समय राव मालदेव के अधिकार में था, जो तमाम दूसरे रायों और राजाओं से हिंदुस्तान के रिवाजों और नाम में बड़ा हुआ था । तथा शान शौकत में भी बढ़कर था ।

(अकबरनामा, जिल्द २, पे० १६०)

मेड़ते पर कब्ज़ा कर लेने के बाद जब हि० सन् १७१, साल जुलूस ८, में बादशाह (अकबर) मिर्ज़ा शर्फुद्दीन की तरफ़ से फारिग़ हो गया, तो क़िले जोधपुर के, जो उस मुल्क के मजबूत क़िलों में से है, फतेह करने का इरादा किया । यह क़िला राव मालदेव की, जो हिंदुस्तान के बड़े राजाओं में दरजा, इज्जत, फौज और मुल्क की अधिकता में सबसे बढ़कर था, राजधानी था ।

(अकबरनामा, जिल्द २, पे० १६७)

बादशाह हुमायूँ आखिरकार मालदेव की तरफ़, जो हिंदुस्तान के मौतबिर जमींदारों में से था और उस ज़माने में हिन्दू-रईसों में ताक़त और फौज में उसके बराबरी का कोई न था, रवाना हुआ ।

(तबकाते अकबरी, पे० २०५)

मालदेव कि जो नागौर और जोधपुर का मालिक था, हिंदुस्तान के राजाओं में फौज और ठाट (हशमत) में सबसे बढ़कर था । उसके झंडे के नीचे ५०,००० राजपूत थे ।

(तबकाते अकबरी, पे० २३१-२३२)

मारवाड़ का इतिहास

पहले-पहल मालदेव पर कि जो नागौर और जोधपुर के मुल्क का मालिक था और हिंदुस्थान के राजाओं में फौज और ठाट की अधिकता में बढ़कर था तथा ५०,००० सवार के करीब उसके झंडे के नीचे जमा थे, गया।

(फरिश्ता, जिल्द १, पे० २२७)

जो (मालदेव) बड़े राजाओं में दबदबेवाला था और उसकी फौज में ८०,००० सिपाही थे। हालांकि राना सांगा, जो कि हुमायूँ से लड़ा था, दौलत और ठाट में मालदेव के बराबर था, मगर मुल्क की और फौज की ज्यादाती में राव मालदेव उससे बड़ा था। कई बार मालदेव के फौजी अफसरों को राना सांगा से लड़ाई करनी पड़ी थी। मगर हरबार जीत मालदेव की ही तरफ रही।

(तुजुक जहाँगीरी, दीवाचा, पे० ७)

यह लाल (जिसकी कीमत ६०,००० रुपये की गई है) पहले राव मालदेव के पास था, जो राठोड़ों का सरदार और हिंदुस्तान के बहुत बड़े राजाओं में से था।

(तुजुक जहाँगीरी, पे० १४१)

मालदेव हिंदुस्थान के बड़े जमींदारों में से था। राना की बराबरी करनेवाला जमींदार वही था, बल्कि एक लड़ाई में उसने राना पर फतेह भी पाई थी। उसका हाल अकबरनामे में तफसील से लिखा है।

(तुजुक जहाँगीरी, पृ० २८०)

इसके बाद शर्फुद्दीन हुसैन को राजा मालदेव को सजा देने और उसके मुल्क को फतेह करने के लिये भेजा। यह (मालदेव) जसवंत के बाप-दादाओं में था, जो कदीम जमाने से हिंदुस्तान के मशहूर राजाओं में गिने जाते थे और दिल्ली के

१. महाराणा सांगाजी का समय वि० सं० १५६६ (ई० सन् १५०६) से १५८४ (ई० स० १५२८) तक था और राव मालदेवजी वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में गद्दी पर बैठे थे। इसलिये इस घटना का संबंध ठीक प्रतीत नहीं होता। हाँ, इस घटना का संबंध उस (राना) के छोटे पुत्र विक्रमादित्य और उसके उत्तराधिकारियों से हो सकता है। अथवा यह भी संभव है कि मालदेवजी के समय के कुछ सेनानायक, जो इनके पूर्व से ही मारवाड़ की सेना का संचालन करते आए थे, उससे लड़े हों। उद्धृत पंक्तियों में भी सेनापतियों का ही उल्लेख है।

बादशाहों की मातहत नहीं करते थे । साथ ही जोधपुर, मेड़ता और सिवाना के से मजबूत किलों के भरोसे पर मगरूर सरकशों में मशहूर थे ।

(मुन्तखुल्लुबाव, हिस्सा १, पे० १५६)

मारवाड़ का जमींदार राय मालदेव हिंदुस्थान के बड़े राजाओं में से था और अपने साज-सामान और फौज के लिये मशहूर था । मारवाड़ अजमेर के सूबे का एक इलाका है, जो १०० कोस लंबा और ६० कोस चौड़ा है । अजमेर, जोधपुर, सिरोंही, नागौर और बीकानेर इसमें दाखिल हैं ।

(मन्नासिरुल उमरा, भा० २, पृ० १७६)

इन विरोधी, विधर्मी और विदेशी लेखकों के लिखे इतिहासों के अवतरणों से भी प्रकट होता है कि वास्तव में राव मालदेवजी अपने समय के सर्वश्रेष्ठ और प्रबल पराक्रमी राजा थे ।

कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि वि० सं० १६२५ (ई० सन् १५६६) में जिस समय अकबर अजमेर में था, उस समय मालदेव ने अपने द्वितीय पुत्र चंद्रसेन को नजराने के साथ उसके पास भेजा था । परन्तु उसका यह लिखना बिल्कुल सत्य से परे है, क्योंकि राव मालदेवजी तो इस समय से करीब ६ वर्ष पूर्व अर्थात्-वि० सं० १६१९ (ई० सन् १५६२) में ही इस असार संसार को छोड़ चुके थे ।

१. ऐनाल्स ऐन्ड ऐरिटकिटीज ऑफ़ राजस्थान (डब्ल्यू कुक संपादित), भा० २, पृ० ६५८ ।

२०. राव चन्द्रसेनजी

यह मारवाड़ नरेश राव मालदेवजी के छोटे पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १५६८ की सावन-वदि = (ई० सन् १५४१ की १६ जुलाई) को हुआ था।

राव मालदेवजी के देहांत के बाद उन्हीं की इच्छानुसार वि० सं० १६१६ की मंगसिर-वदि १ (ई० सं० १५६२ की ११ नवंबर) को यह जोधपुर की गद्दी पर बैठे। इनके राज्य पर बैठने के कुछ दिन बाद ही एक साधारणसी घटना के कारण कुछ सरदार इनसे अप्रसन्न हो गए और उन्होंने राव चन्द्रसेनजी के तीनों बड़े भाइयों^३ के पास गुप्त पत्र भेज कर उन्हें जोधपुर-राज्य पर अधिकार करने को उकसाना प्रारंभ किया। इससे इनके सबसे बड़े भाई राम ने सोजत और दूसरे भाई रायमल्ल ने दूनाडा-प्रांत में उपद्रव शुरू किया, तथा तीसरे भाई उदयसिंहजी ने अचानक आकर गांगारणी और बावड़ी पर अधिकार कर लिया। यह सूचना पाते ही राव चन्द्रसेनजी ने उदयसिंहजी पर चढ़ाई की। इस पर उदयसिंहजी नवाधिकृत प्रदेश को छोड़ फलोदी की तरफ लौट चले। परन्तु लोहावट में पहुँचते-पहुँचते दोनों सेनाओं का सामना हो गया और वहाँ के युद्ध में चन्द्रसेनजी की तलवार से उदयसिंहजी के घायल हो जाने के कारण विजय चन्द्रसेनजी के ही हाथ रही। इसके बाद एक बार तो चन्द्रसेनजी जोधपुर चले आए, परन्तु फिर शीघ्र ही इन्होंने सेना लेकर फलोदी पर

१. वि० सं० १६०० (ई० सं० १५४३) में ही राव मालदेवजी ने इन्हें बीसलपुर और सिवाना जागीर में दे दिया था। इसलिये बड़े होने पर यह अधिकतर वहीं रहा करते थे। पिता के देहान्त की सूचना पाते ही यह वहाँ से दूसरे दिन जोधपुर पहुँच गए और पिता की इच्छानुसार राज्याधिकार प्राप्त करने पर इन्होंने अपनी सिवाने की जागीर अपने बड़े भाई रायमल्ल को दे दी। यह रायमल्ल मालदेवजी का द्वितीय पुत्र था।

२. एक बार राव चन्द्रसेनजी का एक अपराधी दास भागकर (जैसा के पुत्र) जैतमाल के पास चला गया था। परन्तु रावजी ने अपने आदमी भेजकर उसको पकड़वा मँगवाया। इस पर जैतमाल ने कहलाया कि आप इसे जहाँ तक हो, प्राणदंड न देकर अन्य किसी प्रकार के दंड की आज्ञा दें। इस हस्तक्षेप से राव चन्द्रसेनजी और भी नाराज़ हो गए और उस दास को तत्काल प्राणदंड देने की आज्ञा दे दी। इसी से जैतमाल और उससे मेल रखनेवाले कुछ अन्य सरदार इनसे अप्रसन्न हो गए थे।

३. उस समय राव चन्द्रसेनजी के तीनों बड़े भाइयों में सबसे बड़ा भाई राम अपनी जागीर गूँदोच में, दूसरा रायमल्ल सिवाने में और तीसरा उदयसिंह फलोदी में था।

चढ़ाई करदी। उस समय मुगल-सम्राट् अकबर का बल बहुत बढ़ रहा था। इसी से मारवाड़ के कुछ समझदार सरदारों ने, इस प्रकार आपस के कलह से राठोड़ों के बल की हानि देख, दोनों को भली भाँति समझा दिया। इस पर चंद्रसेनजी ने चढ़ाई का विचार त्याग दिया।

ख्यातों में लिखा है कि इसके बाद वि० सं० १६२० (ई० सन् १५६३) में राव चन्द्रसेनजी ने अपने भाई राम पर चढ़ाई की। इसकी सूचना पाते ही पहले तो राम ने भी नाडोल में आकर इनकी सेना का सामना किया, परन्तु अंत में विजय की आशा न देख वह नागौर के शाही हाकिम हुसेनकुली बेग के पास चला गया और राव मालदेवजी का ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण जोधपुर पर अपना हक बतलाकर इस कार्य में उससे सहायता मांगने लगा। इस पर उसने भी इसप्रकार के आपस के कलह से लाभ उठाने की आशा से अचानक चढ़ाई कर जोधपुर को घेर लिया। कई दिनों के युद्ध के बाद रसद आदि की कमी के कारण राव चन्द्रसेनजी ने सोजत का परगना रामसिंह को, और सेना का खर्च हुसेनकुली को देने का वादा कर आपस में संधि करली^१। इससे चन्द्रसेनजी का अधिकार केवल जोधपुर, जैतारण, पौकरण और सिवाने के परगनों पर ही रह गया। परन्तु हुसेनकुली के लौट जाने पर रावजी की ओर से इस संधि की शर्त का, राव राम की इच्छानुसार, पूरा-पूरा पालन न हो सका। इस पर वि० सं० १६२१ (ई० सन् १५६४) में राव राम ने बादशाह अकबर के पास जाकर सहायता माँगी। बादशाह ने भी अपने बाप का बदला लेने

१. कहीं-कहीं यह भी लिखा मिलता है कि राव राम ने ही, महाराणा उदयसिंहजी की सहायता पाकर, मारवाड़ पर अधिकार करने की इच्छा से पहले चढ़ाई की थी।
२. तारीखे पालनपुर (जिल्द १, पृ० ७७) में बादशाह अकबर से बागी होकर मिरजा शर्फुद्दीन का मालदेवजी के मरने पर मेड़ते पर चढ़ाई करना और चंद्रसेनजी का उससे संधि कर मेड़ते की रक्षा करना लिखा है, तथा इस घटना का समय वि० सं० १६१५ (ई० सं० १५५८) दिया है। यह भ्रम-पूर्ण है; क्योंकि मेड़ता तो शर्फुद्दीन ने मालदेवजी के समय ही जयमल्ल को सौंप दिया था। परन्तु शीघ्र ही जयमल्ल नाराज़ होकर मेवाड़ चला गया। इसके बाद जब शर्फुद्दीन बागी हुआ, तब अकबर ने मेड़ता शर्फुद्दीन से लेकर जगमाल को दे दिया था। शर्फुद्दीन वि० सं० १६२० (हि० सं० ६७१=ई० सं० १५६३) में बागी हुआ था और मालदेवजी का स्वर्गवास वि० सं० १६१६ में हुआ था।

मारवाड़ का इतिहास

का अच्छा मौका मिला देख, मारवाड़-राज्य को पददलित करने के लिये, राम की प्रार्थना स्वीकार करली और मुजफ्फरगढ़ों को सेना देकर उसके साथ कर दिया। साथ ही उसने हुसेनकुली को भी लिख दिया कि राव चन्द्रसेन से जोधपुर का क़िला छीन लो और राव राम को सोजत का परगना दिलवा दो। इस आज्ञा के पहुँचते ही हुसेनकुली ने आकर फिर जोधपुर को घेर लिया। राव चन्द्रसेनजी भी क़िले का आश्रय लेकर मुग़ल-सेना का सामना करने लगे। कहते हैं, जब शाही सेनानायकों ने क़िले पर किसी प्रकार भी अपना अधिकार होता न देखा, तो रानीसरै की तरफ़ के मार्ग से क़िले में घुसने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु इसमें भी उन्हें सफलता नहीं मिली। अंत में जब कई महीनों के घेरे से क़िले में का खाने-पीने का सब सामान समाप्त हो चला, तब मुख्य-मुख्य सरदारों ने रावजी को क़िला छोड़कर चले जाने के लिये बाध्य किया। इस पर इच्छा न होते हुए भी राव चन्द्रसेनजी तो अपने परिवार-सहित भाद्राजगण की तरफ़ चले गए और जो सरदार क़िले के रक्षार्थ पीछे रह गए थे, वे मुसलमानों से सम्मुख रण में जूँझ कर वीरगति को प्राप्त हुए। इस प्रकार क़िले पर शाही सेना का अधिकार हो गया। इसका समाचार पातेही चन्द्रसेनजी ने इधर-उधर आक्रमण कर धन-जन एकत्रित करना और समय-समय पर मुसलमानों को तंग करना शुरू किया।

अकबर नामे में लिखों है।

“चन्द्रसेन के गद्दी बैठने पर हुसेनकुली बेग और बादशाही फौज ने आकर जोधपुर के क़िले को घेर लिया। यह समाचार पाकर राव मालदेव का बड़ा पुत्र राम भी आकर शाही सेना के साथ हो गया। इस पर सेना के अमीरों ने उसे बादशाह के पास भेज दिया। वहाँ पहुँचने पर अकबर ने उसके साथ बड़ा अच्छा बर्ताव

१. जिस समय हुमायूँ, शेरशाह के विरुद्ध राव मालदेवजी से सहायता मांगने आया था, उस समय उसके सैनिकों ने मारवाड़-राज्य में गोवध कर डाला था। इसी से अप्रसन्न होकर मालदेवजी ने उसकी सहायता करने से हाथ खींच लिया और हुमायूँ को निराश हो लौटना पड़ा। यही इस वैर का कारण था।

२. इसी तालाब से क़िले में पानी पहुँचाने का एक मार्ग था। यह मार्ग अभी तक विद्यमान है।

३. ख्यातों में इस घटना का समय वि० सं० १६२२ की संगतिर वदि १२ (ई० सं० १५६५ की १६ नवंबर) लिखा है।

४. देखो, भाग २, पृ० १६७।

किया और मुईनुद्दीन अहमदख़ाँ आदि सरदारों के साथ, एक फ़ौज देकर, उसे भी हुसेनकुली बेग की सहायता में जोधपुर भेज दिया। कुछ ही समय में शाही सेना ने किला विजय कर लिया।”

इसके बाद वि० सं० १६२७ (हि० सन् १७८=ई० सन् १५७०) में जब बादशाह अकबर अजमेर होता हुआ नागोर पहुँचा, तब राजस्थान के कई रईस उससे मिलने को वहाँ गए। यह देख राव चन्द्रसेनजी भी शाही रंग-ढंग का पता लगाने को नागोर पहुँचे। बादशाह ने इनका बड़ा आदर-सत्कार किया। बादशाह की हार्दिक इच्छा थी कि यदि यह नाममात्र को भी उसकी अधीनता स्वीकार करलें, तो जोधपुर का राज्य इन्हें सौंप दिया जाय। परन्तु अपनी स्वाधीन प्रकृति के कारण यह किसी प्रकार भी बादशाही अधीनता स्वीकार करने को उद्यत न हुए और नागोर से लौट कर भाद्राजण चले गए।

मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि इसके बाद ही बादशाही सेना ने भाद्राजण को घेर लिया। यद्यपि देशकालानुसार राव चन्द्रसेनजी ने भी उसका सामना करने में कसर नहीं की, तथापि कुछ ही दिनों में खाद्य सामग्री का अभाव हो जाने के कारण इनको सिवाने की तरफ़ चला जाना पड़ा।

वि० सं० १६२६ (ई० सन् १५७२) में जिस समय सेना-संग्रह करते हुए चन्द्रसेनजी का डेरा काणूजा में पड़ा, उस समय आसरलाई का स्वामी (खीवा का पुत्र) रत्नसिंह मुसलमानों से मिल जाने के कारण रावजी के बुलाने पर भी उपस्थित नहीं हुआ। इससे क्रुद्ध होकर चन्द्रसेनजी ने आसरलाई पहुँच उस गाँव को ही नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

१. यहीं पर मालदेवजी के तृतीय पुत्र उदयसिंहजी, बीकानेर के राव कल्याणमलजी और महाराजकुमार रायसिंहजी आदि आकर बादशाह से मिले थे। बादशाह ने उदयसिंहजी को तो समावली के गूजरों को दवाने के लिये भेज दिया और रायसिंहजी को अपने पास रख लिया। इसके बाद ही जोधपुर का प्रबन्ध भी इन्हीं रायसिंहजी के अधिकार में दे दिया गया। राव मालदेवजी का ज्येष्ठ पुत्र राम भी जोधपुर में नियत हुआ और उधर से गुजरात को जानेवाले मार्ग की रक्षा के कार्य में शरीक किया गया।

‘तबक़ाते-अकबरी’ में अकबर का हि० सं० ६७७ की १६ जमादिउलआख़िर (वि० सं० १६२६ की पौष वदि ३=ई० सं० १५६६ की २६ नवंबर) को नागोर पहुँचना लिखा है। वह वहाँ पर ५० दिन तक रहा था। (देखो, पृ० ८६)

मारवाड़ का इतिहास

अगले वर्ष (वि० सं० १६३०=ई० सन् १५७३ में) अजमेर-प्रांत के मिनाय नामक गाँव की प्रजा ने मादलिया नामक भील के उपद्रव से तंग आकर चन्द्रसेनजी से सहायता चाही। इन्होंने भी मौका देख उस पर चढ़ाई कर दी। जिस समय यह वहाँ पहुँचे, उस समय मादलिया के यहाँ उत्सव होने के कारण बहुत से आसपास के भील भी वहाँ एकत्रित थे। इसलिये उन सबने शस्त्र संहालकर इनका सामना किया। परन्तु कुछ काल में ही मादलिया के मारे जाने पर सारे भील भाग खड़े हुए और वहाँ पर चन्द्रसेनजी का अधिकार हो गया।

इसी वर्ष (वि० सं० १६३०=हि० सन् १८१ में) अकबर ने सिवाने पर भी एक मजबूत सेना भेज दी। इसमें शाहकुलीख़ाँ आदि मुसलमान सेनानायकों के साथ ही बीकानेर के राव रायसिंहजी, केशवदास मेड़तिया (जयमल का पुत्र), जगतराय आदि हिन्दू-नरेश और सामंत भी थे। बादशाह की बड़ी इच्छा थी कि किसी तरह राव चन्द्रसेन शाही अधीनता स्वीकार करले। इसी से उसने अपने सेनानायकों को समझा दिया था कि यदि हो सके, तो बादशाही कृपा का प्रलोभन दिखलाकर चन्द्रसेन को वश में करने की कोशिश की जाय। यह सेना पहले पहल सोजत की तरफ़ गई और वहाँ पर इसने चन्द्रसेनजी के भतीजे (राव मालदेवजी के पौत्र) कल्ला

परन्तु अकबरनामे में इस घटना का हि० सं० ६७८ (ई० सं० १५७०) में होना लिखा है। (देखो, भा० २, पृ० ३५७-३५८)

१. उसी दिन से मारवाड़ में यह कहावत चली है—

“मादलियो मारियो ने गोठ बीखरी”

अर्थात्—सरदार (मादलिया) को मारते ही उत्सव में एकत्रित हुए लोग भाग खड़े हुए।

अभी तक मिनाय में चंद्रसेनजी के वंशजों का अधिकार है।

‘चीफ़्स एंड लीडिंग फ़ैमिलीज़ इन राजपूताना’ में लिखा है कि इस प्रकार मादलिया भील को मारकर उसका उपद्रव शांत कर देने से अकबर चंद्रसेनजी से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सात परगनों सहित मिनाय का प्रांत इन्हीं को दे दिया।

परन्तु यह लेख भ्रम-पूर्ण है; क्योंकि चंद्रसेनजी के बादशाही अधीनता स्वीकार न करने के कारण ही शाही सेना उनके पीछे लगी रहती थी।

‘तारीख़े पालनपुर’ में मादलिया भील को चंद्रसेनजी का सहायक लिखा है।

उसमें यह भी लिखा है कि चंद्रसेनजी के पौत्र कर्मसेन ने मादलिया को मारकर मिनाय पर अधिकार किया था। (देखो, जिल्द १, पृ० ७६)

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८०-८१

को हराया। इसके बाद उसके बंधु केशवदास, महेशदास और राठोड़ पृथ्वीराज को साथ लेकर इसने सिवाने की तरफ प्रयाण किया। जिस समय यह विशाल शाही सेना सिवाने के आसपास के प्रदेश को लूटती और सामना करनेवालों को परास्त करती हुई सिवाने के पास पहुँची, उस समय वहाँ के दुर्ग-रक्षकों ने चंद्रसेनजी से पास के पहाड़ों का आश्रय लेकर समय की प्रतीक्षा करने की प्रार्थना की। इस पर यह सेनापति राठोड़ पत्ता को किले की रक्षा का भार सौंप पास के पहाड़ों में चले गए और किले को घेरनेवाली शाही सेना के पारवों और पृष्ठ पर जोर-शोर से आक्रमण कर उसे तंग करने लगे। किलेवालों ने भी बड़ी वीरता से दुर्ग घेरनेवाली शाही सेना का सामना किया। यद्यपि बादशाही सेना का बल बहुत बढ़ा-चढ़ा था, तथापि न तो चंद्रसेनजी ने ही और न इनके दुर्ग-रक्षक पत्ता ने ही हिम्मत हारी। राठोड़ वीर मौका पाते ही शाही सैन्य पर आक्रमण कर उसे नष्ट करने में नहीं चूकते थे। इससे घबराकर बीकानेर के राव रायसिंहजी, जो चंद्रसेनजी से विरोध कर अकबर से मिल गए थे, वि० सं० १६३१ (हि० सन् १८२) में सिवाने से अजमेर आए और उन्होंने बादशाह अकबर को सूचित किया कि आपने जो सेना सिवाने की तरफ भेजी है, वह चन्द्रसेन को दबाने में असमर्थ है। इसलिये हो सके, तो कुछ सेना और भी उस तरफ भेजी जाय। इस पर बादशाह ने तय्यबख्श, सैयदबेग तोकबाई, सुभानकुलीख़ाँ तुर्क, खुर्रम, अजमतख़ाँ, शिवदास आदि अपने अन्य कई अमीरों को भी एक बड़ी

१. पहले तो कछा ने बड़ी वीरता से अकबर की सेना का सामना किया। परन्तु अंत में शाही सेना के संख्याधिक्य के कारण उसे सोजत का किला छोड़ सिरियारी के किले का आश्रय लेना पड़ा। परन्तु वहाँ पर भी शाही सेना ने उसका पीछा न छोड़ा और जब किले की दुर्गमता के कारण वह उस पर अधिकार करने में समर्थ न हुई, तब उसने उस दुर्ग के चारों तरफ लकड़ियाँ चुनकर उसमें आग लगा दी। इस पर कछा वहाँ से निकल कोरने चला गया। परन्तु जब पीछे लगी हुई सेना ने वहाँ भी उसका पीछा न छोड़ा, तब लाचार हो उसे शाही सेनानायकों से संधि करनी पड़ी और इसके बाद यद्यपि वह स्वयं तो बहाना कर शाही सेना में सम्मिलित होने से बच गया, तथापि उसे अपने बंधुओं को उक्त सेना के साथ भेजना पड़ा।

२. मार्ग में चन्द्रसेनजी की तरफ के रावल मेघ (सुख) राज, सूजा और देवीदास ने मिलकर लूट मचाने को निकले हुए शाही सेना के सैनिकों के साथ बड़ी वीरता से युद्ध किया।

(अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८१)।

३. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ११०-१११

मारवाड़ का इतिहास

सेना के साथ चन्द्रसेनजी के मुकाबले को खाना किया । इस प्रकार शाही सेना का बल दुगुना हो जाने के कारण, अपने सरदारों की सलाह से, चन्द्रसेनजी रामपुरे की तरफ से होकर विकट पहाड़ों में घुस गए । इस पर पहले तो शाही सेना ने बड़ी उमंग के साथ इनका पीछा किया । परन्तु अंत में जब सफलता होती न देखी, तो उसे वापस लौटना पड़ा । चन्द्रसेनजी के इस प्रकार बचकर निकल जाने और अपनी सेना के इस प्रकार असफल होने से अकबर को बड़ी निराशा हुई और उसने इसके लिये अपने अमीरों को डाँट-फटकार भी दी ।

इसके बाद वि० सं० १६३२ (हि० सन् १८३) में चन्द्रसेनजी को दबाने के लिये जलालख़ाँ को सिवाने की तरफ जाने की आज्ञा दी गई, और उसके साथ सैयद अहमद, सैयद हाशिम, शिमालख़ाँ आदि अमीर भी भेजे गए । इतने दिनों से चन्द्रसेनजी का पीछा करते रहने पर भी सफलता न होने से शाही सैनिक हतोत्साह हो गए थे, इससे उनकी हालत और भी खराब हो गई । साथ ही उस पहाड़ी प्रदेश में भटकने और घास-दाने का पूरा प्रबंध न होने के कारण उनके घोड़े भी दुर्बल हो गए । इसी से बादशाह ने इन्हें वहाँ पहुँच अगली सेना को लौटा देने की आज्ञा भी दी । इसके बाद ये लोग अपनी-अपनी जागीरों में जाकर चढ़ाई की तैयारी करने लगे । जिस समय जलालख़ाँ मार्ग में मेड़ते पहुँचा, उस समय उसे सिवाने की सेना के सरदार रामसिंह, सुलतानसिंह और अलीकुली आदि की तरफ से सूचना मिली कि यद्यपि वे लोग बादशाह की आज्ञानुसार चंद्रसेन को दबाने का प्रयत्न कर रहे हैं, तथापि वह अपनी और अपने सरदारों की वीरता और पहाड़ों के आश्रय के कारण अजेय हो रहा है । इसलिये यदि जलालख़ाँ भी शीघ्र ही उनकी मदद पर आ जाय, तो संभव है, कुछ सफलता मिल जाय । यह समाचार पाते ही वह तत्काल सिवाने की तरफ चल पड़ा । यथासमय इसकी सूचना चन्द्रसेनजी को भी मिल गई इसीसे यह मार्ग में ही अचानक आक्रमण कर उसके बल को नष्ट करने का मौका ढूँढने लगे । परन्तु किसी प्रकार इनकी गति-विधि का पता शत्रुदल को भी मिल गया । अतः उसने स्वयं ही आगे बढ़ इन पर आक्रमण कर दिया । इस एकाएक होनेवाले हमले से

१. अकबरनामा, भा० ३, पृ० १५८

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० १६७

३. ये दोनों बीकानेर-नरेश रायसिंहजी के छोटे भ्राता थे ।

चन्द्रसेनजी का सारा प्रबंध उलट गया। इस पर भी कुछ समय तक तो यह पहाड़ों से निकल कर शाही सेना का सामना करते रहे^१; परन्तु विशाल शत्रुदल से टकरा लेने में अपने मुठी-भर वीरों की अधिक हानि होती देख अंत में इन्हें फिर पहाड़ों में घुस जाना पड़ा। शाही सेना पहाड़ों में ऐसे वीरों का पीछा कर एक बार असफल हो चुकी थी। इसलिये वह रामगढ़ के किले में जाकर ठहर गई, और जी तोड़ परिश्रम के साथ राव चन्द्रसेनजी के निवासस्थान का पता लगाने तथा इन्हें परास्त करने की कोशिश करने लगी। परन्तु शाही सेना के चलाए कुछ पता न चला। इसी बीच बगड़ी ठाकुर देवीदास नामक एक व्यक्ति ने आकर शाही सेना को सूचना दी कि आजकल चन्द्रसेन अपने भतीजे कल्ला के पास है। यदि उसको पकड़ना चाहते हो, तो उधर चलो। शाही सैनिक तो पहले से ही चन्द्रसेनजी की तलाश में थे, अतः इस सूचना के पाते ही तत्काल वहाँ जा पहुँचे। परन्तु कल्ला ने चन्द्रसेनजी के वहाँ होने का स्पष्ट तौर से प्रतिवाद किया। इस पर शाही सेना को वहाँ से निराश होकर लौटना पड़ा। इससे शिमालख़ाँ देवीदास से चिढ़ गया और उसने एक दिन बहाने से उसे अपने यहाँ बुलाकर कैद कर लेने का प्रबंध किया। परन्तु जब समय आया, तब देवीदास अपनी वीरता से उसके पंजे से बचकर निकल गया और शिमालख़ाँ मुँह ताकता रह गया। इसके बाद देवीदास अपना शाही लश्कर में रहना आपत्ति-जनक समझ वहाँ से कल्ला के पास चला गया। परन्तु उसने शिमालख़ाँ से बदला लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। इसीसे एक दिन मौका पाकर देवीदास और राव चन्द्रसेनजी ने एकाएक बादशाही सेना पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि देवीदास

१. अकबरनामा, भा० ३, पृ० १५८-१५९

२. इस पुरुष ने रामगढ़ में आकर कहा कि मैं वही राठोड़ देवीदास हूँ, जिसको लोगों ने मिरजा शर्फुद्दीन के साथ मेड़ते की लड़ाई में मरा हुआ समझ लिया था। वास्तव में जिस समय मैं अधिक घायल हो जाने के कारण रणक्षेत्र में बेहोश पड़ा था, उस समय एक संन्यासी वहाँ आ पहुँचा और मुझे रणक्षेत्र से उठाकर अपने स्थान पर ले गया। उसके इलाज से जब मैं बिलकुल अच्छा हो गया, तब कई दिनों तक तो उसी के साथ फिरता रहा और अब उसकी आज्ञा लेकर इधर आ गया हूँ। इसके साथ ही उसने बादशाही सेवा कर ख्याति प्रकट करने की इच्छा से उस सेना में सम्मिलित होना भी स्वीकार कर लिया। शाही सैनिकों में से कुछ ने उसकी कही इस कथा को सच्ची और कुछ ने झूठी समझा।

(अकबरनामा, भा० ३, पृ० १५९)

मारवाड़ का इतिहास

इस मौके से लाभ उठाकर अपने बैरी शिमालख़ाँ को मारना चाहता था, तथापि जल्दी में उसके बदले जलालख़ाँ के डेरे पर ही मारकाट शुरू हो गई। इसी में जलालख़ाँ मारा गया। इसके बाद ये लोग शिमालख़ाँ के डेरे की तरफ़ बढ़े। परन्तु इसी बीच बहुत-से शाही सैनिकों के साथ जयमल वहाँ आ पहुँचा। यह देख चन्द्रसेनजी और देवीदास अपने दलबल के साथ शाही सेना से निकल वापस लौट गए।

इस घटना से शाही सेना का बल और भी टूट गया। यह देख वीरवर कल्ला देवकोर के किले में चला आया और आसपास के राजपूतों को एकत्रित कर शाही सेना से एक बार फिर युद्ध करने की तैयारी करने लगा। इससे उस सेना के मार्ग में एक नवीन बाधा उठ खड़ी हुई और वह लाचारी के कारण सिवाने की तरफ़ का ध्यान छोड़ देवकोर के किले पर आक्रमण करने में लग गई।

जैसे ही यह वृत्तांत अकबर को मिला, वैसे ही उसने अपनी प्रतिष्ठा को इस प्रकार संकट में पड़ी देख शाहबाज़ख़ाँ को उस तरफ़ की अराजकता मिटाने के लिये रवाना किया। देवकोर के पास पहुँचने पर उसने देखा कि वहाँ की शाही सेना किले को घेर कर असफल आक्रमणों में लगी हुई है, अतः शाहबाज़ ने आगे बढ़ एकाएक किले पर चढ़ाई करदी। इससे शाही सेना का बल बहुत बढ़ गया। वीर कल्ला के अल्पसंख्यक थके-माँदे योद्धा कब तक उसका मुकाबला कर सकते थे। अंत में किला मुग़लों के हाथ लगा। इस प्रकार देवकोर से निपट कर शाहबाज़ ने किले की रक्षा के लिये थोड़ी-सी सेना के साथ कुछ बाराह के सैन्यदों को वहाँ छोड़ा और बाकी फ़ौज को लेकर सिवाने की तरफ़ प्रयाण किया। वहाँ से आगे बढ़ने पर ये लोग दूनाडा में पहुँचे। वहाँ के किले^३ में भी कुछ राठोड़ वीर एकत्रित थे। अतः मुग़ल सेनापति ने इनसे शाही सेवा अंगीकार करने का प्रस्ताव किया। परन्तु वीर राठोड़ों ने स्वाधीनता छोड़ने के बजाय प्राण दे देना ही उचित समझा और इस प्रस्ताव को मानने से साफ़ इनकार कर दिया। इस पर दोनों तरफ़ से युद्ध आरंभ हो गया। वीर योद्धा एक दूसरे से आगे बढ़-बढ़ कर वीरता दिखाने लगे। परन्तु कुछ ही काल

१. अकबरनामे (भा० ३, पृ० १५६) में जयमल और किसी-किसी ख्यात में मेड़तिया जगमाल लिखा है।

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० १६७; परन्तु देवकोर के किले का कुछ पता नहीं चलता।

३. दूनाडे में इस समय किला विद्यमान नहीं है।

में राठोड़ों की संख्या अल्प से अल्पतर हो गई और क़िले पर शाही सेना का अधिकार हो गया। इसके बाद शाहवाज़ख़ाँ ने आगे बढ़ सिवाने के क़िले पर घेरा डाला और बादशाह की आज्ञानुसार पहलेवाली शाही सेना को वहाँ से वापस लौटा दिया। जब कुछ दिनों के परिश्रम से यह प्रकट हो गया कि सम्मुख रण में प्रवृत्त होकर वीर राठोड़ों से क़िला छुड़वा लेना असंभव है, तब उसने अनेक तरह के छल कपट कर क़िलेवालों को तंग करना शुरू किया और जहाँ तक हो सका, बाहर से रसद आदि का आना भी एकदम बंद कर दिया। इस पर जब सिवाय क़िला खाली कर देने के अन्य कोई उपाय न रहा, तब क़िले के रक्षक ने यह प्रस्ताव यवन-सेनापति के पास भेज दिया। उसने भी इसमें अधिक गड़बड़ करने से हानि समझ शीघ्र ही इसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार वि० सं० १६३३ (हि० सन् १८४) में अनेक कठिनाइयों के बाद यह क़िला अकबर के अधिकार में आया। क़िले के बचे हुए राठोड़ चन्द्रसेनजी के पास पीपलोद के पहाड़ों में चले गए और वहीं से मौका पाकर समय-समय पर मुग़लसेना को तंग करने लगे।

राव चन्द्रसेनजी को इस प्रकार अकबर के साथ युद्ध में उलझा हुआ देख इसी वर्ष के कार्तिक (ई० सन् १५७६ के अक्टोबर) में जैसलमेर के रावल हरराजजी ने पौकरण पर चढ़ाई कर दी। उस समय वहाँ पर चन्द्रसेनजी की तरफ़ से पंचोली (कायस्थ) आनन्दराम क़िलेदार था। अतः उसने क़िले में बैठकर चार मास तक बराबर रावलजी का सामना किया। परन्तु जब दोनों तरफ़ विजय की आशा नहीं दिखाई दी, तब व्यर्थ का नर-संहार अनुचित समझ दोनों पक्षों ने इस शर्त पर संधि करना निश्चित किया कि पौकरण तो रावलजी को सौंप दिया जाय और वह इसके एवज़ में १,००,००० फ़दिए (क़रीब १२,५०० रुपये) राव चन्द्रसेनजी को कर्ज़ के तौर पर दें। परन्तु जिस समय रावजी यह द्रव्य उन्हें लौटा दें, उस समय रावलजी पौकरण उनको सौंप दें। इसके बाद युद्ध स्थगित कर दिया गया और ये शर्तें राव चन्द्रसेनजी की सम्मति के लिये इनके पास भेज दी गईं। उस समय रावजी सम्राट् अकबर जैसे शत्रु से उलझे हुए थे और इसी से इनको द्रव्य की बड़ी आवश्यकता थी। इसलिये इन्होंने ये प्रस्ताव मान लिए और इनके अनुसार शीघ्र ही संधि हो गई।

जब पीपलोद के पहाड़ों में भी शाही सेना ने चन्द्रसेनजी का पीछा न छोड़ा, तब कुछ दिन तक तो यह समय-समय पर उससे युद्ध करते रहे। परन्तु इसके बाद

मारवाड़ का इतिहास

कुछ दिन के लिये यह सिरोंही^१, डूंगरपुर और बाँसवाड़े की तरफ घूमते रहे। इन्हीं दिनों राव राम का पुत्र कल्ला मुसलमानों के हाथ से मारा गया और इससे सोजत पर भी मुगलों का अधिकार हो गया। यह देख कूँपावत सादूल (महेशदास के पुत्र) और जैतावत आसकरण (देवीदास के पुत्र) आदि सरदारों ने राव चन्द्रसेनजी से मारवाड़ में आकर देश की रक्षा करने का आग्रह किया। इससे यह मेवाड़ की तरफ से लौटकर अपनी मातृभूमि मारवाड़ में चले आए और शीघ्र ही इन्होंने सरवाड़ के बादशाही थाने को लूट कर वहाँ पर अपना अधिकार कर लिया। यह घटना वि० सं० १६३६ (ई० सन् १५७६) की है। इसके बाद इन्होंने अजमेर-प्रांत को लूटना शुरू किया। यह समाचार पाते ही बादशाह ने पायंदा मोहम्मदखाँ आदि के साथ बहुत-से अमीरों को इनके मुकाबले को जाने की आज्ञा दी। इस पर एक बार चन्द्रसेनजी ने भी दिल खोल कर इनका सामना किया, परन्तु अंत में इतने बड़े सम्मिलित शाही दल के सम्मुख रण में प्रवृत्त होना हानिकारक जान यह पहाड़ों में घुस गए। यह घटना वि० सं० १६३७ (हि० सन् १८८) की है।

इसके कुछ दिन बाद ही राव चन्द्रसेनजी ने फिर इधर-उधर से कुछ सेना एकत्र कर इसी वर्ष की श्रावण-वदि ११ (ई० सं० १५८० की ७ जुलाई) को सोजत पर हमला कर दिया और वहाँ पर अधिकार हो जाने पर सारण के पर्वतों में अपना निवास कायम किया। परन्तु यहीं पर वि० सं० १६३७ की माघ सुदी ७ (ई० सन् १५८१ की ११ जनवरी) को इनका अचानक स्वर्गवास हो गयो।

१. ख्यातों में लिखा है कि रावजी यहाँ पर करीब डेढ़ वर्ष रहे थे।
२. ख्यातों में लिखा है कि वहाँ के रावल और उनके पुत्र के बीच में विरोध होने के कारण वहाँ के किले पर इन्होंने अधिकार कर लिया था। परन्तु शाही सेना के आगमन के कारण इन्हें वहाँ से हट जाना पड़ा।
३. अकबरनामे में लिखा है कि हि० सं० ६८८ (वि० सं० १६३७) में सूचना मिली कि राव चन्द्रसेन मालदेव का बेटा, जो पहले बादशाह के दरबार में हाज़िर हो चुका था बारी हो गया और शाही फौज के डर से छिप कर मौका देखता था। पर आजकल मौका पाकर अजमेर के इलाके में लूट-मार करने लगा है।

(अकबरनामा, भा० ३, पृ० ३१८)

परन्तु चन्द्रसेनजी केवल वि० सं० १६२७ (ई० सं० १५७०) में एक बार ही नागौर में बादशाह से मिले थे। उसके बाद इनका बादशाह से दुबारा मिलना न तो फारसी तवारीखों से ही और न ख्यातों से ही सिद्ध होता है। अतः अकबरनामे का यह लेख उसी घटना को दुहराता है।

४. मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि जिस समय राव चन्द्रसेनजी सोजत पर अधिकार

राव चन्द्रसेनजी का स्वर्गवास सचियार्य में हुआ था और सारन में जिस स्थान पर इनकी दाहक्रिया की गई थी, उस जगह इनकी संगमरमर की एक पुतली अब तक विद्यमान है।

राव चन्द्रसेनजी ही अकबर-कालीन-राजस्थान के सर्व प्रथम मनस्वी वीर और स्वतंत्र प्रकृति के नरेश थे और महाराणा प्रताप ने इन्हीं के दिखलाए मार्ग का करीब १० वर्ष बाद अनुसरण किया था। यद्यपि चन्द्रसेनजी ने जोधपुर के-से राज्य को छोड़कर रात-दिन पहाड़ों में घूमना और आयुपर्यन्त यवनवाहिनी से लड़ते रहना अंगीकार कर लिया, तथापि बादशाह की अधीनता नाममात्र को भी स्वीकार नहीं की। अकबरनामे के लेख से भी ज्ञात होता है कि अकबर की प्रबल इच्छा थी कि अन्य नरेशों की तरह राव चन्द्रसेनजी भी, किसी तरह, उसकी अधीनता स्वीकार कर लें। इसी से वह इनके विरुद्ध भेजे जाने वाले शाही अमीरों को समझा देता था कि हो सके, तो शाही प्रसन्नता के लाभ समझाकर वे राव को वश में करने की कोशिश करें। परन्तु उसकी यह इच्छा अंत तक किसी प्रकार भी पूर्ण न हो सकी।

कर सारण के पर्वतों में रहने लगे थे, उस समय इधर-उधर के बहुत-से राठोड़ सरदार उनकी सेवा में चले आए थे। परन्तु राठोड़ वैरसल और कूँपावत उदयसिंह ने गर्व के कारण इस तरफ ध्यान नहीं दिया। इस पर रावजी ने वैरसल की जागीर के गाँव दूदोड़ पर चढ़ाई की। परन्तु जिस समय यह मार्ग में ही थे, उस समय राठोड़ (देवीदास के पुत्र) आसकरन ने वैरसल को समझाकर सेवा में ले आने का वादा किया। इससे इधर तो चन्द्रसेनजी ने अपनी चढ़ाई रोक दी और उधर आसकरन ने जाकर वैरसल को सब तरह से समझा दिया। परन्तु वैरसल ने यह शर्त पेश की कि यदि रावजी एक बार स्वयं आकर मेरे स्थान पर भोजन कर लें, तो मुझे विश्वास हो जाय और मैं उनकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँ। आसकरन की प्रार्थना पर रावजी ने यह बात मान ली और इसके अनुसार एक दिन यह उसके स्थान पर भोजन करने चले गए। परन्तु जैसे ही रावजी वैरसल के यहाँ से भोजन करके लौटें, वैसे ही इनका स्वर्गवास हो गया। इससे अनुमान होता है कि वैरसल ने विश्वासघात कर रावजी को विष दे दिया होगा।

१. यह सारन के पास (सोजत प्रान्त में) है।

२. उक्त पुतली में राव चन्द्रसेनजी की घोड़े पर सवार प्रतिमा बनी है और उसके आगे ५ छियाँ खड़ी हैं। इससे प्रकट होता है कि उनके पीछे ५ सतियाँ हुई थीं। यह बात उक्त पुतली के नीचे खुदे लेख से भी सिद्ध होती है। उसमें लिखा है—

“श्रीगणेशाय नमः। संवत् १६३७ शाके १५ [०] २ माघ मासे सू (शु) कृष्ण सतिव (सप्तमी) दिने राय श्रीचन्द्रसेणजी देवीकुला सती पंच हुई।”

मारवाड़ का इतिहास

वास्तव में उस समय राजपूताने में महाराणा प्रताप और राव चन्द्रसेन, यही दो स्वामिमानी वीर अकबर की आंखों के कांटे बने थे। राजस्थान की प्रचलित दंतकथा के अनुसार इनमें से पहले वीर ने तो एक बार अपने कुटुम्ब के महान् दुःख को देख कंधा डाल देने का विचार भी कर लिया था। परन्तु दूसरा वीर तो सुख-दुःख की कुछ भी परवा न कर अन्त तक बराबर अपने व्रत का निर्वाह करता रहा। किसी कवि ने क्या ही यथार्थ कहा है—

अणादगिया तुरी ऊजला असमर, चाकर रहण न डिगियो चीत ।

सारे हिन्दुस्तान तगै सिर पातल नै चन्द्रसेण प्रवीत ।

अर्थात्—उस समय सारे हिन्दुस्तान में महाराणा प्रताप और राव चन्द्रसेन, यही दो ऐसे वीर थे, जिन्होंने न तो अकबर की अधीनता ही स्वीकार की और न अपने घोड़ों पर शाही दाग ही लगने दिया, तथा जिनके शस्त्र हमेशा ही यवन-सम्राट् के विरुद्ध चमकते रहे।

राव चन्द्रसेनजी ने सांगा नामक ब्राह्मण को अरटनडी नामक एक गांव दान दिया था।

इन रावजी के तीन पुत्र थे—

(१) रायसिंह, (२) उग्रसेन और (३) आसकरन।

१. कहते हैं, महाराणा ने एक बार अपने परिवार के कष्टों को देखकर अकबर की अधीनता स्वीकार करने का विचार कर लिया था। परन्तु बीकानेर-नरेश के छोटे भाई पृथ्वीराज के उपदेश से वह फिर सम्हल गए।

राव चन्द्रसेन और महाराणा प्रताप पर एक तुलनात्मक दृष्टि ।

आगे दोनों नरेशों के विषय की कुछ समान घटनाओं का उल्लेख किया जाता है । यद्यपि इनमें से कोई-कोई एक दूसरी से संपूर्णतः नहीं भी मिलती हैं, तथापि उनका एक भाग अवश्य ही आपस में समानता रखता है—

१—वैसे तो मारवाड़ और मेवाड़ के नरेशों से मुसलमान बादशाहों का वैर पहले से ही चला आता था, परन्तु वि० सं० १६२१ (ई० सं० १५६४) में राव चन्द्रसेनजी ने व्यक्तिगत रूप से अकबर की अधीनता स्वीकार करने से इनकार किया था, और वि० सं० १६३० (ई० सं० १५७३) में महाराणा प्रताप का जयपुर के कुँअर मानसिंह से विरोध हो जाने से उन पर अकबर के आक्रमण प्रारंभ हुए थे ।

वि० सं० १६२८ से १६३७ (ई० सं० १५७१ से १५८०) तक ये दोनों नरेश अकबर की आंखों के कांटे बने रहे । परन्तु इसी वर्ष राव चन्द्रसेनजी का स्वर्गवास हो गया ।

२—उधर महाराणा प्रताप यद्यपि महाराणा उदयसिंहजी द्वितीय के ज्येष्ठ पुत्र थे, तथापि उनके पिता ने उनके छोटे भाई जगमाल को राज्य का उत्तराधिकारी नियत कर दिया था । अतः पिता की मृत्यु के बाद यह भाई के विरुद्ध होकर मेवाड़ की गद्दी पर बैठे और इसी से दोनों भाइयों में विरोध हो गया । इस पर जगमाल जहाजपुर होता हुआ अजमेर के सूबेदार की सलाह से अकबर की सेवा में चला गया और उससे जहाजपुर का परगना जागीर में पाया । कुछ दिन बाद इनका दूसरा भाई सगर भी इनसे नाराज होकर अकबर के पास चला गया । इधर राव चन्द्रसेनजी के पाँच बड़े भाइयों के होते हुए भी इनके पिता ने इन्हीं को राज्याधिकारी चुना और इसी के कारण इनका बड़ा भाई राम इनसे अप्रसन्न होकर हुसेनकुली की सलाह से अकबर के पास चला गया, तथा ख्यातों के अनुसार बादशाह ने उसको सोजत का प्रांत जागीर में दिलवा दिया । वि० सं० १६२७ (ई० सं० १५७०) में राव चन्द्रसेनजी के दूसरे भाई उदयसिंहजी भी बादशाही पक्ष में चले गए ।

३—महाराणा प्रताप के राज्यासन पर बैठते समय जिस प्रकार मेवाड़ के चित्तौड़, मांडलगढ़ आदि प्रदेशों पर यवनों का शासन था, उसी प्रकार राव चन्द्रसेनजी के राज्यारोहण के समय भी मारवाड़ के अजमेर, मेड़ता आदि प्रदेश यवनों के अधिकार में थे ।

मारवाड़ का इतिहास

४-जिस प्रकार महाराणा प्रताप के गद्दी पर बैठने के पूर्व ही बाबर आदि यवनों के साथ के युद्धों में मेवाड़ के बड़े-बड़े वीर मारे जा चुके थे, उसी प्रकार राव चन्द्रसेनजी के सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व भी शेरशाह आदि यवनों के साथ के युद्धों में मारवाड़ के वीर-योद्धा वीरगति पा चुके थे ।

५-जिस प्रकार महाराणा प्रताप ने अपनी स्वाधीनता की रक्षा और देशोद्धार के लिये गोगूँदा और खमणोर के बीच की पर्वत-श्रेणी का आश्रय लेकर विशाल यवन-सेना का सामना किया था, उसी प्रकार राव चन्द्रसेनजी ने भी सिवाने के पहाड़ों का आश्रय लेकर यवनवाहिनी को हैरान किया ।

६-जिस प्रकार यवनवाहिनी के लगातार आक्रमणों के कारण एक बार महाराणा प्रताप को बाँसवाड़े की तरफ जाना पड़ा था और दूसरी बार छप्पन के पहाड़ों का आश्रय लेना पड़ा था, उसी प्रकार राव चन्द्रसेनजी को भी डूंगरपुर, बाँसवाड़े आदि की तरफ जाना पड़ा था और सिवाने की तरफ के छप्पन के पहाड़ तो बहुत समय तक इनके मुख्य आश्रय रहे थे ।

७-जिस प्रकार अंत समय तक महाराणा प्रताप अन्य खोए हुए प्रदेशों पर अधिकार कर लेने पर भी चित्तौड़ पर अधिकार न कर सके थे, उसी प्रकार राव चन्द्रसेनजी भी सोजत का प्रदेश ले लेने पर भी पुनः जोधपुर अधिकृत न कर सके ।

८-अबुलफ़जल ने अपने अकबरनामे में लिखा है:-

“सन् १७८ हिजरी साल, १५ वें जुलूस में जब अकबर नागोर आया, तो चन्द्रसेन मालदेव का लड़का जो हिन्दुस्तान के बड़े जमींदारों में है, हाज़िर होकर शाही इनायत में हुआ ।”

परन्तु घटनाक्रम से ज्ञात होता है कि यद्यपि वास्तव में ही बादशाह अकबर राव चन्द्रसेनजी पर कृपा दिखलाना चाहता था, तथापि इन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया । यह बात उक्त पुस्तक के इस लेख से भी सिद्ध होती है:-

“सन् १८१ हिजरी शुरू साल १६ जुलूस में जब बादशाह अजमेर आया, तो सुना कि चन्द्रसेन राजा मालदेव के लड़के ने बगावत इस्तिहार करली है और

१. अकबरनामा, भा० ३, पृ० २३८

२. अकबरनामा, भा० २, पृ० ३५७-३५८

३. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८०-८१

राव चन्द्रसेन और महाराणा प्रताप पर एक तुलनात्मक दृष्टि

सिवाने के किले की, जो अजमेर के सूबे के किलों में निहायत मजबूत है, मरम्मत करके उसमें मुकाम कर लिया है। इस खबर के सुनने से बादशाह को रैयत पर रहम आया और उसने शाहकुलीख़ाँ मरहम, राव रायसिंह, शिमालख़ाँ (जयमल मेड़ते वाले के लड़के) केशोदास, और (धनचन्द के लड़के) जगतराय को मय बहादुर तजुबेकार फौज के उसकी चरमनुमाई पर मुकर्रर किया। साथ ही यह नसीहत भी की कि अगर वह अपने किए हुए पर पछतावे, तो वे उसे शाही मेहरबानियों का उम्मेदवार बनावें।”

अकबरनामे में हिजरी सन् १७८ के चन्द्रसेनजी के उपर्युक्त उल्लेख के बाद पहले-पहल हिजरी सन् १८१ वाला यही उल्लेख मिलता है। ऐसी हालत में यदि वास्तव में अबुलफ़जल के कथनानुसार नागोर में चन्द्रसेनजी शाही इनायत हासिल कर चुके थे, तो फिर उनकी इस अकारण बगावत का क्या कारण उपस्थित हुआ ? इसके अलावा इतिहास में भी बादशाह की इनायत का कहीं कुछ भी विवरण नहीं मिलता है।

अकबरनामे में आगे फिर लिखा है:—

“सन् १८८ हिजरी, जूलूस २५ में चन्द्रसेन ने बावजूद इसके कि बादशाही दरबार में हाज़िर हो चुका था, अपनी बदबख़्ती से फिर बागावत इस्लियार की, जैसा कि बयान कर चुके हैं।”

परन्तु उक्त इतिहास में चन्द्रसेनजी के केवल नागोर में अकबर से मिलने के सिवाय ऐसी घटना का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। अतः यह घटना नागोर वाली घटना को ही दुहराती है।

इसी प्रकार उसी अकबरनामे में महाराणा प्रताप के विषय में लिखा है:—

“वहाँ से बमूजिव हुक्म शाही (मानसिंह मय अमीरों के) उदयपुर पहुँचा। राणा ने पेशवाई करके शाही खिलअत बहुत अदब से पहना और मानसिंह को मेहमान करके अपने घर ले गया। बदजाती से माफ़ी माँगी। अमीरों ने मंजूर नहीं की। राना ने वादा करके मानसिंह को रुखसत किया और नरमी इस्लियार की।”

१. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ३१८

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ४०

मारवाड़ का इतिहास

“सन् १८११ हिजरी, जुलूस १८ में राजा भगवंतदास, शाहकुलीख़ाँ और लश्करख़ाँ को एक बड़ी फ़ौज देकर हुक्म दिया कि ईडर होते हुए राना की सरहद में जाओ और उधर के तमाम सरदारों को ताबे करो। जो सरकशी करे, उसको सज़ा दो।”

“पूरा महीना भी नहीं गुज़रा था कि राजा भगवंतदास मय लश्कर के राना प्रताप के बेटे को साथ लेकर दरबार में हाज़िर हुआ। इसकी तफ़सील इस तरह है:—

जब शाही लश्कर राना के रहने की जगह गोमूँदे में पहुँचा, तब राना, गुजरे हुए ज़माने में जो कसूर किए थे उनके लिये शर्मिन्दगी और अफ़सोस जाहिर करके, राजा भगवंतदास से आकर मिला और उससे शाही दरबार में सिफ़ारिश चाही। साथ ही उसने मानसिंह को अपने घर लेजाकर मेहमानदारी की और अपने लड़के को उसके साथ कर दिया। उसने यह भी कहा कि बदकिस्मती से पहले मेरे दिल में घबराहट थी। मगर अब आपके ज़रिए से बादशाह से इल्तिजा करता हूँ और अपने लड़के को ख़िदमत में भेजता हूँ। कुछ दिनों में अपने दिल को तसल्ली देकर खुद भी हाज़िर हो जाऊँगा।”

राजपूताने की ख्यातों आदि से मिलान करने पर यह सब अबुलफ़जल की कपोलकल्पना ही प्रतीत होती है। परन्तु फिर भी शाही दरबार के इतिहास-लेखक ने तो राव चन्द्रसेन और महाराणा प्रताप को अपनी तरफ़ से एक एक बार शाही अधीनता में सौंप ही दिया है। परन्तु ये घटनाएँ सत्य से बिल्कुल परे हैं।

१—अकबरनामे में लिखा है:—

“बादशाह ने कुतुबुद्दीनख़ाँ, राजा भगवंतदास और कुँअर मानसिंह को मय थोड़े-से शाही बहादुरों के ख़ाना कर हुक्म दिया कि पहाड़ों में जाकर राना को तलाश करें। मगर जब उसका पता न चला तब वे गोमूँदे चले गए।

“चूँकि राजा भगवंतदास और कुतुबुद्दीनख़ाँ बग़ैर शाही हुक्म के लौट आए थे, इसलिये बादशाह ने गुस्से होकर उनकी डेवदी बंद कर दी। लेकिन जब उन्होंने अपनी ग़लती से शर्मिन्दा होकर माफ़ी माँगी, तो फिर हाज़िर होने की इज़ाज़त दे दी।”

१. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ६४

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ६६-६७

३. अकबरनामा, भा० ३, पृ० १६१

४. अकबरनामा, भा० ३, पृ० १६५

राव चन्द्रसेन और महाराणा प्रताप पर एक तुलनात्मक दृष्टि

उसी इतिहास में राव चन्द्रसेनजी की वावत लिखा है:-

“सन् १८२ हिजरी में जब बादशाह अकबर अजमेर आया, तो सिवाने से अकेले राव रायसिंह ने आकर अर्ज की कि राव मालदेव के लड़के चन्द्रसेन ने जोधपुर की हद में निहायत सर उठा रक्खा है और जो लश्कर सिवाने को घेरे हुए है, वह उसको दफा नहीं कर सकता । अगर और बहादुर फौज भेजी जाय तो काम बन सकता है । बादशाह ने मेहरबानी फरमा कर यह अर्ज कबूल की और तैयबख़ाँ, सैयदबेग़ तोकबाई, तुर्क सुभानकुली, खुर्रम, अजमतख़ाँ और शिवदास को, मय चंद बहादुरों के साथ करके इस ख़िदमत पर भेजा । चन्द्रसेन रामपुरे की हद में होता हुआ पहाड़ों में घुस गया । शाही फौज पहाड़ों की तरफ़ चली । कितने ही तावे और कितने ही तबाह हो गए । चन्द्रसेन मुक्तावला न कर सका । बादशाही अमीर उसके पहाड़ों में घुस जाने को नासमझी से लड़ाई की जीत ख़याल करके वापस लौट गए । बादशाह ने जब यह सुना तो नाराज़ हुआ ।”

अबुलफ़ज़ल के उपर्युक्त दोनों लेख समान घटनाओं के द्योतक ही प्रतीत होते हैं । मुन्तख़बुत्तवारीख़ में लिखा है:-

“लेकिन राना का पीछा नहीं किया और वह ज़िन्दा निकल गया । यह बादशाह को बुरा मालूम हुआ ।”

यह घटना राव चन्द्रसेनजी के साथ की घटना से और भी मिलती जुलती है ।

विशेष घटनाएँ

एक बार अपने कुटुम्ब की तकलीफ़ को देख महाराणा प्रताप का जी भर आया और उनके चित्त में शाही अधीनता स्वीकार करने का विचार उत्पन्न होने लगा । जब अकबर द्वारा इसकी सूचना बीकानेर-नरेश रायसिंहजी के छोटे भ्राता पृथ्वीराजजी को मिली, तब उन्होंने महाराणा को लिखा:-

पटकूँ मूँछों पाण, के पटकूँ निज तन करद ;
दीजे लिख दीवाण, इण दो महली बात इक ।

१. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ११०-१११

२. मुन्तख़बुत्तवारीख़, भा० २, पृ० २३५

मारवाड़ का इतिहास

इस पर महाराना ने फिर दढ़ता धारण करली और उत्तर में उन्हें लिख भेजा—

खुशी हूँत पीथल कमध, पटको मूँछाँ पाण ;

पछटण है जेतै पतो, कलमाँ सिर केवाण ।

परन्तु राव चन्द्रसेनजी के विषय में ऐसी कोई जनश्रुति नहीं सुनी जाती है ।

विस्मृति का कारण

ऐसे ही इन प्रातःस्मरणीय राठोड़-वीर राव चन्द्रसेनजी का नाम और इतिहास इस प्रकार विस्मृति में कैसे विलीन हो गया ? इसका मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि महाराणा प्रताप के पीछे तो उनके पुत्र-पौत्रादि गद्दी पर बैठते रहे । परन्तु राव चन्द्रसेनजी के पीछे वि० सं० १६४० (ई० सन् १५८३) में मारवाड़ का राज्य उनके भ्राता राजा उदयसिंहजी के अधिकार में चला गया । उनके और राव चन्द्रसेनजी के बीच विरोध चला आता था । इसी से उस समय के कवियों और ऐतिहासिकों ने लाभ की आशा न देख इनकी वीर-गाथाओं के कीर्तन की तरफ़ विशेष ध्यान नहीं दिया । इसके अलावा उन्हें इनके स्वाधीनता-प्रेम का गान करने में राजस्थान के तत्कालीन नरेशों के अप्रसन्न होने का भय भी रहा होगा ।

२१. राव रायसिंहजी

यह मारवाड़-नरेश राव चन्द्रसेनजी के ज्येष्ठ पुत्र थे^१। इनका जन्म वि० सं० १६१४ की भादों सुदी १३ (ई० सन् १५५७ की ६ सितम्बर) को हुआ था। जिस समय इनके पिता की मृत्यु हुई, उस समय यह अकबर की आज्ञा से शाही सेना के साथ काबुल गए हुए थे। परन्तु जब इनके छोटे भाता उग्रसेनजी और आसकरनजी दोनों ही चौसर खेलते हुए मारे गए, और मारवाड़ के सरदारों ने इन्हें देश में आकर अपने पैतृक राज्य को संभालने के लिये लिखा, तब इन्होंने यह सारा हाल बादशाह

१. 'राजपूताने के इतिहास' में इन्हें चन्द्रसेनजी का तीसरा पुत्र लिखा है (पृ० ७३७, टिप्पणी १)। यही बात 'सिरोही के इतिहास' में भी लिखी है (पृ० २२६)। परन्तु यह ठीक नहीं है।

(२१) राव आसकरनजी और उग्रसेनजी

२. ये दोनों भी चन्द्रसेनजी के पुत्र थे। उग्रसेनजी का जन्म वि० सं० १६१६ की भादों वदी १४ (ई० सन् १५५६ की २ अगस्त) को और आसकरनजी का वि० सं० १६१७ की श्रावण वदी १ (ई० सन् १५६० की ८ जुलाई) को हुआ था। (परन्तु एक स्थान पर वि० सं० १६२७ की आश्विन सुदी १४ भी लिखी मिलती है ?) जिस समय (वि० सं० १६३७=ई० सन् १५८१ में) राव चन्द्रसेनजी की मृत्यु हुई, उस समय रायसिंहजी काबुल में और उग्रसेनजी बूंदी में थे। इसलिये मारवाड़ के सरदारों ने रावजी के पीछे उनके सबसे छोटे पुत्र आसकरनजी को गद्दी पर बिठला दिया। इसकी सूचना मिलने पर उग्रसेनजी बूंदी से मेड़ते चले आए, और मुगल सेनापतियों से मिलकर मारवाड़ का अधिकार प्राप्त करने का चेष्टा करने लगे। यह देख राठोड़ सरदारों ने उन्हें समझाया कि देश की दशा को देखते हुए उस समय गद्दी का खाली रखना हानिकारक था। इसी से हमने आसकरनजी को गद्दी पर बिठा दिया था। यदि ऐसा न किया जाता, तो एकत्रित सरदार मालिक के न रहने से इधर-उधर चले जाते, और सोजत का प्रांत फिर मुगलों के अधिकार में हो जाता। फिर भी यदि आप आपस के मनोमालिन्य को छोड़कर यहाँ चले आवें, तो सोजत का आधा प्रांत आपको दिया जा सकता है। इस पर उग्रसेनजी मुसलमानों का साथ छोड़ मेड़ते से सारन (सोजत-प्रांत में) चले आए।

एक रोज जिस समय उग्रसेनजी और आसकरनजी दोनों भाई चौसर खेल रहे थे, उस समय दोनों के बीच हार-जीत के विषय में झगड़ा हो गया। इससे क्रुद्ध होकर उग्रसेनजी ने अपनी कटार आसकरनजी की छाती में धुसेड़ दी। परन्तु राव आसकरनजी के सरदार (शंकर के पुत्र) शेखा ने, जो वहीं बैठा था, जब अपने स्वामी की यह दशा देखी, तब वही कटार उनकी छाती से निकाल उग्रसेनजी के हृदय में धुसेड़ दी। इस प्रकार दोनों भाई एक ही दिन स्वर्ग को सिधारे। यह घटना वि० सं० १६३८ की चैत्र सुदी १ (ई० सन् १५८१ की ६ मार्च) की है।

मारवाड़ का इतिहास

को लिख मेजा । इस पर उसने इन्हें राव का खिताब और सोजत का परगना जागीर में देकर मारवाड़ की तरफ जाने की अनुमति दे दी । इसलिये वि० सं० १६३६ (ई० सन् १५८२) में यह सोजत पहुँच वहाँ की गद्दी पर बैठे । इसके बाद वि० सं० १६४० (ई० सन् १५८३) में ही यह लौटकर बादशाह के पास चले गए ।

इस घटना के पूर्व ही मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराना प्रतापसिंहजी का भाई जगमाल बादशाह अकबर की सेवा स्वीकार कर उसके पास पहुँच चुका था, और कूटनीतिज्ञ अकबर ने उसे सिरोही का आधा राज्य दिलवा दिया था । परन्तु कुछ दिन बाद वहाँ के महाराव सुरतान से अनबन होजाने के कारण वह लौटकर फिर बादशाह के पास पहुँचा । इस पर अकबर ने देवड़ा सुरतान को हटाने और सिरोही का अधिकार जगमाल को दिलवाने के लिये, वि० सं० १६४० (ई० सन् १५८३) में, एक सेना भेजी, और उसके साथ राव रायसिंहजी भी नियत किए गए । इससे एक बार तो सिरोही पर फिर से जगमाल का अधिकार हो गया, और सुरतान भागकर आबू के पहाड़ों में चला गया । परन्तु कुछ दिन बाद ही जब बहुत-सी शाही सेना गुजरात की तरफ चली गई, तब सुरतान ने, एक रात को, बची हुई शाही सेना पर अचानक हमला कर दिया । उस समय जगमाल और राव रायसिंहजी दोनों दताणी गांव के मुकाम पर बेखबर सोए हुए थे, इसलिये जैसे ही इस हल्ले से उनकी निद्रा भंग हुई, वैसे

(ख्यातों में लिखा है कि चौसर खेलते समय दोनों भाइयों के बीच १० सेर मिसरी की शर्त ठहरी थी, और मौके पर उग्रसेनजी ने मिसरी ले आने के बहाने से आसकरनजी के सेवकों को वहाँ से हटा दिया था । परन्तु एक अक्कीमन्ची वहाँ पर रह गया था । अपने स्वामी का कराहना सुन वह चौंक पड़ा, और उसी ने आसकरनजी की छाती से कटार निकालकर उग्रसेनजी की छाती में धुसेड़ दी ।)

वि० सं० १६३७ (८) शक संवत् १५०३ का एक शिला-लेख सारन से मिला है । इससे आसकरनजी के पीछे उनकी एक रानी का सती होना प्रकट होता है । शिला-लेख की प्रतिलिपि:-

“श्रीगणेशाय नमः । संवत् १६३७ (८) वर्षे शाके १५०३ (चैत्र) मासे सु(शु) कृ पक्षे पडिवा १ राय श्री आसकरणजि (जी) देवलोक पधारा (रि) या तत् समये सती एक हुई ।”

इस लेख का संवत् श्रावण से प्रारंभ होनेवाला मारवाड़ी संवत् है । इससे चैत्रादि संवत् १६३८ आता है । इसकी पुष्टि उसी में के आगे लिखे श० सं० १५०३ से भी होती है; क्योंकि विक्रम और शक संवत् के बीच १३५ का अंतर रहता है ।

आसकरनजी के तीन पुत्र थे—कर्मसेन, कल्याणदास और कान्ह ।

१. तबकाते अकबरी, पृ० ३५५ ।

ही ये इसके कारण की जाँच करने को शिविर से बाहर चले आए। परन्तु इसी बीच शत्रुओं ने वहाँ पहुँच इन्हें चारों तरफ से घेर लिया। अंत में ये दोनों विना शस्त्र होने के कारण शीघ्र ही सम्मुख रण में मारे गए। यह घटना वि० सं० १६४० की कार्तिक शुक्ला ११ (ई० सन् १५८३ की १७ अक्टोबर) की है।

१. अकबरनामा, भाग ३, पृ० ४१३।

महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकरजी ओम्ता ने अपने 'सिरोही के इतिहास' (पृ० २३१) और 'राजपूताने के इतिहास' (पृ० ७३७) में सुरतान के नैश-आक्रमण का उल्लेख न कर लिखा है कि जिस समय जगमाल के साथ के कुछ योद्धा 'भीतरट' पर अधिकार करने को चले गए, उस समय मौका पाकर सुरतान ने रायसिंह आदि पर हमला कर दिया। परन्तु अकबरनामे और मारवाड़ की ख्यातों में स्पष्ट तौर से सुरतान के नैश-आक्रमण का उल्लेख मिलता है। उनमें यह भी लिखा है कि जगमाल और रायसिंह दोनों उस समय निःशस्त्र होने पर भी बड़ी वीरता से शत्रु का सामना कर मारे गए।

कहीं-कहीं इस युद्ध में राव रायसिंहजी की तरफ के २८४ योद्धाओं का मारा जाना भी लिखा है।

२२. राजा उदयसिंहजी

यह राव मालदेवजी के पाँचवें पुत्र थे। इनका जन्म विक्रम संवत् १५६४ की माघ सुदी १३ (ई० स० १५३८ की १४ जनवरी) को हुआ था। राव मालदेवजी ने अपने जीते-जी ही इन्हें फलोदी का परगना जागीर में देकर वहां भेज दिया था। इसी से यह वहाँ रहकर अपनी जागीर का प्रबन्ध किया करते थे। वि० संवत् १६१६ (ई० स० १५६२) में जिस समय राव मालदेवजी का स्वर्गवास हुआ और उनकी इच्छा के अनुसार राव चन्द्रसेनजी जोधपुर की गद्दी पर बैठे, उस समय कुछ सरदारों के आग्रह से इन्होंने गाँगाणी आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया था। इसी से राव चन्द्रसेनजी के और इनके बीच लोहावट में युद्ध हुआ। परन्तु अन्त में सरदारों ने बीच में पड़ दोनों भाइयों में मेल करवा दिया।

‘तबक़ाते अकबरी’ में लिखा है कि बादशाह अकबर के सातवें राज्य-वर्ष (हि० स० ९६६=वि० सं० १६१६=ई० स० १५६२) में उस (बादशाह) ने अबदुल्लाख़ाँ को मालवे की सूबेदारी दी। इससे उसने शाही सेना के साथ वहाँ पहुँच बाज़बहादुर को भगा दिया। इस पर वह (बाज़बहादुर) कुछ दिनों तक इधर-उधर भटक कर उदयसिंह की शरण में चला आया और अन्त में यहां से गुजरात की तरफ़ चला गया।

वि० संवत् १६२७ में जिस समय बादशाह अकबर अजमेर से लौटकर नागौर आया, उस समय बीकानेर आदि देशी राज्यों के अनेक नरेश उससे मिलने और उसका अनुग्रह प्राप्त करने के लिये वहाँ आपहुँचे। यह देख उदयसिंहजी भी वहाँ जाकर उससे मिले। इसी अवसर पर राव चन्द्रसेनजी के बादशाही अधीनता अस्वीकार कर देने से बादशाह उनसे नाराज़ होगया, और उसने उनके वंश में विरोध उत्पन्न करने के लिये उनके बड़े भ्राता उदयसिंहजी को अपने साथ ले लिया।

इसके बाद शीघ्र ही उदयसिंहजी गूजरों के उपद्रव को दबाने के लिये समावली की तरफ़ भेजे गए। वहाँ के उपद्रव को शान्त करने में अच्छी सफलता प्राप्त करने के कारण बादशाह अकबर इनसे और भी प्रसन्न हो गया। अगले वर्ष खीचीवाड़े के उपद्रव को भी इन्होंने बड़ी योग्यता से दबा दिया।

१. कहीं यदि १३ भी लिखा है ?

२. यह राव मालदेवजी के छठे पुत्र थे।

३. देखो पृ० २५७। परन्तु अकबरनामे में बाज़बहादुर का राना उदयसिंह के पास जाना लिखा है। यही ठीक प्रतीत होता है। (देखो भा० २, पृ० १६६)।



२२. राजा उदयसिंहजी

वि० सं० १६४०-१६५२ (ई० स० १५८३-१५९५)

उस समय सिंध और थड़े का मार्ग बीकमपुर (जैसलमेर-राज्य में) होकर जाता था। इसलिये मालके आवागमन के कारण भाटियों को अच्छी आमदनी हो जाती थी। यह देखकर उदयसिंहजी ने व्यापारियों के उस मार्ग से आने-जाने में रुकावट डालना और उन्हें फलोदी की तरफ से आने-जाने को बाध्य करना शुरू किया। इससे वि० संवत् १६२६ (ई० स० १५७२) में भाटियों के और इनके बीच झगड़ा हो गया। इस युद्ध में भाटियों के नायक के मारे जाने के कारण विजय उदयसिंहजी के हाथ रही। इसका बदला लेने के लिये, वि० संवत् १६३१ (ई० स० १५७४) में, भाटियों ने फलोदी पर एकाएक चढ़ाई कर दी। जैसे ही इसकी सूचना उदयसिंहजी को मिली, वैसे ही यह अपने उपस्थित वीरों को लेकर उनका सामना करने को चले। मार्ग में हम्मीरसर (कुरण्डल के पास) में पहुँचने पर दोनों का सामना हो गया। यहां के युद्ध में यद्यपि एक बार तो राठोड़ों ने भाटियों को दबा लिया, तथापि अन्त में संख्याधिक्य के कारण खेत भाटियों के ही हाथ रहा।

वि० संवत् १६३४ (ई० स० १५७७) में जिस समय बादशाह की तरफ से सादिकखाँ ओड़छा और बुन्देलखंड के शासक मधुकरशाह बुन्देले को दवाने के लिये मेजा गया, उस समय उदयसिंहजी भी उसके साथ गए थे^१। वहाँ के युद्ध में इन्होंने अच्छी वीरता दिखाई। खास कर नरवर का किला तो इन्हीं की बहादुरी से विजय हुआ था। इससे कुछ समय बाद ही बादशाह अकबर ने इन्हें राजा की पदवी देकर जोधपुर का अधिकार सौंप देने का वादा भी किया। इनका शरीर स्थूल होने के कारण यह शाही दरबार में 'मोटा राजा' के नाम से प्रसिद्ध थे^२।

१. 'मन्नासिखल उमरा' में इस घटना का अकबर के २३ वें राज्य-वर्ष में होना लिखा है (देखो भा० २, पृ० १८१)। परन्तु अकबरनामे में २२ वां राज्य-वर्ष लिखा है (देखो भाग ३, पृ० २१०)।

२. वि० सं० १६३५ का लिखा हुआ इनका एक 'खास रुका' मिला है। इससे प्रकट होता है कि जोधाजी ने हरा नामक ब्राह्मण के पूर्वजों को कबीज से अपनी कुलदेवी की मूर्ति ले आने के कारण जो ताम्रपत्र लिख दिया था, वह उस समय तक विद्यमान था। इस ताम्रपत्र का उल्लेख यथास्थान जोधाजी के इतिहास में किया जा चुका है। यहाँ पर उदयसिंहजी के उक्त पत्र की नक़ल दी जाती है—

“श्री नागणेचियाँ

महाराजाधिराज श्री उदेसिंहजी वचनायतं सेवग हरो सदावंद कदीम सुं छै, राठोड़ वंसरो सेवगपणो कदीम सुं ईणरै छै, तीणरो हथेरण सांमत १५१६ रो तांवापतर मुजब परवाणो करदीनो

मारवाड़ का इतिहास

इसके बाद वि० सं० १६४० में राजा उदयसिंहजी पुंष्कर की तरफ होते हुए जोधपुर चले आए और भादों बदी १२ (ई० सं० १५८३ की ४ अगस्त) को जोधपुर की गद्दी पर बैठे ।

विक्रम संवत् १६४० के माघ में जिस समय मिरजाखाँ (अब्दुलरहीम खाँनखाँ-नान्) मुजफ्फर गुजराती के उपद्रव को शान्त करने के लिये भेजा गया, उस समय मोटा राजा उदयसिंहजी भी उसके साथ थे । राजपीपला की लड़ाई में मुजफ्फर को हार कर भागना पड़ा ।

इन दिनों भाद्राजन का हरराजिया नामक मीणा इधर-उधर लूट-मार कर बड़ा उपद्रव करने लगा था । इसलिये राजा उदयसिंहजी ने राठोड़ (खीवा के पुत्र) सूरजमल को उसे पकड़ने की आज्ञा दी । इसी के अनुसार उसने एक रात्रि को कुछ आदमियों के साथ अचानक पहुँच उसे पकड़ लिया । अन्त में हरराजिया के अपराधों पर विचार कर राजा उदयसिंहजी ने उसे मार डालने की आज्ञा दे दी । इससे दूसरे मीणे भी डर गए ।

है, गऊतमस गोतर, अक्रुर साष (ख), तीन परवर, कुलदेवी.....रछे द ? राठोड़ वंस गोत्ररा लार ईतरा जण है, प्रो । सेवड सेवग ओजा लोड जातरा सारसुत भीरामण ६ ॥ पु ॥ राठोड़ वासरा पुज पुजापारा । श्री देवकारजरा पीत्र कारजे लोड ओजरे हथ बीन उपजे नहीं सु इगारे हाथ सुं हुसी सं ॥ १६३५ रा माह सुद ५ ।

ईतरा नेष फेर ईनायत किना १ जनम असटमी, २ आंवली ईगीयारस, ३ वीरपुड़ी, ४ महालष(क्ष)मी, ५ असासो, ६ जाया परणीयारी, ७ रोष पांचम, ८ अरती पुषणीयां वीवपु.....ईतरानेग आल ओलाद पायं जासी, कोई उथापण पावे नहीं सं ॥.....आ॥ हद दुवे परवानगी राठोड़.....”

१. वि० सं० १६४० की सावन वदी १ (ई० सन् १५८३ की २६ जून) को उदयसिंहजी ने पुष्कर में अपना एक राजगुरु नियत कर उसको एक ताम्रपत्र लिख दिया था । उसमें इनकी उपाधि ‘महाराजाधिराज महाराजा’ लिखी है ।

इसी वर्ष इन्होंने जोधपुर के मुसलमानों को जुमे की नमाज़ पढ़ाने के लिये एक काज़ी को दो सनदें दी थीं । इनमें से एक वि० सं० १६४० की श्रावण सुदी १२ (ई० सन् १५८३ की २१ जुलाई) की है, और दूसरी का संवत् कागज़ फट जाने से पढ़ा नहीं जाता । इनमें इनकी उपाधि ‘महाराजाधिराज’ लिखी है ।

२. ‘अकबरनामे’ के दफ्तर ३, पृ० ४२३-४२४ में इस घटना का हि० सन् ९६२ में होना लिखा है, और ‘तबक़ाते अकबरी’, पृ० ३५७-३५८ में मुजफ्फर के साथ के युद्ध का १३ मोहर्रम शुक्रवार को होना लिखा है । (परन्तु शायद इस तारीख को गुरुवार आता है)

विक्रम संवत् १६४१ (ई० स० १५८४) में बादशाहने सोजत का प्रान्त भी उदयसिंहजी को दे दिया ।

इसी वर्ष सैयद दौलतख़ाँ ने खंभात पर अधिकार कर लिया । इस पर अकबर की आज्ञा से अनेक सरदारों और अमीरों ने मिलकर उस पर चढ़ाई की । उस समय मोटा-राजा उदयसिंहजी भी उनके साथ थे । इन्होंने वहाँ पर सैयद को दबाने में बड़ी वीरता दिखाई^२ ।

विक्रम संवत् १६४३ (ई० स० १५८६) में राजा उदयसिंहजी ने सीधल-वाटी (जालोर-प्रान्त में) पर चढ़ाई की, और वहाँ के सीधल राठोड़ों को हराकर उनके गांवों को लूट लिया ।

१. यह प्रान्त पहले राव रायसिंहजी के अधिकार में था, और उनकी मृत्यु के बाद वहाँ पर उनके परिजन रहा करते थे । परन्तु जब यह परगना उदयसिंहजी को सौंप दिया गया, तब वे सब जोधपुर चले आए ।
२. अकबरनामा, दफ्तर ३, पृ० ४३६-४३७ । मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि इसी वर्ष इन्होंने सीसोदिया जगमाल और राव रायसिंह का बदला लेने के लिये शाही सेना के साथ सिरोही पर भी चढ़ाई की थी । परन्तु राव सुरतान ने दरगह के रुपये देकर इन लोगों से क्षमा मांग ली ।

इस चढ़ाई का वर्णन 'सिरोही के इतिहास' में नहीं दिया गया है ।

३. ख्यातों में लिखा है कि जिस समय सोजत पर राव मालदेवजी के पुत्र राम और पौत्र कल्ला (कल्याण) का अधिकार था, उस समय उन्होंने उस प्रान्त के कई गाँव चारणों को दान में दिए थे । परन्तु वहाँ पर राजा उदयसिंहजी का अधिकार हो जाने के बाद एक बार जब इनकी रानियाँ सिवाने की तरफ गईं, तब मार्ग में चारणों के बाड़े के पास पहुँचने पर उनके रथ के बैल थक गए । यह देख साथ के मनुष्यों ने एक चारण के बैल पकड़ कर रथ में जोत लिए । इसपर उस चारण ने बड़ा उपद्रव मचाया और रथ के साथ वालों के मना करने पर भी अपने बैल खोल कर ले गया । इस घटना का हाल सुन कर राजा उदयसिंहजी चारणों से नाराज़ हो गए । इसलिये विक्रम संवत् १६४३ (ई० सन् १५८६) में इन्होंने चारणों के कई गाँव ज़ब्त कर लिए । इस पर पहले तो उन लोगों ने मिल कर महाराज से बहुत कुछ अनुनय-विनय की । परन्तु जब इससे काम नहीं चला, तब उन्होंने जोधपुर में एकत्रित होकर अनशन व्रत ले लिया । यह बात महाराज को और भी बुरी लगी । इससे इन्होंने उन लोगों को जोधपुर से निकलवा दिया । इस प्रकार खदेड़ दिए जाने पर वे लोग पाली के ठाकुर चाँपावत गोपालदास के पास पहुँचे और उसे अपना सारा हाल सुनाकर महाराज को समझाने के लिये भेजा ।

मारवाड़ का इतिहास

अगले वर्ष (वि० सं० १६४४ में) मोटा-राजा उदयसिंहजी अपने राजकुमार शूरसिंहजी को साथ लेकर लाहौर गए। वहीं पर बादशाह अकबर की इच्छानुसार उन (युवराज शूरसिंहजी) का विवाह कछवाहा दुरजनसाल की कन्या से कर दिया गया।

ख्यातों में लिखा है कि इसी वर्ष बादशाह ने महाराज को सिरोही के राव सुरतान को दण्ड देकर देवड़ा हरराज के पुत्र विजा को वहाँ की गद्दी पर बिठा देने की आज्ञा दी। इन्होंने भी इस अवसर पर अपने भतीजे राव रायसिंहजी की मृत्यु का बदला लेने का निश्चय कर तत्काल सिरोही पर चढ़ाई कर दी। परन्तु इनसे सम्मुख रण में लड़ना हानिकारक समझ सुरतान आवू के पहाड़ों में चला गया। इस पर उदयसिंहजी ने इधर-उधर के गांवों को लूट नीतोड़ा नामक गाँव में अपनी छावनी डाल दी। यद्यपि एक महीने तक तो राव सुरतान पहाड़ों में छिपा रह कर इन पर आक्रमण करने का मौका ढूँढ़ता रहा, तथापि अन्त में उसे लाचार हो अपने कुछ सरदारों को, बगड़ी के ठाकुर (पृथ्वीराज के पुत्र) वैरसल के मार्फत, उदयसिंहजी के पास भेज कर बादशाह से क्षमा दिलवाने की प्रार्थना करनी पड़ी। परन्तु महाराज अपने भतीजे रायसिंहजी का सुरतान-द्वारा धोखे से मारा जाना अभी तक नहीं भूलें थे। इससे इन्होंने रत्नसिंह के पुत्र राम को आज्ञा देकर सिरोही के उन सरदारों को मरवा डाला। यह बात वैरसल को बुरी लगी। इसी से उसने राम को मार कर स्वयं भी आत्महत्या कर ली।

इसके बाद स्वयं विजा ने शाही सेनापति जामबेग को साथ लेकर 'वास्थानजी' के मार्ग से सुरतान पर चढ़ाई की। परन्तु युद्ध होने पर विजा मारा गया। इसकी

परन्तु जब राजा उदयसिंहजी का क्रोध इससे भी शान्त न हुआ, तब चारणों ने आउवा गाँव में दो दिन अनशन व्रत करने के बाद तीसरे दिन सुबोदय के समय अपने-अपने गले में कटार घुसेड़कर आत्महत्या कर ली। इसके बाद आढ़ा दुरसा आदि एक-दो चारण जो अपने गले में कटार घुसेड़ लेने पर भी बच गए थे, सिरोही की तरफ चले गए।

इस आत्महत्या के कार्य में कुछ पुरोहितों ने भी, चारणों के साथ समवेदना प्रकट करने के लिये, उनका साथ दिया। साथ ही इस कार्य में चारणों की सहायता करने के कारण चांपावत गोपालदास को भी मारवाड़ छोड़ कर जाना पड़ा।

१. इस पर जो चबूतरा बनाया गया था वह नीतोड़े में अब तक विद्यमान है।

राजा उदयसिंहजी

सूचना पाते ही राजा उदयसिंहजी ने देवड़ा कल्ला को सिरौही की गद्दी पर बिठा दिया, और कुछ दिनों में वहाँ का प्रबन्ध ठीक कर यह मारवाड़ में लौट आए।

इसके बाद (इसी वर्ष वि० सं० १६४४=ई० सन् १५८७ में) उदयसिंहजी ने सिवाने पर चढ़ाई कर वहाँ के क़िले को घेर लिया। कई दिनों तक दोनों पक्षों के बीच बराबर युद्ध होता रहा। बादशाही और महाराज की सेनाओं के खुले स्थान में और राव कल्ला की सेना के क़िले में होने से बाहरवाली सेना की अधिक क्षति होने लगी। इस पर शाही सेना के सेनापतियों ने क़िले के एक नार्ड को लालच देकर अपनी तरफ़ मिलाया, और उसी के द्वारा क़िले के अरक्षित भाग का पता लगाकर रस्सियों-द्वारा उधर से अन्दर घुसने का प्रबन्ध कर लिया। जब इस प्रकार सब प्रबन्ध ठीक हो गया, तब रात्रि के समय शाही सेना के साथ ही महाराज की सेना भी चुप-चाप क़िले में प्रविष्ट होगई। यह देख क़िले में की राजपूत-रमणियाँ तो जौहर (अग्नि-प्रवेश) कर अपने वीर-पतियों के पूर्वही इस लोक से बिदा होगई, और उनके वीर-पति सम्मुख रण में शत्रु से भिड़कर स्वर्ग को सिधारे। इस युद्ध में वीरवर कल्ला ने भी अच्छी वीरता दिखाई थी। परन्तु अन्त में वह खीची गणेशदास के हाथ से मारा गया। इससे सिवाने पर बादशाह का अधिकार

१. अकबर नामे में लिखा है कि सने जुलूस ३८=हि० सन् १००१ (वि० सं० १६५०=ई० सन् १५६३) में बादशाह ने 'मोटा राजा' को सिरौही के राव (सुरतान) को दण्ड देने की आज्ञा दी। इससे अनुमान होता है कि या तो मारवाड़ की ख्यातों और 'अकबरनामा' इन दोनों में से किसी एक में संवत् गलत लिखा गया है, या फिर वि० सं० १६५० में भी उदयसिंहजी ने सिरौही पर दुबारा चढ़ाई की होगी। (देखो अकबरनामा, दफ़्तर ३, पृ० ६४१) परन्तु 'सिरौही के इतिहास' में भी इस घटना का वि० सं० १६४५ (ई० सन् १५८८) के प्रारम्भ के करीब होना ही लिखा है। (देखो पृ० २३४-२३५)।

२. परन्तु इसका उल्लेख फ़ारसी तवारीखों में नहीं मिलता है। ख्यातों में यह भी लिखा है कि रायमल का पुत्र (मालदेवजी का पौत्र) कल्ला (कल्याणमल्ल) सिवाने का स्वामी था। जिस समय वह शाही सेना के साथ लाहौर में था, उस समय उसके और एक शाही मनसबदार के बीच झगड़ा हो गया। इस पर वह उस शाही मनसबदार को मार कर सिवाने चला आया। इसकी सूचना पाते ही बादशाह ने उस पर सेना भेज दी। परन्तु कल्ला की वीरता और सिवाने के दुर्ग की दुर्गमता के कारण उसे सफलता नहीं हुई। यह देख बादशाह ने 'मोटाराजा' को उस पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी।

मारवाड़ का इतिहास

होगया। यह घटना विक्रम संवत् १६४५ (ई० सन् १५८८) की है।

बादशाह अकबर राजा उदयसिंहजी को बहुधा अपने साथ ही रखता था। विक्रम संवत् १६४६ (हि० सन् १०००=ई० सन् १५६२) में जब वह लाहौर से काश्मीर गया, तब उसने कुलिचख़ाँ के साथ ही महाराज को भी वहाँ (लाहौर) के प्रबन्ध के लिये नियत करदिया।

विक्रम संवत् १६५० (ई० सन् १५६३) में महाराज ने जसोल के रावल वीरमदेव पर चढ़ाई की। यद्यपि पहले तो रावल ने भी बड़ी वीरता से इनका सामना किया, तथापि अन्त में उसे हारकर भागना पड़ा। इससे जसोल पर महाराज का अधिकार हो गया।

इसी वर्ष (हि० सन् १००२ में) राजा उदयसिंहजी को दक्षिण के युद्ध में भाग लेने के लिये शाहजादे दानियाल के साथ जाना पड़ा। वहाँ से लौटने पर कुछ दिन तो यह मारवाड़ में रहे, परन्तु बाद में लाहौर के प्रबन्ध की देखभाल के लिये

परन्तु इन्होंने कल्ला पर स्वयं चढ़कर जाना अनुचित जान राजकुमार भोपतसिंह और भंडारी मना को कुछ सेना देकर उधर भेज दिया। यद्यपि इस राठोड़-वाहिनी ने सिवाने के किले को घेर कर कुछ दिन के लिये उसका बाहरी संबंध काट दिया, तथापि एक रात को मौका पाकर वीर कल्ला एकाएक किले से निकल इस सेना पर दूट पड़ा। इस अचानक के आक्रमण से बाहर की राठोड़-सेना के साथ ही शाही सेना के भी बहुत से वीर मारे गए। इससे बची हुई सेनाओं को किले का घेरा हटा लेना पड़ा। इस समाचार को सुन बादशाह अकबर को बड़ा दुःख हुआ, और उसने इन दो बार की पराजयों का बदला लेने के लिये राजा उदयसिंहजी को स्वयं सिवाने पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। इसी कारण इनको स्वयं कल्ला के विरुद्ध सिवाने पर चढ़ाई करनी पड़ी थी।

१. उसी समय से किसी नाई को सिवाने के किले में नहीं जाने दिया जाता।

कहते हैं कि तब से ही कल्ला के वंश के सरदार (लाडनू वगैरा के ठाकुर) भी उस किले में नहीं जाते हैं।

२. तबकाले अकबरी (पृ० ३७६)।

३. वि० सं० १६५० की आषाढ़ सुदी ६ के लेख से उस समय फलोदी पर बीकानेर नरेश रायसिंहजी का अधिकार होना प्रकट होता है।

४. तबकाले अकबरी (पृ० ३७६) में हि० सन् १००१ की २१ मुहर्रम (वि० सं० १६४६ की कार्तिक वदी ८=ई० सन् १५६२ की १८ अक्टोबर) को इनका दक्षिण की तरफ भेजा जाना लिखा है।

उधर चले गए। विक्रम संवत् १६५२ की आषाढ़ सुदी १२ (ई० सन् १५६५ की ८ जुलाई) को वहीं पर दमे की बीमारी से इनका स्वर्गवास होगया। इसके बाद जिस समय रावी के किनारे इनका दाहकर्म किया गया, उस समय स्वयं बादशाह अकबर ने नाव-द्वारा वहाँ आकर राजकुमार शूरसिंहजी के साथ समवेदना प्रकट की।

मारवाड़ के नरेशों में पहले पहल इन्होंने ही बादशाही 'मनसब' अंगीकार किया था। एक तो उस समय राजस्थान की परिस्थिति ही ऐसी हो रही थी कि आंबेर और बीकानेर आदि के नरेश अकबर जैसे प्रतापी बादशाह का दिया 'मनसब' स्वीकार कर या उसकी कृपादृष्टि प्राप्त कर अपने को सुरक्षित और बलवान् समझने लगे थे। दूसरा स्वयं राजा उदयसिंहजी के सामने ही मारवाड़ का राज्य उनके छोटे भाई को दे दिया गया था और घटना-विशेष से राव मालदेवजी के हुमायूँ को सहायता न दे सकने के कारण उस (मारवाड़-राज्य) पर बादशाह अकबर का अधिकार हो चुका था। इन परिस्थितियों में पड़ कर ही उदयसिंहजी को बादशाही सहारा लेना पड़ा। नहीं कह सकते कि इस प्रकार की परिस्थिति के अभाव में उदयसिंहजी अपनी वंश-क्रमागत स्वाधीनता को छोड़ने को उद्यत होते या नहीं। इससे मिलती हुई परिस्थिति में पड़कर ही मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराना प्रतापसिंहजी के भाई जगमल को भी अकबर की शरण लेनी पड़ी थी। परन्तु उस (जगमल) के शीघ्र ही विक्रम संवत् १६४० (ई० सन् १५८३) में मर जाने से वह सफल न हो सका। जिस समय उदयसिंहजी को राजा की पदवी और मारवाड़ का अधिकार प्राप्त हुआ था, उसी समय शायद इन्हें डेढ़हज़ारी मनसब भी मिला था।

१. अकबरनामा, दफ्तर ३ पृ० ६६२। वि० सं० १६५१ (चैत्रादि सं० १६५२) की प्रथम जेठ सुदी १ (ई० सन् १५६५ की ३० अप्रैल) को जिस समय महाराज लाहौर में थे, उस समय इन्होंने काज़ी सैयद फ़ीरोज़ को जोधपुर का काज़ी नियत कर एक सनद कर दी थी। उसमें भी इनकी उपाधि 'महाराजाधिराज महाराजा' लिखी है।
२. कहीं कहीं इस घटना की तिथि आषाढ़ सुदी १५ (११ जुलाई) भी लिखी मिलती है।
३. 'अकबरनामे' में लिखा है कि मोटा राजा हि० सन् १००३ की ३० तीर को मर गया। इसपर उसके साथ ४ रानियाँ सती हुई (देखो दफ्तर ३, पृ० ६६६)।
४. 'तयक़ाते अकबरी' में इनका 'मनसब' डेढ़हज़ारी दिया है (देखो पृ० ३८६)। परन्तु 'मअसिरे आलमगीरी' में इनका 'मनसब' एकहज़ारी ही लिखा है (देखो भा० २, पृ० १८१)।

मारवाड़ का इतिहास

इन्होंने मारवाड़ का अधिकार प्राप्त होने पर अनेक गांव दान दिये थे^१।

इनके १६ पुत्र थे। १ भगवानदास, २ नरहरदास, ३ कीर्तिसिंह, ४ दलपत,

१. बेराई (शेरगढ़ परगने का), २ खुडाला (नागोर परगने का), ३ रामासणी (सोजत परगने का), ४ मोतीसरा (जालोर परगने का), ५ नगवाड़ा-खुर्द (परवतसर परगने का), ६ खाटावास, ७ तांवड़िया-खुर्द ८ बासणी-चारणां ९ पीथासणी १० मीडोली-चारणां (जोधपुर परगने के), ११ जोधावास (जैतारण परगने का) चारणां को; १२ सारण (सोजत परगने का) स्वामियों को; १३ कानावासिया (बीलाड़ा परगने का) रणछोड़जी के मन्दिर को; १४ बांजडा (बीलाड़ा परगने का) भाटों को; १५ मोडी-सूतडां १६ बासणी-भाटियां (जोधपुर परगने के), १७ तालकिया (जैतारण परगने का) पुरोहितों को और १८ मोडी-जोशियां (जोधपुर परगने का) ब्राह्मणों को।

२. इसका जन्म वि० सं० १६१४ की आश्विन वदि १४ को हुआ था।

३. इसका जन्म वि० सं० १६१४ की कार्तिक वदि २ को हुआ था।

४. इसका जन्म वि० सं० १६२४ की पौष सुदि १४ को हुआ था।

५. दलपत का जन्म वि० सं० १६२५ की सावन वदि ६ को हुआ था। इस को राजा उदयसिंहजी ने जालोर का प्रांत जागीर में दिया था। इसके पुत्र महेशदास (जन्म वि० सं० १६५३ की माघ वदि ३) की वीरता से प्रसन्न होकर बादशाह शाहजहाँ ने उसे अपना मनसबदार बनाया था। इसी के साथ इसे एक बड़ी जागीर भी दी गई थी। इसके ८४ गाँव तो फूलिया के परगने में और ३२५ गाँव जहाजपुर के परगने में थे।

‘बादशाहनामे’ (के भा० २ के पृ० ५५४) में लिखा है कि बलख के युद्ध में विजय प्राप्त करने पर, वि० सं० १७०३ (ई० सन् १६४६) में, बादशाह ने इसका मनसब बढ़ाकर ३,००० ज़ात और २,५०० सवारों का कर दिया था। उसी इतिहास (के भा० २, पृ० ६३५) में लिखा है कि वि० सं० १७०४ (ई० स० १६४७) में राठोड़ दलपत का पुत्र और शूरसिंहजी का भतीजा मर गया। यह बड़ा विश्वासपात्र, अनुभवी योद्धा और कुशल व्यक्ति था। बादशाह को इससे बहुत शोक हुआ और उसने कहा कि ऐसे व्यक्ति का सम्मुख रण में शत्रुओं को मारकर वीरगति प्राप्त करना ही अधिक उचित होता।

बादशाह को इस पर इतना भरोसा था कि दरबार के समय वह शाही तख्त के पीछे केवल १० गज़ के फासले पर रक्खी हुई उस चन्दन की बनी चौकी के पास खड़ा रहता था, जिस पर बादशाह की तलवार और तीर-कमान रक्खे रहते थे। इसी प्रकार शाही सवारी के समय भी वह बादशाह से १० गज़ के फासले पर चलता था।

महेशदास के मरने पर बादशाह ने उसके ज्येष्ठ पुत्र रत्नसिंहजी (जन्म वि० सं० १६७५ की चैत्र वदि ३०) का मनसब बढ़ाकर १,५०० ज़ात और १,५०० सवारों का कर दिया। उस समय भी जालोर उनकी जागीर में रहा।

कहते हैं महेशदास अपने द्वितीय पुत्र कल्याणदास को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। इसकी सूचना मिलने पर रत्नसिंहजी नाराज़ होकर बादशाह की सहायता प्राप्त करने के लिये दिल्ली

५ भोपतसिंह, ६ शूरसिंह, ७ माधवसिंह, ८ कृष्णसिंह,

चले गए। इसके बाद एक रोज़ एक मस्त हाथी शाही दरबार की तरफ़ चला आया। यह देख इन्होंने तत्काल अपनी कटार खींच ली और उससे उस मस्त हाथी के मस्तक पर इस जोर से वार किया कि वह मार्ग छोड़ विधाड़ता हुआ जिधर से आया था उधर ही को भाग चला।

इनकी इस कुर्ती और, पराक्रम को देख बादशाह शाहजहां मुग्ध हो गया, और उसने उसी समय इन्हें अपना कृपापात्र बना लिया। यह समाचार सुन इनके पिता को भी अपना विचार बदल इन्हीं को अपना उत्तराधिकारी मानना पड़ा।

इसके बाद रत्नसिंहजी ने शाही सेना के साथ रह कर बलख आदि में अच्छी वीरता दिखलाई। इससे प्रसन्न होकर बादशाह ने इन्हें मालवे में एक बड़ी जागीर दी। वहीं पर इन्होंने बाद में अपने रतलाम-राज्य की स्थापना की। इनके पौत्र केशवदासजी के समय वि० सं० १७५२ (ई० सं० १६६५) में बादशाही अमीने जज़िया के रतलाम-राज्य में मारे जाने के कारण बादशाह औरङ्गजेब उनसे नाराज़ हो गया। इसीसे उसने उनसे रतलाम का राज्य ज़ब्त कर शाहज़ादे आजम को जागीर में दे दिया। परन्तु कुछ काल बाद वहां का अधिकार शाहज़ादे से वापिस लिया जाकर केशवदास के चचा छत्रसालजी को दे दिया गया। अन्त में केशवदासजी के निर्दोष सिद्ध होने और शाही सेना के साथ रह कर युद्धों में वीरता दिखलाने के कारण औरङ्गजेब इनसे फिर प्रसन्न हो गया, और उसने वि० सं० १७५८ (ई० सं० १७०१) में इन्हें तीतरोद का प्रान्त जागीर में दिया। इसके बाद वहीं पर इन्होंने अपने सीतामऊ के नवीन राज्य की स्थापना की।

उपर्युक्त (रतलाम नरेश) छत्रसालजी के पौत्र मानसिंहजी के छोटे भ्राता जयसिंहजी ने वि० सं० १७८७ (ई० सं० १७३०) में अपनी जागीर रावटी में अपना स्वतन्त्र राज्य कायम किया। इसके बाद वि० सं० १७६३ (ई० सं० १७३६) में उन्हीं जयसिंहजी ने नवीन राजधानी सैलाना की भी स्थापना की।

१. इसका जन्म वि० सं० १६२५ की कार्तिक सुदि ६ को हुआ था।

२. माधवसिंह का जन्म वि० सं० १६३८ की कार्तिक वदि ५ को हुआ था। इसके वंशज पिशांगण और जूनिया (अजमेर प्रान्त) में हैं। पिशांगण के शासक नाथूसिंह ने मारवाड़ नरेश महाराजा मानसिंहजी के उदयपुर की राजकुमारी कृष्णकुमारी के साथ के विवाह के मामले में बहुत कुछ उद्योग किया था। इसीसे प्रसन्न होकर महाराज मानसिंहजी ने, वि० सं० १८६३ (ई० सं० १८०६) में, उसे राजा की पदवी दी। वि० सं० १६३४ (ई० सं० १८७७) में भारत सरकार ने भी उसे नाथूसिंह के वंशज प्रतापसिंह के लिये व्यक्तिगतरूप से स्वीकार कर लिया था। (देखो-चीफ्स एण्ड लीडिंग फैमिलीज़ इन राजपूताना (ई० सं० १६१६ में प्रकाशित) पृ० १०१)।

३. कृष्णसिंहजी का जन्म वि० सं० १६३६ की जेठ वदि २ को हुआ था और अपने पिता के मरने पर यह शाहज़ादे सलीम के पास चले गए थे। अकबर के मरने पर जब शाहज़ादा

(१) बारहट कुम्भकर्ण रचित 'स्तनरासा' से भी इसकी पुष्टि होती है।

मारवाड़ का इतिहास

९ शक्तिसिंह, १० मोहनदास, ११ अखैराज, १२ जैतसी, १३ जसवंतसिंह, १४ करणमल्ल, १५ केशवदास और १६ रामसिंह ।

सलीम बादशाह जहांगीर के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा, तब वि० सं० १६६४ की कार्तिक सुदि ४ (ई० सं० १६०७ की १४ अक्टोबर) को उसने कृष्णसिंहजी को १,००० ज़ात और ५०० सवारों का मनसब दिया (देखो—'तुजुकजहांगीरी', पृष्ठ ६२) । इसके बाद इसमें वृद्धि होते होते वि० सं० १६७१ की चैत्र वदि १ (ई० सं० १६१५ की ६ मार्च) को इनका मनसब ३,००० ज़ात और १,५०० सवारों का हो गया (देखो—'तुजुकजहांगीरी', पृष्ठ १३६) ।

इन्हें बादशाह की तरफ से सोठेलाव, आदि कुछ परगने और भी जागीर में मिले थे । वि० सं० १६६८ (ई० सं० १६११) में इसी सोठेलाव के पूर्व में इन्होंने अपने नाम पर किशनगढ़ नगर बसाकर उक्त राज्य की स्थापना की ।

१. शक्तिसिंह एक वीरप्रकृति का पुरुष था । इसकी वीरता से प्रसन्न होकर बादशाह अकबर ने इसे राव की पदवी के साथ ही सोजत, फूलिया और केकड़ी के परगने जागीर में दिए थे । करीब एक वर्ष तक तो सोजत इसी के अधिकार में रहा । परन्तु इसके बाद वहाँ का शासन शूरसिंहजी को दे दिया गया और इसके एवज में इसे जैतारण का प्रान्त मिला ।

'चीफ्स एण्ड लीडिंग फेमिलीज़ इन राजपूताना' (ई० सन् १९१६ में प्रकाशित के पृ० १०२) में लिखा है कि एक बार शक्तिसिंह ने बादशाह अकबर को डूबने से बचाया था । इसी से प्रसन्न होकर उसने उसे १५ गाँव जागीर में दिए थे । इसके बाद वि० सं० १६३४ (ई० सन् १८७७) में इसके वंशज माधवसिंह को भारत सरकार ने फिर से राव की पदवी दी । खरवा (अजमेर-प्रान्त में) के राव इसी शक्तिसिंह के वंशज हैं ।

२. जैतसिंह के वंशज दुगोली, लोटोती आदि में हैं ।

२३. सवाई राजा शूरसिंहजी

यह मारवाड़ नरेश राजा उदयसिंहजी के पुत्र थे^१। इनका जन्म वि० सं० १६२७ की वैशाख बदी ३० (ई० सन् १५७० की ५ अप्रैल) को हुआ था।

वि० सं० १६४८ (ई० सन् १५९१) में बादशाह अकबर ने पहले पहल इन्हें लाहौर की शाही सेना के एक भाग का प्रबंध सौंपा। इससे कुछ दिन वहाँ रहकर यह उक्त कार्य करते रहे। परन्तु इसके बाद लौटकर जोधपुर चले आए।

वि० सं० १६५२ (ई० सन् १५९५) में जिस समय बादशाह के बुलाने पर राजा उदयसिंहजी लौटकर लाहौर गए उस समय यह भी उनके साथ थे। इससे वहाँ पर महाराज का स्वर्गवास हो जाने से, उन्हीं की इच्छा के अनुसार, वि० सं० १६५२ की सावन बदी १२ (ई० सन् १५९५ की २३ जुलाई) को, बादशाह ने इन्हें राजा की पदवी देकर मारवाड़-राज्य का उत्तराधिकारी बना दिया।

ख्यातों में लिखा है कि इसी अवसर पर बादशाह ने इन्हें दो हजारी जात और सवा हजार सवारों का मनसब दिया था।

इसके कुछ मास बाद यह लौटकर जोधपुर चले आए। यहाँ पर वि० सं० १६५२ की माघ सुदी ५ (ई० सन् १५९६ की २४ जनवरी) को चिर-प्रचलित प्रथा के अनुसार यथा-नियम इनका राज्याभिषेक किया गया।

वि० सं० १६५३ (ई० सन् १५९६) में बादशाह ने सुल्तान मुराद को, जो अब तक गुजरात के सूबे की देखभाल पर नियत था, बदल कर दक्षिण की तरफ के उपद्रवों को शांत करने के लिये मेजा और वहाँ (गुजरात) की रक्षा का भार राजा शूरसिंहजी को सौंपा। इस पर महाराज भी मारवाड़ का शासन-प्रबंध

१. ख्यातों के अनुसार यह (शूरसिंहजी) राजा उदयसिंहजी के छठे पुत्र थे।

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ६६७।

मारवाड़ का इतिहास

भाटी गोविंददास को देकर शीघ्र ही उधर को खाना हो गए। मार्ग में जिस समय यह सिरोही के करीब पहुँचे, उस समय इन्हें वहाँ पर राव रायसिंहजी^२ के धोके से मारे जाने का खयाल आ गया। इससे उस घटना का बदला लेने के लिये इन्होंने अपने सैनिकों को उस राज्य के गाँवों को लूटने की आज्ञा दे दी। यह देख वहाँ का राव सुरतान घबरा गया और उसने संधि करने की इच्छा से बहुत सा रुपया महाराज की भेंट किया। यहाँ से चल कर कुछ ही दिनों में यह गुजरात पहुँच गए और वहाँ पर ख़ाँ आज़म से मिल कर मुजफ़्फ़र के उपद्रव को दबाने का प्रयत्न करने लगे।

अगले वर्ष मुजफ़्फ़र के ज्येष्ठ पुत्र बहादुर ने कुछ लोगों को लेकर गुजरात के प्रदेशों में लूटमार शुरू की। यह देख महाराज भी उसे दण्ड देने के लिये अहमदाबाद से खाना हुए। परन्तु इनको दलबल-सहित अपनी तरफ़ आते देख कर बहादुर की हिम्मत टूट गई। इसी से थोड़ीसी मुठभेड़ के बाद वह मैदान से भाग गये।

इधर महाराज को अपने अधिकांश योद्धाओं के साथ गुजरात की तरफ़ गया जान कर पीछे से बीकानेर वाले गाँगाणी नामक (मारवाड़ के) गाँव में घुस आए

१. पहले मारवाड़ के राठोड़ नरेशों और उनके वंश के जागीरदारों के बीच भाई-बिरादरी का-सा बर्ताव चला आता था। परन्तु भाटी गोविंददास ने इस ढंग को बदल कर, राज्य का सारा प्रबंध बादशाही ढंग पर कर दिया। इससे मारवाड़ नरेशों और उनके सरदारों का संबंध स्वामी सेवक का-सा हो गया और राज्य-परिवार में होनेवाली शादी ग़मी के अवसर पर ठकुरानियों के राजकीय अंतःपुर में उपस्थित होने की प्रथा उठ गई। दरबार के समय राव रामल्लजी के वंश के जागीरदारों के लिये दाईं तरफ़ का और राव जोधाजी के वंश के जागीरदारों के लिये बाईं तरफ़ का स्थान नियत किया गया। राजकार्य के लिये दीवान, बख़्शी, ख़ानसामाँ, हाकिम, कारकुन, दफ़्तरी, दारोगा, पोतेदार, वाक़्या-नवीस आदि पद नियत किए गए।

ख़वास पासवानों आदि को भी अलग अलग काम सौंपे गए। महाराज की ढाल और तलवार रखने का काम खीचियों को, चँवर और मोरछल रखने का काम धांधलों को, जलूसी पंखा और ख़ास मोहर रखने का काम गहलोतों को, डेवढी के प्रबंध का काम सोभावतों को और महाराज के हाथी की सवारी करने पर महावत का काम आसायचों को सौंपा गया। इसी प्रकार दूसरे कार्यों के लिये भी अन्य ख़ास ख़ास वंश के राजपूत नियत किए गए।

२. यह मारवाड़ नरेश राव चंद्रसेनजी के पुत्र थे और इन्हें सिरोही के राव सुस्तान ने रात्रि में अचानक आक्रमण कर मारा था।

३. यहीं से वि० सं० १६५४ में इन्होंने नापावस गांव के दान की आज्ञा दी थी।

४. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ७२५।



RAJA SHUR SINGH.

महाराजा शूरसिंहजी मारवाड

२३. सवाई राजा शूरसिंहजी
वि० सं० १६५२-१६७६ (ई० सं० १५६५-१६१६)

सवाई राजा शूरसिंहजी

और वहाँ से कुछ राजकीय ऊँटों को पकड़ कर अपने देश को ले चले। परन्तु इसकी खबर मिलते ही मांगलिया सूरा और राठोड़ (महेशदास के पुत्र) हरदास ने उनका पीछा कर वे ऊँट उनसे छीन लिए।

इसी प्रकार महाराज को मारवाड़ में अनुपस्थित देख जैसलमेर-रावल भीमराजजी के कुछ सैनिक भी कोरगे की तरफ पहुँच इधर उधर लूटमार करने लगे थे। यह देख ऊहड़ गोपालदास ने उन पर चढ़ाई की। युद्ध होने पर गोपालदास मारा गया। परन्तु भाटियों को भी शीघ्र ही जैसलमेर लौट जाना पड़ा।

वि० सं० १६५६ (ई० सन् १५६६) में सुल्तान मुराद मर गया। इस पर पहले तो बादशाह अकबर ने खुद दक्षिण पर चढ़ाई की। परन्तु अगले वर्ष वहाँ की सूबेदारी शाहजादे दानियाल को दी गई और उसकी मदद के लिये राजा शूरसिंहजी नियत किए गए।

उस समय यह गुजरात में थे। इससे वहाँ से दक्षिण की तरफ जाते हुए कुछ दिन के लिये सोजत (मारवाड़) में ठहर गए। यह बात बादशाह को बुरी लगी। इसलिये उसने महाराज के भाई शक्तिसिंह को राव की पदवी देकर सोजत जागीर में दे दिया। महाराज भी उस समय विरोध करना अनुचित समझ दक्षिण की तरफ चले गए। वहाँ पर कुछ ही दिनों में इन्होंने (सआदतख़ाँ के प्रधान) राजू के साथ के युद्धों में ऐसी वीरता दिखलाई कि उसका हाल सुन बादशाह आप ही आप इनसे प्रसन्न हो गया। इसी अवसर पर महाराज के मंत्री भाटी गोविन्ददास और राठोड़ (रत्नसिंह के पुत्र) राम ने उसे महाराज को सोजत का प्रांत लौटा देने के लिये समझाया। इससे अकबर ने वह प्रांत फिर से इन्हीं को लौटा दिया।

अकबरनामे में अबुलफ़जल लिखता है:—

वि० सं० १६५७ (ई० सन् १६००) में अहमदनगर वालों से नासिक छीन लिया गया। इस पर पहले तो सआदतख़ाँ ने बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली। परन्तु शीघ्र ही अपने गुलाम राजू के बहकाने से वह फिर बागी होगया। यह देख

१. मन्नासिखल उमरा, भा० २, पृ० १८२।

२. शक्तिसिंह का अधिकार सोजत पर क़रीब एक वर्ष तक रहा था।

३. फ़ारसी तवारीख़ों में इस बात का उल्लेख नहीं है।

४. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ७७२।

मारवाड़ का इतिहास

बादशाह ने शाहजादे को उसे दण्ड देने के लिये जाने की आज्ञा दी। उस समय राजा शूरसिंहजी भी उसके साथ थे।

वि० सं० १६५८ (ई० सन् १६०१) में महाराज फिर शाही सेना और अबुलफ़जल के साथ राजू को दण्ड देने और अहमदनगर को विजय करने के लिये भेजे गए। इन दोनों बार के युद्धों में इन्होंने बड़ी वीरता दिखाई थी।

इन्हीं दिनों हब्शी खुदावंदख़ाँ ने पाथरी और पालम के प्रांतों में उपद्रव शुरू कर दिया था। जब इसकी सूचना ख़ान-ख़ानान् को मिली तब उसने राजा शूरसिंहजी को शाही सेना देकर उसको दबाने के लिये रवाना किया। इस पर महाराज ने खुदावंदख़ाँ को हराकर वहाँ पर फिर से शांति स्थापित की^१।

वहाँ से लौटकर यह निजामुलमुल्क के सेनापति अम्बरचम्पू के मुकाबले को चले। यह देख वह कंधार की तरफ़ बढ़ने लगा। उसी अवसर पर हब्शी फ़रहाद भी अपने दो-तीन हजार सवारों को लेकर उससे आ मिला। उस समय राजा शूरसिंहजी शाही सेना के अग्रभाग (हरावल) में थे। इसलिये इनके अंबर की सेना के सामने पहुँचते ही पहले तो उसने बड़ी बहादुरी से इनका सामना किया। परन्तु फिर शीघ्र ही उसके पैर उखड़ गए और उसे रणस्थल से भागकर अपनी जान बचानी पड़ी। यह घटना वि० सं० १६५९ (ई० सन् १६०२) की है।

अबुलफ़जल ने इस विषय में लिखा है कि:—

इस युद्ध में जैसी वीरता बादशाही सेना के अग्रभाग और मध्यभाग वालों ने दिखलाई थी वैसी ही वीरता अगर वाम और दक्षिण भाग वाले भी दिखलाते तो अंबर और फ़रहाद का भागना असम्भव हो जाता और वे पकड़ लिए जाते^२।

इस युद्ध में के महाराज के वीरता-पूर्ण कार्यों को देख कर स्वयं शाहजादा दानियाल इतना प्रसन्न हुआ कि उसने बादशाह को भी पत्र द्वारा इसकी सूचना लिख भेजी^३। इसपर बादशाह ने इन्हें एक शाही नक्कारा उपहार में दिया। साथ

१. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८०१।

२. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८०६।

३. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८०७।

४. मन्नासिख़ल उमरा, भा० २ पृ० १८२।

५. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८१६।

ही उसने शाहजादे को लिखा कि राजा शूरसिंहजी बहुत समय से शाही कार्यो में लगे रहने के कारण अपने देश को नहीं जा सके हैं, इसलिये उनको यहाँ भेज दो और उनके प्रधान मंत्री भाटी गोविंददास को राठोड़ों की सेना के साथ अपने पास रहने दो। इसी के अनुसार यह वि० सं० १६६१ (ई० सन् १६०४) में बादशाह से मिलकर जोधपुर चले आए।

मारवाड़ की ख्यातों से प्रकट होता है कि इसी अवसर पर बादशाह ने इन्हें 'सवाई राजा' के खिताब के साथ मेड़ते का आधा प्रांत और जैतारन जागीर में दिए थे।

गुजरात प्रांत के और दक्षिण के युद्धों में महाराज को बहुत-सा द्रव्य मिला था। इससे जोधपुर पहुँच कर इन्होंने एक बड़ा यज्ञ किया। इसके बाद इनकी आज्ञा से भंडारी मना ने राजकीय सेना के साथ जाकर मेड़ते और जैतारन पर अधिकार कर लिया। इसी अवसर पर जैतारन के चारों तरफ़ शहर पनाह बनवाई गई और वहाँ का बहुत-सा प्रांत महाराज की तरफ़ से उदावतों को दे दिया गया।

वि० सं० १६६२ (ई० सन् १६०५) में बादशाह अकबर मर गया और उसका पुत्र जहाँगीर के नाम से हिन्दुस्तान के तख्त पर बैठा। इसी समय गुजरात में फिर उपद्रव उठ खड़ा हुआ। इससे अन्य बादशाही अमीरों के साथ सवाई राजा शूरसिंहजी को भी उधर जाना पड़ा। वहाँ पर भी इन्होंने उपद्रव को दबाने में अच्छी वीरता दिखाई^१।

१. अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८२०।

२. इसी वर्ष राजा शूरसिंहजी ने बादशाह के कहने से मीर सदर मोइस्माई के पुत्र को पकड़ कर पाटन (गुजरात) में मुर्तजा अली के हवाले कर दिया, जहाँ से वह अकबर की राज्य सीमा से बाहर निकाल दिया गया। (अकबरनामा, भा० ३, पृ० ८३१)।

३. मेड़ते का आधा प्रांत तो मेड़तिया जगन्नाथसिंह ने लेकर बादशाह ने पहले ही इन्हें दे दिया था। इस अवसर पर बाकी का आधा प्रांत भी किशनदास से लेकर महाराज को दे दिया।

४. ख्यातों में लिखा है कि अकबर के मरते ही गुजरात के कोलियों ने उपद्रव उठाया। इस पर जहाँगीर ने राजा शूरसिंहजी को उनके उपद्रव को दबाने के लिये भेजा। इन्होंने मांडवी के पास पहुँच अपनी सेना के दो विभाग किए। एक का सेनापति भाटी गोविंददास और दूसरे का राठोड़ सुरजमल बनाया गया। इसके बाद महाराज की आज्ञा से इन दोनों ने मिलकर कोलियों पर आगे और पीछे दोनों तरफ़ से हमला कर दिया। कुछ

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १६६३ की कार्तिक सुदी ७ (ई० सन् १६०६ की २७ अक्टोबर) को यह जोधपुर आए और वि० सं० १६६५ (ई० सन् १६०८) के वैशाख में आगरे पहुँच बादशाह जहाँगीर से मिले। इसी वर्ष की मँगसिर बदी २ (१३ नवम्बर) को बादशाह ने इनका मनसब ३,००० जात और २,००० सवारों का करके इनको ख़ानख़ानान् के साथ दक्षिण की तरफ़ भेजा। इसके बाद इनके कार्यों से प्रसन्न होकर

ही देर के युद्ध में बहुत से कोली मारे गए और बचे हुए जंगल की तरफ़ भाग चले। यह देख राठोड़ सवारों ने उनका पीछा किया। यद्यपि राठोड़ गोपालदास ने उनको इस कार्य से रोकना चाहा, तथापि विजय से उन्मत्त हुए योद्धाओं ने इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया। राठोड़ों को अपने पीछे लगा देख कोली भी जल्दी से जंगल और पहाड़ की आड़ लेकर पलट पड़े और जैसे ही राठोड़ सवार उनकी मार के भीतर पहुँचे, वैसे ही उन्होंने उनपर तीरों की वर्षा शुरू कर दी। एक तो वैसे ही राठोड़ घोड़ों पर सवार होने से सघन बन और पथरीली ज़मीन में उनका पीछा नहीं कर सकते थे, दूसरे जंगली मार्गों से भी वे बिल्कुल अपरिचित थे। इससे उन्हें बड़ी क्षति सहनी पड़ी। उनके साथ के राठोड़ सूरजमल, राठोड़ गोपालदास, मेड़तिया हरिसिंह और जसवंत कलावत आदि बहुत से सरदार मारे गए। यह देख महाराज को बड़ा दुःख हुआ और यह लौटकर अहमदाबाद चले गए। वहाँ से कुछ दिन बाद जोधपुर आने पर महाराज ने मोंडवी के युद्ध में मारे गए सरदारों के कुटुम्बों के साथ बड़ी समवेदना प्रकट की।

फ़ारसी तवारीख़ों में इस युद्ध का उल्लेख नहीं है। परन्तु 'बाँवे गज़ेटियर' में लिखा है कि ई० सन् १६०६ में राजा शूरसिंह और राजा टोडरमल का पुत्र राय गोपीनाथ मालवा, सूत और बड़ोदा के मार्ग से गुजरात भेजे गए। वहाँ पहुँच इन्होंने बेलापुर के शासक कल्याण को हराकर कैद कर लिया। परन्तु मोंडवी के शासक के साथ के युद्ध में ये असफल होकर अहमदाबाद को लौट गए। (देखो भा० १, खण्ड १, पृ० २७३)।

१. ख्यातों में कार्तिक के स्थान पर फागुन भी लिखा मिलता है। इसके अनुसार ई० सन् १६०७ की २३ फरवरी को इनका आना सिद्ध होता है।

२. तुजुकजहाँगीरी, पृ० ६८। ख्यातों में लिखा है कि (मोटा राजा उदयसिंहजी का पुत्र) भगवानदास बुंदेला दला के हाथ से मारा गया था। इससे भगवानदास के पुत्र गोविंददास ने इसका बदला लेने के लिये महाराज से सहायता की प्रार्थना की। इस पर इन्होंने (सादूल के पुत्र) मुकुंददास को कुछ चुने हुए योद्धा देकर उसके साथ कर दिया। इन लोगों ने बुंदेलखंड में पहुँच दला को मार डाला।

३. तुजुकजहाँगीरी, पृ० ७४।

सवाई राजा शूरसिंहजी

बादशाह ने अपने चौथे राज्य-वर्ष में इनका मनसब बढ़ा कर चार हजारी ज्ञात और दो हजार सवारों का कर दिया।

इसी वर्ष अबदुल्लाख़ाँ ने सोजत का परगना महाराज कुमार गजसिंहजी को लौटा दिया और इसकी एवज में उनसे नाडोल के थाने का प्रबंध करने का आग्रह किया।

१. मआसिरुल उमरा, भा० २, पृ० १८२। यह मनसब-वृद्धि जहाँगीर के चौथे राज्य-वर्ष (वि० सं० १६६६=ई० सं० १६०६) में हुई थी।

२. वि० सं० १६६५ (ई० सन् १६०८) में जहाँगीर की आज्ञा से महाबतख़ाँ ने मेवाड़ पर चढ़ाई की। जिस समय इसका कैप मोही में था उस समय उसे सूचना मिली कि महाराजा अमरसिंहजी का कुटुम्ब सोजत में छिपा हुआ है और राजा शूरसिंहजी के कुछ सरदार उन्हें गुप्त रूप से सहायता देते हैं। इस पर उसने शाही दरबार से आज्ञा प्राप्त कर उक्त प्रांत को महाराज के शासन से निकाल लिया और वहाँ का अधिकार राव चन्द्रसेनजी के पौत्र (उग्रसेन के पुत्र) कर्मसेन को दे दिया।

जब इसकी सूचना महाराज को मिली तब इन्होंने अपने मंत्री गोविंददास को महाबतख़ाँ को समझाने के लिये भेजा। परन्तु उस समय इस कार्य में सफलता नहीं हुई।

इसके बाद महाबतख़ाँ के मेवाड़ की चढ़ाई में असफल होने के कारण उसके स्थान पर अब्दुल्लाख़ाँ नियत किया गया। इसने कर्मसेन से सोजत का अधिकार छीन लेना चाहा। इस पर कर्मसेन ने भी अब्दुल्लाख़ाँ का बड़ी वीरता से सामना किया। परन्तु अन्त में उसके वीर सेनापति सोलंकी कुंभा के मारे जाने और उसका बल क्षीण हो जाने से वह (कर्मसेन) सोजत का किला छोड़ कर निकल गया। उपर्युक्त सोलंकी कुंभा की स्त्री के, जो अपने पति के साथ सती हुई थी, हाथ का चिह्न किले के भीतरी दरवाजे पर अब तक विद्यमान है।

इसके बाद ही नाडोल के थाने का प्रबंध करने की शर्त पर सोजत का शासन पीछा मारवाड़ नरेश के अधिकार में दे दिया गया। नाडोल के थाने का समुचित प्रबंध हो जाने से आगरे और गुजरात के बीच के मार्ग की लूट खसोट बंद हो गई।

‘राजपूताने के इतिहास’ के भा० ३, पृ० ७६६ के फुटनोट ३ में ओम्माजी ने वि० सं० १६६७ के वैशाख (ई० सन् १६१० के अप्रैल) में इस घटना का होना मान कर दक्षिण जाते हुए शूरसिंहजी का भाटी गोविंददास को महाबतख़ाँ के पास भेजना लिखा है। परन्तु एक तो ‘तुजुकजहाँगीरी’ (पृ० ७४) में शूरसिंहजी का वि० सं० १६६५ (ई० सन् १६०८) में ख़ाँनख़ान् के साथ दक्षिण की तरफ़ जाना लिखा है। दूसरा ‘राजपूताने के इतिहास’ के ही पृ० ७६५ पर स्वयं ओम्माजी ने हि० सन् १०१८ के रबिउल आख़िर (वि० सं० १६६६ के श्रावण=ई० सन् १६०६ के जून) में महाबतख़ाँ के स्थान पर अब्दुल्लाख़ाँ का नियत किया जाना लिखा है। ऐसी हालत में वि० सं० १६६७ के वैशाख में सोजत पर कर्मसेन का अधिकार होने के कुछ समय बाद शूरसिंहजी का गोविंददास को महाबतख़ाँ के पास भेजना कैसे संभव हो सकता है। नवलकिशोर प्रेस की छपी ‘तुजुकजहाँगीरी’ में हि० सं० १०१८ की १६ रबिउल अक्वव दोशंबा (वि० सं० १६६६ की

मारवाड़ का इतिहास

इस पर वह अपनी राठोड़ सेना के कुछ चुने हुए वीरों को लेकर वहाँ जा पहुँचे ।
इससे उधर की मेवाड़ वालों की लूटमार बिलकुल बंद हो गई ।

उस समय महाराज के दक्षिण में होने से जोधपुर का सारा प्रबंध महाराज कुमार गजसिंहजी और भाटी गोविंददास के हाथ में था । वि० सं० १६६८ (ई० सन् १६११) में महाराना अमरसिंहजी के योद्धाओं ने अहमदाबाद से आगरे को जाते हुए व्यापारियों के एक संघ का (मारवाड़ राज्य के) दूनाड़ा नामक गाँव तक पीछा किया । परन्तु देर हो जाने के कारण व्यापारियों के बहुत आगे बढ़ जाने से वे उसे लूट न सके । इसके बाद जिस समय वे लोग वापिस लौटे उस समय इसकी सूचना पाकर मालगढ़ और भाद्राजन के करीब भाटी गोविंददास ने इन पर हमला कर दिया । यह अचानक आक्रमण देख कुछ देर तक तो मेवाड़ वालों ने भी उसका सामना किया । परन्तु अंत में अपने बहुत से वीरों के मारे जाने के कारण उन्हें युद्ध स्थल से भाग जाना पड़ा । इस युद्ध में राठोड़ों की तरफ़ के भाटी गोपालदास, राठोड़ खीवा और खिदमतगार मान बड़ी वीरता से लड़कर मारे गए । अगले वर्ष जब बादशाह

आषाढ़ बदी ५=ई० सन् १६०६ की १२ जून सोमवार) को महाबतख़ाँ के स्थान में अब्दुल्लाख़ाँ का नियत किया जाना लिखा है । (देखो पृ० ७५) । गणना से 'राजपूताने के इतिहास' के पृष्ठ ७६५ पर लिखी रविउल आखिर की उस (१६) तारीख़ को दोशंभा नहीं आता । इसी के साथ 'तुजुक जहाँगीरी' में यह भी लिखा है कि इसी वर्ष की १४ रजब (वि० सं० १६६६ की आश्विन सुदी १५=ई० सन् १६०६ की ३ अक्टोबर) को अब्दुल्लाख़ाँ की विजय के समाचार बादशाह के पास पहुँचे । (देखो पृ० ७६) ।

१. इससे पहले उक्त थाने का प्रबंध गज़नीख़ाँ के हाथ में था । नीलकंठ महादेव के मन्दिर के पीछे लगे वि० सं० १६६६ की ज्येष्ठ सुदी १५ (ई० सन् १६०६ की ७ जून) के लेख से प्रकट होता है कि जहाँगीर के राज्य समय गज़नीख़ाँ ने वहाँ के थाने के चारों तरफ़ कोट बनवाकर उक्त नगर का नाम नूरपुर रक्खा था ।

'गुणरूपक' में लिखा है कि राजकुमार गजसिंहजी ने इस अवसर पर नाडोल, जोजावर, चामलौद ? (चाँणोद), खोड़, सादड़ी, कुंभलमेर आदि में विजय प्राप्त कर सोलंकी, चालेसा, सीधल और सीसोदियों को दबाया और नाडोल के थाने की रक्षा का प्रबंध किया । (देखो गुणरूपक, पृ० ६-१०) ।

२. 'वीरविनोद' में कुँवर कर्णसिंह आदि का शाही खज़ाने का पीछा करना लिखा है ।
३. उस समय गोविंददास नाडोल के थाने पर था ।
४. 'गुणरूपक' में लिखा है कि गजसिंहजी के बढ़ते हुए प्रताप को देख महाराना ने एक सेना मारवाड़ में उपद्रव करने के लिये रवाना की । परन्तु गजसिंहजी और गोविंददास ने

सवाई राजा शूरसिंहजी

के बुलवाने पर राजा शूरसिंहजी दक्षिण से लौटते हुए सिरौही के गाँव पाडीव में पहुँचे, तब वहाँ के राव राजसिंहजी ने इनका प्रभाव और बल देखकर इनसे मित्रता कर लेने का विचार किया। इसी के अनुसार उन्होंने अपने विश्वस्त पुरुषों—देवड़ा पृथ्वीराज और भैरूदास को महाराज के पास भेजकर कहलवाया कि यदि आप पुराना (रायसिंहजी की मृत्यु का) बैर छोड़कर मेरी मदद करना स्वीकार कर लें, तो मैं अपने छोटे भाई शूरसिंह की कन्या राजकुमार गजसिंहजी को ब्याहने को तैयार हूँ। भाटी गोविंददास के कहने से महाराज ने यह बात मान ली। परन्तु इसी के साथ नीचे लिखी दो बातें और भी तय की गईं:—

१—जिस दिन राजकुमार गजसिंहजी को कन्या ब्याही जावे, उसी दिन राव रायसिंहजी के साथ मारे गए अन्य २६ राठोड़ों के कुटुम्ब वालों के साथ भी चौहानों की अन्य २६ कन्याएँ ब्याही जायँ।

२—देवड़ा बीजा का जड़ाऊ कटार, स्वर्गवासी राव रायसिंहजी का नक्कारा और उनके शिविर का लूटा हुआ सामान राजकुमार और महाराज को भेट के रूप में दिया जाय।

इस प्रकार सारी बातें तय हो जाने पर वि० सं० १६६६ की फागुन बदी ६ (ई० सन् १६१३ की ३१ जनवरी) को दोनों पक्षों के बीच एक अहदनामा लिखा गया।

उसके मुकाबले में पहुँच उले और महाराना अमरसिंहजी के राजकुमारों को मार भगाया। (देखो पृ० १०)।

१. 'सिरौही के इतिहास' (के पृ० २४५) में पं० गौरीशंकरजी ओझा ने लिखा है कि सिरौही के राव के विरुद्ध अपना पक्ष प्रबल करने के लिये ही यह अहदनामा उसके छोटे भाई शूरसिंह ने लिखा था। परन्तु ओझाजी स्वयं वहीं पर देवड़ा पृथ्वीराज को महाराव राजसिंह का विश्वस्त पुरुष लिखते हैं और उस अहदनामे पर देवड़ा भैरूदास के साथ ही इस पृथ्वीराज के भी हस्ताक्षर मौजूद हैं। ऐसी हालत में आप का लिखना कहाँ तक मान्य कहा जा सकता है ?।

जोधपुर नरेश की तरफ से इस पर हस्ताक्षर करनेवाले पुष्करना ब्राह्मण कल्याणदास और बारहठ दुरसा थे।

'गुणरूपक' में लिखा है कि पुराने बैर का बदला लेने के लिये गजसिंहजी ने आबू और सिरौही के देवड़ों (चौहानों) को हराकर उनका प्रसिद्ध कटार छीन लिया (देखो पृष्ठ १०-११)।

मेवाड़ का इतिहास

वि० सं० १६७० (ई० सन् १६१३) में महाराज अजमेर गए। उस समय बादशाह जहांगीर का निवास वहीं था। कुछ ही दिनों बाद उसने महाराज को शाहजादे खुर्रम (शाहजहाँ) की सहायता के लिये मेवाड़ की तरफ भेज दिया। शाहजादे ने भी इनकी सलाह से मेवाड़ के चारों तरफ अपनी सेना के थाने डलवा दिए। इनमें से सादड़ी का थाना राजकुमार गजसिंहजी को सौंपा गया। इस प्रकार चारों तरफ से घिर जाने के कारण वि० सं० १६७१ (ई० सन् १६१४) में महाराना अमरसिंहजी ने युद्ध में सफलता का होना असंभव देख शाहजादे के पास संधि का प्रस्ताव भेज दिया। इस पर बादशाह की स्वीकृति मिल जाने और अन्य सब बातों के तय हो जाने पर, जिस समय महाराना स्वयं अपने परिजनों के साथ शाहजादे से मिलने के लिये गौँदे आए, उस समय महाराज भी शाही अमीरों को साथ लेकर महाराना के पास पहुँचे। साथ ही इन्होंने मामले के तय करने में भी उन्हें सहायता दी^३।

१. बादशाहनामा, भा० १, पृष्ठ १६६। 'मन्नासिरुल उमरा', (भा० २, पृष्ठ १८२) में इनका जहांगीर के राज्य के आठवें वर्ष शाहजादे खुर्रम के साथ मेवाड़ पर चढ़ाई करना और बाद में उसी के साथ दक्षिण की तरफ जाना लिखा है। जहांगीर का आठवां राज्यवर्ष वि० सं० १६६६ की चैत्र वदि ३० (ई० सं० १६१३ की ११ मार्च) को प्रारंभ हुआ था। 'तुजुक जहांगीरी' में मेवाड़ पर की चढ़ाई का समय वि० सं० १६७० (ई० सं० १६१३) और दक्षिण की तरफ जाने का वि० सं० १६७३ (ई० सं० १६१६) लिखा है। (देखो क्रमशः पृ० १२६ और १६७)।

२. बादशाहनामा, भा० १, पृ० १७१-१७२। यह घटना फागुन बदी २ (ई० सं० १६१५ की ५ फरवरी) की है।

३. संधि के समय महाराना अमरसिंहजी ने एक लाल बादशाह को भेंट किया। उसका तोल ८ टांक और कीमत ६०,००० रुपए थी। 'तुजुक जहांगीरी' में लिखा है कि यह लाल पहले राव मालदेव के पास थी। मालदेव राठोड़ों का सरदार और उमदा (श्रेष्ठ) राजाओं में था। उसके बाद यह (लाल) उसके पुत्र राव चन्द्रसेन के हाथ आया। उसी ने राज्य छूट जाने पर इसे कीमत लेकर राना उदयसिंह को दे दिया (देखो पृ० १४१)।

'गुणरूपक' में लिखा है कि बादशाह जहांगीर एक बड़ी सेना लेकर मेवाड़ का दमन करने के लिये अजमेर गया। परंतु जब महाराना अमरसिंहजी ने वीरता के साथ शाही सेना का मुकाबला किया, तब उसने राजा शूरसिंहजी को वहां आने को लिखा। इस पर महाराज ने मेवाड़ पहुँच महाराना को संधि करने के लिये तैयार किया। इसी बीच पिता के बुलाने से राजकुमार गजसिंहजी भी भाटी

सवाई राजा शूरसिंहजी

इसके बाद महाराज जोधपुर चले आए । इन्हीं दिनों राठोड़ वीरम स्वतंत्र होने का प्रयत्न करने लगा । इस पर महाराज ने अपनी एक सेना को उस पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी । कुछ दिन तक तो वीरम ने उसका सामना किया, परन्तु अंत में उसने फिर महाराज की अधीनता स्वीकार करली । इस पर महाराज ने प्रसन्न होकर उसे रावल की पदवी और महेवे का प्रांत दे दिया ।

वि० सं० १६७२ (ई० सन् १६१५) में राजा शूरसिंहजी लौट कर बादशाह के पास अजमेर चले गए । वहाँ पर इन्होंने ४५ हजार रुपए, १०० मुहरें और १ हाथी बादशाह को भेंट किए । इनमें के एक प्रसिद्ध हाथी का नाम 'रणरावत' था । इसके कुछ दिन बाद इन्होंने 'फौज सिनगार' नामक एक हाथी और भी बादशाह को दिया । इस पर बादशाह ने भी महाराज को एक खासा हाथी दिया और शीघ्र ही उनका मनसब बढ़ाकर पाँच हजारों जात और तीन हजार सवारों का कर दिया ।

गोविंददास को लेकर वहाँ पहुँच गए थे । महाराज की मारफ़्त संधि की बातचीत तय हो जाने पर शाहज़ादा ख़ुर्रम और महाराना का ज्येष्ठ पुत्र करण दोनों गोगूँदे में मिले । इसके बाद ये दोनों अजमेर में बादशाह के पास पहुँचे । वहाँ पर भी राजकुमार करण का यथोचित सत्कार किया गया । (देखो पृ० ११-१३) ।

१. भाटी गोविंददास ने महाराज से कह सुन कर इस मामले में वीरम को सहायता दी थी और इसकी एवज़ में वीरम ने अपनी कन्या को उसके किसी कुटुम्बी के साथ व्याह देने का प्रतिज्ञापत्र लिख दिया था । यह प्रतिज्ञापत्र वि० सं० १६७१ में नाहनेड़ स्थान पर लिखा गया था ।

२. 'तुजुकजहाँगीरी', पृ० १३६-१४०, १४३ ।

३. 'तुजुक जहाँगीरी' में बादशाह लिखता है कि "यह हाथी भी अच्छा होने से खास हाथियों में दाखिल किया गया है । परन्तु पहला हाथी (रणरावत) अपूर्व वस्तु है और दुनिया की आश्चर्योत्पादक वस्तुओं में गिना जा सकता है । उसकी कीमत २०,००० रुपये हैं । मैंने भी उसकी एवज़ में १०,००० रुपये की कीमत का एक खासा हाथी सूरजसिंह को दिया" (देखो पृ० १४३) ।

४. 'तुजुकजहाँगीरी', पृ० १४२ । बादशाह अकबर और उसके उत्तराधिकारी जहाँगीर के राज्य में पाँच हज़ारी बहुत बड़ा मनसब समझा जाता था । साधारणतया इससे बड़ा मनसब केवल शाहज़ादों को ही मिलता था । हाँ, कभी कभी कोई बड़ा अमीर सात (हफ्त) हज़ारी तक भी पहुँच जाता था । परन्तु शाहजहाँ के समय दस हज़ारी तक के मनसब अमीरों को मिलने लगे थे और शाहज़ादों के मनसब ४० या ५० हज़ारी

मारवाड़ का इतिहास

इस मनसब वृद्धि के साथ इन्हें फलोदी का परगना जागीर में मिला। यह पहले बीकानेर के राव रायसिंहजी और उनके पुत्र सूरजसिंहजी के अधिकार में रह चुका था।

अभी महाराज बादशाह के साथ अजमेर में ही थे कि, इसी वर्ष की ज्येष्ठ सुदी ६ (ई० सन् १६१५ की २६ मई) की रात को इनके आता राजा किशनसिंहजी ने भाटी गोविंददास के मकान पर अचानक आक्रमण कर उसे मार डाला। जैसे ही इस हल्ले से पास के मकान में सोते हुए महाराज की आँख खुली, वैसे ही यह स्वयं खड्ग लेकर बाहर निकल आए। इसी बीच इनके योद्धा भी सजग हो गए और उन्होंने आक्रमणकारियों को चारों तरफ से घेर कर मार डाला। इस युद्ध में राजा

तक पहुँच गए थे। परन्तु पीछे से इन मनसबों का महत्त्व बहुत कुछ घट गया। बादशाह मोहम्मदशाह के समय में फर्रुखाबाद के नवाब का मनसब ५२ हज़ारी तक पहुँचा था। अकबर के समय पाँच हज़ारी मनसबदार का वेतन २६ हज़ार था। उस १६८ हाथी, २७२ घोड़े, १०८ ऊँट और २०७ गाड़ियाँ रखनी पड़ती थीं।

१. फलोदी हकूमत के कौंट की बुर्ज में वि० सं० १६५० की आषाढ़ सुदी ६ का एक लेख लगा है। उसमें उस समय वहाँ पर रायसिंहजी का राज्य होना पाया जाता है।
२. किशनसिंहजी के इस प्रकार अचानक आक्रमण कर भाटी गोविंददास को मारने का कारण उनके भतीजे गोपालदास का उसके हाथ से मारा जाना था।

उस घटना का हाल इस प्रकार लिखा मिलता है:—एक बार राठोड़ सुंदरदास, जोधा (रामदास के पुत्र) शूरसिंह और (कछा के पुत्र) नरसिंह ने मिल कर राठोड़ भगवानदास के पुत्र गोपालदास पर हमला किया। उस समय भाटी गोविंददास के भाई (लवरा के स्वामी) सुरतान ने गोपालदास का पत्त लिया। युद्ध होने पर सुरतान मारा गया। परन्तु उसने मरने के पूर्व ही नरसिंह को मार लिया। उस समय तक गोपालदास भी अच्छी तरह से ज़ख्मी हो चुका था। इसलिये वह अपने को बचे हुए दो शत्रुओं का सामना करने में असमर्थ जान युद्धस्थल से भाग खड़ा हुआ। यह समाचार सुन भाटी गोविंददास ने सोचा कि मेरे भाई ने तो गोपालदास के लिये युद्ध में अपने प्राण दिए। परन्तु उसके मरने पर वह (गोपालदास) स्वयं अपने प्राणों के मोह से युद्ध छोड़ कर भाग गया। यह बात गोविंददास को अच्छी न लगी। इस पर उसने अपने भाई का बदला लेने के लिये गोपालदास का पीछा किया और काकडखी गाँव के पास पहुँचते पहुँचते उसे मार डाला।

इस घटना का समाचार सुन राजा किशनसिंहजी गोविंददास से नाराज़ हो गए। उनका खयाल था कि राजा शूरसिंहजी स्वयं ही उससे अपने भतीजे का बदला लेने का प्रबंध करेंगे। परन्तु जब महाराज ने उधर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, तब उन्होंने इस प्रकार नैश आक्रमण कर गोविंददास को मार डाला। परन्तु इसी में उन्हें भी अपने प्राण देने पड़े।

सवाई राजा शूरसिंहजी

किशनसिंहजी भी अपने भतीजे कर्ण के साथ मारे गए। जब महाराज को अपने भाई, भतीजे और प्रधान मंत्री के मारे जाने का हाल मालूम हुआ, तब इन्हें बड़ा दुख हुआ।

कुछ दिन बाद बादशाह ने इन्हें एक जोड़ी मोती और बहुत कीमती खासा देकर दक्षिण की तरफ भेजने की इच्छा प्रकट की। इस पर यह दो मास के लिये जोधपुर चले आए। यहाँ पर सूरसागर के बगीचे में इन्होंने सोने और चाँदी से तुलादान किया। इसके बाद राज्य का प्रबंध कर यह अपने राजकुमार गजसिंहजी

१. 'तुजुक जहाँगीरी' में लिखा है कि गोविंददास के मकान पर हमला करते समय स्वयं राजा किशनसिंहजी घोड़े से उतर कर उसके मकान में घुस गए थे। इसी से वह मारे गए (देखो पृ० १४४-१४५)। परन्तु मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि राजा किशनसिंहजी महाराज के सजग होने के पहले ही गोविंददास को मारकर चल दिए थे। यह देख महाराज ने अपने पुत्र गजसिंहजी को उनका पीछा करने की आज्ञा दी। इसी के अनुसार उन्होंने कुछ चुने हुए वीरों को साथ लेकर किशनसिंहजी का पीछा किया। मार्ग में दोनों पक्षों के बीच युद्ध होने पर किशनसिंहजी मारे गए।

'मुंतख़िबुल-लुबाब' नामक इतिहास में लिखा है कि किशनसिंहजी का शोर सुनते ही सूरजसिंह तलवार लेकर बाहर चला आया और उसने किशनसिंह और करन को मार डाला। इसके बाद किशनसिंह के साथ के लोग राजा की हवेली से निकलकर लड़ते-भिड़ते बादशाह के महल की तरफ भागे। राजा सूरजसिंह भी उनका पीछा करता हुआ बादशाही दौलतखाने के दरवाजे तक जा पहुँचा। (देखो जिल्द १, पृ० २८१-२८२)।

'गुणरूपक' में लिखा है कि मेवाड़-विजय के बाद बादशाह की राठोड़ों का बदला हुआ बल खटकने लगा। उसने सोचा कि राजा शूरसिंह, राजकुमार गजसिंह, केहरि (किशनसिंह), करमसेन, करन और भाटी गोविंददास बड़े बलवान हो रहे हैं। इससे इनको आपस में ही लड़ाकर निर्बल कर देना चाहिए। इसी के अनुसार उसने एक रोज़ दरबार के समय राजकुमार गजसिंहजी के सामने ही केहरि (किशनसिंहजी) को गोविंददास को मार डालने के लिये उकसाया। यह देख गजसिंहजी को भी क्रोध आ गया। अंत में बहुत कुछ कहा सुनी के बाद दोनों अपने अपने निवास-स्थान को चले गए। इसके बाद किशनसिंहजी ने एक दिन पिछली रात को गोविंददास के मकान पर चढ़ाई कर उसे मार डाला। इसकी सूचना पाते ही गजसिंहजी शत्रु के मुकाबले के लिये आ पहुँचे। युद्ध होने पर केहरि (किशनसिंहजी) और करन मारे गए। परन्तु करमसेन भाग निकला। (देखो पृ० १३-१७)।

कर्नल टाड ने इस घटना का राजा गजसिंहजी के समय में होना और शाहजादे खुर्रम के कहने से राजा किशनसिंहजी का भाटी गोविंददास को मारना लिखा है।

ऐनाल्स ऐन्ड ऐसिटिकिटीज़ ऑफ़ राजस्थान (क्रुक् संपादित), पृ० ६७४।

२. तुजुक जहाँगीरी, पृ० १४५।

मारवाड़ का इतिहास

के साथ बादशाह के पास अजमेर चले गए। इसी समय बादशाह ने इनके सवारों में ३०० की वृद्धि कर इनका मनसब पाँच हजारी जात और तैंतीस सौ सवारों का कर दिया। साथ ही उसने इन्हें एक खिलअत और एक घोड़ा भी दिया। इसके बाद यह दक्षिण पहुंचे ख़ानजहाँ लौदी आदि शाही सेनानायकों के साथ वहाँ के उपद्रवों को दबाने और शत्रुओं को परास्त कर उनके प्रदेशों को विजय करने में लग गए।

‘तारीखे पालनपुर’ में लिखा है कि वि० सं० १६७४ (ई० सन् १६१७) में बादशाह जहाँगीर ने जालोर के शासक पहाड़ख़ाँ को मरवा कर उक्त प्रदेश को शाहजादे खुर्रम की जागीर में मिला दिया। परन्तु वहाँ का प्रबंध ठीक न हो सकने के कारण बाद में वह प्रांत राजा शूरसिंहजी को दे दिया। इस पर महाराज की

१. तुजुक जहाँगीरी, पृ० १४६।

२. तुजुक जहाँगीरी, पृ० १४८।

३. ‘मन्नासिल-उमरा’ (भा० २, पृ० १८२) में भी इस घटना का समय जहाँगीर का १० वाँ राज्य वर्ष लिखा है। यह वि० सं० १६७१ की चैत्र बदी ६ (ई० सन् १६१५ की १० मार्च) से प्रारंभ हुआ था।

ख्यातों में लिखा है कि दक्षिण की तरफ जाते हुए महाराज ने मार्ग में पिसांगण से राजकुमार गजसिंहजी, आसोप ठाकुर (खीवाँ के पुत्र) राजसिंह, व्यास नाथा और भंडारी लूणा को मारवाड़ की देख भाल के लिये जोधपुर भेज दिया था।

४. कर्नल टाड के लिखे राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि अकबर की मृत्यु के बाद जब राजा शूरसिंहजी राजकुमार गजसिंहजी को लेकर शाही दरबार में गए, तब जहाँगीर ने जालोर को विजय करने में अश्रुत वीरता दिखाने के कारण गजसिंहजी को अपने हाथ से एक तलवार भेंट की।

जालोर विजय का हाल कर्नल टाड ने इस प्रकार लिखा है:-

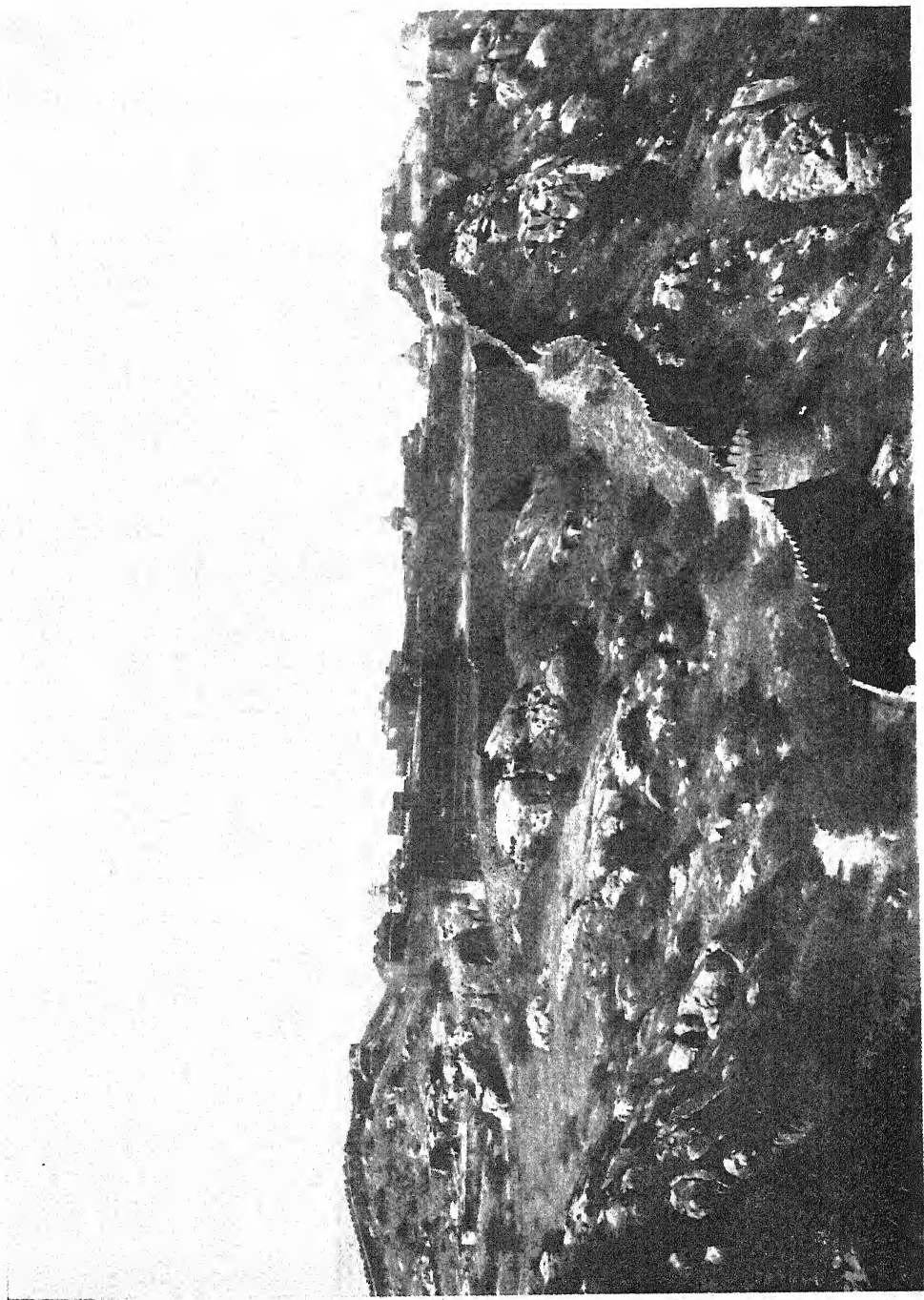
जालोर उस समय गुजरात के बादशाहों के अधीन था। परन्तु जैसे ही राजकुमार गजसिंहजी को जालोर-विजय के लिये कहा गया, वैसे ही उन्होंने सेना लेकर बिहारी पठानों पर चढ़ाई कर दी। जिस जालोर दुर्ग को फ़तह करने में अलाउद्दीन को कई वर्ष लग गए थे, उसी को उन्होंने केवल तीन मास में विजय कर लिया।

यद्यपि इस युद्ध में बहुत से राठोड़ वीर मारे गए, तथापि राजकुमार गजसिंहजी बिना किसी हिचकिचाहट के तलवार हाथ में लेकर काठ की सीढ़ी के ज़रिये क़िले पर चढ़ गए। वहाँ पर के युद्ध में ७,००० पठान मारे गए। इसके बाद क़िले पर उनका अधिकार हो गया। (देखो ऐनाल्स एण्ड एगिटिकिटीज़ ऑफ़ राजस्थान (क्रक संपादित), भा० २, पृ० ६७०)। परन्तु जालोर पर

(१)

बारे बरस अलाउदी, खपट्टो पतशाह।

चढ़ियाँ घोड़ों सोनगढ़, तैं लीनौ गजशाह ॥



जालोर का किला

यह किला पृथ्वीतल से १,२०० फुट ऊँची पहाड़ी पर बना है। इसकी लम्बाई ८०० गज और चौड़ाई ४०० गज है। इसमें जाने के लिये ३ मील लम्बी पत्थर की सड़क बनी है।

सवाई राजा शूरसिंहजी

आज्ञा से राजकुमार गजसिंहजी ने अपनी सेना के साथ पहुँच एकाएक वहाँ के किले पर चढ़ाई करदी। कुछ समय तक तो दोनों पक्षों के बीच भीषण संग्राम होता रहा, परन्तु अन्त में वहाँ के नारायणदास कावा की सहायता से यह एक दूटे हुए बुर्ज की तरफ से किले में घुस गए। राठोड़-सेना को इस प्रकार एकाएक किले में घुसी देख शत्रुओं ने शस्त्र रख दिए। इससे किले पर राजकुमार का अधिकार हो गया। दूसरे दिन वहाँ के विहारी पठानों ने एकत्रित होकर फिर शहर के द्वार पर राठोड़-सेना का बड़ी वीरता से सामना किया। परन्तु (डोडियाली के ठाकुर) पूँजा और कीरतसिंह देवड़ा आदि के विहारियों को मदद देने से इनकार कर देने के कारण वे सारे के सारे पठान युद्ध में मारे गए। इस प्रकार जब जालोर पर राजकुमार गजसिंहजी का अधिकार हो गया, तब वहाँ के शासक पहाड़खों का दीवान मेहता मोकलसी बची हुई विहारियों की सेना को लेकर भीनमाल की तरफ चला गया। परन्तु राठोड़ों ने उसका पीछा न छोड़ा और उसके भीनमाल पहुँचते ही तत्काल उस नगर को चारों तरफ से घेर लिया। वहाँ के युद्ध में शत्रुओं की तरफ के मोकलसी आदि कुछ मुख्य पुरुष मारे गए और बचे हुए पठान भागकर वि० सं० १६७५ (ई० सन् १६१८) में (पालनपुर इलाके के) कुरम्भाँ गाँव में चले गए। परन्तु इसके बाद भी वे मौका पाते ही, अर्बली पर्वत की सूँधा आदि की घाटियों का आश्रय लेकर, जालोर के आस-पास लूट-मार करने में नहीं चूकते थे^१।

जो उस समय गुजरात वालों का अधिकार होना लिखा है, यह ठीक प्रतीत नहीं होता; क्योंकि गुजरात उस समय मुगलों के ही अधिकार में होने से वहाँ का कोई स्वतंत्र बादशाह नहीं था। इसी प्रकार की और भी अनेक बातें कर्नल टॉड के राजस्थान में लिखी मिलती हैं; जो फ़ारसी तवारीखों आदि से सिद्ध नहीं होतीं। हमारी समझ में बादशाह ने शूरसिंहजी के दक्षिण जाने के पूर्व जिस समय उनके सवारों में ३०० की वृद्धि की थी, उसी समय शायद जालोर भी उनके मनसब में दे दिया होगा।

१. 'गुणरूपक', पृ० १६-२६। उक्त काव्य में इस विजय का भादों में होना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि इस घटना के बाद गजसिंहजी ने उग्रसेन के पुत्र कर्मसेन पर चढ़ाई की। इसकी सूचना पाते ही वह लाडणू से भागकर पहले तो थली (निर्जल-स्थल) की तरफ गया और फिर वहाँ से बला पहाड़ की तरफ चला गया। महाराज-कुमार गजसिंहजी भी उसके पीछे लगे हुए थे। इससे शीघ्र ही उन्होंने सोजत पहुँच विजयादशमी के दिन फिर कर्मसेन पर चढ़ाई की। यह देख वह मेरों की शरण में चला गया। परन्तु जब गजसिंहजी ने मेरों को दण्ड देना शुरू किया, तब उस (कर्मसेन) को भागकर हाडोती में घुस जाना पड़ा। (देखो पृ० ३०-३१)।

२. 'तारीखे पालनपुर', जिल्द १, पृ० १०१-१०६।

मारवाड़ का इतिहास

ख्यातों में लिखा है कि एक बार जिस समय सवाई राजा शरसिंहजी शाहजादे खुर्रम और नवाब ख़ाँख़ानान् के साथ दक्षिण में महकर के थाने पर थे, उस समय शत्रुओंने आकर उस नगर को घेर लिया। इस प्रकार घेरे जाने से शाही सेना का संबन्ध बाहर से बिलकुल टूट गया और उसे रसद का मिलना बंद हो गया। इस पर कुछ दिन तक तो किसी तरह काम चलता रहा, परन्तु अन्त में नाज की कमी के कारण उसकी दर बहुत चढ़ गई। यह देख राठोड़-सरदारों ने जैतावत कुम्भकर्ण को मेजकर महाराज को इस बात की सूचना दी। परन्तु महाराज ने उसे अपनी पाकशाला के सुवर्ण के बर्तन देकर समझा दिया कि अभी तो इनको बेचकर कुछ दिन के लिये नाज का प्रबंध करलो, तब तक कुछ न कुछ उपाय हो ही जायगा। परन्तु जब कुछ ही दिनों बाद फिर वही कठिन्ता उपस्थित हुई और शाही अमीरों के किए कुछ भी प्रबन्ध न हो सका, तब कुम्भकर्ण ने महाराज की सेवा में उपस्थित होकर शत्रुओं पर आक्रमण करने की आज्ञा चाही। इसपर महाराज ने ख़ाँख़ानान् से भी सम्मति ले लेना उचित समझा। परन्तु उसने बादशाह की इच्छा के विरुद्ध शत्रु से युद्ध छेड़ देने से साफ़ इनकार कर दिया। कुम्भकर्ण को इस प्रकार निश्चेष्ट होकर शत्रुओं के बीच घिरा रहना असह्य हो रहा था। इसलिये ख़ाँख़ानान् के इनकार कर देने पर भी उसने केवल अपने योद्धाओं को लेकर बीजापुरवालों पर हमला कर दिया। यद्यपि इसमें उसके कई वीर मारे गए और वह स्वयं भी बहुत जख्मी हुआ, तथापि उसने दक्षिणियों के झंडे को छीन कर (सादा के पुत्र) कामा के साथ महाराज के पास मेज दिया। यह देख महाराज भी युद्ध के लिये उत्सुक हो उठे और इन्होंने बादशाही आज्ञा की प्रतीक्षा में बैठे हुए ख़ाँख़ानान् को ज़बरदस्ती तैयार कर शत्रुओं पर हमला कर दिया। घोर युद्ध के बाद शत्रु भाग खड़े हुए और मैदान शाही सैनिकों के हाथ रहा। इसके बाद ख़ाँख़ानान् ने कुम्भकर्ण के लिये एक पालकी मेजकर उसे रणस्थल से अपने डेरे पर बुलवाया और उसकी चिकित्सा का पूरा-पूरा प्रबंध किया। इससे कुछ दिनों में उसके सारे घाव भर गए।

इसके बाद जब ख़ाँख़ानान् ने गढ़-पिंडारा विजय किया, तब वहाँ पर उसे चतुर्भुज विष्णु की एक सुंदर मूर्ति हाथ लगी। इसे उसने प्रेमोपहार के रूप में महाराज को भेंट कर दिया। यह मूर्ति अब तक जोधपुर के क़िले में विद्यमान है।

सवाई राजा शूरसिंहजी

वि० सं० १६७६ की भादों सुदी = (ई० सन् १६१६ की १ = सितम्बर)
को वहीं दक्षिण में, महकर के थाने में, सवाई राजा शूरसिंहजी का स्वर्गवास हो गया ।

यह महाराजा बड़े ही प्रतापी, बुद्धिमान् और दाता थे^१ । राव मालदेवजी के बाद इन्होंने ही मारवाड़ राज्य की वास्तविक उन्नति की । इनके शासन में मारवाड़ के सिवाय, ५ परगने गुजरात के, १ मालवे का और १ दक्षिण का भी था । ये परगने इन्हें बादशाह की तरफ से मनसब में मिले थे । इनका अधिक समय गुजरात और दक्षिण के युद्धों में ही व्यतीत हुआ; और वहाँ पर इन्होंने समय-समय पर वीरता के अद्भुत कार्य भी कर दिखाए ।

पहले लिखा जा चुका है कि इनके समय इनके प्रधान मन्त्री भाटी गोविन्ददास ने राज्य का सारा प्रबन्ध बदल कर उस समय की प्रचलित शाही शैली के अनुसार कर दिया था । वही प्रबन्ध आज से करीब ५० वर्ष पूर्व तक चला आता था । परन्तु भारत-सरकार के संबन्ध से आजकल उसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन करके उसे नवीन रूप दे दिया गया है ।

१. 'तुजुकजहांगीरी' में जहाँगीर ने लिखा है कि हि० स० १०२८ में दक्षिण से राजा शूरसिंह की मृत्यु का समाचार मिला । यह उस राव मालदेव का पोता था, जो हिंदुस्तान के प्रतिष्ठित जमींदारों में से था । राना की बराबरी करने वाला जमींदार वही था । उसने एक लड़ाई में राना पर भी विजय पाई थी । राजा शूरसिंह ने, मेरे पिता अकबर का और मेरे कृपापात्र होने से, बड़े दरजे और मनसब को प्राप्त किया था । उसका देश और राज्य उसके बाप और दादा के देश और राज्य से बढ़ गया था । (देखो पृ० २८०) ।

'गुणरूपक' में लिखा है कि महाराजा शूरसिंहजी २४ वर्ष राज्य कर ४६ वर्ष की अवस्था में, वि० सं० १६७६ की भादों सुदी में, महकर में स्वर्ग को सिधारे । इनके पीछे तीन रानियां दक्षिण में और एक जोधपुर में सती हुईं (देखो पृ० ३१) ।

२. कहते हैं कि सवाई राजा शूरसिंहजी ने निम्नलिखित गांव दान दिए थे:—

१ नापावास २ रैहनडी ३ बीजलियावास (सोजत परगने के), ४ सिंगला (जैतारण परगने का), ५ गैमावास ६ उंचियारडा-कलां ७ बछवास ८ भीलावास (मेड़ता परगने के), ९ बसी (पात्ती परगने का), १० तिगरिया ११ बेह १२ लोलासणी १३ छत्ती १४ छींडिया (जोधपुर परगने के), १५ रणसीसर (डीडवाने परगने का), १६ हरलायां (फलोदी परगने का) चारणों को; १७ हडबू बासनी (बासनी व्यासों की) (मेड़ता परगने का), १८ गैलावसिया (जोधपुर परगने का) ब्राह्मणों को; १९ मोगास (मेड़ता परगने का) भाटों को और २० बीगवी (जोधपुर परगने का) पुरोहितों को ।

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १६६३ (ई० सन् १६०६) में सवाई राजा शूरसिंहजी ने ही जोधपुर नगर के चाँदपोल दरवाजे से एक मील वायु-कोण में स्थित पर्वत-श्रेणी के पास अपने नाम पर सूरसागर नामक तालाब बनवा कर उसके तट पर सुंदर बगीचा, संगमरमर की एक बारादरी और महल बनवाए थे। चाँदपोल दरवाजे के बाहर का रामेश्वर महादेव का मंदिर, सूरजकुंड नामक बावली और शहर के बीच के तलहटी के महल भी इन्हीं के बनवाए हुए हैं।

इनकी कछवाही रानी सौभाग्यदेवी ने दहीजर गाँव में सोभाग-सागर नामक तालाब बनवाया था। इसी रानी के गर्भ से राजकुमार गजसिंहजी का जन्म हुआ।

शूरसिंहजी के २ पुत्र थे, गजसिंहजी और सबलसिंह।

१. इनका जन्म वि० सं० १६६४ की भादों सुदी ३ को हुआ था।

२४. राजा गजसिंहजी

यह सवाई राजा शूरसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १६५२ की कार्तिक सुदी ८ (ई० सं० १५६५ की ३० अक्टोबर) को हुआ था। यह भी अपने पिता के समान ही वीर और बुद्धिमान थे। इन्होंने सवाई राजा शूरसिंहजी के जीवन काल में ही अनेक युद्धों में सफलता पूर्वक भाग लिया था, और उन्होंने भी इनकी योग्यता से प्रसन्न होकर इन्हें अपना युवराज नियत कर लिया था। इसीसे उनकी अनुपस्थिति में मारवाड़ का सारा प्रबंध इन्हीं की देख भाल में होता था।

वि० सं० १६७६ (ई० सन् १६१६) में जैसे ही इन्हें सवाई राजा शूरसिंहजी के मेहकर में बीमार होने की सूचना मिली, वैसे ही यह जोधपुर का प्रबंध अपने विश्वासपात्र सरदारों को सौंप तत्काल मेहकर की तरफ़ खाना हो गए। पिता की मृत्यु के बाद इसी वर्ष की आसोज (काँर) सुदी १० (ई० सन् १६१६ की ८ अक्टोबर) को बुरहानपुर में इनका राज्याभिषेक हुआ। उस समय खानखानान् के पुत्र दौराबख़्ता ने बादशाह की तरफ़ से इनकी कमर में तलवार बाँधी। बादशाह ने भी इनकी योग्यता देख कर इन्हें तीन हजारी ज्ञात और दो हज़ार सवारों का मनसब, भंडा और राजा का खिताब दिये।

१. 'मन्नासिखल उमरा' के लेखानुसार जहाँगीर के राज्य के दशवें वर्ष (वि० सं० १६७२; ई० सं० १६१५) से ही यह बादशाही कार्यों में भाग लेने लगे थे। (देखो भा० २, पृ० २२४)।
२. 'गुणभाषाचित्र', पृ० ६, दोहा ४।
३. ख्यातों में लिखा है कि जहाँगीर ने, राजा शूरसिंहजी के मरने पर, गजसिंहजी को बुरहानपुर जाने के लिये लिखा था। उसी के अनुसार यह वहाँ पहुँच कर गद्दी पर बैठे। ख्यातों में इनका काँर सुदि ८ को गद्दी पर बैठना लिखा है।
४. 'तुजुक जहांगीरी', पृ० २८०। वहीं पर यह भी लिखा है कि इसी समय इनके छोटे भाई सबलसिंहजी को ५०० ज्ञात और २५० सवारों का मनसब (और फलोदी का प्रांत जागीर में) दिया गया था।

मारवाड़ का इतिहास

कर्नल टाड ने अपने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि इस अवसर पर इनको मारवाड़ के अधिकार के साथ ही गुजरात के सात परगने, फिलाय (ढूँढाड़ का) और मसूदा (अजमेर का) की जागीर और दक्षिण की सूबेदारी दी गई थी। इनके अलावा इनके घोड़े भी शाही दाम से बरी करदिए गए थे। इसके बाद यह महकर के थाने पर पहुँच दक्षिणवालों के उपद्रवों को शांत करने में लग गए। अहमद नगर के बादशाह का मंत्री हबशी अंबर चंपू एक वीर योद्धा था। ख्यातों से ज्ञात होता है कि एक बार उसने, अचानक आकर, शाही सेना को घेर लिया। तीन महीने तक दोनों तरफ से छोटी बड़ी अनेक लड़ाइयाँ होती रहीं। अंत में गजसिंहजी की वीरता से शत्रु को घिराव उठा कर भागना पड़ा।

वि० सं० १६७८ में भी दक्षिणियों के साथ के युद्ध में महाराज की वीरता से ही शाही सेना को विजय प्राप्त हुई, और मलिक अंबर ने आक्रमण करने के बदले आक्रांत होकर बादशाह की अधीनता स्वीकार करली। इससे प्रसन्न होकर बादशाह जहाँगीर ने महाराज का मनसब बढ़ा कर चार हजारी ज्ञात और तीन हजार सवारों का कर दियौ। साथ ही इन्हें 'दलथंभन' (फौज का रोकने वाला) का खिताब देकर जालोर का परगना मनसब की जागीर में दियौ।

१. 'ऐनाल्स ऐंड ऐरिडिक्टिरीज़ ऑफ़ राजस्थान' (झुक संपादित), भा० २, पृ० ६७२।
२. उस समय दक्षिण का सूबेदार ख़ाँखानाँ था। इसलिये कर्नल टाड के लेखानुसार महाराज को दक्षिण की सूबेदारी का दिया जाना ठीक प्रतीत नहीं होता।
३. महकर में मुग़ल-राज्य की सरहदी चौकी थी, और वहाँ से आगे अहमदनगर वालों का राज्य प्रारंभ होता था। उन दिनों इन्हीं अहमदनगर वालों से युद्ध होते रहते थे।
४. 'तुजुक जहाँगीरी', पृ० ३४१।
५. ख्यातों में लिखा है कि उस समय वहाँ पर शाहज़ादे खुर्रम का अधिकार था। उसके सैनिकों ने महाराज के आदमियों को किला सौंपने से इनकार करदिया। इसके बाद जिस समय बादशाह ने शाहज़ादे खुर्रम को दक्षिण से मॉड्र की तरफ़ जाकर वहाँ के उपद्रव को शांत करने की आज्ञा दी, उस समय राजा गजसिंहजी को भी उसकी सहायता के लिये वहाँ जाने को लिखा। इसके अनुसार जब महाराज शाहज़ादे के पास बुरहानपुर पहुँचे, तब उसने इनको प्रसन्न करने के लिये जालोर के साथ ही साँचौर का परगना भी इन्हें दे दिया। परन्तु फ़ारसी इतिहासों से इसकी पुष्टि नहीं होती।



२४. राजा गजसिंहजी

वि० सं० १६७६-१६८५ (ई० स० १६१६-१६२५)

राजा गजसिंहजी

इस युद्ध में इन्होंने मलिक अंबर (चंपू) का लाल झंडा छीन लिया था। इस घटना की यादगार के उपलक्ष में उसी दिन से जोधपुर के राजकीय झंडे में लाल रंग की पट्टी लगाई जाने लगी।

बादशाह ने महाराज की दक्षिण की इन वीरताओं से प्रसन्न होकर वि० सं० १६७६ की चैत्र सुदि १ (ई० सन् १६२२ की ११ मार्च) को इन्हें एक नक्का रा उपहार में दिया।

वि० सं० १६८० (ई० सन् १६२३) में महाराज दक्षिण से लौट कर जोधपुर आए और कुछ दिन यहाँ रह कर देश के प्रबंध की देख भाल करते रहे।

१. 'तुलुक जहाँगीरी', पृ० ३५१।

'गुणरूपक' में महाराज की गद्दीनशीनी से लेकर इस घटना तक का हाल इस प्रकार लिखा है:-

राजा शूरसिंहजी के स्वर्गवास के बाद राजा गजसिंहजी (२४ वर्ष की अवस्था में) वि० सं० १६७६ की विजया-दशमी के दिन बुरहानपुर में गद्दी पर बैठे। इन्होंने दक्षिण की तरफ जाते समय जोधपुर के किले की रक्षा का भार कृपावत राजसिंह को सौंपा था। जिस समय यह दक्षिण में थे उस समय कंधार से भी एक बड़ी सेना दक्षिण वालों की मदद में आई थी। कर्णाटक, विजयनगर, गोलकुंडा और बराड़ आदि के युद्धों में राजा गजसिंहजी सदाही अपनी सेना के साथ शाही सेना के अग्रभाग (हरावल) में रहा करते थे। इसी प्रकार महकर के युद्ध में भी; जिसमें शत्रु के ८,००० बुढ़ सवारों ने भागलिया था, महाराज अपनी राठोड़ सेना के साथ शाही सेना के अग्रभाग में थे। इस युद्ध में शत्रुओं के ५०० सवार मारे गए और महाराज की वीरता से ही शाही सेना को विजय प्राप्त हुई। गजसिंहजी ने बुरहानपुर के युद्ध में दक्षिणियों को परास्त करने में बड़ी वीरता दिखाई थी। शाहजादा खुर्रम भी उस समय वहीं था। इस कार्य से प्रसन्न होकर बादशाह ने इनका मनसब ५,००० जात का करदिया और इसी के साथ इन्हें नक्का रा, तोगा, सुनहरी साज के घोड़े और जालोर तथा साँचोर के परगने दिए। इसके बाद महाराज ने मलकापुर, रोहिणखेड़ा, बालापुर, महकर, निरोह, खिड़की, दौलताबाद, मग्गी पट्टन, खानदेश, महाराष्ट्र और बराड़ के युद्धों में दक्षिण वालों की सेनाओं पर विजय प्राप्त की। दक्षिण के पाँच खास युद्धों में तो, जो (१) महकर, (२) मेहाना, (३) बालापुर, (४) बुरहानपुर और (५) दक्षिण के पिछले प्रान्त में हुए थे, इन्होंने खास वीरता दिखाई थी। कुछ दिन बाद जब खुर्रम माँझ आया, तब उसने महाराज को अपने पास बुलवाया और इनकी वीरता की प्रशंसा कर इन्हें अपने देश जाने की आज्ञा दी। इसी के अनुसार यह जोधपुर आकर ६ मास तक यहाँ के प्रबंध की देखभाल करते रहे। (देखो पृ० ३२-६६)।

मारवाड़ का इतिहास

इसके बाद इसी वर्ष के वैशाख में यह लौट कर बादशाह के पास चले गए। इन दिनों शाहजादा खुर्रम नूरजहाँ बेगम के प्रपंच से नाराज होकर बागी हो रहा था। मौका पाकर उसने दिल्ली पर अधिकार करने की तैयारी की। जैसे ही इसकी सूचना बादशाह जहाँगीर को मिली, वैसे ही उसने शाहजादे परवेज़ को उसे दंड देने के लिये रवाना किया। उसके साथ महाबतख़ाँ और राजा गजसिंहजी को भी उधर जाने की आज्ञा दी गई। उस समय जहाँगीर ने महाराज का मनसब बढ़ा कर पाँच हजार ज़ात और चार हजार सवारों का कर दिया, और इसके साथ फलोदी का प्रांत जागीर में दिया। मालवे में पहुँचने पर खुर्रम का और शाही सेना का सामना हुआ। परन्तु शीघ्र ही खुर्रम को परास्त होकर दक्षिण की तरफ़ भागना पड़ा। इसके बाद शाहजादा परवेज़ अपने सहायकों को साथ लेकर बुरहानपुर चला गया और उसने इस युद्ध के समय की महाराज की वीरता से प्रसन्न होकर मेड़ते का परगना इन्हें उपहार में दे दिया।

१. तुजुक जहाँगीरी, पृ० ३६८।

२. नवलकिशोर प्रेस का छपी 'तुजुक जहाँगीरी' के पृष्ठ ३६६ पर गजसिंहजी के नाम के आगे महाराज की उपाधि लगी होने से अनुमान होता है कि शायद इस अवसर पर इनको यह पदवी दी गई हो ?

३. 'तुजुक जहाँगीरी', पृ० ३६६।

४. अंग्रेज़ी इतिहासों में इस युद्ध का बल्लोचपुर में होना लिखा है। विंसेंट स्मिथ के लेखानुसार यह दिल्ली के दक्षिण में था ('ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया', पृ० ३८६)।

५. ख्यातों में लिखा है कि बादशाह ने इस अवसर पर अजमेर का सूबा शाहजादे परवेज़ को जागीर में दे दिया। इस पर उसने मेड़ता सैयदों को सौंप देने का विचार किया। परन्तु राजा गजसिंहजी ने कृपावत राजसिंह को भेज कर महाबतख़ाँ से इसकी शिकायत की। उसने भी उस समय महाराज को अप्रसन्न करना उचित न जाना शाहजादे को ऐसा करने से रोक दिया। परन्तु उन्हीं ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १६७६ (ई० सन् १६२२) में मेर जाति के जंगली लोगों ने मेड़ता प्रांत के पशुओं को पकड़ने का उद्योग किया। यह देख वहाँ के शाही शासक ने उन पर चढ़ाई की। मार्ग में जिस समय वह नंदवाणा नामक गाँव में पहुँचा, उस समय वहाँ के ब्राह्मणों (नंदवाणे बोहरों) की संपत्ति को देख उसने उनके बहुत से मुखियाओं को पकड़ लिया। इसकी सूचना पाते ही बलूदे के ठाकुर मेड़तिया शमामसिंह और जैतारन के हाकिम पंचोली राधोदास आदि ने उसका पीछा किया। मुँगदड़ा गाँव के पास पहुँचते पहुँचते दोनों का सामना हो गया। इससे थोड़ी देर के युद्ध में ही उक्त शाही शासक ब्राह्मणों को छोड़ कर भाग गया।

राजा गजसिंहजी

अगले वर्ष शाहजादे खुर्रम ने उड़ीसा और बिहार फतह कर फिर से दिल्ली के तख्त पर अधिकार करने के लिये चढ़ाई की। परन्तु बनारस के पास टोंस नदी के किनारे उसे शाहजादे परवेज़ की सेना से परास्त होकर भागना पड़ा। इस युद्ध का श्रेय भी राजा गजसिंहजी की अद्भुत वीरता को ही दिया जाता है। इसका वर्णन इस प्रकार लिखा मिलता है।

वि० सं० १६८१ (ई० सन् १६२४) में जिस समय शाहजादा खुर्रम फिर से बादशाहत पर अधिकार करने की नीयत से सेना सज कर रवाना हुआ, उस समय उसकी सेना के अग्रभाग का संचालक महाराजा अमरसिंह का पुत्र भीम था। इसकी सूचना पाते ही शाहजादा परवेज़ भी उसके मुकाबले को चला। जब दोनों सेनाओं का सामना हुआ, तब परवेज़ ने जयपुर महाराज जयसिंहजी के पास अधिक सेना देख कर उन्हें अपनी सेना के अग्रभाग का मुखिया बना दिया। हमेशा से राठोड़ नरेशों के ही शाही सेना के अग्रभाग में रहने का रिवाज होने से यह बात राजा गजसिंहजी को अच्छी न लगी। इससे यह अपनी सेना के साथ नदी की बाईं तरफ परवेज़ की सेना से कुछ हट कर खड़े हो गए। युद्ध होने पर कुछ ही देर में जिस समय परवेज़ की सेना के पैर उखड़ गए, उस समय शाहजादे खुर्रम ने भीम को एक तर्फ खड़ी हुई राजा गजसिंहजी की सेना पर आक्रमण कर उसे भगा देने का इशारा किया। इस पर तत्काल भीम और गजसिंहजी की सेनाओं के बीच युद्ध छिड़ गया। यद्यपि विजय से

इससे प्रगट होता है कि पहले मेड़ते पर बादशाह का ही अधिकार था, परन्तु इस अवसर पर महाराज की वीरताओं के उपलक्ष में वह नगर इनके शासन में दे दिया गया होगा।

१. भीम मेवाड़ की उस सेना का सेनापति था, जो उस समय महाराजा करणसिंहजी की तरफ से बादशाही सेवा में रहा करती थी। जहाँगीर ने भीम को राजा की पदवी, और टोडे की जागीर दी थी। कुछ समय बाद ही बादशाह की कृपा से वह पाँच हजार मनसब तक पहुँच गया था।

इसके बाद वह शाहजादे खुर्रम में मिल गया, और उसने खुर्रम की आज्ञा से पटना विजय कर लिया।

२. मारवाड़ की ख्यातों में इस युद्ध का पटने के पास, 'मुतखिबुल्लुबाब' में बंगाल की सरहद में, और 'तुजुक जहाँगीरी' में बनारस के पास होना लिखा है। कहीं कहीं इस युद्ध का झूसी के पास होना भी लिखा मिलता है।
३. फारसी तवारीखों से इस युद्ध में जयसिंहजी के सम्मिलित होने का पता नहीं चलता। परन्तु साथ ही उनमें कई अन्य नरेशों के नाम भी नहीं दिए हैं।

मारवाड़ का इतिहास

उन्मत्त सीसोदियों और खुर्रम के अन्य सैनिकों ने राठोड़ों को मार भगाने का बड़ा प्रयत्न किया, तथापि वीर राठोड़ अपने स्थान से ज़रा भी न हटे। उलटा कुछ देर के युद्ध के बाद ही सेनापति भीम के मारे जाने से सीसोदियों का उत्साह शिथिल पड़ गया, और खुर्रम की विजय पराजय में बदल गई। इनकी इस वीरता से प्रसन्न होकर जहाँगीर ने इनके सवारों में १,००० की वृद्धि करने के साथ ही इनका मनसब पाँच हज़ारी ज़ात और पाँच हज़ार सवारों का करदिया। इसके बाद महाराज ने प्रयाग पहुँच चाँदी से तुलादान किया और वहाँ से यह दक्षिण की तरफ़ चले गए।

जिस समय महाराज दक्षिण में थे, उस समय एक बार शाहज़ादे खुर्रम ने अचानक पहुँच बुरहानपुर को घेर लिया। इस अवसर पर भी राजा गजसिंहजी ने भाद्राजन के ठाकुर मुकुंददास आदि को साथ लेकर शाहज़ादे की सेना को भगाने में बड़ी वीरता दिखाई।

१. ख्यातों में लिखा है कि इसके साथ बराड़ प्रांत का जलगाँव इन्हें जागीर में दिया गया था।
२. इसका उल्लेख मारवाड़ की ख्यातों में है, और इसकी पुष्टि 'बादशाहनामा' के लेख से भी होती है। (देखो पृष्ठ १५८)।
३. इस समय मलिक अंबर भी खुर्रम के साथ था।
४. 'गुणरूपक' में लिखा है:-

जिस समय बादशाह काश्मीर में था, उस समय खुर्रम ने मौँडू पहुँच बगावत का भंडा उठाया। इसकी सूचना पाते ही उधर तो बादशाह घबरा कर दिल्ली की तरफ़ चला और इधर खुर्रम अजमेर, साँभर, टोडा और राणथंभोर होता हुआ दिल्ली के तख़्त पर अधिकार करने की नीयत से रवाना हुआ। उस समय सीसोदिया भीम मेड़ते में था। खुर्रम ने उसे अजमेर पर अधिकार करने की आज्ञा दी। इस पर उसने सादूल को हराकर वहाँ पर अधिकार कर लिया। इसके बाद खुर्रम सीकर होता हुआ दिल्ली के निकट पहुँचा। इसी बीच बादशाह भी ससैन्य वहाँ आ गया। इससे दोनों सेनाओं के बीच युद्ध छिड़ गया। परन्तु युद्ध का रंग अपने लिये फीका देख बादशाह ने वज़ीर के कहने से राजा गजसिंहजी को मदद के लिये बुलवाया। इससे महाराज भी कूँपावत राजसिंह आदि वीर-सामंतों को लेकर चैत्र सुदि ११ को जोधपुर से रवाना हुए। इनके बादशाह के पास पहुँचने पर उसने युद्ध का सारा भार इन्हीं को सौंप दिया। इसके बाद महाराज शाही सेना के साथ, खुर्रम का पीछा करने को प्रयाग, काशी और गया की यात्रा करते हुए दूध नदी के उस पार कोरटा में पहुँच ठहर गए। उस समय खुर्रम का पड़ाव खैरागढ़ में था। इससे दोनों की सेनाओं के बीच केवल दो कोस का फ़ासला रह गया। इसके बाद खुर्रम की सेना के अग्रभाग में तो महाराना अमरसिंह का पुत्र सीसोदिया

वि० सं० १६८२ (ई० सन् १६२५) में नूरजहाँ बेगम महावतख़ाँ से नाराज़ हो गई। इसी से उसने बादशाह से कह कर उसे दक्षिण से बंगाल की तरफ़ चले जाने या दरबार में हाज़िर होने की आज्ञा भिजवा दी। इस पर वह दक्षिण में उपस्थित अधिकांश सरदारों को साथ लेकर बंगाल की तरफ़ जाने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु महाराज ने उनमें से बहुतों को बादशाह की आज्ञा का मर्म समझा कर वहीं रोकलियाँ। इससे दक्षिण का जीता हुआ प्रदेश शत्रुओं के हाथों में जाने से बच गया।

वि० सं० १६८४ की कार्तिक वदी ३० (ई० सन् १६२७ की २६ अक्टोबर) को बादशाह जहाँगीर का स्वर्गवास हो गया, और आपस की झूट के कारण बादशाहत का प्रबंध शिथिल पड़ गया। यह देख दक्षिण का सूबेदार ख़ाँजहाँ लोदी बालाघाट का प्रांत निजामुलमुल्क को सौंप कर मौँझ पर अधिकार करने के लिये रवाना हुआ। राजा गजसिंहजी और जयपुर के मिरजा राजा जयसिंहजी भी (दक्षिण से) उसके

भीम नियत हुआ और शाही सेना के अग्रभाग में शाहज़ादे परवेज़ और महावतख़ाँ की सलाह से राजा गजसिंहजी रक्खे गए। उस समय बादशाही सेना में अँविर के राजा जयसिंहजी, बीकानेर नरेश सूरजसिंहजी, बुंदेला वरसिंहदेव, सारंगदेव, ब्रह्मलख़ाँ, आलमख़ाँ, आदि अनेक सरदार थे। अन्तिम युद्ध में सीसोदिया भीम और राजा गजसिंहजी का सामना हुआ। परन्तु भीम के मारे जाते ही खुर्रम और उसकी सेना मैदान छोड़ कर भाग खड़े हुए।

यह युद्ध वि० सं० १६८१ की कार्तिक सुदि १५ को हुआ था। (देखो पृ० ६७-१३४)।

(यहाँ पर कवि ने अनेक घटनाओं को एक में मिला कर बड़ी गड़बड़ कर दी है)।

ख्यातों में लिखा है कि खुर्रम से आसेर का क़िला छीनने में भी राजा गजसिंहजी ने बड़ी वीरता दिखलाई थी।

१. बादशाह उसको शाहज़ादे परवेज़ से दूर करना चाहता था। इसीसे उसे वहाँ से हटाना आवश्यक था। महाराज के समझाने पर भी करीब ५,००० राजपूत सैनिक उसके साथ हो लिए। इन्हीं की सहायता से उसने कुछ दिन बाद बंगाल से लौटने पर बादशाह जहाँगीर को, जो उस समय भेलम पार कर काबुल जाने के लिये उद्यत था, पकड़ कर कुछ दिन के लिये अपनी कैद में ले लिया। यह घटना वि० सं० १६८३ (ई० सन् १६२६) की है।

२. 'तुजुग जहाँगीरी', पृ० ४३४,। उक्त इतिहास में उस रोज़ 'एक शंवा' रविवार का होना लिखा है। परन्तु इण्डियन एफ़ेमेरिस के अनुसार उस दिन सोमवार आता है। (देखो भा० ६, पृ० ५७)।

मारवाड़ का इतिहास

साथ हो लिए। परन्तु फिर मार्ग से ही ये दोनों उसका साथ छोड़ अपनी अपनी राजधानियों की तरफ चले आए।

वि० सं० १६८४ की माघ सुदि १० (ई० सन् १६२८ की ४ फरवरी) को शाहजहाँ आगरे पहुँच कर तख्त पर बैठे। इस पर फागुन वदी ४ (१३ फरवरी) को राजा गजसिंहजी भी जोधपुर से आगरे जा पहुँचे। यद्यपि इन्होंने बादशाह जहाँगीर के कहने से परवेज के साथ जाकर दो बार खुर्रम (शाहजहाँ) को सम्मुख रण से भागने पर बाध्य किया था, तथापि इनकी वीरता और साहस का विचार कर उसने इस अवसर पर इनका बड़ा आदर सत्कार किया, और खासा खिलअत, जड़ाऊ खंजर, फूलकटार, जड़ाऊ तलवार, खासे अस्तत्रल का सुनहरी ज़ीनवाला घोड़ा, खासा हाथी, नक्कारा और निशान देकर बादशाह जहाँगीर के समय का इनका पाँच हज़ारी ज्ञात और पाँच हज़ार सवारों का मनसब यथानियम स्वीकार कर लिया।

इसके बाद राजा गजसिंहजी ने शाहजहाँ की इच्छानुसार सीसोदरी (फ़तहपुर सिकरी के निकट) के क़िले पर चढ़ाई कर वहाँ के बागियों को सर किया।

वि० सं० १६८६ की चैत वदी ७ (ई० सन् १६३० की २३ फरवरी) को शाहजहाँ ने निजामुलमुल्क और ख़ाँजहाँ लोदी को दंड देने के लिये तीन सेनाएँ बालाघाट की तरफ़ रवाना कीं। इनमें से एक सेना के सेनापति राजा गजसिंहजी बनाए गए। इन्होंने इस बार भी शत्रुओं का दमन करने में अच्छी वीरता दिखाई। इसके बाद वि० सं० १६८७ के सावन (ई० सन् १६३० की जुलाई) में बादशाह ने इन्हें अपने

१. 'बादशाहनामा', भा० १, पृ० ७६।
२. 'क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इंडिया' में उस दिन फरवरी की १४ तारीख़ होना लिखा है। यह चिंत्य है (देखो पृ० ८३)।
३. 'बादशाहनामा', जिल्द १, पृ० ८७।
४. 'बादशाहनामा', भा० १, पृ० १५८-१५९।
५. 'गुणभाषाचित्र' में लिखा है कि बृंदेला वरसिंह का पुत्र जोगराज बागी हो गया था। जब बादशाह ने उसे दंड देने के लिये चढ़ाई की, तब महाराज गजसिंहजी भी उसके साथ थे। वहाँ पर के युद्ध में इन्होंने अच्छी वीरता दिखाई। इससे जोगराज को परास्त होना पड़ा (देखो पृ० ७७)।
६. इस सेना में हिन्दू और मुसलमान, कुल मिला कर करीब २७ शाही मनसबदार और अमीर तथा १५,००० सवार थे। 'बादशाहनामा' भा० १, पृ० २६४।

पास बुला लिया। इसके बाद इसी वर्ष की आश्विन सुदि (अक्टोबर) में बादशाह ने इनको जड़ाऊ पट्टेवाली एक खासी तलवार देकर दक्षिण की तरफ भेजा। वहाँ पर भी महाराज की राठोड़-सेना ने बड़ी वीरता दिखलाई। वि० सं० १६८८ के पौष (ई० सन् १६३१ के दिसम्बर) में महाराज यमीनुदौला (आसफ़ख़ाँ) के साथ मोहम्मद आदिलख़ाँ को दंड देने के लिये फिर बालावाट की तरफ भेजे गए। हमेशा की तरह इस बार भी यह शाही सेना के अग्रभाग के सेनापति बनाए गए। इसके कुछ दिन बाद महाराज जोधपुर चले आए और यहाँ पर राज्यकार्य की देख-भाल करने लगे। वि० सं० १६९० के वैशाख (ई० सन् १६३३ के मार्च) में यह फिर जोधपुर से लौट कर आगरे पहुँचे। इस पर बादशाह ने एक खिलअत और एक सुनहरी ज़ीन वाला घोड़ा देकर इनका सत्कार किया। इसके बाद यह फिर दक्षिणियों के उपद्रव को दबाने के लिये उधर चले गए। वि० सं० १६९२ की फागुन सुदि १४ (ई० सन् १६३६ की १० मार्च) को दौलताबाद के मुक़ाम पर बादशाह शाहजहाँ ने इनकी वीरता से प्रसन्न होकर इन्हें सुनहरी ज़ीन सहित एक खासा घोड़ा दिया। इसके बाद वि० सं० १६९३ के पौष (ई० सन् १६३६ के दिसम्बर) में यह बादशाह के साथ दक्षिण से लौटे। मार्ग में जब बादशाह अजमेर से आगरे को चला, तब जोगी तालाब के पास उसने महाराज को, एक खासा खिलअत, एक हाथी और सुनहरी ज़ीन वाला खासा घोड़ा उपहार में देकर, जोधपुर को विदा किया। यहाँ पर यह करीब डेढ़ वर्ष तक अपने राजकाज की जाँच में लगे रहे। इसके

१. बादशाहनामा, भा० १, पृ० ३०८। उसमें लिखा है कि इसी वर्ष नसीरख़ाँ ने, जो गजसिंहजी की सेना में नियत था, बादशाह से तिलंगाना और कंधार की विजय का कार्य अपने जिम्मे किए जाने की प्रार्थना की। इससे वह कार्य उसको सौंपा गया और महाराज को वापिस बुला लिया गया।

२. 'बादशाहनामा', भा० १, पृ० ३१५।

३. बादशाहनामा, भा० १, हिस्सा १, पृ० ४०४-४०५।

४. इस अवसर पर इन्होंने १ हाथी कुछ ज़वाहिरात, और हथियार बादशाह की भेंट किए थे। ('बादशाहनामा', भा० १, पृ० ४७४)।

५. इस सत्कार और यात्रा का उल्लेख फ़ारसी तबारीख़ों में नहीं है। यह ख्यातों से लिया गया है।

६. 'बादशाहनामा', भा० १, हिस्सा २, पृ० १४१-१४२।

७. बादशाहनामा, भा० १, हिस्सा २, पृ० २३३।

मारवाड़ का इतिहास

बाद वि० सं० १६६४ की पौष वदी ४ (ई० सं० १६३७ की २५ नवम्बर) को यह अपने द्वितीय महाराज-कुमार जसवंतसिंहजी को साथ लेकर बादशाह के पास आगरे पहुँचे । वहाँ पर माघ के महीने (ई० सं० १६३८ की जनवरी) में बादशाह ने इन्हें फिर एक खिलअत देकर इनका सत्कार किया ।

वि० सं० १६६५ की जेठ सुदि ३ (ई० सं० १६३८ की ६ मई) को आगरे में ही राजा गजसिंहजी का देहान्त हो गया । इसीसे वहाँ पर यमुना के किनारे इनका अंत्येष्टि संस्कार कर उक्त स्थान पर एक छतरी बनाई गई ।

राजा गजसिंहजी बड़े वीर और दानी थे । ख्यातों के अनुसार इन्होंने छोटे बड़े ५२ युद्धों में भाग लिया था, और इनमें के प्रत्येक युद्ध में यह सेना के अग्रभाग के सेनापति रहे थे । इनकी वीरता के कार्यों का उल्लेख पहले किया जा चुका है । बादशाही दरबार में इनका बड़ा मान था और स्वयं बादशाह ने इन्हें 'दलथंभन' की उपाधि से भूषित कर इनके घोड़ों को शाही दाम से मुक्त कर दिया था । महाराज के साथ हर समय सजे सजाए पाँच हजार सवार रहा करते थे और यह अपनी इस सेना की देखभाल स्वयं ही किया करते थे । ख्यातों से ज्ञात होता है कि इन्होंने १४ कवियों को जुदा-जुदा 'लाख पसाव' दिए थे । वास्तव में देखा जाय तो इनके

१. 'बादशाहनामा', भा० २, पृ० ८ ।

२. बादशाहनामा, भा० २, पृ० ११ ।

३. बादशाहनामा, भा० २, पृ० ६७ । मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि जिस समय महाराज आगरे में बीमार हुए, उस समय स्वयं बादशाह शाहजहाँ इन से मिलने के लिये आया । इसी अवसर पर महाराज ने, बातचीत के सिलसिले में, उससे अपने द्वितीय पुत्र जसवंतसिंहजी को जोधपुर का राज्य और बड़े पुत्र अमरसिंहजी को अलग मनसब देने की प्रतिज्ञा करवा ली । इसी प्रकार इन्होंने अपने सामंतों से भी अपने पीछे जसवंतसिंहजी को गद्दी पर बिठाने का वचन ले लिया था ।

वि० सं० १६८६ के दो लेख फलोदी से मिले हैं । इन में महाराज गजसिंहजी का और उनके बड़े पुत्र महाराज कुमार अमरसिंहजी का उल्लेख है । ('जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी' (१६१६) पृ० ६७-६८ । डाक्टर जेम्स बर्जेज ने अपनी बनाई 'क्रैनॉलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इंडिया' (पृ० ६१) में राजा गजसिंहजी का वि० सं० १६६४ में गुजरात में मारा जाना लिखा है । यह ठीक नहीं है ।

४. राजपूताने में चारणों, आदि को 'लाख पसाव' देने का यह नियम था कि जिसको यह पुरस्कार देना होता था उसको कुछ वस्त्र, आभूषण, हाथी अथवा घोड़ा और कम से कम एक हजार रुपये सालाना की ज़ागीर दी जाती थी ।

खजाने का रुपया वीरों और कवियों को पुरस्कार देने में ही खर्च होता था। महाराजा को हाथियों और घोड़ों का भी बड़ा शौक था। साथ ही यह समय-समय पर अपने मित्रों और अनुयायियों को भी अच्छे-अच्छे हाथी और घोड़े भेंट या पुरस्कार रूप में देते रहते थे।

राजा गजसिंहजी के बनवाए हुए स्थानः—जोधपुर के किले में—तोरनपौल, उसके आगे का सभामंडप, दीवानखाना, बीच की पौल, कोठार, रसोईघर, और आनन्दधनजी का मन्दिर; तलहटी के महलों में अनेक नए महल; सूरसागर में कुँआ, बगीचा और महल।

राजा गजसिंहजी के दो पुत्र थे। अमरसिंहजी और जसवंतसिंहजी।

राजा गजसिंहजी के दिए गांवों में से कुछ के नाम यहां दिए जाते हैंः—

१ सोभडावास २ पांचेटिया ३ राजगियावास खुर्द ४ रैंदडी (सोजत परगने के), ५ म्हाली-वाड़ा खुर्द (बीलाड़ा परगने का), ६ सूरपालिया (नागोर परगने का), ७ धरमसर (पचपदरा परगने का), ८ कोटडा (जालोर परगने का), ९ रूपावास (पाली परगने का), १० भाटेलाई का चारणों का वास (जोधपुर परगने का) चारणों को; ११ पलाया (जालोर परगने का) पुरोहितों को और १२ दागड़ा (मेड़ता परगने का), १३ रेवडिया (सोजत परगने का) भाटों को।

१. आज कल इन स्थानों का पूरी तौर से पता लगना कठिन है, क्योंकि इनमें के कुछ तो गिरा दिए गए हैं और कुछ के रूप बदल गए हैं।

२५. महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

यह राजा गजसिंहजी के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १६८३ की माघ वदि ४ (ता० २६ दिसम्बर, १६२६) को बुरहानपुर (दक्षिण) में हुआ था। राजा गजसिंहजी का विचार इन्हीं को अपना उत्तराधिकारी बनाने का था। इससे वि० सं० १६९५ की जेठ सुदि ३ (ई० सं० १६३८ की ६ मई) को, जिस समय आगरे में उनकी मृत्यु हुई, उस समय बादशाह शाहजहाँ ने इन (जसवंतसिंहजी) को खिलअत, जड़ाऊ जमधर (कटार), ४ हजारी जात और ४ हजार सवारों का मनसब, राजा का खिताब, निशान, नक्कारा, सुनहरी ज़ीन का घोड़ा और हाथी देकर राजा की पदवी से भूषित कर दिया।

इसके बाद वि० सं० १६९५ की आषाढ वदि ७ (ई० सं० १६३८ की २५ मई) को आगरे में ही इनका राजतिलक हुआ। प्रथम श्रावण सुदि १२ (१२ जुलाई) को बादशाह ने इन्हें फिर खिलअत देकर सम्मानित किया। उस समय महाराज की अवस्था करीब ११ वर्ष की थी। इसी से बादशाह ने मारवाड़ के राजकार्य की देख-भाल के लिये कूँगावत राजसिंह को इनका प्रधान नियत कर

१. इस पर महाराज ने भी १,००० मुहरों, १२ हाथी और कुछ जड़ाऊ शस्त्र बादशाह को भेंट किए।

बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ६७।

ख्यातों में लिखा है कि उस समय जसवंतसिंहजी विवाहार्थ बूँदो गए हुए थे। परन्तु पिता की मृत्यु का समाचार पाते ही यह आगरे जा पहुँचे। बादशाह की आज्ञा से पहले सुलतान मुराद ने इनके मकान पर आकर मातमपुरसी की और इसके बाद बादशाह शाहजहाँ ने स्वयं अपने हाथ से इनका राजतिलक किया।

२. इसके करीब २४ दिन बाद महाराज ने भी बादशाह को ६ हाथी भेंट में दिए।

बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १०२-१०३।

३. इसका जन्म वि० सं० १६४३ की वैशाख सुदि २ को हुआ था।



२५. महाराजा जसवन्तसिंहजी (प्रथम)
वि० सं० १६६५-१७३५ (ई० सं० १६३८-१६७८)

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

दिया और महाराज को अपने खास तबेले से सुनहरी जीन-सहित एक घोड़ा सवारी के लिये दिया ।

इसके बाद जिस समय बादशाह शाहजहाँ लाहौर की तरफ गया, उस समय महाराज भी उसके साथ रवाना हुए । परन्तु मार्ग में कुछ दिन के लिये यह दिल्ली में ठहर गए और जब बादशाह बाकरवाड़े (पालम परगने में) पहुँचा, तो जाकर उसके साथ हो गए । इस्लामपुर पहुँचने पर बादशाह ने इन्हें फिर खासा खिलअत और सुनहरी जीन का खासा घोड़ा देकर इनका मान बढ़ाया । इसके बाद सरदी का मौसम आ जाने के कारण उसने महाराज के पहनने के लिये एक पोस्तीन, जिसके ऊपर जरी और नीचे संभूर के बाल लगे थे, भेजा ।

माघ वदि ४ (ई० स० १६३६ की १३ जनवरी) को महाराज का मनसब पाँच-हजारी ज्ञात और पाँच हजारी सवारों का कर दिया गया । ख्यातों से ज्ञात होता है कि इसी के साथ इन्हें जैतारन का परगना भी जागीर में मिला था । इसके तीन मास बाद बादशाह ने इन्हें फिर एक खासा हाथी देकर इनका सत्कार किया ।

१. यह पहले राजा गजसिंहजी का भी प्रधान-मंत्री रह चुका था और उसके बाद शाहजहाँ ने इसको वि सं० १६६५ की भादों वदि २ (ई० स० १६३८ की १६ अगस्त) को एकहजारी ज्ञात और चार सौ सवारों का मनसब देकर शाही अमीरों में ले लिया था ।

बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १०५ ।

२. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ११० । इस घटना का समय भादों वदि ४ (१८ अगस्त) लिखा है ।
३. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ११३ । इस घटना का समय आश्विन वदि १२ (२४ सितम्बर) लिखा है ।
४. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ११४-११५ । यह घटना आश्विन सुदि ६ (६ अक्टोबर) को हुई थी ।
५. बादशाहनामा, जिल्द २ पृ० १२८ । यह घटना पौष वदि २ (१२ दिसम्बर) की है ।
६. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १३३ । उस समय अमीरों को अधिकतर ऊँचे-से-ऊँचा यही मनसब मिला करता था और इसके साथ की जागीर की आमदनी शायद पच्चीस लाख वार्षिक के करीब होती थी ?
७. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १४४ । यह घटना वि० सं० १६६६ की चैत्र सुदि ११ (ई० सन् १६३६ की ४ अप्रैल) की है ।

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १६१६ की वैशाख सुदि २ (ई० स० १६३६ की २५ अप्रैल) को जब बादशाह लाहौर से आगे बढ़ पेशावर से जमखंड की तरफ़ रवाना हुआ, तब मार्ग की तंगी के कारण अन्य कई शाही अमीरों के साथ ही महाराज भी पेशावर में ठहर गए। परन्तु चौथे रोज़ अली-मसजिद के मुकाम पर फिर बादशाह से जा मिले^१। आश्विन सुदि ६ (२५ सितम्बर) को भी बादशाह ने इन्हें खिलअत और सुनहरी जीन का एक घोड़ा दिया।

इसके बाद इसी साल की फागुन सुदि ६ (ई० स० १६४० की २१ फ़रवरी) को जिस समय महाराजा अपने देश की तरफ़ रवाना हुए, उस समय भी बादशाह ने इन्हें खिलअत और सुनहरी जीन का खासा घोड़ा देकर विदा किया। इस पर यह हरद्वार होते हुए वि० सं० १६१७ की ज्येष्ठ सुदि (ई० स० १६४० की मई) में जोधपुर पहुँचे। चिरप्रचलित प्रथा के अनुसार यहाँ पर क़िले में फिर से महाराज के राजतिलक का उत्सव मनाया गया और इस शुभ अवसर पर मारवाड़ के सब उपस्थित सरदारों ने नज़र और निछावर के द्वारा अपने स्वामी का अभिनन्दन कर इनकी अधीनता स्वीकार की। इसके बाद स्वयं महाराजा अपने विश्वास-पात्र सरदारों की सलाह से राज्य का प्रबन्ध देखने लगे। बहुधा यह वेश बदलकर रात्रि में, गुप्त रीति से, नगर-निवासियों के हाल-चाल का निरीक्षण करने को भी निकला करते थे।

वि० सं० १६१७ की पौष वदि ५ (ई० स० १६४० की २३ नवम्बर) को इनका प्रधानामात्य कृपावत राजसिंह मर गये। इस पर उसका काम चांपावत

१. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १४६। उस दिन तिथि 'सत्ख, ज़िलहिज हि० सन् १०४८' लिखी है। सत्ख से चंद्रदर्शन की तिथि का तात्पर्य होने से ही ऊपर द्वितीया ली गई है।

२. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १६२।

३. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० १८१। इसी समय बादशाह ने इनके प्रधान मंत्री कृपावत राजसिंह को भी एक खिलअत और जड़ाऊ जमधर देकर इनके साथ विदा किया। ख्यातों में इनका चैत्र वदि ५ को दिल्ली से रवाना होना लिखा है।

४. इनके समय का वि० सं० १६१६ की आषाढ़ सुदि २ (ई० सन् १६३६ की २२ जून) का एक लेख फलोदी से मिला है।

जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, (१६१६) पृ० ६६।

५. ख्यातों में लिखा है कि जिस समय महाराज अर्धरात्रि के करीब नगर में गश्त लगाते हुए तापी बावली के पास पहुँचे, उस समय इन्हें सामने से एक परिचित राज्यकर्मचारी

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

महेशदास को सौंपा गया। अनन्तर वि० सं० १६६८ की वैशाख वदि ३ (ई० सं० १६४१ की १६ मार्च) को महाराज लौटकर आगरे चले गए। शाहजहाँ ने भी वहाँ पर खिलअत और जड़ाऊ धोप देकर इनका सत्कार किया।

वैशाख शुक्ल १२ (१२ अप्रैल) को महाराज के मनसब के सवारों में के एक हजार सवार दुअस्पा और सेअस्पा कर दिए गए। प्रथम ज्येष्ठ (मई) के महीने

आता दिखाई दिया। यह देख यह अपने को छिपाने के लिये उक्त बावली के अंदर चले गए। परन्तु वहाँ पर महाराज के शरीर में ब्रह्मराक्षस का आवेश हो गया और यह मूर्छित होकर गिर पड़े। इस पर साथ के लोग इन्हें उसी अवस्था में किले पर ले आए। वहाँ पर मंत्र-शास्त्रियों के उपचार से उस ब्रह्मराक्षस ने कहा कि यदि महाराज के समान अधिकारवाला ही कोई व्यक्ति महाराज के बदले जीवोत्सर्ग करने को तैयार हो, तो मैं इनके प्राण छोड़ सकता हूँ। इस पर इनके प्रधानामात्य राजसिंह ने इन पर से वारा हुआ जल पीकर अपना जीवोत्सर्ग कर दिया। इससे महाराज तत्काल स्वस्थ हो गए। वहीं पर यह भी लिखा है कि मरते समय राजसिंह ने अपने वंशजों को उपदेश दिया था कि यदि तुममें भी इसी प्रकार के स्वार्थ-त्याग की सामर्थ्य हो तो राज्य का मंत्रित्व स्वीकार करना, अन्यथा नहीं। इसीसे उसके वंशज अब तक इस पद को स्वीकार नहीं करते हैं।

इस घटना की वास्तविकता के विषय में पूरी तौर से कुछ नहीं कहा जा सकता।

१. 'बादशाहनामे' (की जिल्द २, पृ० १५१) में लिखा है कि संवत् १६६६ के आषाढ़ (ई० सं० १६३६ के जून) में काबुल के मुकाम पर बादशाह ने इसे, महाराज के प्रधान पुरुषों में होने के कारण, एक घोड़ा इनायत किया था। उसी में यह भी लिखा है कि बादशाह ने पहले पहल वि० सं० १६६५ की कार्तिक सुदि (ई० सं० १६३८ की नवम्बर) में महेशदास को, जो पहले गजसिंहजी और जसवंतसिंहजी की सेवा में रह चुका था, ८०० ज्ञात और ३०० सवारों का मनसब देकर शाही मनसबदार बनाया था।

बादशाहनामा, भा० २, पृ० १२२।

२. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २२७।

३. किरच या सीधी तलवार।

४. इस घटना की तिथि वैशाख वदि १४ (३० मार्च) लिखी है। इस के चौथे दिन बादशाह ने भी अपनी तरफ से राठोड़ महेशदास को घोड़ा और खिलअत देकर राजा जसवंतसिंहजी का प्रधान मंत्री नियत किया था।

बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २२६।

५. दो घोड़ों की तनख्वाह पानेवाला सवार दुअस्पा कहलाता था।
६. तीन घोड़ों की तनख्वाह पानेवाला सवार सेअस्पा कहलाता था।
७. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २३०।

मारवाड़ का इतिहास

में बादशाह ने इनके लिये एक खासा हाथी और आषाढ़ (जुलाई) में सुनहरी ज़ीन का एक खासा घोड़ा भेजा । इसी बीच बादशाह ने बसरे से अरबी घोड़े मँगवाए थे । वे बड़े ही खूबसूरत और कीमती थे । उनके आने पर आश्विन (अक्टोबर) में उनमें का एक घोड़ा मय सुनहरी ज़ीन के महाराज की सवारी के लिये भेजा गया । उस समय महाराज शाहजहाँ के साथ लाहौर में थे । इसलिये इन्होंने भी वहाँ पर ३ हाथी और २२ घोड़े अपने सरदारों को इनाम में और चारणों को दान में देकर अपनी महत्ता प्रकट की ।

इन्हीं दिनों (वि० सं० १६६६ में) ईरान के बादशाह शाह सफ़ी ने, कंधार पर चढ़ाई करने का विचार कर, अपने सेनापतियों को नेसापुर में पहुँचने की आज्ञा दी । इस समाचार के ज्ञात होते ही शाहजहाँ ने राजा जसवंतसिंहजी आदि नरेशों को मय शाही सेना के शाहजादे दाराशिकोह के साथ कंधार की रक्षा के लिये रवाना किया । इस अवसर पर भी उसने इन्हें प्रसन्न रखने के लिये खासा खिलअत, जड़ाऊ जमधर, फ़ूलकटार, सुनहरी साजवाला खासा घोड़ा और खासा हाथी उपहार में दिये । परन्तु ईरान का बादशाह कंधार पहुँचने के पूर्व मार्ग (काशान) में ही मर गया । इससे वह झगड़ा अपने आप शांत हो गया और यह गज़नी से ही वापस लौट आए । इसके बाद वि० सं० १७०० की आषाढ़ सुदि १४ (ई० सं० १६४३ की २० जून) को महाराज मारवाड़ की तरफ़ रवाना हुए । बादशाह ने भी खासा खिलअत देकर इन्हें बिदा किया । बादशाही मनसबदार होने के कारण उन दिनों महेशदास को अधिकतर शाही दरबार में ही रहना पड़ता था । इसीसे महाराज ने जोधपुर पहुँच प्रधान-मंत्री का पद मेड़तिया गोपालदास को सौंप दिया और मुहणोत नैणसी को सेना देकर पहाड़ी प्रदेश के मेरों के उपद्रव को शांत करने की आज्ञा दी । उसने वहाँ

१. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २३२ और २३५ ।

२. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २४६ ।

३. यह प्रांत बादशाह जहाँगीर के समय ईरान-नरेश के अधिकार में चला गया था; परन्तु शाहजहाँ के समय इस पर फिर से मुग़लों का अधिकार हो गया ।

ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ४०१ ।

४. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० २६३-२६४ ।

५. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ३३५-३३६ ।

६. यह रीयों का ठाकुर था ।

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

जाकर उनके १५ गांव जला दिए और बागियों के मुखियाओं को मारकर मेरों के उपद्रव को शांत कर दिया ।

इसी साल राढ़धड़े के महेचा राठोड़ महेशदास ने बगावत का झंडा उठाया । इस पर मुहणोत जयमल राजकीय सेना को लेकर वहाँ जा पहुँचा और महेशदास को भगाकर राढ़धड़े को लूट लिया । इससे कुछ दिन बाद ही महाराज ने उक्त प्रदेश (महेवे के रावल तेजसी के पुत्र) जगमाल को जागीर में दे दिया । इसके बाद जब बादशाह शाहजहाँ ज़ियारत के लिये अजमेर आया, तब यह भी मँगसिर सुदि ६ (१० दिसंबर) को वहाँ पहुँच उससे मिले और सात दिन के बाद जिस समय वह अकबराबाद (आगरे) की तरफ़ रवाना हुआ, उस समय लौटकर जोधपुर चले आए । बिदाई के समय बादशाह ने खिलअत देकर इनका सम्मान किया । इसके बाद कई दिनों तक तो महाराज अपनी राजधानी में रहकर राज्य-कार्य की देखभाल करते रहे, परन्तु फिर बादशाह के बुलाने पर रूपावास के डेरे पर पहुँच उससे मिले^१ ।

वि० सं० १७०१ की माघ सुदि २ (ई० सं० १६४५ की १६ जनवरी) को जब बादशाह लाहौर की तरफ़ रवाना हुआ, तब उसने इन्हें खिलअत देकर इनका सम्मान किया और साथ ही अकबराबाद के सूबेदार शेख फ़रीद के आने तक आगरे की देखभाल करते रहने और बाद में अपने पास चले आने का आग्रह किया । इसके अनुसार यह उसके साथ न जाकर वहीं ठहर गए । इसके बाद जब बादशाह लाहौर से काश्मीर को रवाना हुआ, तब उसने इन्हें अपने काश्मीर से लौट आने तक अवश्य ही लाहौर पहुँच जाने का लिखा ।

१. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ३४६ ।

२. परन्तु वि० सं० १७०१ की पौष सुदि २ (ई० सं० १६४४ की २१ दिसम्बर) के महाराज के लाहौर से लिखे फ़रासत के नाम के पत्र से उस समय महाराज का लाहौर में होना प्रकट होता है । यह विचारणीय है ।

३. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ४०७ ।

४. ख्यातों में लिखा है कि इन्हीं दिनों फिर मेरों के मुखिया (रावल) ने सोजत में उपद्रव शुरू किया । इस पर महाराज के दीवान मुहणोत नैणसी ने चढ़ाई कर उसे मार भगाया । इस मुहणोत नैणसी ने दो इतिहास तैयार किए थे । पहला आजकल 'मुहणोत नैणसी की ख्यात' के नाम से प्रसिद्ध है । उसमें इसने इधर-उधर से एकत्रित कर राठोड़, सोसोदिया, चौहान आदि अनेक राजपूत-वंशों का इतिहास लिखा है और दूसरे में मारवाड़ के गाँवों की उस समय की जमाबंदी, आबादी, लगान आदि का हाल दिया है ।

५. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ४२५ । यह आज्ञा आषाढ़ सुदि ८ (२१ जून) को दी गई थी ।

मारवाड़ का इतिहास

इसी के अनुसार जिस समय वि० सं० १७०२ की मँगसिर वदि १ (ई० सं० १६४५ की २५ अक्टोबर) को बादशाह लौटकर लाहौर आया, उससे करीब २ या १½ मास पूर्व यह भी वहाँ जा पहुँचे ।

वि० सं० १७०३ की वैशाख सुदि ५ (ई० सं० १६४६ की १० अप्रैल) को जब बादशाह का डेरा चनाव के पास हुआ, तब उसने महाराज को जड़ाऊ जमघर, फूलकटार और सुनहरी जीन-सहित अरबी घोड़ा देकर इनका सत्कार किया । तथा ज्येष्ठ सुदि १० (१४ मई) को महाराज के मनसब के दो हजार सवार दुअस्पा सेअस्पा कर दिए । इसके दूसरे ही दिन बादशाह के इच्छानुसार महाराज पेशावर से खाना होकर शाही लश्कर से एक पड़ाव आगे हो लिए । इस प्रकार जब बादशाह सकुशल काबुल पहुँच गया, तब उसने भादों वदि २ (१८ अगस्त) को इन्हें सुनहरी जीन का (खासा तबेले का) एक घोड़ा सवारी के लिये दिया और माघ वदि ११ (ई० सं० १६४७ की २१ जनवरी) को इनके मनसब के ढाई हजार सवार दुअस्पा

१. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ४७१ ।

वि० सं० १७०१ (ई० सं० १६४४) में महाराज ने ख्वाजा फरासत को, जिसे राजा गजसिंहजी ने राजा बहादुर से खरीदा था, जोधपुर के प्रबंध की देख भाल के लिये भेजा । परन्तु उसके इस कार्य में सफल न हो सकने के कारण वि० सं० १७०४ (ई० सं० १६४७) में राज्य का प्रबंध उससे ले लिया गया । मृत्यु के उपरांत जहाँ पर वह गाड़ा गया था, वह स्थान, जोधपुर नगर के चौदपोल दरवाजे के बाहर, 'मियाँ के बाग' के नाम से प्रसिद्ध है । वीरविनोद में लिखा है कि वि० सं० १७०२ (हि० सं० १०५५=ई० सं० १६४५) में महाराज के मनसब में १,००० सवार बढ़ाए गए थे । संभवतः इससे इनके मनसब के १,००० सवारों का दुअस्पा-सेअस्पा किए जाने का तात्पर्य ही होगा ।

२. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ५०१ ।

३. वीरविनोद में वि० सं० १७०४ (ई० सं० १६४७=हि० सं० १०५७) में महाराज के मनसब का ७,००० सवारों का होना लिखा है । परन्तु मूल में उद्धृत किया हुआ वृत्तान्त बादशाहनामे (की जिल्द २, पृ० ५०५) से लिया गया है ।

४. इस अवसर पर आबेर के महाराज-कुमार रामसिंहजी भी इनके साथ भेजे गए थे ।

बादशाहनामा, भाग २, पृ० ५०६ ।

५. आषाढ़ वदि ६ (२८ मई) को महाराज, जो पहले ही काबुल पहुँच गए थे, वहाँ पर बादशाह से मिले । बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ५०६ और ५०८ ।

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

सेअस्पा कर दिए। इसके बाद वि० सं० १७०४ (ई० सं० १६४७) में इनके मनसब के ३,००० सवार दुअस्पा सेअस्पा हो गए। ख्यातों से ज्ञात होता है कि इसके साथ ही इन्हें खर्च के लिये हिंदौन का परगना जागीर में मिली।

वि० सं० १७०५ (ई० सं० १६४८) में महाराज का मनसब ५,००० जात और ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा का कर दिया गया।

इसके बाद जब अगले वर्ष कजलबाशों (ईरानियों) के आक्रमण की सूचना पाकर बादशाह ने शाहजादे औरंगजेब को कंधार की तरफ रवाना किया, तब महाराज भी उसकी सहायता के लिये साथ भेजे गए। परन्तु मार्ग में काबुल पहुँचने पर औरंगजेब को बादशाह की आज्ञा से वहीं रुक जाना पड़ा। इससे यह भी वहीं ठहर गए। इसके बाद कुछ ही दिनों में जब बादशाह स्वयं वहाँ पहुँचा, तब इन्होंने दो हजार सवारों के साथ आगे जाकर उसकी अभ्यर्थना की।

इसी वर्ष (वि० सं० १७०६) के कार्तिक में जिस समय जयसलमेर रावल मनोहरदासजी का स्वर्गवास हो गया, उस समय उनका पुत्र रामचन्द्र वहाँ की गद्दी पर बैठा। परन्तु वहाँ के सरदार उससे नाराज थे। इस पर स्वर्गवासी रावल मालदेव के पुत्र सबलसिंह ने जो पहले से ही शाहजहाँ के पास रहता था, उससे सहायता माँगी। बादशाह ने महाराज से उसकी सहायता करने का आग्रह किया। साथ ही सबलसिंह

१. बादशाहनामा, जिल्द २, पृ० ६२७।

वि० सं० १७०३ की चैत्र वदि ७ (ई० सन् १६४७ की १७ मार्च) के महाराज के लाहौर से लिखे फरासत के नामके पत्र से उस समय भी इनका लाहौर में होना प्रकट होता है।

२. यह शाहजहाँ के २१वें राज्य वर्ष की घटना है; जो वि० सं० १७०४ की आषाढ़ सुदि २ (ई० सन् १६४७ की २४ जून) से प्रारंभ हुआ था।

मअसिखलउमरा, भा० ३, पृ० ५६६।

३. ख्यातों से यह भी ज्ञात होता है कि यह परगना ६ वर्ष तक महाराज के अधिकार में रहा था।

४. 'मअसिखल उमरा', भा० ३, पृ० ५६६-६००। यह घटना शाहजहाँ के २१वें राज्यवर्ष के अंतिम समय की है।

५. यह घटना शाहजहाँ के २२वें राज्यवर्ष की है, जो वि० सं० १७०५ की आषाढ़ सुदि ३ (ई० सन् १६४८ की १३ जून) को प्रारंभ हुआ था।

मअसिखलउमरा, भा० ३, पृ० ६००।

मारवाड़ का इतिहास

ने भी इन्हें फलोदी का प्रांत (मथ पौकरन के क़िले के) लौटा देने का वादा कर लिया । इसलिये महाराज ने जोधपुर पहुँचें (रीयों के) मेड़तिया गोपालदास, (पाली के) चांपावत विठ्ठलदास और (राजसिंह के पुत्र आसोप के) नाहरख़ाँ को सेना देकर सबलसिंह के साथ कर दिया । इन लोगों ने शीघ्र ही फलोदी विजय कर वि० सं० १७०७ की कार्तिक वदि ६ (ई० स० १६५० की ५ अक्टोबर) को पौकरण के क़िले पर अधिकार कर लिया । इसके बाद यह आगे बढ़ जयसलमेर पर जा पहुँचे । यह देख रामचन्द्र भाग गया और जयसलमेर पर सबलसिंह का अधिकार हो गया ।

वि० सं० १७१० (ई० स० १६५३) में महाराज का मनसब ६,००० जात और ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा का कर दिया गया ।

इसके बाद यह शाहजादे दाराशिकोह के साथ कंधार विजय के लिये रवाना हुए । परंतु इस यात्रा में शाही सेना को सफलता नहीं मिली ।

वि० सं० १७१२ (ई० स० १६५५) में इनका मनसब ६,००० जात और ६,००० सवार (इनमें ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा थे) का हो गया और साथ

१. राव चन्द्रसेनजी ने यह प्रांत १,००,००० फदियों (करीब १२,५०० रुपयों) के बदले में जयसलमेर रावलजी को सौंप दिया था ।
२. ख्यातों के अनुसार यह वि० सं० १७०७ की आषाढ़ वदि ३ (ई० सन् १६५० की ६ जून) को जोधपुर पहुँचे थे ।
३. यह शाहजहाँ के २६वें राज्यवर्ष की घटना है; जो वि० सं० १७०६ का द्वितीय वैशाख सुदि ३ (ई० सन् १६५२ की ३० अप्रैल) को प्रारंभ हुआ था ।

मअसिरुलउमरा, भा० ३, पृ० ६०० ।

ख्यातों से ज्ञात होता है कि इसके साथ ही इन्हें (अजमेर सूबेका) मलारना प्रांत जागीर में मिला था ।

४. वि० सं० १७०५ (ई० सन् १६४६ की फरवरी) में कंधार पर ईरानियों ने अधिकार कर लिया था ।

ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ४०२ ।

५. ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ४०३ । इसके पहले दो बार औरंगजेब भी कंधार-विजय में असफल हो चुका था ।

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

ही इन्हें 'महाराजा' का खिताब भी दिया गया। इसके बाद यह सीसोदिया सर्वदेव की कन्या से विवाह करने को मथुरा पहुँचे और वहाँ से जोधपुर चले आएँ।

इसी साल जब राठोड़ महेशदास के पुत्र रत्नसिंहजी जालोर छोड़कर मालवे की तरफ चले गए और वहाँ पर उन्हें दूसरी जागीर मिल गई, तब बादशाह ने उक्त प्रांत भी महाराज को सौंप दिया। इससे वि० सं० १७१३ में वहाँ पर महाराज का अधिकार हो गया।

इन्हीं दिनों मारवाड़ में सींधलों ने उपद्रव मचाना शुरू किया। जैसे ही इसकी सूचना महाराज को मिली, वैसे ही इन्होंने उन्हें दबाने के लिये एक सेना रवाना की। उसने सींधलों को परास्त कर उनके मुख्य स्थान पांचोटा और कवलां नामक गांवों को लूट लिया।

१. 'मन्नासिखलउमरा', भा० ३, पृ० ६००।

ख्यातों में इस मनसब-वृद्धि का समय वि० सं० १७१० की माघ वदि ३ लिखा है। परन्तु 'मन्नासिखलउमरा' में इसका समय शाहजहाँ का २६ वाँ राज्यवर्ष दिया है; जो हि० सन् १०६५ की जमादुल आखिर की १ तारीख से प्रारंभ हुआ था। उक्त तारीख वि० सं० १७१२ की चैत्र शुक्ला ३ (ई० सन् १६५५ की ३० मार्च) को आती है।

ख्यातों में यह भी लिखा है कि बादशाह ने वि० सं० १७११ में मेवाड़ के महाराणा राजसिंहजी से ४ परगने जून्त कर लिए थे। उनमें से बदनोर का परगना कार्तिक सुदि ५ को महाराज को दे दिया गया और कुछ काल बाद भेरूँद का परगना भी महाराज की जागीर में मिला दिया।

२. 'मन्नासिखलउमरा', भा० ३, पृ० ६००। ख्यातों में इसका नाम वीरमदेव लिखा है। यह सीसोदिया सूरजमल का पुत्र था।

३. ख्यातों में यह भी लिखा है कि इसी साल महाराज ने पंचोली मनोहरदास को अपनी रोहतक के ज़िले की जागीर का प्रबंध करने के लिये भेजा था। यह जागीर भी इन्हें बादशाह ने मनसब की वृद्धि के साथ ही दी थी।

४. ख्यातों से ज्ञात होता है कि बादशाह ने यह (जालोर का) परगना इन्हें मलारना प्रांत की एवज़ में दिया था। रत्नसिंहजी के मनसब के लिये देखो 'मन्नासिखलउमरा', भा ३ पृ० ४४६-४४७। परन्तु वहाँ पर मालवे की जागीर का उल्लेख नहीं है।

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १७१४ (ई० सं० १६५८) में बादशाह शाहजहाँ बीमार हो गया और साथ ही लोगों में उसके मरने की अफवाह फैल गई। इस पर उसका बड़ा पुत्र दाराशिकोह उसे दिल्ली से यमुना के मार्ग द्वारा आगरे ले आया। इसकी सूचना पाते ही शाहजहाँ के द्वितीय पुत्र शाहजादे शुजा ने अपने को सूबे बंगाल में बादशाह घोषित कर दिया और इसके बाद वह सेना सज कर पटने के मार्ग से आगरे की तरफ चला। तीसरा पुत्र औरंगजेब राज्य पर अधिकार करने की इच्छा से दल-बल-सहित दक्षिण से खाना हुआ और चौथा पुत्र मुराद अहमदाबाद (गुजरात में) तख्त पर बैठ गया। यह देख दाराशिकोह ने बादशाह से कहकर महाराज का मनसब ७,००० ज़ात और ७,००० सवार (जिसमें ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा थे) का करवा दिया और इसी के साथ इन्हें १०० घोड़े, जिनमें एक सुनहरी जीन का महाराज की सवारी के लिये था, चाँदी की अम्बारीवाला एक हाथी, एक हथिनी, एक लाख रुपए नक़द तथा मालवे की सूबेदारी दिलवाई। इसके बाद यह दारा के आग्रह से औरंगजेब को रोकने के लिये उज्जैन की तरफ भेजे गए और इनकी मदद के लिये शाही लश्कर के साथ कासिमख़ाँ नियत किया गया। साथ ही उस (कासिमख़ाँ) को यह भी कह दिया गया था कि यदि आवश्यकता समझे, तो गुजरात पहुँच मुराद को वहाँ से निकाल दे^३। जब महाराज के उज्जैन पहुँचने का समाचार औरंगजेब को मिला, तब उसने अपनी सेना में और भी वृद्धि कर उसे दृढ़ करने का प्रयत्न किया। इसी बीच

१. 'मअ़ासिख़लउमरा' में इस घटना का शाहजहाँ के ३२वें राज्यवर्ष में होना लिखा है (देखो भा० ३, पृ० ६००)। परन्तु 'औरियंटल बायोग्राफ़ीकल डिक्शनरी' में शाहजहाँ का ३० वर्ष राज्य करना ही लिखा है (देखो पृ० ३६३)। यह ३० वर्ष वाली गणना अँगरेज़ी वर्ष के हिसाब से की गई प्रतीत होती है।

विन्सैंटस्मिथ की ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ४०६।

'आलमगीरनामा' (पृ० २७) और मारवाड़ की ख्यातों में इस घटना का समय क्रमशः हि० सन् १०६७ की ७ जिलहिज और वि० सं० १७१४ (ई० सन् १६५७) दिया है। ये सब आपस में मिलते हैं।

२. 'मअ़ासिख़लउमरा', भा० ३, पृ० ६००-६०१।-आलमगीरनामे में दाराशिकोह का मालवा अपनी जागीर में लेकर, महाराज जसवंतसिंहजी को उधर भेजना लिखा है (देखो पृ० ३२)।

३. 'आलमगीरनामा', पृ० ३२-३३।

४. ख्यातों में वि० सं० १७१४ की माघ वदि ४ को इनका उज्जैन में पहुँचना लिखा है।

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

बहुत से शाही अमीर देपालपुर में पहुँच, बादशाह के विरुद्ध, औरंगजेब से मिल गए । इस पर उसने उन्हें मनसब और खिलअत आदि देकर अपना मार्ग सुगम कर लिया । साथ ही उसने अपने छोटे भाई मुराद को भी बादशाहत का लालच देकर अपनी सहायता के लिये बुलवाया । इसकी सूचना पाते ही महाराज मुराद को रोकने के लिये उज्जैन से रवाना हुए । खाचरोद से ३ कोस के फासले पर पहुँच जाने पर इनकी और मुराद की सेनाओं के बीच १८ कोस का फासला रह गया । परन्तु उसने अकेले ही महाराज की सेना से मुकाबला करना हानिकारक जान तत्काल अपना मार्ग पलट दिया और यथासंभव दूसरे रास्ते से चलकर औरंगजेब से जा मिलने की कोशिश करने लगा । इसी बीच महाराज ने शाही जासूसों के द्वारा दोनों शाहजादों की गति-विधि जानने का बहुत कुछ प्रयत्न किया; परन्तु औरंगजेब ने नर्मदा के घाटों का पूरी सतर्कता से प्रबन्ध कर रखा था । इसलिये शाही जासूसों की अकर्मण्यता या विश्वासघात के कारण महाराज को उसकी सेना का यथार्थ समाचार न मिल सका । इसी बीच देपालपुर के पास मुराद भी उससे जा मिला । इसके बाद महाराज को मांडू के किलेदार राजा सेवाराम के पत्र से ज्ञात हुआ कि औरंगजेब मालवे की तरफ आ रहा है और मुरादबख्श उससे जा मिला है । इस पर यह तत्काल खाचरोद से उसके मुकाबले को चले । इनके उज्जैन पहुँचने तक दोनों शाहजादे भी वहाँ से सात कोस के फासले पर धर्मतपुर के पास पहुँच चुके थे । यह देख महाराज ने उससे एक कोस के फासले पर अपने डेरे लगा दिए । इसी बीच चालाक शाहजादे औरंगजेब ने दूत द्वारा महाराज से कहलाया कि हम तो अपने पिता की बीमारी का हाल सुनकर उससे मिलने जाते हैं; ऐसी हालत में आप हमारा मार्ग क्यों रोकते हैं ? परन्तु महाराज ने, जो उसके रंग-ढंग से परिचित थे, उत्तर में लिख भेजा कि यदि आप पिता के कुशल-समाचार पूछने को ही जाना चाहते हैं; तो इतनी बड़ी सेना को साथ ले जाने की क्या आवश्यकता

१. 'आलमगीरनामा', पृ० ५५ ।

२. 'आलमगीरनामा', पृ० ५६-५७ ।-बी० ए० स्मिथ ने लिखा है कि औरंगजेब ने नर्मदा पर की नावों पर अधिकार कर इधर की खबर उधर जाने का मार्ग ही रोक दिया था । इसके बाद ई० सन् १६५८ की ३ अप्रैल (वि० सं० १७१५ की चैत्र सुदि १०) को उसने नर्मदा को पार किया और उज्जैन के पास पहुँचने पर उसकी और मुराद की सेनाएँ आपस में मिल गई ।

ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ४०६-४१० ।

३. 'आलमगीरनामा', पृ० ५८ ।

मारवाड़ का इतिहास

है। हाँ यदि आप वास्तव में ही पिता से मिलना चाहते हैं, तो इस विशाल-वाहिनी को यहीं छोड़ थोड़े से खास पुरुषों के साथ आगे जा सकते हैं। जब औरङ्गजेब ने महाराज पर अपना रंग जमता न देखा, तब उसने गुप्त रूप से शाही सेना के नायक कासिमख़ाँ को अपनी तरफ़ मिला लिया। इसके बाद वि० सं० १७१५ की वैशाख वदि ८ (ई० सं० १६५८ की १५ अप्रैल) को महाराज और शाहजादों की सेनाओं के बीच युद्ध ठन गया। जैसे ही दोनों सेनाओं का सामना हुआ, वैसे ही महाराज की सेना के हाडा मुकनसिंहजी (कोटा नरेश), राठोड़ रत्नसिंहजी (रतलाम नरेश), झाला दयालदास, गौड़ अर्जुन (अजमेर-प्रान्त के राजगढ़ का राजा) आदि वीरों ने आगे बढ़ औरङ्गजेब के तोपखाने पर आक्रमण कर दिया और उसको विध्वस्त कर ये लोग उसकी हरावल (आगे की) फौज पर टूट पड़े। महाराज जसवन्तसिंहजी भी, जो स्वयं सेना के मध्यभाग का संचालन कर रहे थे, आगे बढ़ गए और शाहजादों की सेना की कतारों को नष्ट-भ्रष्ट करते हुए औरङ्गजेब से सम्मुख रण में लोहा लेने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु इसी अवसर पर शाही सेना के नायक कासिमख़ाँ के विश्वास-घात से शाही तोपखाने का बारूद समाप्त हो गया और उसके रिश्तेदारों ने, जो उक्त तोपखाने के संचालक थे, एकाएक अपनी तोपों का मुख बन्द कर दिया। स्वयं कासिमख़ाँ भी ऐन मौके पर शाही सेना के साथ रणांगण से भाग खड़ा हुआ। इससे महाराजा चारों ओर शत्रुओं से घिर गये। ऐसे समय राठोड़ रत्नसिंहजी आदि ने महाराज के पास पहुँच प्रार्थना की कि अब आपका यहाँ ठहरना उचित नहीं है; क्योंकि विश्वास-घाती सेना-नायक कासिमख़ाँ ने सारा मामला चौपट कर दिया है। साथ ही बचे हुए मुट्ठीभर राजपूत योद्धा भी अधिक समय तक रणस्थल को सँभाले रखने में असमर्थ हैं। यद्यपि इस पर भी महाराज की इच्छा रणस्थल से हटने की न थी, तथापि रत्नसिंहजी

१. ख्यातों में लिखा है कि महाराज के साथ के २२ शाही अमीरों में से १५ मुसलमान अमीर औरङ्गजेब से मिल गए थे; केवल ७ हिन्दू-नरेश और सरदार महाराज के साथ रह गए थे।

२. विन्सेटस्मिथ ने इस युद्ध का धर्मत में होना लिखा है। यह स्थान उज्जैन से १४ मील (दक्षिण की तरफ़ झुकता हुआ) नैर्ऋत कोण में था (ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ४१०)। परन्तु ख्यातों से इसका चोरनराणा गाँव के पास होना पाया जाता है। साथ ही आलमगीरनामा से दोनों स्थानों का एक दूसरे के निकट होना सिद्ध होता है (पृ० ५६)। कहीं-कहीं युद्ध की तिथि ८ के बदले ६ भी लिखी है।

३. 'आलमगीरनामा', पृ० ६६-६७।

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

ने सेना-संचालन का भार स्वयं लेकर अपने वंश के नायक महाराज को वहाँ से टल जाने पर बाध्य किया। अंत में हाडा मुकनसिंह, सीसोदिया सुजानसिंह, राठोड़ रत्नसिंह, गौड़ अर्जुन, झाला दयालदास और मोहनसिंह आदि वीरों के मारे जाने से खेत और झुंजेब के हाथ रहा। राजा रायसिंह सीसोदिया, राजा सुजानसिंह बुंदेला और अमरसिंह चंद्रावत आदि कुछ सरदार और झुंजेब के हमले से घबराकर अपनी-अपनी फौजों के साथ अपने-अपने देशों की तरफ भाग निकले। रणस्थल का यह रंग देख महाराज को भी लाचार हो मारवाड़ की तरफ खाना होना पड़ा। यद्यपि महाराज को

१. इस बात की पुष्टि ईशरीदास की लिखी 'फतूहाते आलमगीरी' से भी होती है। उसमें लिखा है:-

“जसवंतसिंह सम्मुख युद्ध में लड़कर प्राण देना चाहते थे। परन्तु महेशदास, आसकराण आदि उनके प्रधान उनके घोड़े की लगाम पकड़ कर उन्हें बलपूर्वक वहाँ से ले आए (देखो पृ० २१)।

मीर मुहम्मद मासूम की लिखी 'तारीखे शाहशुजाई' में 'महाराज का आहत होकर रणस्थल में गिरना और उनके योद्धाओं का उन्हें जबरदस्ती रणस्थल से हटा ले जाना' लिखा है (देखो पृ० ५०)।

आकिलख़ाँ अपनी 'वाक्याते आलमगीरी' में लिखता है कि-राजा जसवंतसिंह के दो जख्म लगने पर भी वह बहादुरी के साथ रणस्थल में खड़ा रहकर जहाँ तक हो सका, अपने वीरों को उत्साहित करता रहा (देखो पृ० ३१)।

मनूची ने लिखा है-राजा जसवंत तब तक बराबर वीरता से लड़ता रहा, जब तक उसके अधिकांश योद्धा वीरगति को न प्राप्त हो गए और पीछे बहुत ही थोड़े बच रहे (देखो भा० १, पृ० २५६)।

इन अवतरणों से खाफ़ीख़ाँ (मोहम्मद हाशम) के महाराज पर युद्धस्थल से भाग जाने के दोषारोप का स्वयं ही खंडन हो जाता है (मुंतख़िबुललुबाब, भा० २, पृ० ४३)। इसी प्रकार आगे दिए बर्नियर के अवतरण से भी खाफ़ीख़ाँ के इस लेख का खंडन होता है।

२. 'आलमगीरनामा', पृ० ७०-७१।

३. युद्ध का यह इतिहास आलमगीरनामा, सहस्त्र मुताख़रीन, मन्नासरे आलमगीरी, मारवाड़ की ख्यात और बर्नियर के सफ़रनामे से लिया गया है। बर्नियर लिखता है कि यद्यपि वह स्वयं इस युद्ध में शरीक नहीं हुआ था, तथापि उसने जो कुछ हाल लिखा है, वह औरंगज़ेब की तरफ़ के तोपखाने में काम करने वाले फ़्रांसीसियों से सुनकर ही लिखा है। वह लिखता है:-

“परन्तु शाहजहाँ ने राजा जयसिंह और दिलेरख़ाँ को शुजा के विरुद्ध भेजते हुए जैसी शिन्हा (“जहाँ तक बने लड़ाई न की जाय और शुजा को उसके प्रांत को लौट जाने के लिये बाध्य करने में कोई बात न उठा रखी जाय-” पृ० ३७) दी थी, वैसी ही सावधानी से काम करने का इनको भी कहा।

मारवाड़ का इतिहास

अपने थोड़े से वीरों के साथ जाते हुए देख शाहजादों के सैनिकों ने उनका पीछा करने का विचार किया, तथापि औरंगजेब ने, जो राठोड़ों की तलवारों का पानी देख चुका

“औरंगजेब को भय था कि कहीं बादशाही सेना नदी के पार उतर कर उसके थके-मोड़े सैनिकों पर आक्रमण न कर दे। औरंगजेब का ऐसा सोचना उचित था; क्योंकि उस समय उसके सैनिक सचमुच लड़ने योग्य नहीं थे। यदि कासिमख़ाँ और राजा साहब इस अवसर पर आक्रमण कर देते, तो जीत अवश्य उन्हीं की होती। परन्तु कासिमख़ाँ और राजा साहब ऐसा किस तरह करते; क्योंकि उनको तो बादशाह की गुप्त आज्ञा के कारण केवल इतना ही करने का अधिकार था कि नदी के इस पार उपस्थित रहें और यदि औरंगजेब इस तरफ़ आना चाहे; तो उसे रोकें।

“राजा जसवंतसिंह ने बड़ी ही वीरता और युक्ति से शत्रुओं को पद-पद पर रोका। परन्तु कासिमख़ाँ ने इस अवसर पर न तो कुछ वीरता ही दिखाई, न कुछ सामरिक युक्ति ही प्रकट की। उल्टा उस पर यह संदेह किया जाता है कि इस अवसर पर उसने विश्वासघातकता की, और लड़ाई से पहले ही रात के समय अपनी ओर की सब गोली-बारूद रेत में छिपा दी। इसका यह परिणाम हुआ कि लड़ाई के समय कई बाढ़ दागने के बाद इधर की सेना के पास इस प्रकार का कोई सामान न रहा। अस्तु, कुछ भी हो, परन्तु युद्ध घमसान हुआ, और घाट के रोकने में सैनिकों ने बड़ी वीरता दिखाई। उधर औरंगजेब की यह दशा हुई कि बड़े-बड़े पत्थरों के कारण, जो नदी के पाट में थे, उसको बहुत कष्ट हुआ और किनारों की ऊँचाई के कारण ऊपर चढ़ना दुस्तर जान पड़ा। तथापि मुरादबख़्श के साहस ने इन सब कठिनाइयों को दूर कर दिया। वह अपनी सेना के साथ पार उतर आया, और पीछे से बाकी सैनिक भी बहुत शीघ्र आ पहुँचे। उस समय कासिमख़ाँ जसवंतसिंह को घोर संकट में छोड़कर बड़ी अप्रतिष्ठा के साथ लड़ाई के मैदान से भाग निकला। इससे यद्यपि वीर राजा जसवंतसिंह पर चारों ओर से शत्रु-सैन्य टूट पड़ा, तथापि उसके साथ के साहसी राजपूतों ने अपने प्राणों की बलि दे उसे बचा लिया। लड़ाई के आरंभ में इन वीरों की संख्या ८,००० थी। परन्तु इस भयंकर युद्ध के बाद इनमें से केवल ६०० ही जीवित बचे थे। इस घटना के बाद अपना आगरे जाना उचित न जान राजा जसवंत इन बचे हुए स्वामिभक्त सैनिकों के साथ अपने देश को चले गए।”

बर्नियर की भारत-यात्रा (हिन्दी-अनुवाद), भा० १, पृ० ४०-४२।

कर्नल टाड ने महाराज पर यह दोष लगाया है कि यदि वह मुराद और औरंगजेब को आपस में मिलने न देकर पहले ही युद्ध छेड़ देते, तो औरंगजेब को सफलता न होती (टाड का राजस्थान का इतिहास (कुक्-संपादित), भा० २, पृ० ६८०)। परन्तु उस समय के तटस्थ लेखक बर्नियर के ऊपर उद्धृत किए लेख से यह और इसी प्रकार के अन्य दोष भी निवृत्त हो जाते हैं।

आगे बर्नियर ने महाराज जसवंतसिंहजी के असफल होकर लौटने पर इनकी सीसोदनी रानी का किले के द्वार बंद करवा देना और अंत में अपनी माता के आकर समझाने पर शांत होना लिखा है (बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ४३-४४)। वीरविनोद के लेखक ने भी इस कथा का उल्लेख कर इस रानी को बूंदी के राव हाडा शत्रुसाल की कन्या लिखा है। ‘सुतखुबलुबाब’

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

था, उनको फिर से छेड़कर नाहक खतरा मोल लेना उचित न समझा। इस प्रकार रणस्थल से लौटकर महाराज सोजते पहुँचे और चार दिन वहाँ ठहरकर जोधपुर चले आए।

इसके बाद औरङ्गजेब भी वहाँ से आगे बढ़कर आगरे से ७१ कोस के फासले पर समूगढ़ (फतहाबाद) के पास पहुँचा। यहाँ पर स्वयं शाहजादे दारा से उसका सामना हुआ। इस युद्ध में दारा की सेना के वाम-पार्श्व के सेनापति राठोड़ वीर रामसिंह ने अपने प्राणों की परवा छोड़ बड़ी वीरता दिखाई। उसने शत्रु-सेना की पंक्तियों को चीरकर मुराद को घायल कर दिया और साथ ही जिस हौदे (अम्बारी) में मुराद बैठा था, उसका रस्सा काटकर निकट था कि वह उसे हाथी पर से गिरा देता, इतने ही में एक तीर उसके मर्म-स्थान पर आ लगा। इससे वह इस कार्य में सफल होने के पूर्व ही वीरगति को प्राप्त हो गयो। इसके बाद दारा के दाहने भाग के सेनापति खलील-उल्लाहख़ाँ के विश्वासघात से दारा की विजय पराजय में परिणत हो गई। इससे दारा

में भी कुछ इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है (देखो भा० २, पृ० ४३)। परन्तु हमारी समझ में बर्नियर ने यह कथा राजपूत-वीरांगनाओं की तारीफ़ में सुनी-सुनाई किंवदंतियों के आधार पर ही लिखी है, और 'मुतख़्ख़ुलख़ुबाब' के लेखक ने हिन्दू-नरेश की वीरता को भुलावे में डालने का उद्योग किया है। वास्तव में न तो स्वामिभक्त क़िलेदार सरदार ही रानी के कहने से अपने वीर स्वामी के विरुद्ध ऐसी कार्रवाई कर सकता था, और न इस प्रकार उदयपुर महाराना या बूंदी के राव की रानी ही अपनी पुत्री को सम्मानने के लिये जोधपुर आ सकती थी। अतः यह कथा विश्वास-योग्य नहीं है। रही महाराज के सम्मुख रण में लोहा लेने की बात। इस विषय में पहले ही फ़ारसी तबारीख़ों के अवतरण उद्धृत किए जा चुके हैं।

१. आलमगीरनामा, पृ० ७३ 'तबारीख़ मुहम्मदशाही' में लिखा है कि जब युद्धस्थल से लौटते हुए महाराज अपने ३०० सवारों के साथ शाहजादों की बाईं और से बड़े ठाट के साथ निकले, तब सैनिकों के उकसाने पर भी औरङ्गजेब की इन्हें छेड़ने की हिम्मत न हुई। इसके बाद भी वह अक्सर कहा करता था कि-ख़ुदा की मनशा हिन्दुस्थान में मुसलमानी मज़हब कायम रखने की थी, इसी से उस दिन वह (जसवंतसिंह) युद्ध से चला गया। यदि ऐसा न हुआ होता, तो मामला कठिन था।

कहीं-कहीं इस युद्ध में महाराज की तरफ़ के करीब ६,००० आदमियों का मारा जाना लिखा है।

२. ख्यातों में इनका वि० सं० १७१५ की वैशाख सुदि १ को सोजत पहुँचना लिखा है।
३. ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ४१०।
४. बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ५५-५६।
५. बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ५५-५७।

मारवाड़ का इतिहास

भागकर आगरे पहुँचा और वहाँ से दिल्ली की तरफ चला गया। औरंगजेब ने आगरे पहुँच अपने पुत्र सुलतान मुहम्मद द्वारा वहाँ के किले पर अधिकार कर लिया और स्वयं बादशाह शाहजहाँ को कैद कर, दारा के पीछे चला। मार्ग में, मथुरा पहुँच उसने मुराद को भी धोखे से शराब पिलाकर कैद कर लिया। इसके बाद वह दिल्ली से भागकर लाहौर की तरफ जाते हुए दारा के पीछे चला और मार्ग में आञ्जनाबाद में उसने अपने तख्त पर बैठने की रस्म पूरी की।

इसके बाद उसने वि० सं० १७१५ की भादों वदि ११ (ई० सं० १६५८ की १४ अगस्त) को, आबेर-नरेश जयसिंहजी द्वारा महाराज जसवंतसिंहजी को समझा-बुझाकर अपने पास बुलवाया। यह भी समय की गति देख उससे मिलने को पंजाब पहुँचे। इस पर आलमगीर ने खासा खिलअत, ज़री की सिली हुई भूल और चाँदी के साज का एक हाथी और एक हथिनी तथा एक बढिया जड़ाऊ तलवार देकर इनका सत्कार किया। इसी के कुछ दिन बाद सतलुज के तट पर पहुँचने पर उस (आलमगीर) ने महाराज को खासा खिलअत, जड़ाऊ जमधर, मोतियों का एक गुच्छा और एक परगना, जिसकी आमदनी एक करोड़ दाम (करीब २½ लाख रुपये) की थी, देकर दिल्ली को खाना किया, और साथ ही अपने लौटने तक इनसे वहाँ की देखभाल करते रहने का आग्रह किया। इसी के अनुसार यह दिल्ली चले आए।

आलमगीरनामे में लिखा है कि इस युद्ध में महाराज जसवंतसिंह के चचेरे भाई राठोड़ रूपसिंह ने भी बड़ी वीरता दिखाई थी। वह वीर आगे बढ़ आलमगीर के हाथी के पास जा पहुँचा, और वहाँ पर घोड़े से उतर ऐसी वीरता से लड़ा कि स्वयं औरंगजेब उसकी बहादुरी को देख दंग हो गया। उसकी इस वीरता को देख उसने उसे जीवित पकड़ने की आज्ञा दी थी। परन्तु उसके भीषण कार्यों को देखकर अंत में विपक्ष के सैनिकों से न रहा गया और उन्होंने उसे मार डाला (देखो पृ० १०२-१०३)।

१. उस दिन वि० सं० १७१५ की सावन सुदि १ (ई० सं० १६५८ की २१ जुलाई) थी।

मआसिरे आलमगीरी, पृ० ८।

२. ख्यातों में लिखा है कि जिस समय औरंगजेब ने महाराज को सेना-सहित बुलवाया था, उस समय ५,००,००० रुपये तो सांभर के शाही खज़ाने से उनके पास भिजवाए थे और ५०,००० की हुँडियाँ भेजी थीं। इस पर महाराज मथुरा में पहुँच उससे मिले। परन्तु फारसी तवारीखों में इसका उल्लेख नहीं है।

३. आलमगीरनामा, पृ० १८३।

४. आलमगीरनामा, पृ० १८६।

५. ख्यातों में इनका वि० सं० १७१५ की आसोज सुदि १ को दिल्ली पहुँचना लिखा है।

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

औरङ्गजेब को इस प्रकार अपना पीछा करते हुए देख दारा पंजाब से मुलतान की तरफ़ होता हुआ ठठे (सिन्ध) की तरफ़ चला गया। इस पर वि० सं० १७१५ के मँगसिर (ई० सं० १६५८ की नवम्बर) में जब आलमगीर दिल्ली की तरफ़ लौटा, तब महाराजा जसवंतसिंहजी भी मार्ग में पहुँचकर उससे मिले। उस समय फिर उसने खासा खिलअत और एक नादरी (सदरी) देकर इनका सम्मान किया, तथा मँगसिर सुदि ६ (२३ नवम्बर) को (नौरोज के उत्सव पर) इन्हें एक जड़ाऊ तुराँ दिया।

इसके बाद जब बादशाह को शुजा की चढ़ाई की सूचना मिली, तब उसने अपने पुत्र मुहम्मद सुलतान को उसके मुकाबले को रवाना किया और शाह शुजा के इलाहाबाद के पास (कोड़े से ४ कोस पर) पहुँचने तक स्वयं भी वहाँ जा पहुँचा। वि० सं० १७१५ की माघ वदि ६ (ई० सं० १६५६ की ४ जनवरी) को खजवे के पास दोनों सेनाओं के बीच युद्ध की तैयारी हुई। उस समय महाराज औरङ्गजेब की सेना के दक्षिण-पार्श्व के सेनापति थे। ह्यातों से ज्ञात होता है कि इसी बीच शाह शुजा ने पत्र लिखकर महाराज से प्रार्थना की कि आप जैसे वीर और मनस्वी राठोड़ के विद्यमान होते हुए भी औरंगजेब ने अपने वृद्ध पिता (बादशाह शाहजहाँ) को कैद कर लिया है और अब भाइयों को मार डालने की चिन्ता में है। इसलिये आपको मेरी सहायता कर वृद्ध बादशाह का संकट-मोचन करना चाहिए। इस पर महाराज

१. इसके बाद दाराशिकोह ठठे के किले का प्रबंध कर अहमदाबाद चला गया। बर्नियर लिखता है—“उस समय वहाँ का सूबेदार औरंगजेब का खसूर शाह नवाजख़ाँ था। उसने युद्ध की यथेष्ट सामग्री रहते हुए भी नगर के द्वार खोल दिए, और दारा का बड़ा आदर-सत्कार किया। यद्यपि लोगों ने दारा से कह दिया था कि यह पुरुष कपटी है, तथापि उसके सरल व्यवहार से मुग्ध होकर दारा ने उस पर विश्वास कर लिया, और राजा जसवंतसिंह आदि ने शीघ्र सेना लेकर उसकी सहायता में पहुँचने के बारे में जो पत्र लिखे थे, उन्हें भी उसको दिखला दिया। इसके बाद जब औरंगजेब को दारा के अहमदाबाद पहुँचने की सूचना मिली, तब पहले तो उसने उस पर चढ़ाई करने का विचार किया। परन्तु अंत में यह सोचकर कि अहमदाबाद की तरफ़ जाने में प्रबल पराक्रमी राजा जयसिंह और जसवंतसिंह के राज्यों में से होकर जाना पड़ेगा उसने वह विचार छोड़ दिया और इसीसे वह शाहज़ादे शुजा को रोकने के लिये इलाहाबाद की तरफ़ चल पड़ा।

बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ७६-८०।

२. आलमगीरनामा, पृ० २२०।

३. आलमगीरनामा, पृ० २२६।

मारवाड़ का इतिहास

न उसे कहला दिया कि आज रात के पिछले पहर मैं शाहजादे मुहम्मद की सेना पर पीछे से आक्रमण कर दूँगा। तुम भी उसी समय उस पर सामने से दूट पड़ना। इसप्रकार आलमगीर की सेना का बल आसानी से नष्ट हो जायगा। इसी प्रतिज्ञा के अनुसार महाराज ने उसी रात को राठोड़ महेशदास, रामसिंह और हरराम तथा चौहान बलदेव आदि को साथ लेकर मुहम्मद सुलतान की सेना के पिछले भाग पर आक्रमण कर दिया। इससे घबराकर वह इधर-उधर भागने लगी। यह देख महाराज ने आगे बढ़ शाही सेना का खजाना और सामान लूट लिया। परन्तु शुजा के निश्चित समय पर आक्रमण न कर सकने के कारण अंत में यह बादशाही सेना की पहुँच से कुछ दूर हटकर ठहर गई, तथा प्रातःकाल होते-होते मारवाड़ की तरफ़ रवाना हो गए।

यद्यपि इसी बीच शुजा ने भी आक्रमण कर घबराई हुई आलमगीरी सेना में और भी हलचल मचा दी और निकट था कि वह विजय प्राप्त कर लेता, परन्तु ऐसे ही समय अलीवर्दीख़ाँ के कहने से शुजा हाथी से उतरकर घोड़े पर सवार हो गया। इससे अपने मालिक को यथास्थान न देख उसकी सेना ने उसे मारा गया समझ लिया और वह मैदान से भाग खड़ी हुई। इस पर शुजा को भी प्राण लेकर भागना पड़ा।

बर्नियर लिखता है कि जिस समय महाराज जसवंतसिंहजी मारवाड़ की तरफ़ जाते हुए आगरे पहुँचे, उस समय औरङ्गजेब का मामू शाइस्ताख़ाँ, जो उस समय आगरे की देखभाल के लिये नियत था, इतना घबरा गया कि तत्काल विष पान कर आत्म-हत्या कर लेने के लिये उद्यत हो गया। यह देख बादशाही अंतःपुर की बेग़मों ने उसके हाथ से विषपात्र छीनकर उसके प्राणों की रक्षा की।

१. आलमगीरनामा, पृ० २५४ से २५६। उसमें यह भी लिखा है कि जसवंतसिंह के इस हमले से आधी के करीब बादशाही फौज बिखर गई थी। मन्नासिरे आलमगीरी से भी इसकी पुष्टि होती है (देखो पृ० १३-१४)।

२. बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ८१-८३।

३. ख्यातों में लिखा है कि यह मार्ग के नगरों को लूटते हुए आगरे के पास से होकर गए थे। मार्ग में इन्हें जयपुर-नरेश जयसिंहजी ने औरङ्गजेब का भय दिखलाकर समझाने की चेष्टा की थी। परन्तु इन्होंने उसकी कुछ भी परवा नहीं की।

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

वही आगे लिखता है कि—उस समय यदि जसवंतसिंहजी चाहते, तो शाहजहाँ को कैद से छुड़वा सकते थे। परन्तु समय की गति को देखें उन्होंने वहाँ अधिक ठहरना उचित न समझा। इसलिये कुछ ही देर बाद वह जोधपुर की तरफ़ रवाना हो गए।

शुजा से निपटकर औरंगजेब फ़तहपुर चला आया, और उसने अपने साथ की महाराज की शत्रुता का बदला लेने के लिये वि० सं० १७१६ की माघ सुदी ४ (ई० सन् १६५६ की १६ जनवरी) को अमीनख़ाँ मीरबख़शी को (६,००० सवारों की) एक सेना देकर जोधपुर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। साथ ही स्वर्गवासी राव अमरसिंहजी के पुत्र राव रायसिंह को राजा का खिताब, भारवाड़ का राज्य, चार-हज़ारी जात और चार हज़ार सवारों का मनसब, तथा १,००,००० रुपये और खिलअत आदि देकर उसके साथ कर दियौं। इसके बाद वह स्वयं भी अपना आगरे की तरफ़ जाना स्थगित कर अजमेर की तरफ़ चल पड़ौं। इसकी सूचना पाकर महाराज ने १०,००० योद्धाओं के साथ अपने सेनापति राठोड़ नाहरख़ाँ को शाही सेना के मुकाबले के लिये आगे रवाना किया। इस पर वह मेड़ते पहुँच शाही सेना की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ दिन बाद महाराज ने भी दलबल-सहित जोधपुर से आगे बढ़ बीलाड़ा गाँव में अपना शिविर क़ायम किया।

१. उस समय के इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि उस अवसर पर बड़े-बड़े मुसलमान अमीर औरंगजेब से मिल गए थे और शाहजहाँ वृद्धावस्था, बीमारी और शाहज़ादों की उद्दंडता से किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहा था। इसलिये उसको फिर से गद्दी पर बिठाकर भगड़े को शांत करना असंभव था।

२. बर्नियर की भारत-यात्रा, भा० १, पृ० ८३-८४।

ख्यातों में इनका वि० सं० १७१५ की माघ सुदि १० को जोधपुर पहुँचना लिखा है।

३. मन्नासिरे आलमगीरी, पृ० १७।

४. आलमगीरनामा पृ० २८८।

५. आलमगीरनामा, पृ० २६२।

६. किसी-किसी ख्यात में इस अवसर पर ५०,००० योद्धाओं का एकत्रित किया जाना लिखा है।

७. यह आसोप ठाकुर कृपावत राजसिंह का पुत्र था।

मारवाड़ का इतिहास

इसी बीच गुजरात से दाराशिकोह का भेजा हुआ एक पत्र महाराज को मिला । उसमें उसने अपनी सहायता के लिये इनसे प्रार्थना की थी । महाराज ने भी इस बात को अंगीकार कर लिया । इसकी सूचना पाते ही औरंगजेब घबराया और उसने इधर तो मोहम्मद अमीनख़ाँ को वापस बुलवा लिया और उधर आंबेर-नरेश जयसिंहजी के द्वारा महाराज के पास फ़रमानें भिजवाकर इन्हें शांत करने की चेष्टा करने लगा । जब जयसिंहजी के बीच में पड़ने से महाराज को बादशाह की तरफ़ का विश्वास हो गया, तब यह भी बीलाड़े से जोधपुर वापस चले आए और इन्होंने दाराशिकोह को लिख दिया कि जब तक आप किसी अन्य बड़े नरेश को भी अपना सहायक न बना लें, तब तक अकेले मेरा आपकी सहायता में खड़ा होना निरर्थक ही है । इस समय तक दाराशिकोह भी २२ हजार सेना के साथ मेड़ते के पास पहुँच चुका था । इसलिये उसने महाराज के इस पत्र को पाकर भी इन्हें अपनी तरफ़ करने का बहुत कुछ उद्योग किया । परन्तु महाराज ने दबे हुए झगड़े को फिर से खड़ा करना उचित न समझा । अंत में दाराशिकोह निराश होकर अजमेर की तरफ़ चला गया । इसके बाद जब औरंगजेब अजमेर के निकट पहुँचा, तब फिर दोनों भाइयों की सेनाओं के बीच युद्ध हुआ । परन्तु इस बार भी दारा को हारकर भागना पड़ा । यह घटना वि० सं० १७१६ की चैत्र सुदि २ (ई० सन् १६५६ की १४ मार्च) को हुई थी ।

इस युद्ध में विजय प्राप्त कर आलमगीर ने महाराज के लिये गुजरात की सूबेदारी का फ़रमानें और खासा खिलअत भेजकर उनका पहले का ७,००० ज़ात और ७,००० सवारों का मनसब (जिसमें ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा थे) अंगीकार कर लिया । साथ ही इन्हें गुजरात जाकर वहाँ का प्रबंध करने और महाराजकुमार

१. आलमगीरनामे में महाराज जसवंत का अपनी तरफ़ से दारा को पत्र लिखकर सहायता देने का वादा करना और बुलवाना लिखा है (देखो पृ० ३००) ।

२. ख्यातों में इस फ़रमान का वि० सं० १७१५ की चैत्र वदि ११ को महाराज के पास पहुँचना लिखा है ।

३. आलमगीरनामा, पृ० ३०६-३११ ।

४. आलमगीरनामा, पृ० ३१६-३२० ।

५. ख्यातों में इस फ़रमान का वि० सं० १७१६ की चैत्र सुदि ६ को जोधपुर पहुँचना लिखा है ।

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

पृथ्वीसिंहजी को अपने पास भेजने का लिखा। इसी के अनुसार महाराज सिरौही^१ की तरफ होते हुए अहमदाबाद चले गए, और वहाँ पर बरसात की मौसम में इन्होंने गुजरात के परगनों का दौरा कर कोली दूदा आदि उपद्रवियों को दबा दिया। इसकी सूचना पाकर बादशाह ने भी महाराज के लिये खिलअत भेजकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। इसी प्रकार ईद के त्यौहार पर भी इनके लिये खिलअत भेजा गया।

१. आलमगीरनामा, पृ० ३३२।

२. ख्यातों से ज्ञात होता है कि जिस समय महाराज सिरौही में थे, उस समय इन्हें समाचार मिला कि भाटी राजपूतों ने जयसलमेर के रावल सबलसिंहजी की मदद पाकर पौकरण को घेर लिया है। यह सुनते ही इन्होंने राठोड़ सबलसिंह और मुहणोत नैणसी आदि को वहाँ जाकर शीघ्र ही भाटियों को भगा देने की आज्ञा दी। इसी आज्ञा के अनुसार ये लोग मारवाड़ में चले आए और महाराज के कुछ सरदारों को एकत्रित कर भाटियों के मुकाबले को चले। उस समय तक पौकरण के किले पर भाटियों का अधिकार हो चुका था। परन्तु राठोड़ों की सेना का आगमन सुनते ही वे स्वयं किला छोड़कर पीछे हट गए। यद्यपि रावल सबलसिंहजी स्वयं भी उनकी सहायता को पहुँच गए थे, तथापि युद्ध में भाटी, राठोड़ वीरों का मुकाबला करने का साहस न कर सके। इसके बाद महाराज की सेना ने जयसलमेर-राज्य में घुस आसणी-कोट तक लूट-मार मचा दी। अंत में इस सेना के लौट आने पर भाटियों ने एक बार फिर पौकरण पर अधिकार करने का उद्योग किया। इसीसे पौकरण-स्थित राठोड़-सेना के और भाटियों के बीच मांडी के पास फिर युद्ध हुआ। यद्यपि भाटियों ने उक्त ग्राम में आग लगाकर बहुतसे घर जला दिए, तथापि उन्हें हारकर पीछे हटना पड़ा। इतने में मुहणोत नैणसी भी सेना लेकर वहाँ जा पहुँचा। इससे भाटी खेत छोड़कर भाग गए। यह देख राठोड़ सैनिकों ने भी आगे बढ़ जयसलमेर-राज्य में फिर उपद्रव करना और भाटियों से मांडी-गाँव के जलाने का पूरा-पूरा बदला लेना प्रारंभ किया। इसी बीच बीकानेर-नरेश करणसिंहजी जयसलमेर की राजकुमारी से विवाह कर लौटते हुए मार्ग में रुके पहुँचे और उन्होंने बीच में पड़ राठोड़ों और भाटियों के बीच मेल करवा दिया।

३. ख्यातों में वैशाख सुदि ४ को इनका अहमदाबाद पहुँचना लिखा है।

४. आलमगीरनामा, पृ० ३४६।

५. आलमगीरनामा, पृ० ४०४-४०५।

इस पर वि० सं० १७१६ की श्रावण सुदि ६ (ई० सन् १६५६ की १५ जुलाई) को महाराज ने भी कुछ जवाहिरात और कुछ जड़ाऊ चीजें बादशाह के लिये भेजी थीं।

आलमगीरनामा, पृ० ४२०।

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १७१६ की मँगसिर सुदि ७ (ई० सन् १६५६ की १० नवम्बर) को इन्हें दुबारा “महाराजा” का खिताब मिला ।

पहले लिखा जा चुका है कि औरंगजेब ने महाराज को गुजरात की सूबेदारी पर भेजते समय इनके महाराजकुमार को अपने पास बुलवाया था । उसी के अनुसार पृथ्वीसिंहजी ने सोरों के मुकाम पर पहुँचकर बादशाह को दो हाथी भेंट किए । बादशाह ने भी माघ सुदि १४ (ई० सन् १६६० की १६ जनवरी) को खिलअत, हीरों की धुगधुगी और मोतियों का गुच्छा देकर उनका सत्कार किया । इसके कुछ दिन बाद उन्होंने फिर दो हाथी बादशाह को भेंट किए । बादशाह ने भी उन्हें फिर एक हीरे की धुगधुगी देकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की ।

इसके बाद बादशाह ने अपने तीसरे राज्यवर्ष के प्रारंभ की खुशी में (वि० सं० १७१७ की प्रथम ज्येष्ठ सुदि १०=ई० सन् १६६० की ६ मई को) महाराज के लिये एक खिलअत भेजी । इस पर महाराज ने भी वि० सं० १७१७ की सावन वदि ४ (ई० सन् १६६० की १५ जुलाई) को कुछ जवाहिरात, जेवर और कच्ची

१. आलमगीरनामे में ५ वीं रवीउल अब्बल लिखा है (देखो पृ० ४४६) । परंतु मन्नासिरे आलमगीरी में ५ वीं के बदले ८ वीं रवीउल अब्बल लिखा है । उसके अनुसार उसदिन मँगसिर सुदि १० (१३ नवम्बर) आती है (देखो पृ० २८) ।

२. बादशाह औरंगजेब के समय का महाराज के नाम का एक फरमान मिला है । उससे प्रकट होता है कि उस समय महाराज जसवंतसिंहजी गुजरात के प्रबन्ध करने में लगे थे और राजकुमार पृथ्वीसिंहजी बादशाह के पास थे ।

यह फरमान औरंगजेब के प्रथम राज्यवर्ष की २५ जमादिउल अब्बल का है । यद्यपि औरंगजेब वि० सं० १७१५ की श्रावण सुदि १ (ई० सं० १६५८ की २१ जुलाई) को बादशाह बन गया था, तथापि गद्दीनशीनी का उत्सव वि० सं० १७१६ की आषाढ वदि ११ (ई० सं० १६५६ की ५ जून) को मनाया गया था । यदि उसी दिन से उसके राज्य वर्ष का प्रारम्भ माना जाय तो उपर्युक्त फरमान की तिथि वि० सं० १७१६ की फागुन वदि ११ (ई० सं० १६६० की २८ जनवरी) आयगी ।

इतिहास से भी यही ठीक प्रतीत होती है । उसके बादशाह बनने की तिथि से राज्य वर्ष का प्रारम्भ मानने से इस फरमान की तिथि वि० सं० १७१५ की फागुन वदि १२ (ई० सं० १६५६ की ८ फरवरी) होगी । परन्तु उस समय तक महाराजा जसवंतसिंहजी का गुजरात जाना सिद्ध नहीं होता ।

३. आलमगीरनामा, पृ० ४५६ और ४६२ ।

४. आलमगीरनामा, पृ० ४८५ ।

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

घोड़े बादशाह की भेट के लिये भेजे'। इसके बाद मँगसिर वदि २ (= नवम्बर) को बादशाह ने फिर इनके लिये खिलअत और खासी तलवार उपहार में भेज कर इनका सत्कार किया और फिर महाराजकुमार पृथ्वीसिंहजी को खिलअत देकर जोधपुर जाने के लिये बिदा किया।

मँगसिर सुदि १ (२३ नवम्बर) को महाराज के लिये फिर एक खिलअत भेजा गया। इसी अवसर पर महाराज के भेजे हुए कुछ जड़ाऊ जेवर और जवाहिरात आदि बादशाह के भेट किए गए।

इन्हीं दिनों शिवाजी ने औरंगाबाद के आसपास बड़ा उपद्रव खड़ा कर रखा था। यद्यपि शाइस्ताख़ाँ ने उनको दबाने की बहुत कुछ कोशिश की, तथापि उसे इसमें सफलता नहीं हुई। इस पर पौष सुदि ६ (२७ दिसम्बर) को बादशाह ने महाराज को लिखा कि वह अपनी सेना लेकर गुजरात से दक्षिण में पहुँचें और शिवाजी के विरुद्ध अमीरुल उमरा (शाइस्ताख़ाँ) की सहायता करें। इसी के अनुसार महाराज जूनागढ़ के फौजदार कुतुबख़ाँ को अपना प्रतिनिधि (नायब) नियत कर गुजरात से दक्षिण की तरफ़ रवाना हो गए।

१. आलमगीरनामा, पृ० ५६८।

२. आलमगीरनामा, पृ० ५६२।

३. आलमगीरनामा, पृ० ५६५।

४. आलमगीरनामा, पृ० ६३४।

५. आलमगीरनामा, पृ० ६३६।

६. मुन्तख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० १२६ और आलमगीरनामा, पृ० ६४७।

७. महाराज के दक्षिण में जाकर शिवाजी के साथ युद्धों में प्रवृत्त रहने के कारण वि० सं० १७१६ की भादों वदी ३ (ई० सं० १६६२ की २३ जुलाई) को गुजरात की सूबेदारी महावतख़ाँ को सौंप दी गई (मन्नासिरे आलमगीरी, पृ० ४१)। ख्यातों में लिखा है कि इसकी एवज में महाराज को हॉसी-हिसार का सूबा मिला था। परंतु फ़ारसी तबारीख़ों में इसका उल्लेख नहीं है।

बाँवे गज़ेटियर में इनका ई० सं० १६५६ (वि० सं० १७१६) से १६६२ (वि० सं० १५१६) तक गुजरात के सूबे पर रहना और इसी वर्ष कुतुबुद्दीन को वहाँ पर अपना प्रतिनिधि नियत कर मुअज़्ज़म के पास दक्षिण में जाना, तथा बाद में महावतख़ाँ को गुजरात का सूबा मिलना लिखा है (देखो भा० १, खंड १, पृ० २८३)।

ख्यातों में इनका वि० सं० १७१७ की मँगसिर सुदि ५ तक गुजरात में रहना, माघ वदि ६ को औरंगाबाद पहुँचना और चैत्र वदि ३ को पूने को रवाना होना लिखा है।

मारवाड़ का इतिहास

परन्तु वहाँ पहुँचने पर इनके और खान के बीच आपस में मनोमालिन्य हो गया और उस (खान) के बर्ताव से वह दिन-दिन और भी बढ़ता गया। फिर भी महाराज ने वीरता से मरहठों का सामना कर उनके अनेक किले आदि छीन लिए।

वि० सं० १७१६ की ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० सन् १६६२ की १० मई) को बादशाह ने महाराज और अमीरुल उमरा के लिये, जो उस समय दक्षिण में थे, खिलअत भेजे^१। इसी प्रकार वि० सं० १७१६ की पौष सुदि २ (ई० सन् १६६२ की २ दिसम्बर) को भी इन दोनों के लिये खिलअत भेज कर इनका सत्कार किया गया। तथा वि० सं० १७२० की वैशाख सुदि २ (ई० सन् १६६३ की २६ अप्रैल) को फिर इनके लिये खिलअत भेजा गया।

वि० सं० १७२० की चैत्र सुदि (ई० सन् १६६३ की अप्रैल) में शिवाजी ने एक रोज़े मौका पाकर जंगल के रास्ते से अमीरुल उमरा के स्थान पर नैश-आक्रमण किया। इसमें उसका पुत्र अबुलफ़तह मारा गया और स्वयं अमीरुल उमरा की तीन उँगलियाँ कट गईं। यह समाचार सुन बादशाह बहुत ही नाराज़ हुआ और उसने अमीरुल उमरा के स्थान पर शाहजादे मुअज़्ज़म को दक्षिण की सूबेदारी पर भेज दिया। साथ ही महाराज के लिये खासा खिलअत और सुनहरे साज़ के दो घोड़े भेजे गये। इसके बाद मँगसिर सुदि १२ (१ दिसम्बर) को बादशाह ने इनके लिये सरदी में पहनने का एक गर्म खिलअत भेजा और कुछ मास बाद सातवें राज्यवर्ष के प्रारंभ (वि० सं० १७२१ की चैत्र सुदि=ई० सन् १६६४ के मार्च) में हमेशा के रिवाज

१. आलमगीरनामा, पृ० ७४१।

२. आलमगीरनामा, पृ० ७६१।

३. आलमगीरनामा, पृ० ८१६।

४. जदुनाथ सरकार ने अपनी 'हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्गज़ेब' में इस घटना की तिथि ई० सं० १६६३ की ५ अप्रैल (वि० सं० १७२० की द्वितीय चैत्र सुदि ८) लिखी है (देखो भा० ४, पृ० ५१)।

५. उस समय अमीरुल उमरा, पूना में शिवाजी के पूर्व निवास-स्थान में ही ठहरा हुआ था। ख्यातों में भी इस घटना का समय वि० सं० १७२० की चैत्र सुदि ८ ही लिखा है।

६. आलमगीरनामा, पृ० ८१६। आलमगीरनामे में उस दिन वि० सं० १७२० की वैशाख सुदि १० (ई० सं० १६६३ की ६ मई) होना लिखा है (देखो पृ० ८१६)।

७. आलमगीरनामा, पृ० ८४८।

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

के माफ़िक फिर इनके लिये खिलअत भेजा गया। इसके बाद जब महाराज के साथ की सेना का—नामदारख़ाँ नामक—एक अफ़सर भादों वदि १० (६ अगस्त) को बादशाह के पास हाज़िर हुआ, तब उसने फिर शाहजादे मुहम्मद मुअज़्ज़म और महाराज के लिये बरसाती खिलअत भेजे। इस प्रकार इधर बादशाह समय-समय पर इनका सत्कार कर इनका प्रेम-संपादन करने की कोशिश करता था और उधर महाराज धीरे-धीरे शिवाजी के अधिकृत किलों पर अधिकार कर उनके उपद्रव को नष्ट करने की चेष्टा कर रहे थे। कुंडा के दुर्ग को विजय करने में भी इन्होंने अद्भुत वीरता दिखाई थी। परन्तु बादशाह की इच्छा थी कि जहाँ तक हो जल्दी ही शिवाजी का सारा बल नष्ट कर दिया जाय। यह बात महाराज को पसंद न थी; क्योंकि यह शिवाजी जैसे पराक्रमी हिन्दू-राजा का बल नष्ट कर औरंगजेब जैसे धर्मान्ध यवन-नरेश को और भी उत्पात करने का मौका देना अनुचित समझते थे। इसी से उनकी भीतरी सहानुभूति शिवाजी के साथ रहा करती थी। इसलिये कार्तिक वदि ६ (३० सितम्बर) के करीब बादशाह ने इनके स्थान पर आंबेर-नरेश जयसिंहजी को नियत कर इन्हें अपने पास बुलवा लिया। अतः चैत्र वदि १२ (ई० सन् १६६५ की ३ मार्च) को इन्होंने महाराज जयसिंहजी को वहाँ की सेना के संचालन का भार सौंप दिया और वि० सं० १७२२ की जेष्ठ सुदि ६ (१३ मई) को यह दक्षिण से दिल्ली चले आए। इस पर बादशाह ने इन्हें खिलअत आदि देकर इनका सम्मान किया।

१. आलमगीरनामा, पृ० ८५५।

२. आलमगीरनामा, पृ० ८६५।

३. आलमगीरनामा, पृ० ८६७-८६८।

४. आलमगीरनामा, पृ० ८८८। ख्यातों में इनका आषाढ वदि १० (२६ मई) को दिल्ली पहुँचना लिखा है।

५. इस अवसर पर महाराज ने भी १,००० अशर्फियाँ और १,००० रुपये बादशाह को भेंट किए थे।

आलमगीरनामा, पृ० ८८४।

आलमगीरनामे में लिखा है कि बादशाह ने अपने ४६वें वर्ष के प्रारंभ के 'जरनेवज़ने क़मरी' के उत्सव पर (१७ शव्वाल, मंगलवार को) महाराज को खिलअत, पहुँची और जड़ाऊ धुगाधुगी उपहार में दी (देखो पृ० ८८४)। उस रोज़ शायद वि० सं० १७२२ की जेष्ठ वदि ४ (ई० सन् १६६५ की २३ अप्रैल) आती है।

मारवाड़ का इतिहास

इसके बाद प्रथम श्रावण सुदि ४ (६ जुलाई) को महाराजकुमार पृथ्वीसिंहजी पिता से मिलने के लिये दिल्ली आए। बादशाह ने इन्हें अपने पास बुलवाकर एक पहुँची और जड़ाऊ सरपेच उपहार में दिया। इसके बाद आश्विन सुदि १० (= अक्टोबर) को दशहरे के उत्सव पर बादशाह ने फिर महाराज को खिलअत और महाराजकुमार को जड़ाऊ कमरबन्द दिया। इसी प्रकार कार्तिक वदि १२ (२५ अक्टोबर) को बादशाह की तरफ से महाराज को खिलअत के साथ सुनहरी साज के दो घोड़े और महाराजकुमार को जड़ाऊ जमधर, मोतियों के गुच्छे और दो हजारी जात और हजार सवारों का मनसब दिया गया। इसके बाद मँगसिर सुदि १२ (६ दिसम्बर) को महाराज को सरदी की मौसम का गरम खिलअत और वि० सं० १७२३ की चैत्र सुदि २ (ई० सं० १६६६ की २७ मार्च) को फिर एक खिलअत उपहार में मिली। तथा महाराजकुमार पृथ्वीसिंहजी को जड़ाऊ तुरा और सोने के साज का घोड़ा दिया गया। इसी प्रकार ज्येष्ठ वदि ४ (१२ मई) को महाराज को और भी एक खिलअत दिया गया।

इसके करीब ३ मास बाद बादशाह को सूचना मिली कि ईरान का बादशाह अब्बास सैनी खुरासान की तरफ से हिंदुस्थान पर चढ़ाई करने का विचार कर रहा है। इस पर उसने आसोज वदि १ (४ सितम्बर) को शाहजादे मुअज़्ज़म के साथ ही महाराज जसवन्तसिंहजी को भी २०,००० सवारों के साथ उसको रोकने के लिये आगरे से काबुल की तरफ रवाना कर दिया। इस अवसर पर फिर उसने महाराज को

१. आलमगीरनामा, पृ० ६०८।

२. आलमगीरनामा, पृ० ६१४।

३. आलमगीरनामे में लिखा है कि पहले के मनसब में वृद्धि करके यह मनसब दिया गया था (देखो पृ० ६१६-६१७)।

ख्यातों में लिखा है कि इसके साथ इनको फूलिया का परगना जागीर में मिला था। परन्तु मेड़तिया राठोड़ मथुरादास के पुत्र आसकरण की बगावत के कारण उसकी एवज़ में मालूबा का परगना दिया गया।

४. आलमगीरनामा, पृ० ६२३ और ६५६।

५. आलमगीरनामा, पृ० ६६१ और ६६३।

६. मन्नासिरुलउमरा, भा० ३, पृ० ६०३।

७. शाहजहाँ के मरने पर औरंगजेब वि० सं० १७२२ की माघ सुदि १० (ई० सं० १६६६ की ४ फरवरी) को दिल्ली से आगरे को गया था (आलमगीरनामा, पृ० ६३७)। उस समय महाराज भी उसके साथ थे।

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

खासा खिलअत, तलवार, जड़ाऊ जमधर, मोतियों की लड़ी, अपने खासे तबेले के सोने के साजवाले दो घोड़े, चाँदी की अम्बारी और जरी की झूलवाला १ हाथी देकर उन पर अपना विश्वास और प्रेम प्रकट किया। इसके बाद कार्तिक सुदि १० (२७ अक्टोबर) को महाराज और शाहजादे के लिये फिर खिलअत भेजे गए। अभी ये लोग लाहौर भी नहीं पहुँचे थे कि इतने में ही शाह अब्बास की मृत्यु का समाचार मिल गया। इससे बादशाह ने इन्हें अपने, पौष वदि १२ (१२ दिसम्बर) के, पत्र में लाहौर में ही ठहर जाने का लिख भेजा। माघ वदि ११ (ई० सं० १६६७ की १० जनवरी) को इनके और शाहजादे के लिये लाहौर में सरदी के खिलअत भेजे गये। इसके बाद इनके लाहौर से लौट आने पर बादशाह ने वि० सं० १७२३ की चैत्र वदि १२ (११ मार्च) को महाराज को खासा खिलअत देकर इनकी अभ्यर्थना की।

वि० सं० १७२४ की चैत्र सुदि ८ (२३ मार्च) को बादशाह ने शाहजादे मुअज़्ज़म को दक्षिण की सूबेदारी पर खाना किया और महाराज को खिलअत, जड़ाऊ कमरबंदवाली तलवार और दो घोड़े, जिनमें एक सुनहरी साज का था, उपहार में देकर उसके साथ करदिया। वि० सं० १७२४ की ज्येष्ठ वदि ११ (ई० सं० १६६७ की

१. आलमगीरनामा, पृ० ६७५-६७६।

२. आलमगीरनामा, पृ० ६८१।

३. यह वि० सं० १७२३ की भादों सुदि ३ (ई० सं० १६६६ की २२ अगस्त) को मरा था।

४. आलमगीरनामा, पृ० ६८४-६८६।

५. आलमगीरनामा, पृ० १०३१-१०३२। ख्यातों में लिखा है कि इसी वर्ष महाराज ने राजकर्मचारियों के वेतन में वृद्धि कर रिश्वत लेने की सख्त रोक कर दी थी।

६. आलमगीरनामा, पृ० १०३७।

७. लेटरमुगल्स में लिखा है—

“He was sent to serve in the Dakhin, then in Kabul, then again in the Dakhin.”

(भाग १, पृ० ४४) परन्तु वास्तव में यह काबुल न जाकर लाहौर से ही लौट आए थे, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है।

८. आलमगीरनामे में हि० सं० १०७७ की ७ और १६ शव्वाल के बीच बादशाह को इसकी सूचना मिलना लिखा है (देखो पृ० १०३७-१०३८ और १०४२)। परन्तु यह समय चैत्र सुदि ८ (२३ मार्च) से वैशाख वदि ३ (१ अप्रैल) के बीच आता है। अतः यह ठीक नहीं है।

मारवाड़ का इतिहास

८ मई) को महाराजकुमार पृथ्वीसिंहजी का शीतला की बीमारी से दिल्ली में स्वर्गवास हो गया। अतः जब महाराज को इसकी सूचना मिली, तब यह बहुत ही व्याकुल हुए। यह देख शाहजादे ने, जो महाराज को अपना शुभचिंतक और पिता के तुल्य मानता था, इनके दुःख में समवेदना प्रकट कर इन्हें सांत्वना दी। इसके बाद जब यह औरङ्गाबाद पहुँचे, तब आबेर-नरेश जयसिंहजी ने वहाँ का सारा प्रबन्ध शाहजादे मुअज़्ज़म को सौंप दिया। कुछ ही दिनों में महाराज के उद्योग से इधर तो शाही सेनाएँ

कहीं-कहीं वि० सं० १७२३ की चैत्र वदि ८ भी लिखी मिलती है। यह भी ठीक नहीं है। यदि ऐसा हुआ होता, तो महाराज को दक्षिण जाने से पूर्व ही इसकी सूचना मिल गई होती, क्योंकि यह वि० सं० १७२४ की चैत्र सुदि ८ को औरंगबाद (दक्षिण) की तरफ़ खाना हुआ था।

हि० सन् १०७६ (ई० सन् १६६८=वि० सं० १७२५) के एक फ़रमान में बादशाह ने महाराज को नरबदा के किनारे के गुजरी गांव की तरफ़ जाने और गुजरात का प्रबन्ध मुहम्मद अमीनख़ाँ को देने का लिखा है।

१. पृथ्वीसिंहजी का जन्म वि० सं० १७०६ की आषाढ़ सुदि ५ (ई० सन् १६५२ की १ जुलाई) को हुआ था। इनके विवाह को अभी दो वर्ष ही हुए थे। परन्तु फिर भी इनके पीछे इनकी रानी, जो गौड़-राजपूतों की कन्या थी, सती हुई।

२. टॉड साहब ने पृथ्वीसिंहजी की मृत्यु का, वि० सं० १७२६ (ई० सन् १६७०) के अनन्तर, महाराज जसवंतसिंहजी के काबुल चले जाने पर औरंगज़ेब द्वारा दिए गए जहरी खिलअत के पहनने से होना लिखा है।

(टॉड का राजस्थान (क्रुक् संपादित) भा० २, पृ० ६८४-६८६।)

परन्तु मारवाड़ की ख्यातों और आलमगीरनामे में इस घटना का वि० सं० १७२४ में होना लिखा है (देखो पृ० १०३८)।

३. ख्यातों में इनका आषाढ़ वदि १३ को औरंगबाद पहुँचना लिखा है।

४. वी० ए० स्मिथ ने लिखा है कि औरंगज़ेब के कहने से आबेर-नरेश जयसिंहजी को उनके पुत्र कीर्तसिंह ने विष दे दिया था। इससे वि० सं० १७२४ (ई० सन् १६६७) में दक्षिण में ही उनकी मृत्यु हो गई। बादशाह ने उनके स्थान पर महाराज जसवंतसिंहजी को मुअज़्ज़म के साथ भेज दिया। यह पहले भी दक्षिण में रह चुके थे। परन्तु इन्हें इस बार भी पूरी सफलता नहीं मिली। इसका कारण यह था कि इन्होंने और शाहजादे ने मिलकर शिवाजी से बहुतसा रुपया ले लिया और उनके विरुद्ध किए जानेवाले कार्यों में शिथिलता कर दी। यह उनसे यहाँ तक मिल गए कि ई० सन् १६६७ (वि० सं० १७२४) में इन्होंने स्वयं बादशाह को भी शिवाजी को राजा का खिताब देने के लिये दबाया।

(ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ४२७-४२८।)

५. इस घटना का समय आषाढ़ वदि १४ लिखा है।

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

फिर सजग हो गई, जिससे महाराष्ट्र-वीरों का उपद्रव बहुत कुछ शांत हो चला और उधर महाराज के समझाने से शिवाजी ने भी शाहजादे मुअज़्ज़म से मेल करना स्वीकार कर लिया। ख्यातों से ज्ञात होता है कि इसी के अनुसार महाराज के सरदार राठोड़ रणछोड़दास आदि राजगढ़ में जाकर शिवाजी से मिले और उनके पुत्र शंभाजी को साथ लेकर मँगसिर वदि ५ को शाहजादे के पास चले आए। महाराज के कहने से शाहजादे ने भी शंभाजी का अच्छा आदर सत्कार किया और शिवाजी को राजा मानकर उनका बहुत सा प्रदेश वापस लौटा दिया। इसी के साथ उन्हें बराड़-प्रदेश में भी जागीर दी गई। इस प्रकार गुप्त-संधि हो जाने के बाद शंभाजी वापस लौट गए।

वि० सं० १७२६ के ज्येष्ठ (ई० सं० १६६६ की मई) में औरङ्गज़ेब की सूचना मिली कि शाहजादा मुहम्मद मुअज़्ज़म महाराज जसवंतसिंहजी की सहायता से स्वाधीन होने का विचार कर रहा है। इस पर उसने तत्काल ही उसकी माता को उसे समझाने के लिये भेज दिया। इसके अगले ही वर्ष बादशाह ने महाराज को दक्षिण से वापस बुलवा लिया और वि० सं० १७२८ की ज्येष्ठ वदि ८ (ई० सं० १६७१ की २१ मई) को इन्हें बरसाती खिलअत और ५०० मोहर की कीमत का घोड़ा देकर जमरूद के थाने की रक्षा के लिये खाना कर दियी। इस पर महाराज भी अपने दल-

१. ख्यातों में लिखा है कि इसी वर्ष बादशाह ने अपने अधीन देशों के चौपाए जानवरों पर कर लगाया था। परन्तु महाराज के खयाल से मारवाड़ के चौपाए छोड़ दिए गए थे। इस पर महाराज ने इसकी एवज़ में यहाँ पर अपनी तरफ से 'घासमारी' (मवेशियों के सरकारी चरागाहों में चरने पर कर लेने) की प्रथा प्रचलित की।

यह प्रथा इस देश में अब तक जारी है। साथ ही महाराज ने गुजरात में मिले अपने मनसब के प्रदेशों में भी अपने आदमी भेज कर इस कर का प्रचार किया।

२. श्रीयुत जडुनाथ सरकार ने अपनी 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में लिखा है:-

शिवाजी ने महाराज जसवंतसिंह को पत्र लिखकर बादशाह से संधि करने में उनकी सहायता चाही। इस पर महाराज और शाहजादे ने मिलकर इस विषय में ई० सन् १६६८ की ६ मार्च (वि० सं० १७२५ की चैत्र सुदि ६) को बादशाह को लिखा। अतः उसने भी शिवाजी को राजा मानकर संधि अंगीकार करली। यह संधि दो वर्ष तक रही। उक्त पत्र में शिवाजी ने अपने पुत्र शंभु को शाहजादे के पास भेजने का भी लिखा था। इस संधि के हो जाने के बाद भी बादशाह ने सिवा चकन दुर्ग के और कोई किला शिवाजी को नहीं लौटाया। (देखो भा० ४, पृ० ६८१)।

३. मन्नासिरे आलमगीरी, पृ० १०६।

परन्तु वि० सं० १७३० की ज्येष्ठ सुदि १४ के महाराज के एक पत्र से उस समय इनका नर्बदा पर होना प्रकट होता है।

मारवाड़ का इतिहास

बल के साथ मारवाड़ की तरफ होते हुए वहाँ जा पहुँचे। कुछ ही समय में इन्होंने वहाँ के उपद्रवी पठानों को दबाकर काबुल और भारत के बीच का (खैबर के दर्रे का) मार्ग निष्कण्टक कर दिया।

इसी वर्ष औरङ्गजेब ने गोवर्धन-पर्वत पर का मन्दिर गिरा देने की आज्ञा दी। इसका समाचार पाते ही गोस्वामी दामोदरजी वहाँ की मूर्ति को लेकर पहले से ही चुपचाप चल दिए और मार्ग में कोटा, बूँदी और किशनगढ़ की तरफ होते हुए मारवाड़ के चौपासनी नामक गाँव के निकट कदमखंडी स्थान में करीब ६ मास तक रहे। इसके बाद कार्तिक सुदि १५ को वह मेवाड़ के सिहाड़ नामक गाँव में चले गए। यही स्थान इस समय नाथद्वारे के नाम से प्रसिद्ध है।

वि० सं० १७३० की फागुन वदि ४ (ई० सं० १६७४ की १४ फरवरी) को पठानों ने गंदाब नदी के उस पार स्थित शुजाअतख़ाँ पर हमला कर उसे मार डाला।

१. ख्यातों में लिखा है कि बादशाह ने वि० सं० १७२८ में महाराज को दक्षिण से बुलाकर पहले गुजरात का सूबा दिया और इसके बाद वि० सं० १७३० के फागुन में इन्हें काबुल भेजा। परन्तु फ़ारसी तवारीख़ों में गुजरात के सूबे का उल्लेख नहीं है। 'ब्रॉवे गज़ेटियर' में लिखा है कि ई० सन् १६७१ (वि० सं० १७२८) में महाराज जसवंतसिंहजी ने गुजरात पहुँच खानजहाँ से वहाँ के प्रबंध का भार ले लिया। इसी के साथ इन्हें धंधूका और पिटलाद के परगने भी मिले। ई० सन् १६७३ (वि० सं० १७३०) में इन्हीं की सिफ़ारिश से बादशाह ने रायसिंह के पुत्र जाम तामची को नवानगर और एक जाड़े जे को २५ गाँव लौटा दिए थे। इसके बाद ई० सन् १६७४ (वि० सं० १७३१) के अंत में महाराज काबुल की तरफ़ भेजे गए (देखो भा० १, खंड १, पृ० २८५)।

'तारीख़े पालनपुर' में लिखा है कि वि० सं० १७२७ (हि० सन् १०८२=ई० सन् १६७१) में महाराज जसवंतसिंह राठोड़ ने गुजरात की सूबेदारी मिलते ही पालनपुर की हुकूमत से कमालख़ाँ को हटाकर उसके भाई फतेहख़ाँ को उसके स्थान पर नियत कर दिया था (देखो भा० १, पृ० १२३)।

जेम्स बर्जेज़ की 'क्रॉनोलॉजी ऑफ़ मौडर्न इंडिया' में ई० सन् १६७४ (वि० सं० १७३१) तक महाराज जसवंतसिंहजी का गुजरात के सूबे पर होना लिखा है (देखो पृ० ११५)।

२. कहीं-कहीं इस घटना का वि० सं० १७२६ में होना लिखा है। वहाँ पर यह भी लिखा है कि गुवाँईजी करीब दो वर्षों तक कदमखंडी में रहकर मारवाड़ के गाँव पाटोदी में पहुँचे। परन्तु महाराज जसवंतसिंहजी के जमरूद में होने के कारण वि० सं० १७२८ में वह मेवाड़ चले गए।

३. मन्नासिरे आलमगीरी, पृ० १३१।

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

इसकी सूचना पाते ही महाराज ने अपनी सेना को पठानों पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी । अतः कुछ चुने हुए राठोड़ वीरों ने जाकर उपद्रवियों को मार भगाया । इसके बाद जब इस घटना की सूचना बादशाह को मिली, तब वह स्वयं पठानों को दंड देने के लिये हसनअबदाल की तरफ़ रवाना हुआ । उसके रावलपिंडी पहुँचने पर वि० सं० १७३१ की आषाढ़ वदि ६ (ई० स० १६७४ की १४ जून) को महाराज वहाँ जाकर उससे मिले । बादशाह ने इन्हें खासा खिलअत और ७,००० रुपये की उर्बसी (पोशाक ?) देकर अपनी प्रीति प्रकट की और इनके जमरूद वापस लौटने के समय जड़ाऊ साज की तलवार और तलायर-समेत (अम्बारी-सहित) हाथी देकर इनका सम्मान किया । इसके बाद महाराज ने जमरूद पहुँच स्थान-स्थान पर अपनी चौकियाँ कायम कर दीं । इससे पठान बिल्कुल शांत हो गए । इस पर मँगसिर (दिसम्बर) में बादशाह ने (अपने १८वें राज्यवर्ष के प्रारंभ के उत्सव पर) महाराज के लिये खासा खिलअत भेजा ।

वि० सं० १७३३ की चैत्र वदि ३ (ई० स० १६७६ की १२ मार्च) को जमरूद में महाराज के द्वितीय महाराजकुमार जगतसिंहजी का देहान्त हो गया । इससे महाराज का सारा उत्साह शिथिल पड़ गया और यह उत्तराधिकारी की चिंता से खिन्न रहने लगे । इसके बाद वि० सं० १७३५ की पौष वदि १० (ई० स० १६७८ की २८ नवम्बर) को जमरूद में ही ५२ वर्ष की अवस्था में स्वयं महाराज का स्वर्गवास हो गया ।

१. ख्यातों में लिखा है कि इसके बाद भी पठानों ने दो-तीन बार सिर उठाने की चेष्टा की थी । परन्तु महाराज की सेना के जोधा (गोविंददास के पुत्र) रणछोड़दास, भाटी रघुनाथसिंह, (श्यामसिंह के पुत्र) वीरमदेव आदि ने बड़ी वीरता से युद्ध कर उनको दबा दिया ।
२. मन्नासिरे आलमगीरी, पृ० १३३ ।
३. जमरूद खैबर दर्रे के उस तरफ़ अलीमसजिद के पास है ।
४. मन्नासिरे आलमगीरी, पृ० १३६ ।
५. इनका जन्म वि० सं० १७२३ की माघ वदि ३ (ई० स० १६६७ की ३ जनवरी) को हुआ था ।
६. लेटरमुगल्स-नामक इतिहास में इनके दो पुत्रों का काबुल में मरना लिखा है (देखो भा० १, पृ० ४४) । परन्तु ख्यातों से इसकी पुष्टि नहीं होती ।
७. मारवाड़ की ख्यातों में से किसी में इनका जमरूद में पूर्णमल बुंदेले के बाग़ में और किसी में पेशावर में मरना लिखा है ।

मारवाड़ का इतिहास

इस पर उनके सरदारों ने तत्काल इस घटना की सूचना और महाराज की पगड़ी के मारवाड़ में भेजने का प्रबंध कर दिया ।

‘तवारीख मोहम्मद शाही’ में लिखा है कि यह समाचार सुन औरङ्गजेब ने कहा:—

“ दर्वाज़े कुफ़ शिकस्त ”

अर्थात्—आज कुफ़ (धर्मविरोध) का दरवाज़ा टूट गया । परन्तु जब महल में बेगम ने यह हाल सुना, तो कहा:—

“ इमरोज़ जाये दिल गिरिफ्तगीस्त के ई चुनी रुकने दौलत ब शिकस्त ”

अर्थात्—आज शोक का दिन है कि बादशाहत का ऐसा स्तंभ टूट गया ।

महाराज जसवंतसिंहजी बड़े वीर, मनस्वी, प्रतापी, दूरदर्शी, नीति-निपुण, विद्वान्, कवि, दानी और गुणग्राहक थे । इनकी वीरता, मनस्विता, प्रताप, दूरदर्शिता और नीति-निपुणता का यही सबसे बड़ा प्रमाण है कि यह औरङ्गजेब के बढ़ते हुए प्रताप की कुछ भी परवा न कर समय-समय पर खुल्लमखुल्ला उसका विरोध करते रहते थे और एक बार तो इन्होंने स्वयं उसीकी सेना पर आक्रमण कर उसका खजाना लूट लिया

मन्नासिरे आलमगीरी में हि० सन् १०८६ की ६ ज़ीकाद (वि० सं० १७३५ की पौष सुदि ७=ई० सन् १६७८ की १० दिसम्बर) को महाराज जसवंतसिंहजी की मृत्यु का होना लिखा है (देखो पृ० १७१) ।

श्रीयुत जदुनाथ सरकार ने भी अपनी ‘हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब’ में उस दिन १० दिसम्बर का होना ही लिखा है (देखो भा० ३, पृ० ३६६) । उन्होंने यह भी लिखा है कि जमरूद में महाराज के साथ उनकी ५ रानियाँ और ७ अन्य स्त्रियाँ (परदायतें आदि Concubines, etc.) सती हुई थीं (देखो भा० ३, पृ० ३७३) ख्यातों में इनकी संख्या १५ लिखी है । राजरूपक में लिखा है:—

सतरै संमत पौष पैत्रीसे; दशमी वार ब्रह्मपत दीसै ।

सुरधर छत्र जसो महाराजा; सुरपुर गयो लियाँ ब्रद साजा ।

मिस्टर वी० ए० स्मिथ ने अपनी ‘ऑक्स फोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया’ में लिखा है कि—यदि टॉड और मनुची (Manucci) का विश्वास किया जाय, तो यही मानना होगा कि जसवंतसिंह को औरंगजेब की तरफ़ से विष दिलवाया गया था (देखो पृ० ४३८) ।

१. महाराज अपनी सेना की देख-भाल स्वयं किया करते थे । ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १७२४ (ई० सन् १६६७) में औरंगज़ाद के मुकाम पर शाहज़ादे मुअज़्ज़म ने इनकी सेना के ३,३०० सैनिकों का निरीक्षण कर इनके प्रबन्ध की बड़ी तारीफ़ की थी और इसी से प्रसन्न होकर बादशाह ने इन्हें थिराद और राधनपुर के परगने दिए थे ।

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

था। परन्तु फिर भी बादशाह आलमगीर खुलकर इनका विरोध न कर सका। यद्यपि मन-ही-मन वह इनसे बहुत जलता था, तथापि इन्हें अपने देश से दूर रखने के सिवा इनका कुछ भी न बिगाड़ सका था। उपर्युक्त आक्रमण का बदला लेने के लिये एक बार उसने राव अमरसिंहजी के पुत्र राव रायसिंह को मारवाड़ का राज्य देकर दल-बल-सहित उधर रवाना भी कर दिया था। परन्तु अन्त में उसको मुँह की खानी पड़ी।

इनकी दूरदर्शिता का पता इससे भी लगता है कि वि० सं० १७२३ में इन्होंने अपने राज-कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि कर रिश्वत की सख्त मनाई कर दी थी। इनकी विद्वत्ता और काव्य-निपुणता का पता इनके बनाए साहित्य के ग्रंथ 'भाषाभूषण' से और वेदान्त-विषय के १ सिद्धान्तबोध, २ सिद्धान्तसार, ३ अनुभवप्रकाश, ४ अपरोक्ष-सिद्धान्त और ५ आनन्दविलास नामक छोटे छोटे परन्तु सुबोध ग्रन्थों से मिल जाता है। यह महाराज डिंगल-भाषा के भी अच्छे कवि थे।

इसी प्रकार इनकी दानशीलता और गुणग्राहकता का हाल, इनके लाहौर में एक ही दिन में २२ घोड़े और ३ हाथी अपने सरदारों और कवियों को इनाम में देने तथा वहाँ पर उपस्थित १४ कवियों में से प्रत्येक को डेढ़-डेढ़ हजार रुपये दान देने से प्रकट होता है।

महाराज जसवंतसिंहजी ने करीब ४१ वर्ष राज्य किया था। इनमें के (बादशाह शाहजहाँ के राज्य-समय के) पहले २० वर्ष तो बड़ी ही शांति से बीते। परन्तु पिछले (औरङ्गजेब के समय के) २१ वर्षों में इन्हें अधिक सतर्कता से काम लेना पड़ा।

१. ख्यातों के अनुसार इन्हें सातहजारी जात और सात हजार सवारों के मनसब में (जिसमें के ५,००० सवार दुअस्पा-सेअस्पा थे) १७,२५,००० की आमदनी का प्रदेश मिला था। इसमें मारवाड़ के साथ ही हाडोती, गुजरात, मालवा, बुरहानपुर और हाँसी-हिसार के परगने भी थे। इसके अलावा इन्हें शाही खजाने से ५,२५,००० रुपये, सवारों आदि के वेतन के लिये और भी मिलते थे।
२. यह पुस्तक काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित की है। इन्होंने श्रीमद्भागवत पर भाषा में एक टीका लिखी थी और 'प्रबोधचन्द्रोदय'-नामक नाटक का भाषानुवाद भी किया था।
३. राजकीय कौंसिल की आज्ञा से इन वेदान्त के पाँचों ग्रंथों का संपादन इस इतिहास के लेखक ने वेदान्त-पञ्चक के नाम से किया है। इनके बनाये ग्रन्थों का पूरा विवरण इतिहास के प्रारम्भ में दिया जा चुका है।

मारवाड़ का इतिहास

यद्यपि इनका अधिक समय मारवाड़ से बाहर ही बीतता था, तथापि यह अपने देश के प्रबन्ध की तरफ भी पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। इन्होंने ही काबुल से वहाँ की मिट्टी और अनार के बीज (तथा पौधे) भेजकर जोधपुर के बाहर कागा नामक स्थान में एक बगीचा लगवाया था। यद्यपि यह बगीचा इस समय उजड़ गया है, तथापि यहाँ के पौधों के इधर-उधर फैल जाने से आज भी जोधपुर के अनार मशहूर समझे जाते हैं।

‘मन्नासिरुलउमरा’ से पता चलता है कि इन्होंने औरङ्गाबाद के बाहर (पूर्व की तरफ) अपने नाम पर जसवन्तपुरा बसाकर उसके पास जसवन्तसागर-नामक तालाब बनवाया था और इसी तालाब के तट पर इनके रहने के महल थे।

वि० सं० १७२० में इनकी हाडी रानी ने (जो बूँदी-नरेश हाडा शत्रुसाल की कन्या थी) जोधपुर नगर से बाहर ‘राईका बाग’ नामक एक बाग बनवाकर उसी के पास अपने नाम पर हाडीपुरा बसाया था। यद्यपि इस समय हाडीपुरे का कुछ भी चिह्न बाकी नहीं है, तथापि यह बगीचा आज भी उसी नाम से प्रसिद्ध है। इसी रानी का बनवाया कल्याणसागर-नामक तालाब भी राई के बाग के पास इस समय रातानाडा के नाम से विख्यात है।

इनकी देवड़ी रानी ने वि० सं० १७६५ (ई० सं० १७०८) में सिरौही से आकर सूरसागर के बगीचे में तुला-दान किया था। यह बात उक्त स्थान पर लगे लेख से प्रकट होती है।

इनकी शेखावत रानी ने, जो खंडेला की थी, शेखावतजी का तालाब बनवाया था।

स्वयं महाराज ने वि० सं० १७११ के भादों में पौकरन के किले में एक पौल (दरवाजा) बनवाई थी।

१. देखो भा० ३, पृ० ६०३।

२. यहाँ के वर्तमान महल वगैरा महाराजा जसवंतसिंहजी द्वितीय ने बनवाए थे।

३. इस तालाब का जीर्णोद्धार महाराजा जसवंतसिंहजी द्वितीय के कनिष्ठ भ्राता महाराज प्रतापसिंहजी ने करवाया था।

४. यह बात वहाँ पर के एक लेख से प्रकट होती है।

महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम)

महाराज ने अपने ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीसिंहजी के जन्मोत्सव पर साटीका नामक (नागौर प्रान्त का) का एक गांव जोधपुर के रामेश्वर महादेव के पुजारियों को दिया था ।

१. इसके अलावा महाराज ने कई गाँव और भी दान किए थे:—

१ भाकरवासणी (जैतारण परगने का), २ बासणी नरसिंह ३ बासणी तिरवाड़ियां (सोजत परगने के) ब्राह्मणों को; ४ कामासणी (मेड़ता परगने का) चारभुजा के मंदिर को; ५ बागासणी (जैतारण परगने का), ६ कजोई ७ बेराई (शेरगढ़ परगने के), ८ ऊंचेरिया, ९ बालाधणा (परबतसर परगने के), १० मंडावरा (मेड़ता परगने का), ११ कराणी १२ मोरटऊका (जोधपुर परगने के), १३ गोदेलावास (सोजत परगने का) चारणों को; १४ हीरावास (सोजत परगने का) स्वामियों को और १५ पुनास (मेड़ते परगने का) जगन्नाथरायजी के मन्दिर को ।

महाराजा जसवंतसिंहजी का प्रताप और गौरव

महाराज जसवंतसिंहजी के विषय में अपनी तरफ से कुछ न लिखकर उस समय के और इस समय के लेखकों की कुछ पंक्तियाँ यहाँ पर उद्धृत की जाती हैं। इनसे उनके प्रताप और गौरव का भलीभांति पता चल जायगा:—

“शाहजहाँ ने महाराज जसवंत को, जो हिंदुस्थान के राजाओं में श्रेष्ठ और फौज, सामान तथा रौबदाब में प्रथम था और जिसे बादशाह सल्तनत का मजबूत स्तम्भ समझता था, महाराज का खिताब दिया था” (आलमगीरनामा, पृ० ३२)।

बड़े राजाओं में बड़ा महाराजा जसवंतसिंह (मन्नासिर आलमगीरी, पृ० १७१)।

“जसवंतसिंह के पिछले कार्यों के कारण जो बादशाह के दिल में रंजिश रहा करती थी.....

मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० २५६।

“राजा (जसवंत) फौज और सामान की ज़्यादती से हिंदुस्थान के राजाओं में बड़ा था। परन्तु वारदातों के उतार-चढ़ाव में हमेशा उसका झुकाव एक तरफ ही रहता था, इससे दुनियादारी में ज़्यादा फ़ायदा न उठा सका।

मन्नासिरुलउमरा, भा० ३, पृ० ६०३।

In a letter written in 1659, Aurangzib speaks of Jaswant as “the infidel who has destroyed mosques and built idol-temples on their sites.”

Sarkar's Histroy of Aurangzib, Vol. III p. 368-389.

१. “रुक्ने रक्तीने दौलत व सित्ने क्वीमे सल्तनत”।
२. “उम्दा राजाहाये अज़ाम महाराज जसवंतसिंह”।
३. परन्तु वह इसका बदला इनके जीते-जी न ले सका।
४. ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १७३३ में जिस समय महाराज काबुल में थे, उस समय उनको सूचना मिली कि बादशाह औरंगज़ेब ने मन्दिर गिरवाने की आज्ञा निकाली है। इस पर महाराज ने साथ के शाही अमीरों के सामने क्रोध प्रकट कर कहा कि यदि बादशाह ऐसा करेगा, तो हम भी मसजिदों को गिरवाना शुरू करेंगे। जब उन अमीरों के द्वारा औरंगज़ेब को यह सूचना मिली, तब उसने बख़ेड़ा शान्त करने के लिये अपनी आज्ञा वापस ले ली।

महाराजा जसवंतसिंहजी का प्रताप और गौरव

"A special reason, besides its strategic importance made the kingdom of Marwar a desirable acquisition in Aurangzib's eyes. It was the foremost Hindu state of northern India at this time*. Its chieftain was Jaswant Singh, who enjoyed the unrivalled rank of Maharajah and whom the death of Jai-Singh thirteen years ago had left as the leading Hindu-Peer of the Mughal court. If his powers passed on to a worthy successor, that successor would be the pillar of the Hindu's hopes all over the empire and the centre of the Hindu opposition to the policy of temple destruction and Jziya

Sarkar's History of Aurangzib, Vol. III, p. 367-368

"the death of Jaswant Singh emboldened the imperial bigot to re-impose the hated Jaziya, or poll-tax on non-Muslims "

V. A. Smith's Oxford History of
India, p. 438.

* The Maharana of Udaipur, in spite of his pre-eminent descent, was a negligible factor of the Hindu population of the Mughal world, as he hid himself among his mountain fastness and never appeared in the Mughal Court or camp.

२६. महाराजा अजितसिंहजी

जिस समय जमरूद में महाराजा जसवंतसिंहजी की मृत्यु हुई, उस समय उनकी नरुकी और जादमर्न (वंश की) दो रानियाँ गर्भवती थीं । इसीसे महाराज के साथ के सरदारों ने इन्हें सती होने से रोक लिया । इसके बाद महाराज के द्वादशाह का कार्य समाप्त हो जाने पर ये लोग इन्हें साथ लेकर, वि० सं० १७३५ की माघ सुदि १३ (ई० स० १६७६ की १४ जनवरी) को, लाहौर की तरफ़ रवाना हो गए ।

इनके अटक नदी के पास पहुँचने पर, पहले तो वहाँ के शाही हाकिम ने इन्हें, बादशाही आज्ञा या काबुल के सूबेदार का परवाना न होने के कारण, रोकने की चेष्टा की । परन्तु जब ये लोग मरने-मारने और नावों पर जबरदस्ती अधिकार करने को उद्यत हो गए, तब अंत में उसने इन्हें अटक पार करने की आज्ञा दे दी^१ । इसके बाद इनके लाहौर पहुँचने पर वि० सं० १७३५ की चैत बदी ४ (ई० सन् १६७६ की १६ फ़रवरी) बुधवार को दोनों रानियों के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए । इनमें से बड़े राज-कुमार का नाम अजितसिंह और छोटे का दलथंभन रक्खा गया ।

१. बालकृष्ण दीक्षित-रचित 'अजित-चरित्र' में लिखा है:-

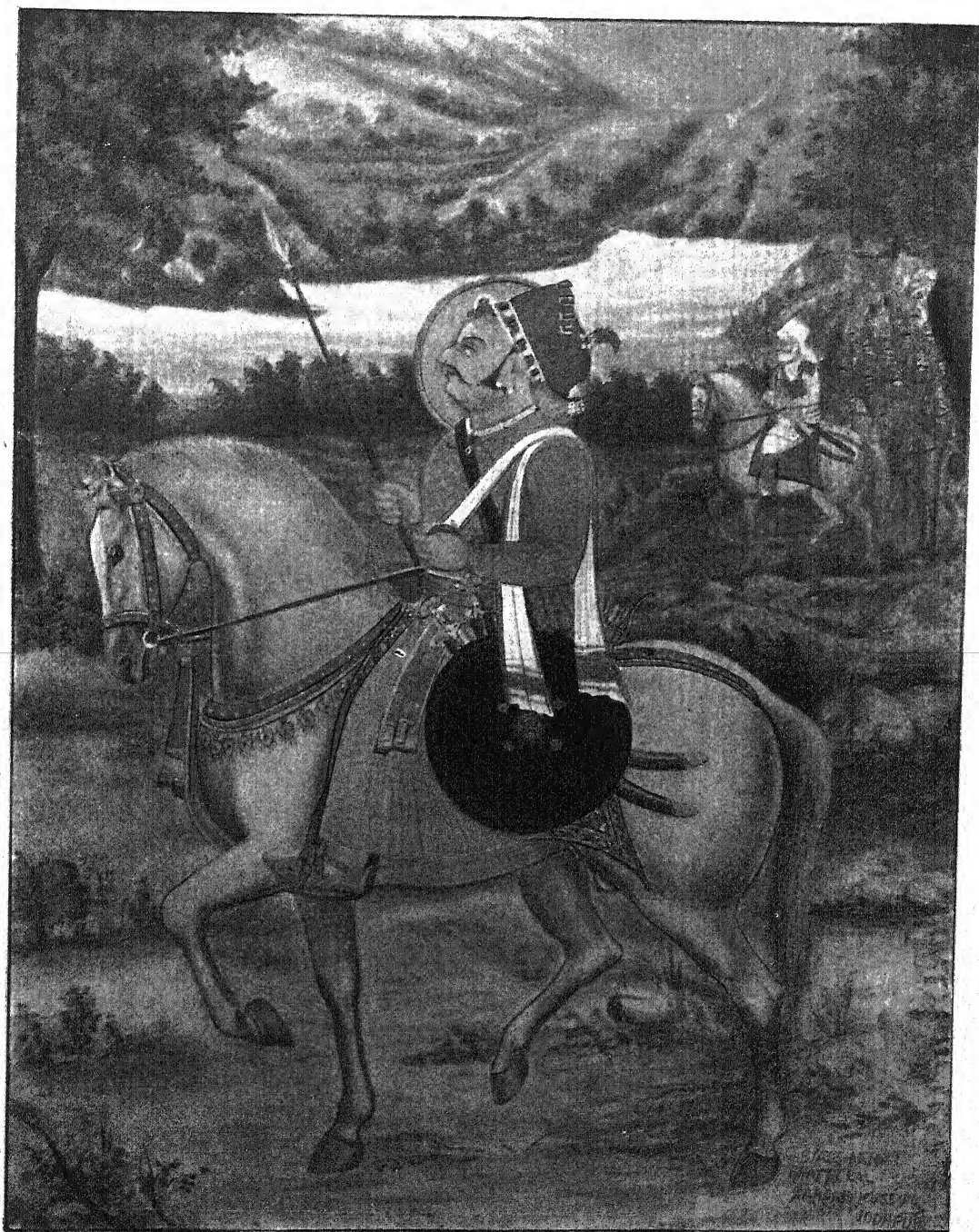
अतःपरं यादवराजपुत्र्या जन्मान्तरीयं कथयाम्युदन्तम् ;

अजीतसिंहो जनितो ययात्र कार्ये गुणाः कारणातो भवन्ति ।

(सर्ग ६, श्लोक १)

२. 'सैहखल-मुताखरीन' में राठोड़-सरदारों का 'मीरबहर' को आहूत और परास्तकर अटक पार होना लिखा है । (देखो जिल्द १, पृ० ३४३) ।

'मुंतख़िबुल्लुबाब' से भी इस बात की पुष्टि होती है । (भा० २, पृ० २५६) ।



२६. महाराजा अजितसिंहजी

वि० सं० १७६३-१७८१ (ई० सं० १७०७-१७२४)

महाराजा अजितसिंहजी

इधर यह हो रहा था, और उधर बादशाह औरङ्गजेब महाराजा जसवंतसिंहजी के मरने की सूचना पाते ही स्वर्गवासी महाराज के कुटुम्ब से बदला लेने का प्रबन्ध करने लगा। यद्यपि महाराजा जसवंतसिंहजी की बारबार की छेड़छाड़ से वह प्रारंभ से ही उनसे मन-ही-मन द्वेष रखता था, तथापि उनके जीते-जी उनसे खुलकर शत्रुता करने की उसकी हिम्मत न होती थी। परन्तु महाराज के इस प्रकार निस्संतान मर जाने से उसे अच्छा मौका मिल गया। इसलिये वि० सं० १७३५ की माघ सुदी १२ (ई० सन् १६७६ की १३ जनवरी) को उसने खिदमतगुजारखाँ को जोधपुर का किलेदार, ताहिरखाँ को फौजदार, शेख अनवर को अमीन (तहसीलदार) और अब्दुलरहीम को कोतवाल बनाकर मारवाड़ की तरफ़ रवाना कर दिया। इसके कुछ दिन बाद वह स्वयं भी मारवाड़ पर पूर्ण अधिकार करने के लिये अजमेर की तरफ़ चला। साथ ही उसने असदखाँ, शाहस्ताखाँ और शाहजादे अकबर को भी अपने-अपने सूबों से वहाँ पहुँचने की आज्ञाएँ भेज दीं। परन्तु औरङ्गजेब के मन में स्वर्गवासी महाराज से इतना डाह था कि उसे अपने अजमेर पहुँचने तक का बिलम्ब भी सहन न हो सका। इसी से उसने मार्ग से ही, फाल्गुन सुदी ७ (७ फरवरी) को, खाँजहाँ बहादुर और हुसैनअलीखाँ आदि बड़े-बड़े अमीरों को मारवाड़ पर अधिकार करने के लिये आगे भेज दिया।

१. मन्नासिरेआलमगीरी पृ० १७२। भट्ट जगजीवन रचित 'अजितोदय' नामक (३२ सर्गों के) ऐतिहासिक संस्कृत-काव्य से ज्ञात होता है कि बादशाह की आज्ञा से पहले-पहल मारवाड़ पर अधिकार करने के लिये इक्षितयारखाँ नाम का अमीर अजमेर से मेड़ते आया था। परन्तु उसके आगमन की सूचना पाते ही राठोड़ वीर उसके मुक़ाबले को पहुँच गए। इसलिये उसे नगर के बाहर ही रुक जाना पड़ा। इसके बाद उसने पत्र द्वारा यहाँ का सारा हाल बादशाह को लिख भेजा। इसी से उसे स्वयं अजमेर की तरफ़ आना पड़ा। (सर्ग ५, श्लो० ३४-४३)।

औरङ्गजेब ने वि० सं० १७३५ की चैत्र बदी ११ (ई० सन् १६७६ की २६ फरवरी) को इसी (इक्षितयारखाँ) इफ़तख़ारखाँ के स्थान पर तहक्कुरखाँ को अजमेर का फौजदार नियत किया था। (मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १७३)।

२. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १७२।

मारवाड़ का इतिहास

इसी बीच महाराजा जसवंतसिंहजी की मृत्यु का समाचार पाकर उनके सरदार भी अपने-अपने स्थानों से आकर जोधपुर में एकत्रित होने और ख्वाँजहाँ बहादुर से सम्मुख रण में लोहा लेने का विचार करने लगे। परन्तु अन्त में भाटी रघुनाथसिंह ने महाराजा के मंत्री कायस्थ केसरीसिंह से सलाहकर रानियों के पुत्र उत्पन्न होने की सूचना मिलने और स्वर्गवासी महाराज के साथ के दल के मारवाड़ में पहुँचने तक युद्ध करने का विचार रोक दिया, तथा भाटी रामसिंह को कुछ सरदारों के साथ ख्वाँजहाँ बहादुर से संधि करने के लिये खाना किया। भाटी रामसिंह ने उसके पास पहुँच मारवाड़ का अधिकार उसे सौंप देने का वादा कर लिया। परन्तु इसके साथ ही यह शर्त तय की कि यदि महाराज की गर्भवती रानियों में से किसी के गर्भ से भी पुत्र उत्पन्न होगा, तो बादशाह की तरफ से मारवाड़ का राज्य उसे लौटा दिया जायगा।

इसके बाद ख्वाँजहाँ बहादुर ने मेड़ते पहुँच उसे शाही अधिकार में ले लिया। वहाँ से चलकर जिस समय वह पीपाड़ पहुँचा, उसी समय लाहौर में महाराजकुमारों के जन्म होने की सूचना भी सरदारों के पास आपहुँची। यहाँ से आगे बढ़कर ख्वाँजहाँ ने जोधपुर पर अधिकार करने का इरादा किया, और वह नगर के बाहर पहुँच शेखावतजी के तालाब पर ठहर गया। इसकी सूचना पाते ही चौपावत वीर सोनम ने उसको रोकने का इरादा किया। परन्तु भाटी रघुनाथसिंह आदि ने समय की गति का ध्यान दिलाकर उसे ऐसे समय युद्ध छेड़ने से रोक लिया। इस पर ख्वाँजहाँ ने जोधपुर का प्रबन्ध ताहिरखाँ को सौंप सिवाना, सोजत, जैतारण आदि के प्रांतों पर भी यवन-शासक नियत कर दिया। इस प्रकार मारवाड़ पर यवनों का अधिकार हो जाने से यहाँ के मन्दिर और मूर्तियाँ नष्ट की जाने लगीं। परन्तु बालक महाराजकुमारों और उनके मुख्य-मुख्य सरदारों के मारवाड़ से बाहर होने के कारण यहाँ उपस्थित राठोड़-वीरों ने उपद्रव करना उचित न समझा।

१. अजितोदय में इसका नाम बहादुरखाँ लिखा है। (देखो सर्ग ५, श्लो० ४४)।

२. यह लवरे का ठाकुर था।

३. अजितोदय, सर्ग ५, श्लो० ४५-५४।

४. अजितोदय, सर्ग ५, श्लो० ५५-५६।

५. यह चौपावत विठ्ठलदास का पुत्र था।

६. अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० २७-२८।

७. अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० ४६, ५१-५३।

बादशाह भी वि० सं० १७३५ की चैत्र वदी ४ (ई० सन् १६७६ की १६ फ़रवरी) को अजमेर पहुँच उपर्युक्त कार्यों की गति-विधि देख रहा था । परन्तु चैत्र वदी ११ (२६ फ़रवरी) को जब उसे स्वर्गवासी महाराज के वकील द्वारा महाराज-कुमारों के जन्म की सूचना मिली, तब उसने अपना पथ निष्कंटक करने लिये दिल्ली लौटने का विचार किया । इसी के अनुसार उधर तो वि० सं० १७३६ की चैत्र सुदी ६ (१० मार्च) को उसने सैयद अब्दुल्लाख़ाँ को स्वर्गवासी महाराज के सामान और द्रव्य आदि पर अधिकार करने के लिये सिवाने के दुर्ग पर भेजा, और उधर स्वर्गवासी महाराजा के माल-असबाब पर अधिकार करने तथा मारवाड़-राज्य की आय का हिसाब तैयार करने का प्रबन्ध कर स्वयं दोनों नवजात कुमारों को छीन लेने के लिये दिल्ली को चला ।

यद्यपि बादशाह औरङ्गज़ेब मजहबी मामलों में कड़र होने के कारण आरंभ से ही हिंदुओं से मन-ही-मन बड़ा द्वेष रखता था, तथापि महाराजा जसवंतसिंहजी के जीते-जी उसे खुलकर प्रकट नहीं कर सकता था । अतः इस समय उनका स्वर्गवास हो जाने से वह निरशंक हो गया, और दिल्ली पहुँचते ही वि० सं० १७३६ की वैशाख सुदी २ (ई० सन् १६७६ की २ अप्रैल=हि० सन् १०६० की १ रबी-उल्-अव्वल) को उसने हिंदुओं से जज़िया वसूल करने की आज्ञा प्रचारित कर दी ।

जब मारवाड़ में पूरी तौरसे बादशाही प्रबन्ध हो गया, तब ख़ाँजहाँ बहादुर भी मन्दिरों के तोड़ने से एकत्रित हुई मूर्तियों को गाड़ियों में भरवा कर द्वितीय ज्येष्ठ वदी ११

१. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १७२-१७४

२. 'अजितोदय' में बहादुरख़ाँ (ख़ाँजहाँ) के द्वारा कोचकबेग़ का सिवाने भेजा जाना लिखा है । (देखो सर्ग ६, श्लो० ५१) परन्तु यदुनाथ सरकार की लिखी 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' से ज्ञात होता है कि चैत्र वदी १४ (१ मार्च) को पहले-पहल ख़िदमत गुज़ारख़ाँ ही सिवाने के क़िले और ख़ज़ाने पर अधिकार करने के लिये भेजा गया था । परन्तु जब वहाँ का ख़ज़ाना उसके हाथ न लगा, तब दूसरा सेनापति (सैयद अब्दुल्लाख़ाँ) वहाँ के लिये नियत किया गया, और उसको आज्ञा दी गई कि वहाँ की पृथ्वी तक को खोदकर माल-असबाब का पता लगावे । (देखो भा० ३, पृ० ३७०-३७१) ।

३. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १७४ । यह मजहबी कर था, जो मुसलमान बादशाह मुसलमानेतर धर्म वालों से लिया करते थे । परन्तु अकबर ने इस प्रथा को अपने राज्य के लिये हानिकारक समझ बंद कर दिया था ।

मारवाड़ का इतिहास

(२५ मई) को दिल्ली जा पहुँचा । उसीके साथ भाटी रघुनाथ और मंत्री केसरीसिंह (कायस्थ) भी कई सरदारों को लेकर बादशाह से प्रार्थना करने के लिये दिल्ली गए थे ।

इस के बाद काबुल से चला राठोड़ों का दल भी कुछ दिन लाहौर में ठहर आषाढ़-शुक्ल (जून के अन्त) में दिल्ली आ पहुँचा, और मारवाड़ से आए हुए सरदारों के साथ मिलकर बादशाह से बालक महाराज अजितसिंहजी को मारवाड़ का राज्य देने का आग्रह करने लगा । इस पर बादशाह ने उनसे कहा कि अभी महाराजकुमार बालक हैं । इसलिये कुछ दिन तक इन्हें और इनकी माताओं को नूरगढ़ में रहने दो । जब यह बड़े हो जायँगे, तब इन्हें इनका राज्य दे दिया जायँगा । परन्तु राठोड़ों ने यह बात नहीं मानी । यह देख औरङ्गजेब ने राठोड़ सरदारों को अनेक तरह के प्रलोभन देना प्रारंभ किया । जब इसमें भी उसे सफलता नहीं मिली, तब उसने स्वर्गवासी महाराज के मंत्री केसरीसिंह से महाराज के खजाने का हिसाब आदि समझाने का बखेड़ा शुरू किया, और उसके इनकार करने पर उसे कैद कर लिया । परन्तु इस पर भी वह स्वामि-भक्त मंत्री विचलित न हुआ, और अन्न-जल त्यागकर इस संसार के बन्धन से ही मुक्त हो गया ।

१. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १७५ । उसमें यह भी लिखा है कि बादशाह ने ख़ाँजहाँ को शाबाशी देकर आज्ञा दी कि इन मूर्तियों को दरबार के चौक और जुमा-मसजिद के आगे डलवा दे, ताकि ये लोगों के पाँवों के नीचे कुचली जाती रहें । इनमें की कुछ मूर्तियाँ सोने, चाँदी, तँबे और पीतल की तथा कुछ जड़ाऊ और कुछ पत्थर की थीं ।
२. अजितोदय में ख़ाँजहाँ का पहले राठोड़-सरदारों को लेकर बादशाह के पास अजमेर जाना और वहाँ से उसके साथ ही दिल्ली लौटना लिखा है । (देखो सर्ग ६, श्लो० ५६-५७) ।

ईश्वरदास ने लिखा है कि ख़ाँजहाँ के मारवाड़ का राज्य महाराज जसवंतसिंह के नवजात कुमार को देने का निवेदन करने पर बादशाह उससे अप्रसन्न हो गया । 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब', भा० ३, पृ० ३७२ का फुटनोट *

नहीं कह सकते कि यह घटना इसी अवसर की है या बादशाह के दुबारा अजमेर आने पर भाटी रामसिंह के बादशाह को समझाने के लिये ख़ाँजहाँ को पत्र लिखने के समय की है । (देखो अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० १८) ।

३. वास्तव में यह ईस्वी सन् १६७६ की जुलाई में दिल्ली पहुँचा था ।

४. अजितोदय में सलेमकोट लिखा है । (सर्ग ६, श्लो० ६६) ।

५. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १७७ ।

६. अजितोदय, सर्ग ६, पृ० ६७-७३, ७६ ।

महाराजा अजितसिंहजी

इसी बीच बादशाह ने राठोड़ सरदारों में फूट डालने के लिये स्वर्गवासी महाराज के बड़े भ्राता राव अमरसिंहजी के पौत्र (रायसिंह के पुत्र) इंद्रसिंह को खासा खिलअत, जड़ाऊ साज की तलवार, सोने के साज का घोड़ा, हाथी, नक्कारा और निशान देकर जोधपुर का राजा बना दिया। इस पर उसने भी इसकी एवज में बादशाह को ३६ लाख रुपये नज़र करने की प्रतिज्ञा की। इसके बाद वह जोधपुर पर अधिकार करने के लिये दिल्ली से नागौर पहुँचा, और वहाँ के राठोड़-सरदारों को अपनी तरफ़ मिलाने की कोशिश करने लगा। 'अजितोदय' से ज्ञात होता है कि यह नागौर से जोधपुर भी आया था, परन्तु वहाँ के राठोड़ों ने आपस में ही लड़कर अपना बल क्षीण करना उचित न जान उससे किसी प्रकार की छेड़-छाड़ नहीं की।

इसके बाद राठोड़-वीरों ने सलाहकर बादशाह से प्रार्थना की कि हममें से बहुत से सरदार अपने-अपने कुटुम्बों के साथ देश को जाना चाहते हैं। इसलिये यदि आप आज्ञा दें, तो रवाना हो जायँ। इस पर बादशाह ने वहाँ पर इनकी संख्या के कम हो जाने में अपना लाभ समझ यह बात स्वीकार कर ली। परन्तु साथ ही यह आज्ञा भी दी

ख्यातों में लिखा है कि इस घटना के समय सिंधी सुंदरदास ने बादशाह को प्रसन्न करने के लिये स्वामि-धर्म का त्यागकर खजाने का सारा भेद उसे बतला दिया था।

१. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १७५-१७६।

२. देखो सर्ग ६, श्लो० १-७।

३. ख्यातों में लिखा है कि राव इन्द्रसिंह बादशाह से मारवाड़ का अधिकार पाकर जोधपुर पहुँचा। इस पर पहले तो चांपावत सोनग आदि सरदारों ने मिलकर उसका सामना करने का इरादा किया, परन्तु फिर शीघ्र ही इन्द्रसिंह के अपने पुत्र को भेजकर प्रलोभन दिलवाने से वे उससे मिल गए और जोधपुर का क़िला उसे सौंपने का विचार करने लगे। इसकी सूचना मिलते ही दुर्गादास ने सोनग को शत्रुपक्ष में जाने से रोकने के लिये एक पत्र लिखा। परन्तु इन्द्रसिंह के दिए प्रलोभन के सामने इसका कुछ भी असर न हो सका। इसके बाद जब वि० सं० १७३६ की भादों सुदि ७ (ई० सन् १६७६ की २ सितम्बर) को यहां का क़िला इन्द्रसिंह को सौंप दिया गया, तब शीघ्रही उसने अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दी। यह देख सोनग आदि सरदार सिरौही पहुँच दुर्गादास से मिले। इस पर पहले तो उसने उन्हें इन्द्रसिंह के दिए प्रलोभन में पड़ जाने के लिये बड़ा उलाहना दिया, परन्तु फिर सबने मिलकर यवनों से युद्ध करना ठान लिया।

४. सैहखलमुताखरीन, भा० १, पृ० ३४३।

मारवाड़ का इतिहास

कि नवजात कुमारों और दोनों रानियों को यहीं रक्खा जाय । इस पर दुर्गादास आदि तीन सौ सरदार तो दिल्ली में रहे, और बाकी सरदार जोधपुर को खाने हो गए ।

इसी समय राजकुमार दलथंभन का स्वर्गवास हो गया । अतः इन लोगों ने बालक नरेश अजितसिंहजी को वहाँ से निकाल ले जाने का प्रबन्ध किया । यद्यपि इनकी देखभाल के लिये शाही गुप्तचरों और सैनिकों का पहरा बिठा दिया गया था, तथापि सरदारों ने इन्हें बलूदे के चाँदावत सरदार मोहकमसिंह की स्त्री बाघेली के साथ सकुशल दिल्ली से निकाल दिया ।

‘अजितोदय’ में लिखा है कि चाँदावत मोहकमसिंह की स्त्री ने अपनी दूध पीती हुई कन्या को तो अजितसिंहजी की धाय को सौंप दिया, और वह स्वयं इन्हें लेकर मारवाड़ की तरफ़ खाना हो गई । यह देख उसका पुत्र हरिसिंह और खीची वीर मुकुंददास भी उसके पिछे हो लिए । इन लोगों के निकल जाने पर दिल्ली में ठहरे हुए सरदारों ने शाही पुरुषों को धोका देने के लिये एक बालक को बनावटी राजकुमार बना लिया था ।

मारवाड़ में पहुँचने पर कुछ दिन तो बालक महाराज बलूदे में ही रहे, परन्तु इसके बाद उक्त स्थान के चारों तरफ़—जैतारण, मेड़ता, बीलाड़ा और सोजत आदि में मुसलमानों का अधिकार देख खीची मुकुंददास और दुर्गादास इन्हें सिरोही की तरफ़ ले गए, और वहाँ पर स्वर्गवासी महाराजा जसवंतसिंहजी की रानी देवेंद्रीजी की सलाह से पुरोहित जयदेव नामक पुष्करणे ब्राह्मण की स्त्री को सौंप दिया । इस पर वह ब्राह्मणी भी अपने गांव कालिंदी में रहकर बड़ी होशियारी से इनका लालन-पालन करने लगी । खीची मुकुंददास भी संन्यासी का वेशकर वहाँ आस-पास में बस गया, और दूर से ही बालक महाराज पर दृष्टि रखने लगा ।

१. अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० ८५-९० ।

२. अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० ९१-९३, ‘राजरूपक’ में मोहकमसिंहजी की स्त्री का उल्लेख नहीं है । (देखो पृ० ११) ।

३. अजितोदय, सर्ग ७, श्लो० १ ।

४. अजितोदय, सर्ग ७, श्लो० ४-७ ।

५. क्योंकि सिरोही का राव बादशाह के भय से इन्हें अपने यहाँ रखने में सहमत नहीं हो सका था ।

६. ‘राजपूताने के इतिहास’ में लिखा है कि राठोड़ दिन्नी से अजितसिंह की साथ लेकर मारवाड़ की तरफ़ गए, परन्तु संपूर्ण जोधपुर-राज्य पर बादशाह का अधिकार हो जाने



Rathor Vir Durgadas

राठोड़ वीर दुर्गादास

राठोड़-वीर दुर्गादास

जन्म-वि० सं० १६६५ (ई० स० १६३८) स्वर्गवास-वि० सं० १७७५ (ई० स० १७१८)

महाराजा अजितसिंहजी

इस प्रकार जब बहुत से राठोड़-सरदार मारवाड़ की तरफ चले गए, तब पीछे से सावन बदी २ (१५ जुलाई) को बादशाह ने दिल्ली के कोतवाल फौलादख़ाँ को

से अजितसिंह की चिंता रहने के कारण दुर्गादास, सोनिंग आदि ने महाराणा राजसिंह को अर्जी लिखकर अजितसिंह को अपनी शरण में लेने की प्रार्थना की। उसे स्वीकार करने पर वे अजितसिंह को महाराणा के पास ले गए और महाराणा को सब ज़ेवर-सहित एक हाथी, ११ घोड़े, एक तलवार, रत्न-जटित कटार, दस हजार दीनार (चाँदी का सिक्का) नज़र किए। महाराणा ने उसे १२ गाँवों-सहित केलवे का पट्टा देकर वहाँ रक्खा, और दुर्गादास आदि से कहा कि बादशाह सीसोदियों और राठोड़ों की सम्मिलित सेना का मुकाबला नहीं कर सकता, आप निश्चिन्त रहिए। (देखो भा० ३, पृ० ८६५)।

वह (सोनिंग) उस (महाराजा जसवंतसिंह) की मृत्यु के पीछे राठोड़ दुर्गादास के साथ महाराजा अजितसिंह को लेकर महाराणा राजसिंह के पास आया। अजितसिंह के मेवाड़ से चले जाने के पश्चात् सोनिंग भी राठोड़ दुर्गादास के साथ राठोड़ों की सेना का मुखिया बनकर लड़ा। (देखो भा० ३, पृ० ८६७ पर का पृ० ८६६ के फुटनोट १८ का शेषांश)।

औरंगज़ेब के साथ महाराणा की संधि होने के पश्चात् सोनिंग आदि राठोड़ महाराजा अजितसिंह को मेवाड़ से सिरौही इलाके में ले गए, वहाँ वह कुछ वर्षों तक गुप्त-रूप से रखा गया। (देखो भा० ३, पृ० ८६६ का फुट नोट नं० ३)।

जोधपुर के महाराज अजितसिंह ने भी उन (सिरौही के देवड़ों) की सहायता की, क्योंकि वह उदयपुर छोड़ने के बाद कई वर्ष तक सिरौही-राज्य में रहा था। इस बात से महाराणा और अजितसिंह के बीच मनमुटाव हो गया। परन्तु कुछ समय बाद स्वयं अजितसिंह ने महाराणा से मेल करना चाहा। महाराजा को जोधपुर प्राप्त करने के लिये महाराणा की सहायता की आवश्यकता थी। (देखो भा० ३, पृ० ६१०)।

परन्तु वास्तव में बालक महाराजा अजितसिंहजी दिल्ली से चाँदावत ठाकुर मोहकमसिंह की ठकुरानी के साथ बलूदे भेज दिए गए थे। उस समय खीची मुकुंददास भी इनके साथ था। इसके बाद वहाँ पर बालक महाराज का सुरक्षित रहना असंभव समझ राठोड़-वीर दुर्गादास और मुकुंददास इन्हें लेकर सिरौही पहुँचे और वहाँ पर उन्होंने स्वर्गवाही महाराजा जसवंतसिंहजी की रानी देवड़ीजी की सलाह से इनको कालिंदी के पुष्करणे ब्राह्मण जयदेव की स्त्री को गुप्त-रूप से सौंप दिया।

इस विषय में हम मारवाड़ और मेवाड़ के इतिहासों को छोड़ कर तटस्थ लेखक यदुनाथ सरकार की 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' से कुछ अवतरण उद्धृत करते हैं:-

..... दुर्गादास आकर फिर (मार्ग में) अपने बालक महाराज से मिला और उन्हें (२३ जुलाई को) सकुशल मारवाड़ में ले आया।

अजितसिंह ने गुप्त-रूप से आबू के दुर्गम पर्वतों के मठ में परवरिश पाई। (भा० ३, पृ० ३७८)।

मारवाड़ का इतिहास

राठोड़ों के स्थान पर भेजा। उसे आज्ञा दी गई थी कि वह अजितसिंहजी के साथ ही

उसी में आगे लिखा है कि:-

इस समय उदयपुर-नरेश के सामने दो बातें थीं। या तो वे बागी राठोड़ों का साथ देते या अपनी स्वाधीनता को छोड़ते। मारवाड़ पर बादशाही अधिकार हो जाने से उनके पहाड़ी स्थान भी खतरे में पड़ गए थे। इसके अलावा महाराना को भी जज़िया देने के लिये दबाया गया था। इसीसे महाराना ने राठोड़ों का साथ दिया। बहुत-से सीसोदिये भी गोड़वाड़ में आए हुए राठोड़ों से मिल गए थे। (देखो भा० ३, पृ० ३८२-३८३)।

इसके अलावा उस समय महाराजा जसवंतसिंहजी का सारा माल-असबाब बादशाह ने छीन लिया था और सारे ही मारवाड़ पर मुगलों का अधिकार हो गया था। इससे राठोड़-सरदार भी संकट में थे। ऐसी हालत में बालक महाराज की तरफ से महाराना को सब ज़ेवरों से सजा हुआ हाथी और दस हजार रुपये आदि नज़र करना और उनका महाराज को मेवाड़ में रखकर जागीर देना कहाँ तक ठीक है।

इसीप्रकार अजितसिंह के मेवाड़ से चले जाने पर सोनग का राठोड़ दुर्गादास के साथ होकर शाही सेना से लड़ने का उल्लेख भी विचारणीय है; क्योंकि इन दोनों ने वि० सं० १७३६ (ई० सन् १६८०) में ही जालोर के बिहारी पठान फ़तेहख़ाँ पर हमला किया था।

अस्तु। यहाँ पर इन इधर-उधर की बातों को छोड़कर वास्तविक बात पर विचार करना ही उचित है।

स्वयं 'राजपूताने के इतिहास' में बादशाह के और महाराना के बीच वि० सं० १७३८ की श्रावण बदी ३ (ई० सन् १६८१ की २४ जून) को संधि होना लिखा है (देखो भा० ३, पृ० ८६७), परन्तु दुर्गादास तो इससे २३ दिन पूर्व ही दक्षिण में शंभाजी के राज्य के पालीनगर में जा पहुँचा था। (देखो 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब,' भा० ४, पृ० २४६) 'मन्नासिरेआलमगीरी' में भी अकबर और दुर्गादास का (हि० सन् १०६२ की ७ जमादि-उल-अव्वल (वि० सं० १७३८ की ज्येष्ठ सुदि ८=ई० सन् १६८१ की १५ मई) को दक्षिण में पहुँचना लिखा है, और महाराना के साथ की संधि की तिथि ७ जमादि-उल-आख़िर (आषाढ़ सुदी ६=१४ जून) लिखी है। (देखो पृ० २०६-२०८) ऐसी हालत में उक्त घटना के बाद दुर्गादास का बालक महाराज को ले जाकर सिरोही की तरफ़ छिपाना और सोनग के (जो उसके दक्षिण से लौटने के पूर्व ही मर चुका था) साथ मिलकर शाही सैनिकों से युद्ध करना कहाँ तक संभव हो सकता है।

रहा महाराज को जोधपुर प्राप्त करने में महाराना की सहायता की आवश्यकता का प्रतीत होना, सो न तो स्वयं 'राजस्थान के इतिहास' में ही वि० सं० १७६३ (ई० सन् १७०७) की घटनाओं में इस प्रकार की सहायता का उल्लेख है, न किसी अन्य इतिहास में ही। हाँ हम यह मान लेने को तैयार हैं कि अन्य अनेक राजनैतिक कारणों से सीसोदियों के भी राठोड़ों के साथ बगावत इख़्तियार कर लेने से दोनों पक्षों को एक-दूसरे से समय-समय पर सहायता मिलती थी, और वे एक-दूसरे के रहस्यों से भी बहुत कुछ परिचय रखते थे। परन्तु इससे यह सिद्ध करना कि जोधपुर के बालक महाराज को शरण देने के कारण ही महाराना को बादशाह का कोप-भाजन होना पड़ा था, नितांत असत्य है।

महाराजा अजितसिंहजी

स्वर्गवासी महाराज की दोनों रानियों को भी रूपसिंह राठोड़ की हवेली से लाकर नूर-गढ़ में रख दे, और यदि उनके साथ के राठोड़ इसमें बाधा दें, तो उन्हें दंड दे। इसी के अनुसार वह शाही सैनिकों को लेकर राठोड़ों के स्थान पर जा पहुँचा, और उनसे बादशाह की आज्ञा के पालन करने का आग्रह करने लगा। परन्तु स्वामि-भक्त राठोड़ इसकी कुछ भी परवा न कर युद्ध के लिये तैयार हो गए।

जैसे ही यह समाचार महाराज की दोनों रानियों के पास पहुँचा, वैसे ही वे भी मर्दाना वेशकर अपने सुभटों का युद्ध देखने और उन्हें उत्साहित करने को मैदान में आ खड़ी हुई। यह देख शाही सेना ने राठोड़ों पर हमला कर दिया। इस पर दोनों तरफ से घमसान युद्ध मच गया। पहले पहल भाटी रघुनाथ (की अध्यक्षता में १०० राजपूत वीरों) ने बड़ी वीरता से यवन-बाहिनी का सामना किया। इस युद्ध में दोनों तरफ के अनेक योद्धा मारे गए। इसके बाद जब राठोड़ों की संख्या बहुत कम रह गई, तब दुर्गादास आदि बचे हुए सरदारों ने दोनों रानियों के क्षत-विक्षत शरीरों को यमुना में

१. बादशाह ने इन्द्रसिंह को जोधपुर का राज्य देने के साथ ही दिल्ली में की महाराज की हवेली भी दे दी थी। इसलिये ये लोग किशनगढ़-नरेश की हवेली में ठहरे थे। 'अजितोदय' में सरदारों का यमुना के किनारे ठहरना लिखा है। (देखो सर्ग ६, श्लो० ५८)।

२. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १७७-१७८; अजितोदय, सर्ग ७, श्लो० १०-१८।

३. अजितोदय, सर्ग ७, श्लो० १६-२०। 'राजरूपक' में लिखा है कि रानियों ने अपने सिर कटवाकर पति का अनुगमन किया था। किसी-किसी ख्यात में इनके सिर काटनेवाले का नाम जोधा चंद्रभान लिखा है। यदुनाथ सरकार ने अजितसिंहजी की माता का मेवाड़ राजवंश की होना और उसका दिल्ली से मारवाड़ पहुँच महाराना से सहायता माँगना लिखा है। (हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब, भा० ३, पृ० ३७७-३७८ और ३८३-३८४) यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

वी० ए० स्मिथ ने भी अपनी 'ऑक्सफ़र्ड हिस्ट्री ऑफ़ इन्डिया' में करीब-करीब यही बात लिखी है। (देखो पृ० ४३८)।

बालकृष्ण दीक्षित-रचित 'अजित-चरित्र' में लिखा है—

प्रेषणीयावतो देशे धात्रीभ्यां सहिताभुभौ ;

युद्धेस्मिन्गतिरस्माकं खड्गेनैव न संशयः ।

तदा क्षत्रिया विस्मिताः प्रोचुरेनां

स्वदेशेषु-युक्तो गमः श्रीमतीनाम् ;

तथा नेति चोक्तं गमः पुत्र योस्ते

ध्वजिन्या समं कारयामासुरेते ।

(सर्ग ८, श्लो० ११-१२।)

मारवाड़ का इतिहास

प्रवाहित कर लड़ते-भिड़ते मारवाड़ का मार्ग लिया। तुगलकाबाद तक तो शाही सेना भी इनके पीछे लगी रही, परन्तु अंत को रात्रि के कारण उसे आगे बढ़ने का साहस न हुआ।

राठोड़ों के चले जाने के बाद जब फौलादख़ाँ को बालक महाराज का कुछ भी पता न चला, तब उसने उनके बदले एक दूध बेचनेवाले के बालक को लेजाकर बादशाह के सामने उपस्थित कर दिया। बादशाह ने भी उसे वास्तविक राजकुमार समझ उसका नाम मोहम्मदीराज रक्खा, और उसे अपनी कन्या ज़ेबुनिसा बेगम

१. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १७८। उक्त इतिहास में यह भी लिखा है कि इस युद्ध में राठोड़ों के जोधा रणछोड़दास आदि ३० सरदार मारे गए, और बादशाह के बहुत से सैनिक क़त्ल हुए।

अजितोदय, सर्ग ७ श्लो० १६-८८।

परन्तु यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि जिस समय भाटी रघुनाथ यवन-सैनिकों का ध्यान अपनी तरफ़ खींचे हुए था, उसी समय राठोड़ दुर्गादास रानियों को मरदाने भेस में लेकर मय राजकुमार के मारवाड़ की तरफ़ चल पड़ा। परन्तु जब डेढ़ घंटे के युद्ध में अन्य ७० राजपूत-वीरों के साथ ही रघुनाथ भी मारा गया, तब यवनों ने दुर्गादास का पीछा किया, और उसके करीब ६ मील पहुँचते-पहुँचते उसे जा घेरा। इस पर रणछोड़दास जोधा ने थोड़े-से वीरों को लेकर उनका मार्ग रोक लिया। परन्तु इन मुट्ठी-भर वीरों के मारे जाने पर फिर मुग़ल सैनिकों ने इनका पीछा किया। तब दुर्गादास ने महाराज के परिवार को तो ४० योद्धाओं के साथ मारवाड़ की तरफ़ खाना कर दिया, और स्वयं ५०० वीरों के साथ पलटकर मुग़लों का सामना किया। इस बार घंटे-भर के युद्ध के बाद ही सूर्यास्त का समय हो जाने और दिन-भर के युद्ध में थक जाने के कारण यवन-सेना शिथिल पड़ गई। अतः जिस समय अपने बचे हुए ७ आहत योद्धाओं के साथ दुर्गादास यवन-वाहिनी में से मार्ग काटकर निकल गया, उस समय मुग़ल-सेना भी दिल्ली को लौट गई। इसके बाद दुर्गादास भी महाराज के परिवार के साथ श्रावण बदी ११ (२३ जुलाई) को मारवाड़ में पहुँच गया।

(हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भा० ३, पृ० ३७७-३७८)।

२. मन्नासिरेआलमगीरी में लिखा है कि बादशाह ने उस बालक को राठोड़ों के डेरे से पकड़ कर लाई गई दासियों को दिखलाकर अपनी तसल्ली करती थी।

परन्तु इतिहास से प्रतीत होता है कि स्वामि-भक्त दासियों ने उसे साफ़ धोका दिया था। उसमें यह भी लिखा है कि फौलादख़ाँ ने दूसरे दिन लड़के का कुछ ज़ेवर भी लाकर बादशाह के सामने पेश किया था। राठोड़-सरदारों का कुछ माल भी बादशाह के हाथ आया। (देखो पृ० १७८)।

‘मन्नासिलउमरा’ में भी अजितसिंहजी को जसवंतसिंहजी का असली पुत्र लिखा है। (देखो भाग ३ पृ० ७५५) ‘सैहसल मुताख़रीन’ में लिखा है कि राठोड़ों ने वहाँ पर असली महाराजकुमारों के बदले नक़ली बालकों को रख कर दिल्ली से कूच कर दिया, और पीछे ठहरनेवाले

को सौंप दिया ।

इन दिनों मुगल सैनिक मारवाड़ में मनमाने अत्याचार करने लगे थे । यह देख सातलवास के (माधोदासोत) मेड़तिए राजसिंह ने अपने भाई बन्धुओं को एकत्रित कर मेड़ते पर चढ़ाई कर दी । इस पर वहाँ का हाकिम शेख सादुल्लाखाँ उससे लड़ने के लिये नगर के बाहर निकल आया । राजसिंह के निकट पहुँचने पर दोनों तरफ से घमासान युद्ध होने लगा । परन्तु शाम होने पर सादुल्लाखाँ नगर का भार (केशवदासोत) मेड़तिये पृथ्वीसिंह को सौंपकर स्वयं किले में चला गया । दूसरे दिन कुछ ही देर के युद्ध के बाद किला राजसिंह के हाथ आ गया, और सादुल्लाखाँ पकड़ा गया । इस पर मेड़ते के मन्दिरों में फिर से मूर्तिपूजन होने लगा ।

सावन वदि ११ (२३ जुलाई) को बचे हुए राठोड़-सरदार भी दिल्ली से जोधपुर पहुँच गए । इनकी जवानी दिल्ली के युद्ध का हाल सुनकर चाँपावत वीर सोनग और भाटी राम आदि ने (अजमेर के फौजदार) तहव्वरखाँ को जोधपुर से निकाल कर नगर पर अधिकार कर लिया । इसी प्रकार धवेचा सुजानसिंह ने सिवाने के किले को भी हस्तगत कर लिया ।

इन घटनाओं की सूचना पाते ही बादशाह तहव्वरखाँ से नाराज हो गया और उसने उसका खाँ का खिताब छीनकर उससे अजमेर की फौजदारी भी ले ली । इसी प्रकार इंद्रसिंह को भी अयोग्य समझ उसके पास दिल्ली लौट आने की आज्ञा भेज दी । इसके बाद भादों वदि ६ (१७ अगस्त) को बादशाह ने फिर से राठोड़ों को परास्त कर जोधपुर पर अधिकार करने के लिये सरबलंदखाँ की अधीनता में एक बड़ी सेना

अपने साथियों से कह दिया कि यदि किसी तरह यह मेद खुल जाय, तो वे शाही सैनिकों से युद्ध छेड़ कर कुछ समय तक उन्हें वहीं रोक रखें । इसके बाद वे ही नकली बालक बादशाही महल में पहुँचाए गए, और बहुत समय तक लोग उन्हें ही असली महाराजकुमार समझते रहे । (देखो पृ० ३४३) ।

‘मुंतखिलबुलबुबाब’ से भी इसी बात की पुष्टि होती है । उसमें यह भी लिखा है कि जब तक रानाजी ने अपने कुटुम्ब की कन्या से अजितसिंहजी का संबंध नहीं कर दिया, तब तक बादशाह का उनके विषय का संदेह दूर नहीं हुआ । (देखो भाग २ पृ० २६०) ।

१. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १७८ ।

२. अजितोदय, सर्ग ८, श्लो० १-३४ ।

३. अजितोदय, सर्ग ८, श्लो० ३०-३२ ।

मारवाड़ का इतिहास

खाना की। इस सेना ने जोधपुर पहुँच दुबारा वहाँ पर कब्जा कर लिया। इन्हीं दिनों इस गड़बड़ से मौका पाकर पड़िहारों ने भी फिर से अपनी पुरानी राजधानी मंडोर पर अधिकार कर लिया था।

इसी बीच मेड़तिया राजसिंह द्वारा मेड़ते के छीने जाने की सूचना पाकर अजमेर के फौजदार तहव्वरख़ाँ ने उस पर फिर अधिकार करने का विचार किया, और इसी के अनुसार वह अपनी सेना को लेकर पुष्कर पहुँचा। इतने में राजसिंह भी अपनी राठोड़-बाहिनी को लेकर उसके मुकाबले को आ गया। तीन दिन तक दोनों तरफ़ से घोर युद्ध होता रहा। अंत में शाही सेना को नष्ट करता हुआ राजसिंह भी अपने भाइयों के साथ इसी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। यह घटना भादों बदी ६ (१६ अगस्त) की है।

भादों बदी १३ (२३ अगस्त) को जब बादशाह को इसकी सूचना मिली, तब भादों सुदी ८ (३ सितम्बर) को वह स्वयं अजमेर की तरफ़ खाना हुआ, और उसी दिन उसने पालम के मुक़ाम से अपने शाहजादे मोहम्मद अकबर को आगे चलकर अजमेर पहुँचने की आज्ञा दी^१।

आसोज (कॉर) सुदी १ (२५ सितम्बर) को जब बादशाह अजमेर पहुँच गये, तब भाटी रामसिंह ने ख़ाँजहाँ बहादुर को पत्र लिखकर एक बार फिर बादशाह को समझाने और महाराज अजितसिंहजी को उनका पैतृक राज्य दिलवा देने की प्रार्थना की। परन्तु किसी प्रकार इसकी सूचना राव इन्द्रसिंह को मिल गई। अतः उसके आदमियों ने अचानक जोधपुर पहुँच रामसिंह के मकान को घेर लिया। इस पर वह वीर भी तलवार लेकर बाहर निकल आया, और सम्मुख रण में लड़ता हुआ शत्रुओं के हाथों मारा गया।

१. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १७६।

(हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भाग ३, पृ० ३७६)।

२. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १७६-१८० और 'अजितोदय', सर्ग ८, श्लो० ३५-७०। 'राजरूपक' में इस युद्ध का भादों सुदी ११ को होना लिखा है। (देखो पृ० १८)।

३. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १८०।

४. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १८१।

५. यह घटना 'अजितोदय' से लिखी गई है (सर्ग ६, श्लो० १४-२२)। 'अजित-ग्रंथ' से भी इसकी पुष्टि होती है। (देखो, छंद ३१४-३१६) 'मन्नासिरेआलमगीरी' में सावन

महाराजा अजितसिंहजी

इसी बीच बादशाह के अजमेर पहुँचते ही सरबलंद और शाहजादे अकबर की सेनाओं ने मेड़ते की तरफ़ होकर जोधपुर पर चढ़ाई की। आश्विन बदी २ (२६ सितम्बर) को बादशाह ने इलाहाबाद के सूबेदार हिम्मतख़ाँ को भी अकबर की सहायता के लिये भेज दिया।

यद्यपि राठोड़-वीर मार्ग में स्थान-स्थान पर इस सम्मिलित मुगल-सैन्य का सामना कर इसकी गति में बाधा खड़ी करने लगे, तथापि अंत में इस विशाल सेना ने अपना मार्ग साफ़ कर हिन्दू-मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करना शुरू किया। मेड़ता, डीडवाना, रोहट, परबतसर आदि पर भी शाही सेना का कब्ज़ा हो गया।

इसके बाद ही बादशाह ने मारवाड़ के भिन्न-भिन्न प्रांतों में अपने फौजदार भेज दिए, और इस प्रकार मारवाड़ पर अधिकार हो जाने से उन्मत्त होकर यवनों ने हर तरफ़ अत्याचार करने शुरू किए। यह देख महाराना राजसिंहजी ने राठोड़ों का साथ देना उचित समझा। और इसीके अनुसार राठोड़ों के २५,००० और सीसोदियों के १२,००० सवारों ने मिलकर शाही सेना को हैरान करना प्रारम्भ किया। इस पर बादशाह और भी क्रुद्ध हो गया, और उसने तहन्वरख़ाँ आदि मुसलमान-अमीरों और

में ही बादशाह का इंद्रसिंह को दिल्ली बुला लेना लिखा है। परन्तु बादशाह के अजमेर आते समय वह भी शाही सेना के साथ था।

किसी-किसी ख्यात में इसका भादों सुदी १ को बादशाह की आज्ञा से जोधपुर आना और भादों सुदी ७ को किले पर चढ़ाई करना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि आसोज सुदी १३ को यह फिर से सिवाने पर अधिकार करने को गया था। परन्तु वहाँ पर इसे सफलता नहीं हुई।

१. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १८१।

2. Lord of Udaipur had to choose between rebellion and the loss of whatever is dearest to man. The Mughal annexation of Marwar turned his left flank and exposed his country to invasion through the Aravali passes on its western side, while the eastern half of his State, being comparatively level, lay open to a foe as before. The mountain fastness of Kamalmir, which had sheltered Partap during the dark days of Akber's invasion, would cease to be an impregnable refuge to his successor. The annexation of Marwar was but the preliminary to an easy conquest of Mewar. Besides, Aurangzeb's campaign of temple destruction was not likely to stop within the imperial dominions. On the revival of the Jaziya tax, a demand for its enforcement throughout his State had been sent to the Maharana. If the Sisodias did not stand by the Rathors now, the two clans would be crushed piecemeal, and the whole of Rajasthan would lie helpless under the tyrant's feet. So thought Maharana Raj Singh. (History of Aurangzeb, Vol. III. P. 382-383.)

३. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब', भाग ३, पृ० ३८६।

मारवाड़ का इतिहास

मोहकमसिंह आदि हिन्दु सरदारों को मेवाड़ के भिन्न-भिन्न परगनों पर अधिकार करने के लिये रवाना किया। साथ ही मँगसिर सुदि ८ (३० नवम्बर) को वह स्वयं भी अजमेर से उदयपुर की तरफ चला। इस पर मोहम्मद अकबर, जो उस समय मेड़ते में था, दिवराई में आकर बादशाह से मिला। पौष बदी १ (१६ दिसम्बर) को शाहजादा मोहम्मदआजम भी बंगाल से आकर बादशाह के साथ हो लिया। जब महाराना को यह समाचार मिला, तब वह उदयपुर छोड़कर पहाड़ों के आश्रय में चले गए। इस पर मारवाड़ के बहुत से राठोड़ भी उनके पास जा पहुँचे। यह देख बादशाह ने इधर तो हसनअली को रानाजी का पीछा करने की आज्ञा दी, और उधर उदयपुर में मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करने का प्रबंध किया। यद्यपि वीर सीसोदियों ने भी ऐसे समय आत्म-बलि देकर यवनों को रोकने की बहुत कुछ चेष्टा की, तथापि उनके विशाल समूह के आगे वे कृतकार्य न हो सके।

इस प्रकार मेवाड़ की दुर्दशा होते देख राठोड़ उत्तेजित हो उठे। दुर्गादास तथा सोनग ने और भी जोर-शोर से मारवाड़ में उपद्रव शुरू करने का प्रबंध किया। इसीके अनुसार ये लोग पहले जालोर पहुँचे। परन्तु इनके उत्पात से डरकर वहाँ के शासक फ़तेहख़ाँ ने इन्हें कुछ दे-दिलाकर संधि कर ली। इस पर ये लोग वहाँ से बीलाड़े की

१. 'मआसिरेआलमगीरी' में इन्हीं में इन्द्रसिंह का भी नाम है। (देखो पृ० १८२)।

२. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १८२।

३. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १८६।

४. मआसिरेआलमगीरी, पृ० १८६।

५. 'तवारीखेपालनपुर' में लिखा है कि बादशाह ने वि० सं० १७३६ की फागुन सुदी १४ को गुजरात के सूबेदार की सिफ़ारिश से जालोर, साँचोर और भीनमाल के प्रांत फ़तेहख़ाँ को दे दिए थे। (देखो पृ० १४६) ये प्रांत पहले इसके पूर्वजों के अधिकार में भी रह चुके थे। परन्तु इस समय केवल पालनपुर पर ही इसका अधिकार था। यह प्रबंध बादशाह ने राठोड़ों को दबाने के लिये ही किया था।

टोड ने अपने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि जिस समय बादशाह उदयपुर पर हमला करने में लगा था, उसी समय उसे दुर्गादास के जालोर पर आक्रमण करने की सूचना मिली। इस पर वह अपनी उदयपुर की विजय को छोड़ कर अजमेर लौट आया, और उसने मुकर्रबख़ाँ को बिहारियों की मदद पर भेजा। परन्तु उसके वहाँ पहुँचने के पूर्व ही दुर्गादास दंड के रुपये लेकर जोधपुर की तरफ़ चला गया था। (देखो भाग २, पृ० ६६६)।

'राजरूपक' में भी बादशाह का मुकर्रब को जालोर की रक्षार्थ भेजना लिखा है। परन्तु 'मआसिरेआलमगीरी' में लिखा है कि बादशाह ने उदयपुर से अजमेर की तरफ़ लौटते समय मुकर्रमख़ाँ को रणथंभोर (या बदनोर) की तरफ़ भेजा था। (पृ० १६०)।

तरफ़ चले गए ।

जैसे ही इसकी सूचना बादशाह को मिली वैसे ही वह चित्तौड़ की रक्षा का भार शाहजादे मोहम्मद अकबर को देकर, चैत्र बदी १ (ई० सन् १६८० की ६ मार्च) को उदयपुर से अजमेर को लौट चला और वि० सं० १७३७ की चैत्र सुदी २ (२२ मार्च) को वहाँ आ पहुँचा ।

इसी प्रकार जब इन्द्रसिंह को राठोड़-सरदारों के बीलाड़े की तरफ़ जाने की सूचना मिली, तब वह भी बदनोर से इनके मुकाबले को चला । खेतासर के तालाब के पास दोनों की मुठभेड़ हुई । दिन-भर तो दोनों तरफ़ के वीरों ने जी खोलकर तलवार चलाई । परन्तु सायंकाल के समय इन्द्रसिंह की सेना के पैर उखड़ गए । इसके बाद दुर्गादास आदि वीर चेराई गाँव में पहुँचे, और जोधपुर पर चढ़ाई करने का विचार करने लगे । इसकी सूचना पाते ही पहले तो इन्द्रसिंह ने राठोड़ों को अपनी तरफ़ मिलाने की चेष्टा की । परन्तु जब अनेक प्रलोभन दिखलाने पर भी इसमें उसे सफलता नहीं हुई, तब वह स्वयं जोधपुर चला आया, और यहीं से बादशाह को सारा हाल लिख भेजा । इस पर उसने तत्काल नवाब मुर्करमख़्वाँ को जोधपुर की तरफ़ रवाना किया । अतः जिस समय राठोड़ों की सेना जोधपुर को घेरकर उस पर अधिकार करने का उद्योग कर रही थी, उसी समय वह यहाँ आ पहुँचा । इस पर ये लोग जोधपुर का घेरा उठाकर मेवाड़ की तरफ़ चले गए । यद्यपि नवाब और इन्द्रसिंह ने बहुत कुछ इनका पीछा करने की चेष्टा की, तथापि ये उनके हाथ न आए ।

१. अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० २७ ।

२. मन्नासिखलउमरा, पृ० १६० ।

३. 'राजरूपक' में इस घटना का वि० सं० १७३७ की ज्येष्ठ सुदी १० को होना लिखा है ।

४. अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० २८-४७ । 'राजरूपक' में इस युद्ध का वि० सं० १७३७ की ज्येष्ठ सुदी १३ को होना लिखा है ।

५. ख्यातों में लिखा है कि जब दुर्गादास आदि के सामने राव इन्द्रसिंह को सफलता की आशा नहीं रही, तब उसने पाली ठाकुर चांपावत उदैसिंह और कूपावत प्रतापसिंह (सुंदर सेगोत) को उन्हें समझाने के लिये भेजा । परन्तु दुर्गादास ने इनकी बात मानने से इन्कार कर दिया और उदैसिंह को धिक्कारते हुए कहा कि तुम महाराजा जसवन्तसिंहजी की कृपा से ही पाली की जागीर का उपभोग करते थे, उसका बदला क्या इसी प्रकार देते हो ? , यह सुन वह बहुत लजित हुआ और राव इन्द्रसिंह का साथ छोड़ दुर्गादास के साथ होगया ।

६. अजितोदय, सर्ग १०, श्लो० १-१६ । 'मन्नासिरे-आलमगीरी' में बीलाड़े और जोधपुर की इस चढ़ाई का उल्लेख नहीं मिलता है ।

मारवाड़ का इतिहास

इसके बाद राठोड़ सरदार रानाजी के साथ मिलकर सोजत और जैतारण के प्रांतों में मार-काट करने और वहाँ की रबी की फसल को लूटने लगे। यह देख वहाँ के शाही हाकिमों ने सारा हाल बादशाह को लिख भेजा। इस पर उसने वि० सं० १७३७ की जेष्ठ बदी ४ (६ मई) को हामिदख़ाँ को सोजत और जैतारण में उपद्रव करने वाले राठोड़ों को दबाने के लिये खाना किया। परन्तु जब उसे सफलता नहीं मिली, तब बादशाह ने शाहजादे मोहम्मदआज़म को तो चित्तौड़ की रक्षा के लिये भेजा, और शाहजादे अकबर को सोजत और जैतारण पहुँच राठोड़ों को दंड देने की आज्ञा दी^१। इसी के अनुसार वह (वि० सं० १७३७ की आषाढ़ सुदी ६=ई० सन् १६८० की २५ जून को) चित्तौड़ से खाना होकर बरकी-वाटी के मार्ग से मारवाड़ को चला। उसकी सेना के अग्र-भाग का मार्ग साफ़ करने के लिये तहव्वरख़ाँ नियत किया गया। यह देख राठोड़ों ने मार्ग में स्थान-स्थान पर आक्रमण कर मुगल-सेना के बढ़ने में बाधा डालनी शुरू की। ब्यावर और मेड़ते के पास तो और भी जमकर सामना किया। परन्तु अंत में सावन सुदी ३ (१८ जुलाई) को शाहजादे अकबर ने दल-बल-सहित सोजत पहुँच उसे अपना सदर मुक़ाम बनाया।

इस पर राठोड़ अपने को भिन्न-भिन्न दलों में बाँटकर देश में चारों तरफ़ मार-काट करने और देश को उजाड़ने लगे। ये लोग जहाँ कहीं मौका पाते, मुगलों की चौकियों पर टूटकर उन्हें नष्ट कर देते या मार्ग में उनकी रसद को लूटकर उन्हें तंग करते थे। इससे मुगलों को हर समय अपनी चौकियों आदि की रक्षा के लिये चौकना या इधर उधर घूमते रहना पड़ता था। यदि राठोड़ों का एक दल मारवाड़ के दक्षिणी भाग-जालोर और सिवाने पर अचानक आक्रमण करता था, तो दूसरा मारवाड़ के पूर्वी भाग-गोड़वाड़ पर टूट पड़ता था। इसी प्रकार तीसरा दल देश के उत्तरी भाग में स्थित नागौर को लूटता, तो चौथा तत्काल ईशान-कोण के प्रदेश डीडवाना और साँभर में मार-काट मचा देता था। इससे मुगल सेना बहुत हैरान हो गई।

१. 'राजरूपक' से ज्ञात होता है कि राना राजसिंहजी ने बादशाह से बदला लेने के लिये अपने पुत्र राजकुमार भीम को सेना देकर राठोड़ों के साथ कर दिया था।
२. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १६३।
३. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १६४। अजितोदय, सर्ग १०, श्लो० २६-२७।
४. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब', भाग ३, पृ० ३६२-३६३।

उन दिनों राठोड़ों का मुख्य शिविर नाडोल में था, और वहीं से ये लोग रानाजी से मिलकर मेवाड़ के यवनों को भी तंग किया करते थे। अतः सोजत पहुँचते ही शाहजादे अकबर ने तहव्वरख़ाँ को नाडोल हस्तगत कर कुंभलमेर पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। परन्तु अपने प्राणों के मोह को त्यागकर रणांगण में जूझनेवाले राठोड़-वीरों का एकाएक मुक्ताबला करने की उसके सैनिकों की हिम्मत न हुई। इसलिये कई महीने तो तैयारी में ही लगा दिए गए। इसके बाद मार्ग में फिर सैनिकों के आगे बढ़ने से इनकार कर देने पर उसे एक मास तक खरवे में रुकना पड़ा। अंत में जब बड़ी मुशकिल से वह सेना नाडोल पहुँची, तब फिर मुगलों को भयने आ घेरा। इस पर लाचार होकर आश्विन सुदी ८ (२१ सितम्बर) को स्वयं शाहजादे अकबर को सोजत से वहाँ जाना पड़ा। यद्यपि इस समय तक जोधपुर से (सोजत होते हुए) नाडोल तक मार्ग में स्थान-स्थान पर शाही चौकियों का प्रबंध कर रसद आदि के लिये मार्ग साफ़ कर दिया गया था, तथापि तहव्वरख़ाँ ने पहाड़ी मार्ग में आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। अंत में अकबर के बहुत दबाव डालने पर आश्विन सुदी १४ (२७ सितम्बर) को जैसे ही वह आगे बढ़ देसूरी की घाटी के पास पहुँचा, वैसे ही राठोड़ों और राजकुमार भीम की सम्मिलित सेनाओं ने पहाड़ों से निकल उस पर आक्रमण कर दिया। दोनों तरफ़ के वीर एक दूसरे को पछाड़ने में बहादुरी दिखाने लगे। परन्तु पूरी सफलता किसी पक्ष को न मिली। इसके बाद राठोड़ों ने वहाँ रहना अनुचित समझ बीटणी की तरफ़ प्रयाण किया और वहाँ पर लूट-मारकर ये लोग मेड़ते की तरफ़ चले आए। इस पर मँगसिर बदी १३ (६ नवम्बर) को हामिदख़ाँ को उधर जाने की आज्ञा दी गई। परन्तु राठोड़ों ने इसकी भी कुछ परवा नहीं की, और डीडवैने तथा सांभर में जाकर उपद्रव शुरू कर दिया।

यह देख मँगसिर सुदी २ (१३ नवंबर) को रुहुल्लाख़ाँ तो मोहम्मद अकबर की सहायता को भेजा गया, और मुगलख़ाँ को सांभर और डीडवाने की रक्षा के लिये जाने

१. 'राजरूपक' में इस युद्ध का नाडोल में होना लिखा है।

२. हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भा० ३, पृ० ३६४-३६५।

३. अजितोदय, सर्ग १०, श्लो० ५१-५२।

४. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में लिखा है:-

मँगसिर सुदी ७ (१८ नवम्बर) को बादशाह का भेजा हुआ रुहुल्लाख़ाँ नवीन सेना और खर्च के रुपयों के साथ नाडोल पहुँचा। उसके द्वारा बादशाह ने शाहजादे अकबर को शीघ्र ही आगे बढ़ने

मारवाड़ का इतिहास

की आज्ञा मिली। इसी के १८वें रोज़ शाहजादे कामबख्श का बख्शी मोहम्मद नईम भी अकबर की सहायता के लिये भेज दिया गया। इस पर राठोड़-सरदार फलोदी की तरफ़ चले गए, और वहाँ पर युद्ध की सामग्री आदि का संग्रह कर फिर गोड़वाड़ की तरफ़ लौट आएँ। इसके बाद एक बार फिर ये मैदान के युद्धों में अपने सवारों द्वारा और पहाड़ी लड़ाइयों में पैदल सैनिकों द्वारा समय-समय पर शाही सेना से सम्मुख रण में लोहा लेकर अथवा उसकी रसद आदि को लूटकर या उस पर नैश आक्रमण कर यथासंभव उसे तंग करने लगे।

इधर यह सब हो रहा था और उधर दुर्गादास ने मारवाड़ के उद्धार के लिये पहले गुजरात की तरफ़ जाकर उपद्रव करने का इरादा किया। परन्तु अंत में एक नवीन युक्ति सोच निकाली। उसी के अनुसार इसने शाहजादे मुहम्मद मोअज़्ज़म को अपने पिता का पदानुसरण कर राठोड़ों की सहायता से बादशाह बन जाने के विषय में पत्र लिखे। पर जब इसमें सफलता की आशा न देखी, तब इसी विषय की बातचीत शाहजादे मोहम्मद अकबर से शुरू की। इस पर उक्त शाहजादे ने अपने अधीनस्थ सेनापति तहव्वरख़ाँ से सलाह कर इस बात को अंगीकार कर लिया, और अपने बादशाह हो जाने पर महाराजा अजितसिंहजी को उनका राज्य लौटा देने की प्रतिज्ञा की^३।

की आज्ञा भेजी थी। अतः वह दूसरे ही दिन नाडोल से देसरी की तरफ़ चला, और वहाँ पहुँचकर मँगसिर सुदी ११ (२२ नवम्बर) को उसने तहव्वरख़ाँ को भीलवाड़े की तरफ़ रवाना किया। यद्यपि मार्ग में राजपूत-वीरों ने सम्मुख रण में प्रवृत्त हो भीषण मार-काट मचाई, तथापि अपनी संख्याधिकता के कारण अंत में किसी तरह मुग़ल-सेना कुंभलमेर से ८ मील उत्तर के भीलवाड़ा ग्राम में पहुँच कर ठहर गई। (देखो भाग ३, पृ० ३६६-३६७)।

१. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १६५।

२. अजितोदय, सर्ग १० श्लो० ५२-५३।

(बादशाह राठोड़ों से इतना क्रुद्ध हो गया था कि वह मारवाड़ को उजाड़ देने तक को उद्यत था। उसने अपने अमीरों को आज्ञा दे दी थी कि जोधपुर और उसके आस-पास के प्रदेशों को बर्बाद कर दो, शहर और गाँवों को जला दो, फलवाले दरख़्तों को काट दो, स्त्री-पुरुषों को पकड़कर गुलाम बना डालो और सारी रसद को लूट लो।)।

३. 'अजितोदय' और 'राजरूपक' में अकबर की तरफ़ से इस प्रस्ताव का किया जाना लिखा है। (देखो सर्ग ११, श्लो० ४-६)।

महाराजा अजितसिंहजी

इसके बाद ही दुर्गादास आदि सरदारों ने शाहजादे अकबर से मिलकर नाडोल में उसका बादशाह होना घोषित कर दिया, और साथ ही ये लोग उक्त नवीन बादशाह को लेकर पुराने बादशाह औरङ्गजेब पर चढ़ चले। जैसे ही इसकी सूचना औरङ्गजेब को मिली, वैसे ही एक बार तो वह बिलकुल ही घबरा गया; क्योंकि उस समय उसके पास कुल मिलाकर दस हजार से भी कम अनुयायी थे। अतः उसने अपने निवासस्थान के चारों तरफ मोरचे बँधवाकर पास की पहाड़ियों पर तोपें लगवा दीं। इसी बीच वि० सं० १७३७ की माघ बदी ३० (ई० सन् १६८१ की १ जनवरी) को शहाबुद्दीनखाँ, जो सोनग और दुर्गादास को गुजरात की तरफ जाकर उपद्रव करने से रोकने के लिये सिरोही की तरफ भेजा गया था, अजमेर लौट आया। यह मीरक़ाँ को भी, जो शाहजादे अकबर के साथ था, समझा-बुझाकर अपने साथ ले आया था। परन्तु अपने बादशाहत पाने की खुशी में मस्त हुए और नाच-रंग में लगे अकबर ने इधर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसी प्रकार धीरे-धीरे और भी कई अमीर उसकी सेना से निकल गए।

जब चार-पाँच दिनों में इधर-उधर से आकर कुछ और सेना औरङ्गजेब के शिविर में इकट्ठी हो गई, तब वि० सं० १७३७ की माघ सुदि ४ (ई० सन् १६८१ की १३ जनवरी) को वह अजमेर से निकल कर ६ मील दक्षिण के दोवराई नामक गाँव में पहुँचा। वहीं पर उसे शाहजादे अकबर और राजपूत सैनिकों के कुड़की में (अजमेर से नैऋत कोण में २४ मील पर) होने की सूचना

१. यह घटना वि० सं० १७३७ की माघ बदी ६ (ई० सन् १६८१ की ३ जनवरी) की है।

‘हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब’ (भा० ३ पृ० ३६८) में इस घटना का समय ई० सन् १६८१ की १ जनवरी लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि इस कार्य में महाराना राजसिंह का भी हाथ था। परन्तु २२ अक्टोबर (वि० सं० १७३७ की कार्तिक सुदी १०) को उनकी मृत्यु हो जाने से उस समय यह कार्य न हो सका। अतः कुछ दिन बाद उनके उत्तराधिकारी महाराना जयसिंह के समय यह कार्य संपन्न हुआ। (देखो भा० ३, पृ० ४०५)।

२. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० १६६-१६६।

३. इसी बीच हामिदखाँ भी बादशाह के पास पहुँच गया था, और शाहजादा मुअज्जम भी शीघ्र ही पहुँचने वाला था।

मारवाड़ का इतिहास

मिली । उस समय अकबर के पास करीब १६ हजार सेना थी । तीसरे दिन बादशाह औरङ्गजेब वहाँ से और भी दो चार मील दक्षिण के दोराहा स्थान पर पहुँचा । परन्तु यहाँ से आगे बढ़ने की उसकी हिम्मत न हुई ।

जैसे-जैसे शाहजादे अकबर और बादशाह औरङ्गजेब की सेनाएँ परस्पर निकट होती जाती थीं, वैसे-वैसे बादशाही अमीर अकबर की सेना से निकल-निकलकर शाही लश्कर में मिलते जाते थे । यहीं पर शाहजादा मुअज़्ज़म भी, मेवाड़ से आकर, शाही लश्कर के साथ हो गया । इसके बाद यहाँ से बादशाह ने पहले तो पत्र लिखकर अकबर को धोका देने की चेष्टा की; परन्तु जब इसमें उसे सफलता नहीं हुई, तब उसने उसके सेनापति तहव्वरख़ाँ को^१ (उसके ससुर) इनायतख़ाँ के द्वारा भय और लालच दिखलाकर अपनी तरफ़ मिला लिया । इस पर वह पहर रात जाने पर चुपचाप अकबर के शिविर से निकल बादशाह की डेवड़ी पर जा पहुँचा । परन्तु वहाँ पर शस्त्र खोलकर अन्दर जाने से इनकार करने पर मार डाला गया ।

इसी बीच राठोड़ों को भी तहव्वर के बादशाह के पास चले जाने की सूचना मिल गई । इससे ये संदेह में पड़ गए और इनका विश्वास अकबर पर से उठ गया । ऐसी अवस्था में ये लोग उसका साथ छोड़ पीछे हट गए । जब

१. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब' में ३० हजार सेना का होना लिखा है । (देखो भाग ३, पृ० ४१०) ।
२. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब' में लिखा है कि यहाँ से दो रास्ते निकलते थे । एक पश्चिम की तरफ़ ब्यावर होता हुआ मारवाड़ को, और दूसरा पूर्व की तरफ़ आगरे को जाता था । (देखो भा० ३, पृ० ४१०) ।
३. 'मन्नासिरे-आलमगीरी' में बादशाहकुलीख़ाँ नाम लिखा है । (देखो पृ० २००-२०१) यह तहव्वरख़ाँ ही का खिताब था, जो बादशाह ने उसकी मेवाड़ के रणस्थल में दिखलाई हुई वीरता के उपलक्ष में दिया था । (देखो मन्नासिरुलउमरा, भा० १, पृ० ४४८ और हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब, भा० ३, पृ० ३६६) ।
४. उस समय दोनों सेनाओं के बीच केवल ३ मील का फ़ासला था ।
५. 'राजरूपक' में लिखा है कि जिस समय तहव्वरख़ाँ बादशाह के पास जाने लगा, उस समय उसने राठोड़ों से भी कहला दिया कि मैंने आपके और शाहजादे अकबर के बीच पड़कर संघि करवाई थी । परन्तु मुझे शाहजादे के बादशाह से मिल जाने का संदेह होता है । अतः अब मैं इसकी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर नहीं रख सकता । आप लोगों को भी सावधान होकर लौट जाना चाहिए ।

महाराजा अजितसिंहजी

प्रातःकाल होने पर इस घटना की सूचना शाहजादे अकबर को मिली, तब वह बहुत घबराया। उस समय उसके पास केवल ३५० सवार ही रह गए थे। इसलिये वह बाप के क्रोध से बचने के लिये अपने कुटुम्ब और माल-असबाब को लेकर १० कोस के फासले पर ठहरे हुए राठोड़ों की शरण में चला गया। यह घटना वि० सं० १७३७ की माघ सुदी ७ (ई० सन् १६८१ की १६ जनवरी) की है। उसकी यह दशा देख राठोड़ भी असली भेद को समझ गए। इसी से दूसरे दिन रात्रि में दुर्गादास ने उसके पास पहुँच उसे अपनी शरण में ले लिया। परन्तु इस समय तक मौका हाथ से निकल चुका था, अतः वे उसको साथ लेकर जालोर की तरफ चले गए।

इस घटना से बादशाही शिविर में बड़ा आनन्द मनाया गया। इसके बाद बादशाह शाहबुद्दीनखाँ, शाह आलम, कुलीचखाँ, इन्द्रसिंह आदि को बागियों का पीछा करने की आज्ञा देकर स्वयं अजमेर लौट गये।

वी० ए० स्मिथ ने अपनी 'ऑक्सफ़र्ड हिस्ट्री ऑफ़ इन्डिया' में लिखा है कि स्वयं बादशाह ने राजपूतों को धोका देने के लिये अकबर के नाम का पत्र लिख कर उनके हाथ में पहुँचा दिया था। इसी से वे लोग शाहजादे को बाप से मिला हुआ समझ उससे अलग हो गए। (देखो पृ० ४४१)।

'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' से भी इसकी पुष्टि होती है। उसमें लिखा है कि बादशाह ने उस पत्र में अकबर को लिखा था कि मैं तेरे राठोड़ों को धोका देकर फसा लाने से बहुत प्रसन्न हूँ। कल प्रातःकाल के युद्ध में मैं आगे से उन पर आक्रमण करूँगा और तू पीछे से हमला कर देना। इससे वे आसानी से नष्ट हो जायेंगे। जब यह पत्र दुर्गादास को मिला, तब वह इसके बाबत अपना संदेह मिटाने को अकबर के शिविर में पहुँचा। परन्तु उस समय अर्द्धरात्रि से भी अधिक समय बीत चुका था। अतः अकबर गहरी नींद में सोया हुआ था। ऐसे समय यद्यपि दुर्गादास ने उसके अंग-रक्तकों से उसे जगाने को कहा, तथापि ऐसा करने की आज्ञा न होने के कारण उन्होंने इस बात के मानने से इनकार कर दिया। इससे दुर्गादास क्रुद्ध होकर लौट गया। इसके बाद उसने तहव्वरखाँ की तलाश की। परन्तु जब उसके भी शाही सेना में चले जाने का समाचार मिला, तब राठोड़ों का संदेह दृढ़ हो गया, और वे प्रातःकाल होने के ३ घण्टे पूर्व ही अकबर के शिविर को लूटकर मारवाड़ की तरफ लौट गए। यह देख अन्य शाही सेना-नायक भी बादशाह से जा मिले। (देखो भा० ३, पृ० ४१४-४१५)।

१. अजितोदय, सर्ग ११, श्लो० १२-१६।

२. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० २०३। 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में लिखा है कि बादशाह औरंगज़ेब ने शाहजादे मोअज़ज़म को सेना देकर अकबर को पकड़ने के लिये मारवाड़

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १७३८ की चैत्र सुदी ११ (ई० सन् १६८१ की २० मार्च) को इनायतख़ाँ अजमेर का फौजदार बनाया गया, और उसे भी राठोड़ों को दबाने की आज्ञा मिली । जब इससे भी राठोड़-सरदारों का उपद्रव शांत न हुआ, तब बादशाह ने स्वर्गवासी महाराजा जसवन्तसिंहजी के बनावटी पुत्र मुहम्मदीराज को दिल्ली (शाहजहानाबाद) से अपने पास बुलवाया । परन्तु उपद्रव की भयंकरता के कारण वह उसे जोधपुर की गद्दी पर न बिठा सका ।

पहले लिखे-अनुसार राठोड़ों की सेना भी अकबर को लिये हुए जालोर जा पहुँची । परन्तु शाह आलम की सेना ने इसका पीछा न छोड़ा । इससे जैसे ही उक्त सेना जालोर पहुँची, वैसे ही राठोड़-वाहिनी ने उस पर अचानक धावा कर दिया, और जो कुछ सामान हाथ लगा, उसे लेकर वह सांचोर चली गई । जब वहाँ पर भी शाही सेना ने उनका पीछा किया, तब फिर उसने उसका सामना किया, और मार-काट मचा कर (सिवाने होती हुई) सिरोही की तरफ चली गई ।

की तरफ़ रवाना किया, और साथ ही तमाम शाही चौकियों के अफसरों के नाम भी इधर-उधर के मार्गों को रोककर अकबर को राजस्थान से बाहर न जाने देने की आज्ञा लिख भेजी । (देखो भा० ३, पृ० ४१६-४१७) ।

कागा (जोधपुर नगर के बाहर) के एक कीर्तिस्तम्भ पर के वि० सं० १७३७ की माघ सुदि १५ के लेख से उस समय जोधपुर का इन्द्रसिंह के शासन में होना प्रकट होता है ।

१. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० २०६ । वि० सं० १७४० के पौष (ई० सं० १६८३ के दिसम्बर) में इसे जोधपुर के शासन के साथ ही अजमेर की सूबेदारी भी दी गई थी । (हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्गज़ेब, भा० ५, पृ० २७३ फुटनोट) ।

२. 'मन्नासिरेआलमगीरी' में इसका वि० सं० १७३८ की वैशाख सुदी १ (ई० सं० १६८१ की ६ अप्रैल) को अजमेर पहुँचना लिखा है । (देखो पृ० २०७) ।

३. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० २०४ ।

४. अजितोदय, सर्ग ११ श्लो० १६-१८ । उक्त इतिहास में बहादुरख़ाँ द्वारा राठोड़ों का पीछा किया जाना लिखा है । 'राजरूपक' में लिखा है कि बादशाह की आज्ञा से शाह आलम ने ८ हजार सुवर्ण मुद्राएँ भेजकर दुर्गादास को अपनी तरफ़ मिलाना चाहा था । परन्तु वीर दुर्गादास ने वे मुहरें लेकर अकबर को खर्च के लिये दे दीं, और शरणागत के साथ विश्वासघात करने से साफ़ इनकार कर दिया ।

'अजितोदय' में शाहआलम द्वारा चार हजार मुहरों का भेजा जाना लिखा है । (देखो सर्ग ११ श्लो० २०) ।

इसके बाद सोनग और दुर्गादास आदि मुख्य-मुख्य सरदारों ने अकबर को अपने साथ-साथ लिए फिरना उचित न समझा। इसलिये मारवाड़ का भार तो चाँपावत वीर सोनग को सौंपा गया, और दुर्गादास अकबर को लेकर ५०० सैनिकों के साथ राजपीपला के मार्ग से दक्षिण की तरफ़ रवाना हो गया। यद्यपि बादशाह की आज्ञा से शाही सेना ने इनका बहुत कुछ पीछा किया, तथापि उसे सफलता नहीं हुई, और ये लोग जेठ सुदी ८ (१५ मई) को बुरहानपुर होकर वि० सं० १७३८ की आषाढ़ बदी १० (ई० सन् १६८१ की १ जून) को शंभाजी के राज्य (पाली) में जा पहुँचे। इन्हें आया देख यद्यपि पहले तो

१. यह सरेचाँ का ठाकुर था।

२. 'अजितोदय' में लिखा है कि राठोड़-सैनिक सिरोही से आबू की तरफ़ गए, और अकबर को वहाँ रखकर मारवाड़ की ओर चले आए। इसकी सूचना पाते ही इन्द्रसिंह भी जोधपुर आ पहुँचा। परन्तु शीघ्र ही बादशाह उससे नाराज़ होगया, और उसने उसे अपने पास बुलवा कर जोधपुर का प्रबन्ध इनायतख़ाँ को सौंप दिया। इस पर उस (इनायतख़ाँ) ने अपनी ओर से कासिमख़ाँ को वहाँ की देख-भाल सौंप दी।

इसी समय अकबर आबू से लौटकर सिरोही होता हुआ पालनपुर पहुँचा। वहीं पर पहुँच कर राठोड़ भी उसके शरीक होगए और फिर बड़गाँव होते हुए थिराद की तरफ़ चले गए। इसके बाद ये फिर सिवाने होते हुए सिरोही पहुँचे। यहीं पर दुर्गादास ने मारवाड़ का भार तो सोनग को सौंप दिया और स्वयं अकबर के साथ मेवाड़ की तरफ़ चला गया। इसके बाद वह रानाजी से द्रव्य की सहायता लेकर (क्योंकि उस समय महाराना जयसिंहजी अकबर को शरण देने में असमर्थ थे) अकबर के साथ नर्मदा को पार करता हुआ शंभाजी के पास जा पहुँचा (देखो सर्ग ११, श्लो० २१-२६)।

'हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्गज़ेब' में लिखा है कि अकबर सांचोर से चलकर मेवाड़ पहुँचा। यद्यपि महाराना जयसिंह ने उसका अच्छा आदर सत्कार किया, तथापि वहाँ पर भी शाही सेना के आक्रमण का भय देख दुर्गादास उसे दक्षिण की ओर ले जाने का प्रबन्ध करने लगा। (देखो भा० ३, पृ० ४१७-४१८)।

'राजपूताने के इतिहास' में लिखा है कि महाराना ने दुर्गादास को पत्र लिखकर अकबर को मेवाड़ में लाने से मना कर दिया था। (देखो भा० ३, पृ० ८६७)।

कहीं-कहीं इनका मल्लानी के रेतीले भाग की ओर जाना भी लिखा है। वास्तव में दुर्गादास का अकबर को दक्षिण की ओर ले जाने से यही तात्पर्य था कि इससे बादशाह का ध्यान उधर बट जायगा, और मारवाड़ का आक्रमण शिथिल हो जायगा।

३. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्गज़ेब' भा० ४, पृ० २४६। उस इतिहास में यह भी लिखा है कि यद्यपि बादशाह ने सब मार्गों और घाटों का प्रबन्ध कर रक्खा था, तथापि दुर्गादास बड़ी चालाकी से अपना पीछा करनेवालों को धोके में डालता हुआ डूंगरपूर से अहमदनगर

मारवाड़ का इतिहास

शंभाजी विचार में पड़ गए, तथापि अंत में कवि कलश के समझाने से उन्होंने इनको बड़े आदर-सत्कार के साथ अपने यहाँ रख लिया ।

इसकी सूचना पाने पर बादशाह को भय हुआ कि कहीं शाहजादा अकबर उधर भी इधर जैसा ही उपद्रव न खड़ा करदे । अतः उसने स्वयं दक्षिण की ओर जाने का इरादा किया । परन्तु मारवाड़ में राठोड़ और मेवाड़ में सीसोदिये उसको हैरान कर रहे थे । इसलिये अंत में उसने महाराना से संधि कर लेना ही उचित समझा । इसी के अनुसार बादशाह ने मोहम्मद आज़म के द्वारा महाराना को संधि कर लेने को प्रस्तुत किया; और बातचीत तय हो जाने पर जज़िया लेना बंद करके मेवाड़ का इलाका रानाजी को सौंप दिया । परन्तु उसके पुर, मांडल और बदनोर के परगने अपने ही अधिकार में रखे । इस संधि में एक शर्त यह भी थी कि जिस समय महाराज अजित-सिंहजी युवा हो जायँ, उस समय बादशाह की तरफ़ से मारवाड़ का राज्य उनको सौंप दिया जायँ ।

की तरफ़ चला । परन्तु जब उसे इस मार्ग से जाने में सफलता न हुई, तब वह अग्निकोण की ओर लौटकर बाँसवाड़े और दक्षिण मालवे से होता हुआ ज्येष्ठ वदी ८ (१ मई) के निकट अकबरपुर के पास से नर्मदा के उस पार हो गया, और इसी के १५वें रोज़ बुरहानपुर से कुछ फासले पर तापती के किनारे जा पहुँचा । परन्तु यहाँ पर भी शाही अवरोध के मिलने से उसे पश्चिम की ओर मुड़कर खानदेश और बगलाने होते हुए चलना पड़ा । अन्त में वह रायगढ़ से शंभाजी के पास पहुँच गया । (देखो भा० ३, पृ० ४१८) ।

१. 'अजितोदय' सर्ग ११, श्लो० २७-२६ ।

२. 'अजित-ग्रन्थ' में लिखा है कि सोनग ने भाटी वीरों को साथ लेकर आषाढ सुदी ६ (१४ जून) को जोधपुर के निकट इनायतख़ाँ से भीषण संग्राम किया । इसके बाद इसने फलोदी पहुँच उसे भी लूटा । (देखो छंद ६४४-६५४) ।

३. मन्नासिरेआलमगीरी में रानाजी की तरफ़ से संधि का प्रस्ताव होना लिखा है । यह संधि वि० सं० १७३८ वी आषाढ़ सुदी ६ (ई० सन् १६८१ की १४ जून) को राजसमन्द तालाब पर शाहजादे आज़म और राना जयसिंहजी के बीच हुई थी । (देखो पृ० २०८-२०९) ।

कहीं कहीं ७ के बदले १७ जमादिउस्सानी मानकर श्रावण वदी ३ (२४ जून) को इस घटना का होना लिखा है ।

४. एलफ़िस्टन्स हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ६२७ ।

इसके बाद सावन सुदी १ (६ जुलाई) को शाहआलम बहादुर (मुहम्मद मुअज़्ज़म) भी, जो राठोड़ों को दबाने के लिये भेजा गया था, सोजत और जैतारण की ओर से लौटकर अजमेर आ पहुँचा ।

भादों सुदी ३ (६ अगस्त) को बादशाह को खँजहाँ बहादुर की अर्जी से सूचना मिली कि शाहजादा अकबर इस समय दक्षिण में पाली के किले में ठहरा हुआ है और उसके पास २०० सवार और ८०० पैदल हैं । इन सब के खर्च का प्रबंध शंभाजी की ही तरफ़ से होता है । यह हाल जानकर बादशाह ने मुहम्मद आज़म को शाह का खिताब देकर दक्षिण की ओर भेजा, और प्रथम आश्विन सुदी ६ (८ सितंबर) को स्वयं भी उधर कूच किया । साथ ही अजमेर का प्रबंध शाहजादे मुहम्मद अज़ीम को सौंपा । बादशाह के दक्षिण की ओर जाते ही सोनग आदि राठोड़-सरदारों ने और भी जोर-शोर से उपद्रव का झन्डा खड़ा किया, और लगभग तीन हजार सवार एकत्रित कर मेड़ता-प्रांत को विध्वस्त करना प्रारंभ किया । इस पर कार्तिक सुदी १४ (१४

१. 'राजरूपक' में इसी वर्ष की आषाढ़ सुदी ६ को महाराज के सरदारों का जोधपुर पर चढ़ाई कर युद्ध करना लिखा है । (देखो पृ० ७६) ।
२. 'मन्नासिरेआलमगीरी' पृ० २०६ । 'अजित ग्रंथ' में लिखा है कि उसी समय बादशाह ने इन्द्रसिंह से नाराज़ होकर जोधपुर ज़ब्त कर लिया । परन्तु शाहआलम के कहने से नागौर उसी के पास रहने दिया (देखो छंद ६३१-६३६) उसी में आगे लिखा है कि बादशाह ने इनायतखाँ, को जोधपुर का प्रबन्ध सौंपा । अतः शाहबुद्दीनखाँ, जो हाल ही में वहाँ गया था, बीलाड़े चला गया । (देखो छन्द ६४०-६४३) ।
३. यह क़िला रायगढ़ से २५ मील पर था । कहीं-कहीं अकबर का पादशाहपुर में ठहरना भी लिखा मिलता है । यह पाली के किले से ६ मील पूर्व में था ।
४. 'मन्नासिरेआलमगीरी' पृ० २११ ।
५. उस समय मारवाड़ के उत्तर में साँभर और डीडवाने में, ईशानकोण में मेड़ते में, पूर्व में जैतारण, सोजत, पाली और गोडवाड़ में, पश्चिम में बालोतरा, पचपदरा और सिवाने में तथा दक्षिण में जालोर में बड़े-बड़े शाही थाने मुकर्रर किए गए थे । (हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्ग-ज़ेब, भा० ५, पृ० २७५-२७६) ।
६. 'मन्नासिरेआलमगीरी' पृ० २१२ । 'अजित ग्रंथ' में लिखा है कि बादशाह ने इनायतखाँ के बदले क़ासिमखाँ को जोधपुर भेजा, और असदखाँ को शाहआलम के पुत्र अज़ीम के पास अजमेर में रक्खा । (देखो छन्द ६८४-६८६) ।
७. 'राजरूपक' में इनका जोधपुर को घेरना, और बादशाह का घबराकर इनसे संधि करना लिखा है । उक्त इतिहास में यह भी लिखा है कि इस अवसर पर अजितसिंहजी को सात हज़ारी

मारवाड़ का इतिहास

नवम्बर) को शाही सेनापति ऐतकादख्वाँ ने इन पर चढ़ाई की। पूँदलोता के पास युद्ध होने पर दोनों तरफ़ के बहुत से वीर मारे गए। इन्हीं में प्रसिद्ध वीर सोनग था। अतः उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका बड़ा भाई चाँपावत अजबसिंह सेनापति नियत हुआ, और उसने इधर-उधर के गाँवों को लूट डीडवाने पर चढ़ाई की। यह देख वहाँ का शाही हाकिम घबरा गया। परन्तु इसी अवसर पर एक शाही सेना उधर आ पहुँची। अतः ये लोग वहाँ से कसूबी को चले गए, और कुछ वीरों ने जाकर मेड़ते को लूट लिया। शाही सेना भी इनके पीछे लगी चली आती थी। इससे डीगराने में पहुँचते-पहुँचते

मनसब के साथ ही जोधपुर लौटा देना भी तय हुआ था। परन्तु इस घटना के २-१ दिन बाद ही सोनग के मर जाने से यवनों ने यह संधि भंग कर दी।

‘राजरूपक’ में अजमेर के सूबेदार अजीमदीन की मार्फ़त संधि का प्रस्ताव होना लिखा है। परन्तु अजितोदय में अस्तीख़ाँ द्वारा संधि का प्रस्ताव किया जाना लिखा है। (देखो सर्ग ११, श्लो० ३२-३३)।

१. ‘मअसिरेआलमगीरी’ पृ० २१४-२१५।

‘राजरूपक’ में १७३८ की आसोज सुदी ७ शनिवार को सोनग का एकाएक मर जाना लिखा है। यथा:-

अठन्नीसै आसोज में, सित सातम सनवार;
गौ सोनागिर धाम हरि, नाम करे संसार।

द्वितीय आश्विन सुदी ७ को शनिवार था। अतः उस दिन ई० सन् १६८१ की ८ अक्टोबर आती है। ‘अजित ग्रन्थ’ में भी यही तिथि लिखी है। यथा:-

सुदी दूजो आसोज, वले सातम सनिवार;
सुत बीठल गो सुरग, सुणे इम हाको सारे। ७२३

‘अजितोदय’ में भी इसका एकाएक मरना ही लिखा है। उपर्युक्त ग्रंथों से यह भी पता चलता है कि शाही सेनापतियों ने सोनग की मार से तंग आकर ही संधि करने का निश्चय किया था। परन्तु उसके मरते ही अपना वचन भंग कर दिया। (देखो ‘राजरूपक’, पृ० ८२ और ‘अजितोदय’, सर्ग ११, श्लो० ३२-३५)।

‘अजित ग्रन्थ’ से भी इस बात की पुष्टि होती है। (देखो छन्द ६६४-७२६)।

२. ‘मअसिरेआलमगीरी’ में सोनग के साथ ही अजबसिंह का मरना भी लिखा है।

परन्तु ‘अजितोदय’ में सोनग के बाद अजबसिंह का सेनापति होना लिखा है। (देखो सर्ग ११, श्लो० ३३)।

यह बात ‘राजरूपक’ से भी प्रकट होती है। (देखो पृ० ८३)।

३. ‘अजित ग्रन्थ’ में मकराने के लूटने का उल्लेख है। (देखो छन्द ७४५)।

महाराजा अजितसिंहजी

उसने राठोड़ों की सेना को पकड़ लिया। मारवाड़ के वीर भी शत्रु को आया देख मुड़कर उस पर दूट पड़े। घोर युद्ध के बाद घोड़े का पैर दूट जाने के कारण वीर अजबसिंह युद्ध-स्थल में मारा गया।

इसके बाद सरदारों ने चाँपावत धीरसिंह के पुत्र उदयसिंह को अपना सेनापति बनाया। इस पर वह भी सेना को सजाकर जालोर पहुँचा, और उक्त नगर को लूटकर माँडल, सरवाड़पुर और तोड़े को लूटता हुआ मारवाड़ में लौट आया। इसके बाद इसने जाकर नगर नामक गाँव को लूट लिया।

वि० सं० १७३६ (ई० सन् १६८२) में इधर उदावत जगरामसिंह ने जैतारण में जाकर मार-काट मचाई, और उधर भाद्राजन पर हमला करनेवाली यवन-बाहिनी को जोधा उदयभाने ने और बालोतरे की तरफ़ आई हुई शाही सेना को बाला अखैराज आदि ने मार भगाया। इस प्रकार उदावत, कूँपावत, मेड़तिया आदि राठोड़ों ने और भाटी

१. अजितोदय, सर्ग ११, श्लो० ३४-४०। उक्त काव्य में मेड़ते को लूटने की तिथि वि० सं० १७३७ की कार्तिक बदी १४ (ई० सन् १६८० की ११ अक्टोबर) लिखी है।

यथा:-

संवच्छैलभवाक्षिवारिधिशशांकोन्मितेन्दे तथा-

प्यूजै कृष्णादले तु शम्भुदिवसे प्रातः समागम्य च।

परन्तु इसमें एक वर्ष का अन्तर प्रतीत होता है। 'राजरूपक' में अजबसिंह का वि० सं० १७३८ की कार्तिक सुदी २ को युद्ध में मरना लिखा है। (देखो पृ० ८५)।

'अजितग्रन्थ' में अजबसिंह के मरने की तिथि वि० सं० १७३८ की कार्तिक सुदी १ (ई० सन् १६८१ की १ नवम्बर) लिखी है। (देखो छन्द ७७६-७८०)।

२. 'मआसिरेआलमगीरी' से ज्ञात होता है कि वि० सं० १७३८ की फागुन सुदी ११ (ई० सन् १६८२ की ८ फरवरी) को बादशाह को ज्ञात हुआ कि राठोड़ माँडलपुर पर धावा करके बहुत सा माल-असबाब लूट ले गए हैं। (देखो पृ० २१७) (मेवाड़ का यह परगना बादशाह के अधिकार में था)।

'राजरूपक' में फागुन सुदी ३ को माँडल का लूटना और चैत्र बदी ८ को सोजत का घेरना लिखा है। (देखो पृ० ८८)।

३. अजितोदय, सर्ग ११, श्लो० ४७-४८।

४. अजितोदय, सर्ग ११, श्लो० ४६-५२। 'राजरूपक' में इस घटना का कार्तिक बदी १२ को होना लिखा है। यह युद्ध एक मास तक चलता रहा था।

५. अजितोदय, सर्ग १२, श्लो० २-७।

६. अजितोदय, सर्ग १२, श्लो० २६-३६। 'राजरूपक' में इस घटना का समय भादों सुदी १३ लिखा है।

मारवाड़ का इतिहास

चौहान, सीसोदिया आदि उनके संबन्धियों ने मारवाड़ को उजाड़ कर देश-भर में गमना-गमन के मार्ग रोक दिए ।

इसी प्रकार चाँपावत उदयसिंह ने सोजत की यवन-वाहिनी को परास्त किया । जोधावतों के एक दल ने मारवाड़ के उत्तरी भाग के मुसलमानों का मार्ग रोका, और दूसरे ने शाही सेना-नायक नूरअली को मार भगाया ।

इसके बाद चाँपावत उदयसिंह और मेड़तिया मोहकमसिंह ने गुजरात की ओर जाकर उपद्रव आरंभ किया । इसकी सूचना पाते ही सैयद मोहम्मद की सेना ने इनका पीछा किया । इस पर ये लोग उससे लड़ते-भिड़ते रत्नपुर होकर पौली पर टूट पड़े । यहाँ के युद्ध में बाला राठोड़ों ने अच्छी वीरता दिखाई । इसके बाद मेड़तिये मोहकमसिंह ने सोजत और जैतारण लूट मेड़ते पर अधिकार कर लिया ।

वि० सं० १७४१ (ई० सन् १६८४) में अजमेर के शाही सेना-नायक ने राठोड़ों पर चढ़ाई की । इसी बीच मौक्का पाकर भाटियों ने मंडोर पर अधिकार कर लिया; परन्तु कुछ दिन बाद ही उक्त नगर फिर मुसलमानों के अधिकार में चला गया ।

१. 'राजरूपक' के अनुसार इसने शाही मनसब छोड़ कर बालक महाराज का पक्ष ग्रहण किया था:-

मोहकमसिंह किल्याण तण, मेड़तियौ पणबंघ ;

तज मनसफ सुरतांगरौ, मिलियौ फौज कमंघ ।

(देखो पृ० ८३) ।

'अजितग्रंथ' से इस घटना का करीब एक वर्ष पूर्व सोनग के समय होना प्रकट होता है । उसमें यह भी लिखा है कि यह मोहकमसिंह अकबर की बगावत के समय तहक्वरख़ाँ के शरीक था । इसीसे उसके मारे जाते ही अपनी जागीर तोसीणे में चला गया था । जब बादशाह ने इसको मरवाने का विचार किया, तब यह आकर सोनग के साथ हो गया । (देखो छंद ६५४, ६६० और ६७४) ।

'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब' में भी मोहकमसिंह का ई० सन् १६८१ में राठोड़ों के साथ होना लिखा है । (देखो भा० ५, पृ० २७६) ।

२. 'राजरूपक' में पाली के युद्ध का वि० सं० १७४० की पौष सुदी ६ को होना लिखा है । (देखो पृ० ६७) ।

३. 'अजितग्रंथ' में लिखा है कि वि० सं० १७४० की सावन बदी १४ (ई० सन् १६८३ की ६ जुलाई) को असदख़ाँ और शाहजादा अजमेर से दकन को चले और इनायतख़ाँ को मारवाड़ का भार सौंपा गया । यहाँ के सरदार बराबर उपद्रव कर रहे थे । (देखो छंद ६१८-१०२२) ।

४ 'राजरूपक' में भी इस घटना का वि० सं० १७४१ के प्रारंभ में होना लिखा है । (देखो पृ० १००) ।

इधर अनूपसिंह ने करमसोतों और कूँपावतों को लेकर लूनी के आस-पास मार-काट मचाई, और उधर मोहम्मदअली ने मौका पाकर मेड़ता छीन लेने के लिये चढ़ाई की। परन्तु जब यवन-सेनापति को सम्मुख युद्ध में विजय की आशा न दिखाई दी, तब उसने मेड़तिया मोकमसिंह को संधि के बहाने अपने पास बुलवाकर मार डाला।

इसके बाद कूँपावत, भाटी और चौहान-वीरों ने जोधपुर पर चढ़ाई की। यह देख मुगल-सैनिक भी मुकाबले में आ डटे। युद्ध होने पर महाराज की तरफ़ के अनेक वीर मारे गए। इस पर संग्रामसिंह ने शाही मनसब की आशा छोड़ अपने वंशवालों का साथ दिया, और सुरजों में मार-काट कर बालोतरे और पचपदरे को लूट लिया।

जोधा उदयभान के उपद्रव से तंग आकर शाही फौज ने भादराजन पर चढ़ाई की। परन्तु युद्ध में उदयभान के आगे वह सफल मनोरथ न हो सकी।

वि० सं० १७४२ (ई० सन् १६८५) के लगते ही कूँपावत-वीरों ने काणाणे में पुरदिलखों पर हमला कर उसे मार डाला, और चैत्र सुदी ८ (ई० सन् १६८५ की २ अप्रैल) को सिवाने का क़िला छीन लिया।

इसी प्रकार अन्य राजपूत-वीर भी अपने बालक महाराज की अनुपस्थिति में अपने-अपने दलों को साथ लेकर इधर-उधर घूमते रहते थे, और जब जहाँ मौका पाते, तब वहीं यवनों पर आक्रमण कर उनका नाश करते थे^१।

१. 'राजरूपक' में वि० सं० १७४१ के वैशाख में इस युद्ध का होना लिखा है। (देखो पृ० १०४)।

२. 'राजरूपक' में इस घटना का समय १७४१ की आषाढ़ सुदी ६ लिखा है। (देखो पृ० १०५)।

३. राजरूपक, पृ० १०५-११०।

४. 'राजरूपक' में इस युद्ध का वि० सं० १७४१ की माघ सुदी ७ को होना लिखा है। (देखो पृ० १११)।

'अजितग्रन्थ' में भी इस घटना की यही तिथि लिखी है। (देखो छंद १११२)।

५. एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल की छपी 'मन्नासिरेअलमगीरी' में इस घटना का १२ दिन बाद वैशाख बदी ६ (१४ अप्रैल) को होना लिखा है। (देखो पृ० २५६) 'अजितग्रन्थ' में लिखा है कि वि० सं० १७४१ के ज्येष्ठ में पुरदिल को सिवाना मिला था, और १० मास बाद फागुन में उसने उस पर अधिकार किया था। (देखो पृ० १६२ की वार्ता और छंद ११३८)।

६. उस समय मारवाड़ के अनेक सरदार जहाँ तहाँ यवनों से जोहा लेने में लगे थे। अतः उन सब के किए युद्धों का अलग-अलग वर्णन करना कठिन होने के कारण ही यहाँ पर केवल मुख्य-मुख्य जड़ाइयों का संक्षिप्त हाल दिया गया है।

मारवाड़ का इतिहास

इसके बाद अगले वर्ष कुछ चाँपावत, कूँपावत और उदावत आदि शाखाओं के सरदारों ने महाराज को देखने और उनको प्रकट कर सरदारों के चित्त में और भी अधिक उत्साह बढ़ाने का संकल्प किया। इसी के अनुसार ये लोग खीची मुकुन्ददास के पास जाकर बालक महाराज के विषय में पूछताछ करने लगे। इसी समय बूँदी से आकर हाडा राव दुर्जनसालजी भी इनके साथ हो गए। यद्यपि पहले तो मुकुन्ददास ने इस विषय में अपनी अनभिज्ञता प्रकट कर उन सब को दुर्गादास के दक्षिण से लौट आने तक संतोष रखने की सलाह दी, तथापि अन्त में जब सरदारों का अत्यधिक आग्रह देखा, तब लाचार हो वि० सं० १७४४ की चैत्र सुदी १५ (ई० सन् १६८७ की १८ मार्च) को बालक महाराज को लाकर सब के सामने उपस्थित कर दिया। उस समय महाराज की अवस्था लगभग ८ वर्ष की थी। फिर भी सब से पूर्व हाडा दुर्जनसालजी उनसे मिले,^३ और फिर क्रमशः मारवाड़ के सरदारों ने नज़र और निष्ठा-वर करके महाराज का अभिनन्दन किया।

इसके बाद महाराज अपने उपस्थित सरदारों के साथ आउवा, बगड़ी, रायपुर, बीलाड़ा, बलूँदा, रीयों, आसोप, लवेरा, खीवसर, कोलू आदि स्थानों में होते हुए और वहाँ के सरदारों को साथ लेते हुए पौकरन पहुँचे।

इस समय तक दुर्गादास को दक्षिण में रहते बहुत समय बीत चुका था। अतः उसे भी मारवाड़ के समाचार जानने की उत्कंठा हुई। परन्तु दक्षिण के मार्गों पर चारों ओर शाही सेना की चौकियाँ बैठी हुई थीं। इसलिये वह शाहजादे अकबर को

१. 'राजरूपक' में इनका १,००० सवारों के साथ आना लिखा है। (देखो पृ० १२१)।

२. 'राजरूपक' में इस विषय में लिखा है:-

बरस तयौलै चैत सुद, पूनम परम उजास।

उक्त काव्य में श्रावण से नया वर्ष माना गया है। अतः इसके अनुसार यह घटना वि० सं० १७४४ के चैत्र में ही हुई थी। (देखो पृ० १२२)।

परन्तु हमने जहाँ कहीं अन्यत्र 'राजरूपक' से तिथियाँ और संवत् उद्धृत किए हैं, वे उत्तरीय भारत में प्रचलित चैत्र शुक्ल १ से प्रारंभ होनेवाले संवत्तों में परिवर्तन करके ही किए हैं।

'अजित-ग्रन्थ' में चैत्र सुदी १० को इनका प्रकट होना लिखा है (देखो छंद १४८२)।

३. 'अजित-ग्रन्थ' में इनका वि० सं० १७४३ में राठोड़ों के शरीक होना (देखो छंद १४४४) और महाराज अजित के अपने सरदारों के साथ सँडिराव में पहुँचने पर उनसे मिलना लिखा है। (देखो छंद १४६३)।

महाराजा अजितसिंहजी

जल-मार्ग से फ़ारस की तरफ़ खाना कर अपने वीरों के साथ शाही सैनिकों की दृष्टि को बचाता हुआ नर्मदा के पार हो गया, और वहाँ से मालवे के प्रदेशों को लूटता हुआ वि० सं० १७४४ के भादों (ई० सन् १६८७ के अगस्त) में मारवाड़ आ पहुँचा ।

ख्यातों में लिखा है कि दुर्गादास की सलाह के बिना ही सरदारों के आग्रह से महाराज प्रकट कर दिए गए थे । इसी से यहाँ पहुँचने पर उसके चित्त में कुछ उदासीनता आ गई । अतः जब वह दक्षिण से लौटकर मारवाड़ में आया, तब उसने स्वयं उपस्थित न होकर केवल पत्र द्वारा ही महाराज को अपने आगमन की सूचना भेज दी^१ । यह देख महाराज ने उसे ले आने के लिये अपना आदमी भेजा । परन्तु वह कुछ दिन के बाद उपस्थित होने की प्रतिज्ञा कर बात को टाल गया । इस पर महाराज स्वयं जाकर दुर्गादास से मिले, और बाद में उसी की सलाह से गूधरोट के पर्वतों में चले गए । इसके बाद दुर्गादास ने भी अपने वीरों को एकत्रित कर इधर-उधर के यवन-शासकों को तंग करना शुरू किया ।

१. अजितोदय में लिखा है कि अकबर एक बार फिर दुर्गादास के साथ मारवाड़ में आने को तैयार हो गया था । परन्तु मार्ग में मुगल-सैनिकों का सामना हो जाने और युद्ध में मरहटों के पीछे हट जाने से उसने इस विचार को छोड़ दिया । इस युद्ध में दुर्गादास और उसके राजपूत-अनुयायियों ने अच्छी वीरता दिखाई थी । इसके बाद दुर्गादास के मारवाड़ की तरफ़ लौट जाने पर अकबर जल-मार्ग से हबस-देश की तरफ़ चला गया । (देखो सर्ग १३ श्लोक १०) अन्य इतिहासों से उसका ई० सन् १६८६ के अक्टोबर के अंत (वि० सं० १७४३ के वैशाख) में पर्शिया के मार्ग से मस्कट की तरफ़ जाना प्रकट होता है ।

‘मन्नासिरेआलमगीरी’ में लिखा है कि हि० सन् १०६४ की १८ सफ़र (वि० सं० १७४० की फागुन बदी ५=ई० सन् १६८३ की ६ फरवरी) को ख़ाँजहाँ-बहादुर ने बादशाह को लिखा कि शाहज़ादा अकबर शंभा के राज्य से निकल जहाज़ द्वारा भाग गया है । (देखो पृ० २२४) परन्तु वास्तव में उस समय कवि कलश और दुर्गादास ने उसे कह-सुनकर रोक लिया था । (देखो सरकार-रचित ‘हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब’, भा० ४, पृ० २८५-२८६) ।

२. उस समय महाराज का निवास सिवाने में था । (देखो अजितग्रन्थ, छंद १५०२) ।

३. यहीं से कुछ दिन बाद यह सिवाने के क़िले में चले गए थे ।

४. ‘हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब’ में लिखा है कि दुर्गादास और दुर्जनसाल हाडा ने मिलकर मोहन, रोहतक और रिवाड़ी को लूटा । इसमें बहुत-सा माल इनके हाथ लगा । इसका समाचार मिलने पर दिल्ली में भी गड़बड़ मच गई । यह देख वहाँ के प्रबंधकर्ताओं ने ४,००० सवार इनके मुकाबले को भेजे । जब वे सवार इनसे २० मील के फ़ासले पर पहुँच गए,

मारवाड़ का इतिहास

इस प्रकार महाराज के प्रकट होने से उनके सरदारों का उत्साहित होना देख अजमेर के शाही हाकिम ने शीघ्र ही इस घटना की सूचना बादशाह के पास भेज दी। इससे उसकी चिन्ता और भी बढ़ गई, और उसने अजमेर के सूबेदार के नाम महाराज को पकड़ लेने की आज्ञा लिख भेजी। यह कार्य कुछ ऐसा सहज नहीं था। इसलिये बहुत कुछ उद्योग करने पर भी उसे सफलता नहीं मिली^१। यह देख एक बार फिर बादशाह ने स्वर्गवासी जसवन्तसिंहजी के बनावटी पुत्र मोहम्मदीराज को जोधपुर का राज्य सौंपने का इरादा किया। परन्तु वि० सं० १७४५ (ई० सन् १६८८) में वह बीजापुर में प्लेग की बीमारी से मर गया।

इसके बाद बादशाह ने गुजरात के सूबेदार कारतलबख़ाँ को मारवाड़ का प्रबंध करने के लिये जाने की आज्ञा भेजी। परन्तु उसके गुजरात से रवाना होते ही वहाँ की सेना में बलवे की सूरत हो गई, इसलिये उसे मार्ग से ही वापस लौट जाना पड़ा।

तब ये दोनों सरहिंद होते हुए मारवाड़ में लौट आए। इसके बाद दुर्जनसाल ने पुर और माँडल पर हमला किया। यहाँ पर इनायतख़ाँ और दीनदारख़ाँ (माँडल के फ़ौजदार) की सेनाओं से युद्ध होने पर दुर्जनसाल मारा गया।

कर्नल टॉड के लेखानुसार राठोड़ों ने मालपुरे की सेना को नष्ट कर वहाँ से दंड के रुपये वसूल किए थे। (देखो भा० ५, पृ० २७८)।

१. 'अजितोदय' (सर्ग १३, श्लो० २३) और 'राजरूपक' (पृ० १२५) में इस हाकिम का नाम इनायतख़ाँ लिखा है, और उनमें यह भी लिखा है कि उसी समय पीठ में फोड़ा हो जाने से वह मर गया था। अतः इस कार्य में सफल न हो सका। 'बॉवे गज़ेटियर' में लिखा है कि ई० सन् १६८६ में इनायतख़ाँ के मरने की सूचना पाकर कारतलबख़ाँ वहाँ के मगड़े को दबाने के लिये गुजरात से जोधपुर को रवाना हुआ। (देखो भा० १, खंड १, पृ० २८८) परन्तु 'मन्नासिरेआलमगीरी' में उसके मरने की सूचना का औरंगजेब के पास वि० सं० १७३६ की कार्तिक सुदी ३ (ई० सन् १६८२ की २३ अक्टोबर) को पहुँचना लिखा है। (देखो पृ० २२३)।

'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब' में लिखा है कि हि० सन् १०६६ (वि० सं० १७४४=ई० सन् १६८७) में जोधपुर का फ़ौजदार मर गया। परन्तु उस समय दक्षिण से फ़ौज भेजना असंभव था। अतः यहाँ की फ़ौजदारी का भार भी गुजरात के सूबेदार को सौंप दिया गया। (देखो भाग ३, पृ० ४२३ फुटनोट *) उसी में यह भी लिखा है कि उसने अगले वर्ष राठोड़ों से यह समझौता कर लिया कि यदि वे व्यापारियों के गमनागमन में बाधा न डालेंगे, तो उनके माल पर के लगान का चौथाई हिस्सा उन्हें दिया जायगा। (देखो भा० ५, पृ० २७३)।

२. मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० ३१८।

अन्त में जब उसने वहाँ पहुँच उस भगड़े को दबा दिया, तब बादशाह ने प्रसन्न होकर उसका नाम शुजाअतख़ाँ रख दिया और गुजरात के साथ ही मारवाड़ का प्रबंध भी उसे सौंप दिया । इसके बाद शुजाअतख़ाँ गुजरात से जोधपुर पहुँचा और उसने काज़मबेग मोहम्मद अमीन को जोधपुर में अपना प्रतिनिधि नियत किया । मेड़ता (राव इन्द्रसिंह के पुत्र) मोहकमसिंह को सौंपा गया । सोजत और जैतारण पर सैयदों का अधिकार रहा । इस प्रकार मारवाड़ का प्रबंध कर वह फिर गुजरात को लौट गया ।

यह देख मारवाड़ के सरदारों ने फिर से मार-काट शुरू कर दी । इसी समय इनायतख़ाँ का पुत्र मुहम्मदअली अपने कुटुम्ब को लेकर मेड़ते से दिल्ली को रवाना हुआ । यह बड़ा ही धूर्त था । अतः इसकी सूचना पाते ही चाँदावत जूँभारसिंह, सूरजमल और जोधा हरनाथ ने उसका पीछा किया । मार्ग में युद्ध होने पर मुहम्मद तो अपने कुटुम्ब को छोड़ कर भाग खड़ा हुआ, और उसका साज-सामान राठोड़ों के हाथ लगा ।

वि० सं० १७४६ (ई० सन् १६८१) में चाँपावत मुकुन्ददास और दुर्गादास आदि ने मिलकर जोधपुर के रत्नक काज़मबेग और अजमेर के सेनापति शफीख़ाँ को तंग करना शुरू किया । इसकी सूचना पाते ही बादशाह ने उसकी शिथिलता के लिये बहुत कुछ उलाहना लिख भेजा । इस पर शफीख़ाँ ने और भी दृढ़ता के साथ राठोड़ों का पीछा शुरू किया ।

१. बाँबिगनेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २८८ ।

२. अजितोदय, सर्ग १३, श्लो० २४-२८ ।

३. अजितोदय, सर्ग १४, श्लो० १ और १६-३७, राजरूपक, पृ० १३३-१३४ और अजितग्रन्थ, छन्द १५८४-१५८८ । 'राजरूपक' में इस घटना का वि० सं० १७४६ में होना लिखा है । 'अजितोदय' से ज्ञात होता है कि शुजाअतख़ाँ ने मेड़ते का प्रबंध भी इन्द्रसिंह के पुत्र मोहकमसिंह को सौंप दिया था । इसी से मुहम्मदअली वहाँ से दिल्ली को रवाना हुआ था । (देखो सर्ग १३, श्लो० २६) ।

इस मुहम्मदअली ने कोसाने के ठाकुर चाँदावत पृथ्वीसिंह को, दोहा के ठाकुर चाँदावत जैतसिंह को और मेड़तिया मोहकमसिंह को धोके से मारा था । (अजितोदय सर्ग १४, श्लो० ३-१८) ।

४. 'अजितग्रन्थ' में इस घटना का वि० सं० १७४७ में होना लिखा है । (देखो छन्द १६०० और १६०४-१६०६) ।

५. 'अजितग्रन्थ' में वि० सं० १७४७ (ई० सन् १६९०) में शुजाअतख़ाँ का गुजरात से मारवाड़ में आना और बादशाह का अपने पदाधिकारियों द्वारा मारवाड़ में महाराज के

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १७४७ के मँगसिर (ई० सं० १६६० के नवम्बर) में अजमेर के शाही सेनापति शफीख़ाँ ने महाराज को धोका देकर पकड़ लेने का इरादा किया, और इसीके अनुसार उसने इन्हें अजमेर आकर मारवाड़ के शासन का बादशाही फ़रमान ले जाने की सूचना दी। महाराज भी शफीख़ाँ का पत्र पाकर अपने दल-बल सहित सिवाने से अजमेर की तरफ़ चले। यद्यपि इनके दल-बल को देख उसकी हिम्मत इनके पकड़ने की न हुई, तथापि इनके इधर चले आने से यवनों ने सिवाने पर अधिकार कर उसे जोधा सुजानसिंह को सौंप दिया। जैसे ही महाराज को इस कपट का पता चला, वैसे ही यह समेल के पहाड़ों में चले गए।

वि० सं० १७४८ (ई० सं० १६६१) में महाराना जयसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंहजी ने पिता से राज्य छीन लेने का विचार किया। इस पर महाराना तत्काल कुंभलगढ़ चले आए, और वहां से उन्होंने मेड़तिये गोपीनाथ की सलाह के अनुसार महाराज अजितसिंहजी के पास आदमी भेजकर इनसे सहायता की प्रार्थना की। इस पर महाराज की तरफ़ से चांपावत उदयसिंह और दुर्गादास उनकी मदद में भेजे गए। इन्होंने वहां पहुँच साम, दान और भय द्वारा राजकुमार को शांत कर दिया। इस प्रकार पिता-पुत्र के बीच संधि हो जाने पर रानाजी उदयपुर चले गए और

सरदारों को चौथ (आमदनी का चौथा हिस्सा) देने का हाल सुन दक्षिण से उसके नाम उलाहना लिख भेजना लिखा है। (देखो छन्द १६५०-१७१४)।

१. 'अजितग्रन्थ' में वि० सं० १७५१ की ज्येष्ठ सुदी में अजमेर के फ़ौजदार शफीख़ाँ का मरना लिखा है। (देखो पृ० ३६५) उसमें यह भी लिखा है कि इसके बाद इसका काम हामिदख़ाँ को सौंपा गया। (देखो पृ० ३६७)।
२. यह पिशांगण का था। 'राजरूपक' में सिवाना लेने का कुछ भी उल्लेख नहीं है। (हस्त-लिखित कापी, पृ० १३२-१३३)।
३. 'अजितग्रन्थ' में इस घटना का वि० सं० १७४६ के आश्विन में होना लिखा है। (देखो पृ० ३१५ और ३५६)।

'हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्गज़ेब' में ई० सन् १६६० में दुर्गादास द्वारा अजमेर में शफीख़ाँ का हराया जाना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि इस घटना की सूचना पाकर शुजाअतख़ाँ को मारवाड़ में आना पड़ा और इसी समय उसने व्यापारियों के माल के लगान का चौथा हिस्सा राठोड़ों को देना तय किया। (देखो भा० ५, पृ० २७८-२७९)।

महाराजकुमार राजसमंद तालाब पर रहने लगे। इसके बाद दुर्गादास आदि राठोड़ सरदार लौटकर मारवाड़ में चले आएँ।

वि० सं० १७४६ (ई० सन् १६६२) में औरङ्गजेब ने शाहजादे मुहम्मद अकबर की कन्या को दुर्गादास से वापस लेने की कोशिश शुरू की। परन्तु इसका कुछ भी नतीजा न हुआ। उलटा राठोड़-सरदारों का उपद्रव और भी बढ़ गया। इस पर शुजाअतख़ाँ खुद जोधपुर आया, और उसने कुछ बड़े-बड़े सरदारों को उनकी जागीरें लौटाकर अपनी तरफ़ मिला लेने की चेष्टा की। उसी की आज्ञा से काजिमबेग ने भी दुर्गादास पर चढ़ाई कर उसके दल को बिखेर दिया। परन्तु पूरी सफलता न होने के कारण पहले के समान ही मोहकमसिंह को मेड़ते में छोड़ शुजाअतख़ाँ गुजरात को लौट गया।

ख्यातों में लिखा है कि यद्यपि महाराज दुर्गादास से विना पूछे ही अजमेर की तरफ़ चले गए थे, तथापि सिवाने के इस प्रकार हाथ से निकल जाने के कारण दुर्गादास को बहुत दुःख हुआ, और वह फिर उदासीन होकर घर बैठ रहा। इस पर महाराज वि० सं० १७५० (ई० सन् १६६३) में फिर उससे मिलने के लिये भीमरलाई पहुँचे। इसकी सूचना पाते ही दुर्गादास ने आगे आ महाराज की अभ्यर्थना की। परन्तु पीछे से आने का वादा कर महाराज के साथ चलने से इनकार कर दिया। यह बात महाराज को बुरी लगी, और वह कुछ असन्तुष्ट होकर कुंडल की तरफ़ लौट गए।

वि० सं० १७५० (ई० सन् १६६३) में मुसलमानों की सम्मिलित सेनाओं ने मोकलसर के बाला अखैसिंह पर चढ़ाई की। परन्तु बाला राठोड़ों ने बड़ी वीरता से इनका सामना किया। इसी प्रकार और भी कई जगह शाही और महाराज की सेनाओं के बीच मुठभेड़ें हुईं। इस वर्ष भी शुजाअत को राठोड़ों के उपद्रव के कारण दो बार मारवाड़ में आना पड़ा।

१. 'अजितोदय' सर्ग १५, श्लो० १-१७। 'वीरविनोद' में प्रकाशित मारवाड़ के इतिहास में इस घटना का समय वि० सं० १७४६ (ई० सन् १६६२) लिखा है।

२. 'मन्नासिरेआलमगीरी' में पुत्र लिखा है। (देखो पृ० ३६५)।

३. बॉबिंगेयियर, भा० १, खंड १, पृ० २८६। उसी में यह भी लिखा है कि शुजाअतख़ाँ साल में ६ महीने जोधपुर में रह कर यहाँ के उपद्रव को दबाने में लगा रहता था।

४. यह बात 'राजरूपक' और 'अजितोदय' में नहीं लिखी है।

५. बॉबिंगेयियर, भा० १, खंड १, पृ० २८६।

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १७५१ (ई० सन् १६९४) में राठोड़ों ने और भी जोर पकड़ा । इस पर बहुत से शाही हाकिम इनको अपने-अपने प्रदेशों की आमदनी का एक भाग देकर अपना बचाव करने लगे ।

कुछ दिन बाद शुजाअतख़ाँ ने काज़िमख़ाँ को अपने पास गुजरात में बुला लिया । इस पर वह सोजत के लश्करीख़ाँ को जोधपुर का प्रबन्ध सौंप वहाँ चला गया । महाराज उस समय पीपलोद के पहाड़ों में थे, इसलिये चाँपावत उदयसिंह आदि ने लश्करीख़ाँ को गोड़वाड़ के युद्ध में मार भगाया । इसकी सूचना पाते ही शुजाअतख़ाँ ने काज़िम को फिर जोधपुर भेज दिया ।

ख्यातों में लिखा है कि इसी वर्ष महाराज ने फिर से मुकुंददास आदि को दुर्गादास के पास भेजा । यह लोग उसे समझाकर महाराज के पास ले आए । इसके बाद सरदारों ने फिर से इधर-उधर के यवन-शासकों को दबाकर दण्ड के रुपये वसूल करने शुरू किए ।

वि० सं० १७५२ (ई० सन् १६९५) में महाराज के वीरों और मुगल-सेना-पतियों के बीच किरमाल की घाटी के पास युद्ध हुआ । इसमें राठोड़ों ने पर्वत का सहारा पा अच्छी वीरता दिखाई । इसके बाद महाराज बीजापुर की तरफ चले गए । इसी बीच बादशाह ने शाहजादे मोहम्मद अकबर के बालकों को लौटाने के लिये शुजाअतख़ाँ के द्वारा दुर्गादास से फिर बातचीत प्रारंभ की, और उसे मनसब देने का वादा भी किया । परंतु दुर्गादास ने महाराज को मनसब मिलने के पहले स्वयं उसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया ।

इसी वर्ष लोगों के सिखलाने से मेवाड़ के महाराजकुमार अमरसिंहजी ने फिर से पिता के साथ विरोध करने का विचार किया । यह देख महाराना जयसिंहजी ने अपने भाई

१. अजितोदय, सर्ग १५, श्लो० १६-२७ । इस काव्य में पीछे से महाराज का भी युद्ध-स्थल में आ जाना लिखा है । 'अजितग्रन्थ' में इसी वर्ष की फागुन बदी १० को काज़िमबेग का मरना और हामिदख़ाँ को उसका पद मिलना लिखा है । (देखो पृ० ४१४) ।

२. अजितग्रन्थ, पृ० ४०५-४०८ ।

३. 'राजरूपक' में दुर्गादास का अकबर के पुत्र को अपने पास रखकर उसकी बेगम को बादशाह के पास भेज देना लिखा है (देखो पृ० १४१) ।

४. इसकी पुष्टि 'राजपूताने के इतिहास' से भी होती है । उसके तीसरे भाग के पृ० ६०२ पर लिखा है कि, "इस प्रकार वि० सं० १७४८ (ई० सन् १६९१) के अन्त के आस पास इस गृह-कलह की समाप्ति हुई । परन्तु दोनों के दिल साफ न हुए, इत्यादि" ।

गजसिंह की कन्या से महाराज का विवाह निश्चित कर इन्हें शीघ्र ही उदयपुर आने को लिखा। इस पर महाराज भी अपने वीरों को लेकर तत्काल वहाँ जा पहुँचे। यह देख महाराजकुमार को शांत हो जाना पड़ा। इसके बाद वि० सं० १७५३ (ई० सन् १६९६) में विवाह हो जाने पर महाराज लौटकर पीपलोद के पहाड़ों में चले आए।

इन्हीं दिनों गुजाअतख़ाँ फिर जोधपुर आया और यहाँ के उपद्रव के कारण कुछ मास तक उसे यहीं रहना पड़ा। इसी बीच उसने दुर्गादास से संधि की शर्तें तय कर लीं। अतः दुर्गादास ने पहले तो बादशाह की पोती को उस (बादशाह) के पास भेज दिया और फिर स्वयं दक्षिण में पहुँच उसके पोते को भी उसे सौंप दिया। इसकी एवज में बादशाह ने उसे पहले मेड़ता और बाद में धंधुका तथा गुजरात के अन्य कई परगने जागीर में दिए। वि० सं० १७५५ (ई० सन् १६९८) में इत्तमादख़ाँ मर गया, और उसका बेटा मुहम्मदमुशीन दीवान बनाया गया। इस पर बादशाह ने उसे दुर्गादास को मेड़ता

१. यह घटना 'अजितोदय' (सर्ग १५, श्लो० २६-३५) और 'राजरूपक' (पृ० १४१) से ली गई है। 'अजितग्रंथ' में पिता-पुत्र में फिर झगड़ा होने का उल्लेख नहीं है। (देखो पृ० ४२१)।

'वीरविनोद' में प्रकाशित मारवाड़ के इतिहास में इस घटना का समय वि० सं० १७५३ (ई० सन् १६९६) दिया है।

२. 'बैविगज़ेटियर', भा० १, खंड १, पृ० २८६।

३. दुर्गादास ने वहाँ के प्रबंध के लिये अपना प्रतिनिधि भेज दिया था। 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में ई० सन् १६९४ से ही दुबारा इस विषय की बातचीत का शुरु होना लिखा है। (देखो भा० ५, पृ० ३८१)।

४. 'राजरूपक' में लिखा है कि वि० सं० १७५३ (ई० सन् १६९६) के अंत में दुर्गादास ने अकबर की बेगम और कन्या को, जो शाहज़ादे के दक्षिण जाने के समय से ही मारवाड़ में थीं, बादशाह के पास भेज दिया, और वि० सं० १७५४ (ई० सन् १६९७) में वह स्वयं शाहज़ादे के पुत्र को लेकर बादशाह के पास दक्षिण में पहुँचा। इस समय महाराज अपने वीरों के साथ कुंडल के पहाड़ों में ठहरे हुए थे। इसके बाद अगले वर्ष जालोर पर महाराज का अधिकार हो गया। (देखो पृ० १४३-१४६)।

'मअसिरेआलमगीरी' में लिखा है कि अहमदाबाद के नाज़िम गुजाअतख़ाँ के समझाने से दुर्गादास ने वि० सं० १७५५ की द्वितीय ज्येष्ठ बदी ५ (ई० सन् १६९८ की २० मई) को अकबर के पुत्र बुलंदअख़्तर को, जो उस (अकबर) के भागने के समय मारवाड़ में पैदा हुआ था, ले जाकर बादशाह को सौंप दिया। इस पर बादशाह ने प्रसन्न होकर दुर्गादास को जड़ाऊ खिलअत, तीन हज़ारी ज़ात और ढाई हज़ार सवारों का मनसब दिया।

मारवाड़ का इतिहास

सौंप देने की आज्ञा दी, और मुहम्मदमुनीम को जोधपुर का क़िलेदार बनाया। लगातार दो वर्षों से वर्षा न होने के कारण इस वर्ष मारवाड़ में बड़ा अकाल पड़ा। वि० सं० १७५६ (ई० सन् १६९९) में दुर्गादास के कहने से बादशाह ने महाराज को कुछ परगनों के साथ ही जालोर और सांचोर का शासन सौंप दिया। इसके बाद वि० सं०

मन्नासिरेआलमगीरी, पृ० ३६५। 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में जड़ाऊ खंजर, सोने का पदक, मोतियों की माला और १,००,००० रुपये देना लिखा है। (देखो भा० ५, पृ० २८६)।

वि० सं० १७५५ की पौष सुदी १३ (ई० सन् १६९८ की ३ जनवरी) को बादशाह ने दुर्गादास के नाम एक फ़रमान लिखा। उसमें उसे सेवस्तान की तरफ़ जाकर शाहज़ादे अकबर को ले आने की आज्ञा दी थी।

'भीरातेअहमदी' में लिखा है कि हि० सन् ११०७ (वि० सं० १७५३=ई० सन् १६९६) में ईश्वरदास और गुजाअतख़ाँ की लिखा-पढ़ी से मामला तय हो जाने पर दुर्गादास ने शाहज़ादे अकबर की कन्या सफ़ीयतुन्निसाँ बेग़म को बादशाह के पास भेज दिया। दुर्गादास ने एक पढ़ी-लिखी औरत को रख कर उक्त बेग़म को कुरान याद करवा दिया था। बादशाह को बेग़म के द्वारा यह बात ज्ञात होने पर बड़ी प्रसन्नता हुई, और उसने गुजाअतख़ाँ को लिखा कि जैसे हो, वैसे वह दुर्गादास को बड़ी इज़्ज़त के साथ दरबार में भेज दे। इसी के साथ उसने यह भी आज्ञा दी कि दुर्गादास को (जोधपुर पहुँचने पर ५०,००० और अहमदाबाद पहुँचने पर ५०,००० कुल) १,००,००० रुपये दिए जायँ, और मेड़ता उसकी जागीर में कर दिया जाय। इस पर दुर्गादास भी अकबर के पुत्र (बुलंदअस्तर) को लेकर अगले वर्ष बादशाह के पास दक्षिण में जा पहुँचा। बादशाह की तरफ़ से उसके अमीरों ने दुर्गादास की पेशवाई में उपस्थित हो उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। (देखो भा० १, पृ० ३४६-३५०)।

उस समय बादशाह भीमा नदी पर स्थित इसलामपुर में था। जब दुर्गादास ने बादशाह की आज्ञानुसार शस्त्र खोलकर दरबार में जाना अंगीकार न किया, और बहुत दबाने पर तलवार पर हाथ रक्खा, तब उसे शस्त्र लेकर ही उपस्थित होने की आज्ञा दी गई। (हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भा० ५, पृ० २८५-२८६)।

१. अजितोदय, सर्ग १५, श्लो० ५१।

२. मुजाहिदख़ाँ जालोरी को, जो पहले वहाँ का शासक था, इनकी एवज़ में पालनपुर और डीसे में जागीर दी गई थी। 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब' में ई० सन् १६९८ में बादशाह द्वारा महाराज को जालोर, साँचोर और सिवाना दिया जाना लिखा है (देखो भा० ५, पृ० २८४)।

'राजरूपक' में महाराज का वि० सं० १७५५ की आषाढ़ सुदी ५ को जालोर पहुँचना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि वि० सं० १७५४ (ई० सन् १६९८) में महाराज कुछ दिन जोधपुर जाकर रहे थे, और उस अवसर पर शाहज़ादे (अज़ीम) ने इनकी बड़ी खातिर की थी। इसके बाद वह जालोर लौट गए। परन्तु यह सब कवि-कल्पना ही प्रतीत होती है।

महाराजा अजितसिंहजी

१७५७ (ई० सन् १७००) में उसने इन्हें अपने पास आने को लिखा ।

वि० सं० १७५७ के द्वितीय श्रावण (ई० सन् १७०० के अक्टोबर) में अजितसिंहजी ने ४,००० सवार लेकर शाही दरबार में उपस्थित होने की इच्छा प्रकट की । परन्तु इसके साथ ही इन्होंने खर्च के लिये कुछ रुपये नकद और कुछ परगने दिए जाने का भी लिखा । बादशाह ने रुपयों के देने के लिये तो अजमेर के खजाने पर आज्ञा भेज दी, परन्तु जागीर के बाबत महाराज के दरबार में उपस्थित होने पर दिए जाने का वादा किया ।

इसके बाद बादशाह ने महाराज को कई बार बुलवाया । पर यह उसके पास नहीं गए ।

ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १७५७ के पौष (ई० सन् १७०० की जनवरी) में महाराज अजितसिंहजी ने शाही सेना को भगाकर जोधपुर पर अधिकार कर लिया था । परन्तु वि० सं० १७५६ (ई० सन् १७०२) में शाहजादे मुहम्मद मुअज़्ज़म ने उसे वापिस छीन लिया । यह भी ठीक प्रतीत नहीं होता । 'अजितोदय' में भी इसका उल्लेख नहीं है ।

१. 'बैविगज़ेटियर', भा० १, खंड १, पृ० २६०-२६१ ।

२. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब', भा० ५, पृ० २८६ ।

३. हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब, भा० ५, पृ० २८७ ।

जोधपुर राज्य की मुनशीगिरी के दफ्तर से एक फरमान मिला है । यह औरंगज़ेब के पौत्र (शाहजादे मुअज़्ज़म बहादुरशाह के पुत्र) मुइजुद्दीन की तरफ से लिखा गया था । इसकी मुहर में हि० सन् १११३ और आलमगीरी सने जलूस ४६ (वि० सं० १७५८=ई० सन् १७०२) लिखा है । इससे प्रकट होता है कि पद्मसिंह के द्वारा लिखा पढ़ी होने के बाद बादशाह की तरफ से उसी के साथ महाराज के लिये खासा खिलअत, निशान, सातहजारी जात, सात हजार सवारों का मनसब और जोधपुर के अधिकार का फरमान मय खास पंजे के भेजा गया था । साथ ही इन्हें जहां तक हो शीघ्र २०-३० हजार सवार और इतने ही पैदल सिपाही साथ लेकर दिल्ली के निकट मिलने का लिखा गया था और ऐसा करने पर और भी पद और मर्यादा में वृद्धि करने का वादा किया गया था । उसी में आगे अपने भी शीघ्र दिल्ली पहुँचने का जिक्र था ।

यह फरमान २६ जिलहिज को लिखा गया था । परन्तु इसके लिखे जाने के सन् का निर्णय करना कठिन है । सम्भवतः यह वि० सं० १७६३ की वैशाख सुदि १ (ई० सन् १७०६ की २ अप्रैल) को लिखा गया होगा; क्योंकि इसमें बादशाह के दिल्ली की तरफ रवाना होने का उल्लेख है ।

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १७५१ की मँगसिर बदी १४ (ई० सन् १७०२ की ७ नवम्बर) को महाराज की चौहान-वंश की रानी के गर्भ से महाराजकुमार अभयसिंहजी का जन्म हुआ । उस समय महाराज जालोर में थे, और चाँपावत उदयसिंह इनका प्रधान था ।

वि० सं० १७६० (ई० सन् १७०३) में शुजाअतख़ाँ के मरने पर शाहजादा मुहम्मदआज़म गुजरात का सूबेदार हुआ । उसने काज़म के पुत्र जाफ़रकुली को जोधपुर का और दुर्गादास को पाटन का फौजदार बनाया ।

इसके कुछ दिन बाद ही बादशाह की आज्ञा से शाहजादे आज़म ने दुर्गादास को अपने अहमदाबाद के दरबार में बुलाकर मार डालने का इरादा किया । परन्तु उसकी जल्दबाज़ी से दुर्गादास को संदेह हो गया, और इसीसे वह बचकर निकल गया । यद्यपि आज़म की आज्ञा से सफ़दरख़ाँ बाबी ने उसका पीछा किया, तथापि दुर्गादास के पौत्र द्वारा मार्ग में ही रोक लिए जाने से उसे सफलता नहीं हुई । यहीं पर दुर्गादास का उक्त पौत्र मारा गया । परन्तु दुर्गादास अपने कुटुम्बियों के साथ मारवाड़ में पहुँच महाराज

१. अजितोदय, सर्ग ६, श्लो० ४-१५ ।

२. अजितोदय, सर्ग १५, श्लो० ५२ ।

३. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्गजेब' में शुजाअत का वि० सं० १७५८ की श्रावण बदी १ (ई० सन् १७०१ की ६ जुलाई) को मरना लिखा है । (देखो भा० ५, पृ० २८७) ।

४. 'बैबिगज़ेटियर', भा० १ खंड १, पृ० २६१, 'राजरूपक' में वि० सं० १७५७ (ई० सन् १७००) में शुजाअत का मरना और आज़म का गुजरात का सूबेदार होना लिखा है । उसके अनुसार वि० सं० १७६१ में जाफ़र का मारवाड़ में आना प्रकट होता है । (देखो पृ० १६०) ।

५. शाहजादे की आज्ञा से दुर्गादास पाटन से आकर अहमदाबाद के पास करिज़ में ठहरा था । उस दिन द्वादशी का दिन होने से वह एकादशी के व्रत का पारण कर दरबार में उपस्थित होना चाहता था । उधर शाहजादे ने शिकार को जाने के बहाने से सेना और मनसबदारों को पहले से ही तैयार कर यथास्थान खड़ा कर दिया था और दुर्गादास के मारने का काम सफ़दरख़ाँ बाबी को सौंपा था । परन्तु दुर्गादास के आने में देर होती देख शाहजादे ने उसको बुला लाने के लिये बार-बार हलकारे भेजने शुरू किए । इससे उसको संदेह हो गया, और वह पारण किए बिना ही अपने कैप को जलाकर मारवाड़ की तरफ़ चल दिया । (हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्गजेब, भा० ५, पृ० २८७-२८८) ।

६. यह युद्ध पाटन के मार्ग में हुआ था । इसमें सफ़दर का पुत्र और मुहम्मद अशरफ़ गुरनी जख़मी हुए ।

अजितसिंहजी के दल में मिल गया ।

वि० सं० १७६२ (ई० सन् १७०५) में जवरदस्तख़ाँ अजमेर और जोधपुर का हाकिम नियत हुआ । उसी समय बादशाह ने दुर्गादास का मारवाड़ में अधिक रहना हानिकारक समझ इधर तो उसे गुजरात जाने के लिये लिख भेजा, और उधर गुजरात के नायब अब्दुलहमीद को उसकी पुरानी जागीर उसे लौटा देने की आज्ञा दी^२ । इसी वर्ष गुजरात के शासक शाहजादे मुहम्मद बेदारबख्त ने फिर से महाराजा अजितसिंहजी के उपद्रवों को दबाने का प्रयत्न प्रारंभ किया । परन्तु उस समय गुजरात में मरहटों के कारण बड़ी गड़बड़ मची हुई थी । अतः दुर्गादास की सलाह से महाराज ने थिराद

इतने में दुर्गादास ६० मील पर के उम्ता-उनौवा में पहुँच गया, और वहाँ से पाटन पहुँच अपने कुटुम्ब के साथ थिराद चला आया । यहाँ पर इसने वि० सं० १७५६ (ई० सन् १७०२) में महाराज के साथ होकर फिर मुगल-सैनिकों पर आक्रमण शुरू कर दिए । परन्तु इनमें विशेष सफलता नहीं हुई । (हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्गजेब, भा० ५, पृ० २८८-२८९) ।

उक्त इतिहास में इसी वर्ष महाराज के और दुर्गादास के बीच मनोमालिन्य होना लिखा है । (देखो भा० ५, पृ० २८६-२८७) ।

१. बँबिगज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २६१-२६२ ।

२. बँबिगज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २६३ ।

३. यह वि० सं० १७६२ (ई० सन् १७०५) में गुजरात का सूबेदार नियत किया गया था ।

‘ हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्गजेब ’ में लिखा है कि इसी वर्ष दुर्गादास ने शाहजादे आजम के द्वारा बादशाह से फिर मेल कर लिया । इसी से वह अपने पुराने मनसब और पाटन की फौजदारी के पद पर नियत किया गया । (देखो भा० ५, पृ० २६१) ।

४. वि० सं० १७६२ की कार्तिक वदि १ के बाली से लिखे मुकुन्ददास के पत्र से, जो बीलाड़े में भगवानदास के नाम भेजा गया था, ज्ञात होता है कि इस अवसर पर औरङ्गजेब ने महाराजा अजितसिंहजी को अपने पास बुलवाया था और उन्हें मनसब देने का वादा भी किया था ।

५. बँबिगज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २६४-२६५ । उसमें यह भी लिखा है कि अन्त में अजितसिंह ने कुँवर मोहकमसिंह को हराकर जोधपुर पर चढ़ाई की, और उक्त नगर को काज़मबेग के पुत्र जाफरकुली से छीन लिया । इसी बीच दुर्गादास जाकर सूत के दक्षिण में रहनेवाले कोलियों के साथ छिप गया था । इसने मौका पाकर उसने नायब होकर पाटन को जाते हुए काज़म के पुत्र शाहकुली को मार्ग में ही मार डाला, और इसके बाद चनियाँर में बीरमगाँव के हाकिम मासुमकुली की सेना का भी नाश कर दिया । मासुमकुली स्वयं बड़ी कठिनता से बचकर भाग सका । इस पर सफ़दरख़ाँ बाबी ने पाटन की हुकूमत

मारवाड़ का इतिहास

पर चढ़ाई कर दी। परन्तु अन्त में यवन-वाहिनी के वहाँ पहुँच जाने से इनको जालोर लौट आना पड़ा।

इसी समय राव इन्द्रसिंह के पुत्र मोहकमसिंह ने बगड़ी ठाकुर दुर्जनसिंह के द्वारा, महाराज के मंत्री चाँपावत उदयसिंह को अपनी तरफ़ मिला लिया, और वि० सं० १७६२ के माघ (ई० सन् १७०६ की जनवरी) में यवन-वाहिनी को लेकर चुपचाप जालोर पर चढ़ाई कर दी। जैसे ही महाराज को चाँपावत तेजसिंह द्वारा चाँपावत उदयसिंह के विश्वास-घात की सूचना मिली, वैसे ही यह भी युद्ध के लिये तैयार हो गए। परन्तु वहाँ का रंग-ढंग देख तेजसिंह ने कुछ समय के लिये महाराज के इस विचार को रोक दिया। इस पर महाराज अपने कुटुम्ब के साथ क़िले से निकलकर (५ कोस पर के) अगवारी नामक गाँव में चले गए, और जालोर पर मोहकमसिंह का अधिकार हो गया। इसके बाद इधर तो चाँदारूण का ठाकुर मेड़तिया कुशलसिंह और बलूदे का चाँपावत विजयसिंह इस चढ़ाई की सूचना पाते ही अपने-अपने स्थानों से तत्काल रवाना होकर महाराज के पास आ पहुँचे, और उधर वीर जगरामसिंह और भद्राजण का ठाकुर जोधा बिहारीसिंह भी अपनी-अपनी सेनाओं के साथ वहाँ आ गए। बिहारीसिंह की सेना में राजपूतों के साथ ही बहुत से भील भी थे।

इस प्रकार बल संग्रह हो जाने पर महाराज ने जालोर पर हमला कर दिया। यह देख मोहकमसिंह और उदयसिंह क़िला छोड़कर समदड़ी की तरफ़ चले गए। जब

पाने की आशा से दुर्गादास को मारने या पकड़ने का ज़िम्मा लिया। परन्तु इसके बाद दुर्गादास का कुछ पता नहीं चलता। अतः संभव है, सफ़र अपने कार्य में सफल हो गया हो। (देखो भा० १, खंड १, पृ० २६५) परन्तु दुर्गादास वि० सं० १७७४ (ई० सन् १७१७) तक जीवित था। इससे उपर्युक्त गज़ेटियर के लेखक का यह अनुमान ठीक प्रतीत नहीं होता।

‘हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्गज़ेब’ में लिखा है कि ई० सन् १७०४ की मई में औरङ्गज़ेब ने दुर्गादास के भाई खेमकरण और भतीजे देवकरण और दलकरण को अपनी नौकरी से हटा दिया। साथ ही उसने दुर्गादास को अहमदाबाद से दरबार में पकड़ लाने का भी हुक्म दिया। परन्तु अगले ही महीने यह हुक्म रद्द कर दिया गया। (हिस्ट्री ऑफ़ औरङ्गज़ेब, भा० ५, पृ० २६१ फुटनोट)।

१. इसका जन्म वि० सं० १७२८ की आश्विन सुदि ३ को हुआ था।

२. ‘राजरूपक’ में इस युद्ध का माघ सुदी १३ को होना लिखा है। (देखो पृ० १६६)।

महाराजा अजितसिंहजी

महाराज ने वहाँ भी उनका पीछा किया, तब वे अपना साज-सामान छोड़ दुर्नाड़े होते हुए मेड़ते की तरफ भाग गए। परन्तु इस घटना की सूचना पाते ही जोधपुर के हाकिम जाफरख़ाँ ने मोहकमसिंह से मेड़ते की हकूमत छीन ली। अतः लाचार होकर वह नागौर चला गया।

वि० सं० १७६३ की भादों वदी ७ (ई० सन् १७०६ की १६ अगस्त) को महाराज के द्वितीय पुत्र वस्तुसिंहजी का जन्म हुआ। इसके बाद महाराज ने रोहीचे पर चढ़ाई कर वहाँ के चौहानों को हराया।

वि० सं० १७६३ की फागुन वदी १४ (ई० सन् १७०७ की २० फ़रवरी) को दक्षिण में अहमदनगर के पास बादशाह औरङ्गजेब का देहांत हो गया। इसकी सूचना पाते ही महाराज ने अपनी सेना को एकत्रित कर सूरचंद से जोधपुर पर चढ़ाई कर दी। वहाँ के क़िलेदार जाफ़रकुली ने भी पहले तो इनका सामना किया, परन्तु अन्त में वह राठोड़-वाहिनी के वेग को रोकने में असमर्थ हो क़िला छोड़कर भाग गया।

१. यहाँ पर दोनों सेनाओं के बीच घमसान युद्ध हुआ था।
२. 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब' में (ई० सन् १७०४ में) औरंगजेब का महाराज को मेड़ते का अधिकार देना लिखा है। परन्तु उसमें यह भी लिखा है कि महाराज ने वहाँ का प्रबंध कुशलसिंह को सौंप दिया था। इसमें (नागौर के स्वामी इन्द्रसिंह का पुत्र) मोहकमसिंह, जो अजितसिंहजी की बाल्यावस्था में इनकी तरफ़ से बादशाह से बराबर लड़ता रहा था, नाराज़ होकर (ई० सन् १७०५ में) बादशाह की तरफ़ हो गया। (देखो भा० ५, पृ० २६०-२६१)। परन्तु इन्द्रसिंह का पुत्र मोहकमसिंह प्रारंभ से ही महाराज के विरुद्ध था। शाही मनसब छोड़कर महाराज की तरफ़ से यवनों से लड़ने वाला मेड़तिया मोहकमसिंह उससे भिन्न था।
३. अजितोदय, सर्ग १६, श्लो० २०-४२। 'राजरूपक' में अजितसिंहजी के जोधपुर पर अधिकार कर लेने पर मोहकम का मेड़ता छोड़ नागौर जाना लिखा है। (देखो पृ० १६८)।
४. अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० २-३।
५. अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० ४।
६. 'क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इन्डिया' में उस दिन (हि० सन् १११८ की २८ ज़ीकाद को) ३ मार्च का होना लिखा है। यह ठीक प्रतीत नहीं होता। (देखो पृ० १४६) ;
कहीं-कहीं फागुन वदी ३० (ता० २१ फ़रवरी) भी लिखी मिलती है।
७. बँवैगज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २६५। अजितोदय, सर्ग १७ श्लो० ४-७।

मारवाड़ का इतिहास

इस पर वि० सं० १७६३ की चैत्र बदी ५ (ई० सन् १७०७ की १२ मार्च) को, २८ वर्ष की अवस्था में, महाराज ने अपनी राजधानी जोधपुर-नगर में प्रवेश किया। इसके दूसरे दिन (माघोदासोत्) मेड़तिये कुशलसिंह ने शाही सैनिकों से मेड़ता छीन लिया। इसी प्रकार कुछ दिनों में मारवाड़ के अन्य प्रदेशों (सोजत और पाली आदि) पर भी महाराज का अधिकार हो गया।

इस पर मुसलमानों और बगड़ीवालों ने मिलकर एक बनावटी दलथंभन को सोजत का मालिक बना दिया। इसकी सूचना पाते ही महाराज स्वयं सेना सहित वहाँ जा पहुँचे। छः दिन के भीषण युद्ध के बाद शत्रु तो हारकर भाग गया, और सोजत पर महाराज का अधिकार हो गया। इसके बाद कुछ दिनों में वहाँ का प्रबन्ध ठीककर यह फिर जोधपुर लौट आएँ।

महाराज अजितसिंहजी ने औरङ्गजेब के कारण २८ वर्षों तक बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाई थीं। यदि उस समय मारवाड़ के सरदार देश काल के अनुसार बुद्धिमानी, दृढ़ता और वीरता से अपना धर्म न निभाते, तो इनके प्राणों तक का बचना कठिन था। इसके अलावा इन २८ वर्षों में धर्मांध यवनों ने तमाम मारवाड़ के—खासकर जोधपुर के मंदिरों को नष्ट कर उनके स्थानों पर मसजिदें बनवा दी थीं। इसीसे चारों तरफ ब्राह्मणों के घंटा और शंखनाद की एवज में मुस्लिमों की अज्रों सुनाई देती थी। हिन्दुओं का धन, धर्म, इज्जत और प्राण तक संकट में पड़ गए थे। परन्तु महाराज ने राज्य पर अधिकार करते ही इन सब बातों को उलट दिया। चारों तरफ मसजिदों के स्थान पर मंदिर दिखाई देने लगे। अज्रों की आवाजों का स्थान फिर से घंटा और शंखनाद ने

१. अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० ११। 'राजरूपक' में भी महाराज के जोधपुर-प्रवेश की यही तिथि लिखी है। परन्तु उसमें किले पर जाने की तिथि चैत्र बदी १३ दी है। (देखो पृ० १७०)।

२. अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० १२। उस समय किले का प्रत्येक स्थान गंगाजल और तुलसी-दल से पवित्र किया गया था। (हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब, भा० ५, पृ० २६२)।

३. 'अजितोदय' में वहीं पर दलथंभन का मारा जाना लिखा है। (देखो सर्ग १७, श्लो० १४-१७) परन्तु अन्य इतिहासों में इस घटना का उल्लेख नहीं मिलता।

किसी किसी ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १७६७ लिखा है। यह विचारणीय है।

४. अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० १४-१८।

५. मुंतख़िबुल्लाब, भा० २, पृ० ६०५-६०६।

महाराजा अजितसिंहजी

ले लिया। बहुत से यवन मारे गए या इधर उधर भाग गए। परन्तु जो बच रहे, उन्होंने दाढ़ी मुँडवाकर अपने वेश को ही बदल लिया। इन कार्यों से निपटकर महाराज ने अपने पक्षियों को उनकी सेवाओं के अनुसार जागीरें आदि देकर संतुष्ट किया, और विपक्षियों को यथासाध्य दण्ड देने का प्रबन्ध किया।

जब इन बातों की सूचना औरङ्गजेब के उत्तराधिकारी (मुहम्मद मुअज़्ज़म) बादशाह बहादुरशाह को मिली, तब वि० सं० १७६४ की कार्तिक सुदी ८ (ई० सन् १७०७ की २३ अक्टोबर) को वह महाराज से बदला लेने के लिये अजमेर की तरफ़ रवाना हुआ। इस यात्रा में आँबेर-महाराज सवाई जयसिंहजी भी उसके साथ थे^१।

उसके आगमन का समाचार पाते ही महाराज क़िले का साज-सामान ठीककर युद्ध की तैयारी करने लगे, और उनके अनेक सरदार भी प्राणों की बलि देकर क़िले की रक्षा करने को आ उपस्थित हुए।

१. यह वि० सं० १७६४ की आषाढ़ बदी ४ (ई० सन् १७०७ की ८ जून) को अपने भाई शाहज़ादे आज़म को मारकर बादशाह बना था। 'मन्नासिखलउमरा' में लिखा है कि मुहम्मद मुअज़्ज़म ने अपने भाई आज़मशाह पर चढ़ाई करने के समय महाराज को अपनी सहायता के लिये बुलवाया था। परन्तु इन्होंने उसकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। इसी से आज़म को परास्त करने के बाद उसने इन पर चढ़ाई करने का प्रबंध किया, और ख़ाँजमाँ को सेना देकर आगे भेजा। इसके बाद संधि हो जाने पर महाराज को ३,००० सवारों का मनसब दिया गया। (देखो पृ० ७५६)।

औरंगज़ेब के तीसरे पुत्र मोहम्मद आज़म का, हि० सन् १११८ की ६ सफ़र (वि० सं० १७६३ की प्रथम ज्येष्ठ सुदि ८=ई० सन् १७०६ की ६ मई) का, महाराज के नाम का एक फ़रमान मिला है। उसमें इनको महाराजा का ख़िताब, सात हज़ारी ज़ात और सात हज़ार सवारों का मनसब देने का उल्लेख है। परन्तु उस समय बादशाह औरंगज़ेब जीवित था। इससे ज्ञात होता है कि मोहम्मद आज़म ने पिता से बगावत कर बादशाह बनने का इरादा किया होगा और उस समय राठोड़-नरेश को अपनी तरफ़ मिलाने के लिये इनके नाम यह फ़रमान भेजा होगा।

आज़म के बगावत करने की पुष्टि ऐलफ़िन्स्टन की 'हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया' और 'मुन्तख़िबुल्लु-बाब' से भी होती है। (देखो क्रमशः पृ० ६५१ और भा० २, पृ० ५४६)।

२. मुन्तख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ६०५-६०६।

३. जयसिंहजी ने शाहज़ादे आज़म का पक्ष लिया था। इसी से बहादुरशाह ने जयपुर पर अपने अनुयायी विजयसिंह का अधिकार करवा दिया था। यह विजयसिंह जयसिंहजी का छोटा भाई था।

मारवाड़ का इतिहास

बादशाह ने मार्ग से ही (पौष=दिसंबर में) शाहजादे अजीमुरशान की सेना के साथ कुछ अमीरों को जोधपुर की तरफ रवाना किया। इसलिये वे लोग मारवाड़ के गांवों को लूटते हुए पीपाड़ तक आ पहुँचे। परंतु इसी बीच बादशाह को दक्षिण में कामबख्श के स्वाधीन हो जाने की सूचना मिली। इस पर दिखावे के लिये तो वह अजमेर पहुँच जोधपुर पर चढ़ाई करने का विचार प्रकट करता रहा, परंतु मन-ही-मन उसने शीघ्र ही इधर का झगड़ा शांत कर दक्षिण की तरफ जाने का निश्चय कर लिया। इतने में उसे महराबख़ाँ और महाराज के बीच पीपाड़ में युद्ध होने की सूचना मिली। इस पर वि० सं० १७६४ की फागुन बदी ३ (ई० सन् १७०८ की २६ जनवरी) को उसने महाराज से संधि करने के लिये दुर्गादास के नाम एक फरमान भेज दिया।

इस प्रकार आपस की लिखा-पढ़ी के बाद जब संधि की बातें तय हो गईं, तब उसने ख़ाँजहाँ, हाडा बुद्धसिंह और निजाबतख़ाँ आदि अमीरों को महाराज से मिलने के लिये रवाना किया, और वि० सं० १७६४ की फागुन सुदी १२ (ई० सन् १७०८ की २१ फरवरी) को स्वयं भी मेड़ते आ पहुँचा। इस पर महाराज भी चौथे दिन वहाँ पहुँच उससे मिले। बादशाह ने अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ उपहार में देकर इनका आदर-सत्कार किया। इसके बाद उसने, चैत्र बदी १४ और (वि० सं० १७६५ की) वैशाख सुदी १५ (१० मार्च और २३ अप्रैल) को, आम दरबार कर

१. मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ६०६।

‘लेटरमुगल्स’ में लिखा है कि मार्ग में भुसावर पहुँचते ही उसने फौजदार मेहराबख़ाँ को जोधपुर पर अधिकार करने के लिये भेज दिया। इसके बाद जब वह जयपुर का अधिकार विजयसिंह को देकर अजमेर के करीब पहुँचा, तब उसने स्वयं जोधपुर पर चढ़ाई करने का इरादा प्रकट किया। इस पर महाराज के वकील मुकुंदसिंह और बख्तसिंह उसे समझा-बुझाकर शांत करने की चेष्टा करने लगे। (देखो भा० १, पृ० ४७)।

२. मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ६०६।

३. यह तारीख़ असली फरमान से ली गई है। ‘लेटरमुगल्स’ में उस दिन १२ फरवरी का होना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० ४७-४८)।

‘अजितोदय’ में लिखा है कि पीपाड़ से महराबख़ाँ का पत्र पाकर पहले तो बादशाह ने महाबतख़ाँ को उसकी मदद पर भेजा, पर पीछे शीघ्र ही संधि कर ली। उसमें पीपाड़ के युद्ध का उल्लेख नहीं है। (देखो सर्ग १७, श्लो० ३०-३१)।

महाराजा अजितसिंहजी

इनको 'महाराजा' की पदवी के साथ ही ३,५०० जात और ३,००० सवारों का मनसब (जिसमें १,००० सवार दुअस्पा थे) दिया।

इस प्रकार इधर के भगड़े को शांत कर जब बादशाह अजमेर को लौटा, तब महाराज भी दुर्गादास को लेकर उसके साथ हो लिए। इसके बाद बहादुरशाह ने कामबख्श को दबाने के लिये, मेवाड़ की तरफ होते हुए, दक्षिण पर चढ़ाई की। इस यात्रा में भी महाराजा अजितसिंहजी, दुर्गादास और आंबेर-नरेश जयसिंहजी ये तीनों उसके साथ थे।

यद्यपि बादशाह ऊपर से महाराज के साथ खूब प्रेम दिखलाता रहा, तथापि उसने प्रबंध की देख-भाल करने के बहाने काज्रमख्वाँ और मेहराबख्वाँ आदि अमीरों को भेजकर जोधपुर पर चुपचाप अपना अधिकार कर लिया। इसकी सूचना मिलने पर महाराज बहुत क्रुद्ध हुए; परंतु मौका देख इन्हें चुप रहना पड़ा। इसके बाद जब शाही लश्कर नर्मदा के पार उतरने लगा, तब यह (अजितसिंहजी) आंबेर-नरेश जयसिंहजी और दुर्गादास के साथ वापस लौट चले और मार्ग में महाराना अमरसिंहजी से मिलकर मेवाड़ से गोडवाड़ होते हुए जोधपुर चले आए।

१. इसी समय बादशाह ने इन्हें निशान और नक्क़ारा भी दिया था। साथ ही उसने इनके महाराजकुमार अभयसिंहजी का मनसब १,५०० जात और ३०० सवारों का, तथा बख्त-सिंहजी का ७०० जात और २०० सवारों का कर दिया था। (मि० विलियम इरविन ने अपने 'लेटर मुग़ल्स' नामक इतिहास (के प्रथम भाग के ४८ वें पृष्ठ) में उपर्युक्त बातों का उल्लेख करते हुए बख्तसिंह के स्थान पर राखीसिंह लिख दिया है)।

इसी प्रकार बादशाह की तरफ से महाराज के तृतीय और चतुर्थ महाराजकुमारों को भी ५०० जात और १०० सवारों का मनसब दिया गया था।

२. अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० ३३।

३. 'लेटर मुग़ल्स' में लिखा है कि वि० सं० १७६४ की चैत्र बदी ४ (ई० सन् १७०८ की २८ फ़रवरी) को बहादुरशाह ने काज़ीख़ाँ और मुहम्मद ग़ौस मुफ़्ती को जोधपुर में फिर से नमाज़ आदि के प्रचार के लिये भेजा। (देखो भा० १, पृ० ४८)।

४. 'अजितोदय' (सर्ग १७, श्लो० ३४) में खाचरोद से और 'बहादुरशाहनामे' (के पृ ११०) में मालवे के मंझेश्वर नामक स्थान से इनका लौटना लिखा है। पिछले इतिहास के अनुसार यह घटना वि० सं० १७६५ की ज्येष्ठ बदी ६ (ई० सन् १७०८ की ३० अप्रैल) को हुई थी।

५. महाराना अमरसिंहजी (द्वितीय) गाडवा नामक गाँव तक इनकी पेशवाई में आए थे।

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १७६५ की सावन सुदी १३ (ई० सन् १७०८ की १६ जुलाई) को महाराज ने मेहराबख़ाँ को भगाकर जोधपुर के क़िले पर फिर से अधिकार कर लिया, और इसके कुछ दिन बाद यह आँबेर-नरेश जयसिंहजी को साथ लेकर अजमेर को लूटते हुए सांभर जा पहुँचे। यह देख वहाँ का हाकिम सैयद अलीअहमद युद्ध के लिये तैयार हुआ। नारनौल के सैयद भी उसकी सहायता को आ गए। कुछ दिनों तक दोनों पक्षों के बीच विकट युद्ध होने के बाद यवन भाग चले, और सांभर पर महाराज का अधिकार हो गया। इसी बीच महाराज अजितसिंहजी और जयसिंहजी

१. 'अजितोदय' सर्ग १७, श्लो० ३४-३५। 'लेटरमुग़ल्स' में लिखा है कि महाराज ने जोधपुर को ३० हजार सवारों से घेर कर विजय किया था, और दुर्गादास राठोड़ के बीच में पड़ने से जोधपुर के फ़ौजदार मेहराबख़ाँ को निकल जाने का मौका दिया था। (देखो भा० १, पृ० ६७)।

२. यह महाराज के साथ आकर जोधपुर में सूरसागर के बगीचे में ठहरे थे।

३. अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० ३६-५०। 'राजरूपक' में इस घटना का कार्तिक सुदी १ को होना और इसके अगले मास में दोनों नरेशों का आँबेर पर अधिकार करना लिखा है। (देखो पृ० १८२) ख्यातों में लिखा है कि यहीं पर महाराज किसी बात पर दुर्गादास से कुछ अप्रसन्न हो गए। यह देख दुर्गादास ने महाराज से निवेदन किया कि नर्मदा से लौटते हुए आप कुछ दिन उदयपुर में ठहरे थे, और महाराना ने आपका अच्छी तरह से स्वागत किया था। इसलिये यदि आज्ञा हो, तो मैं जाकर महाराना को कुछ दिन के लिये यहाँ ले आऊँ; जिससे आप भी उनका वैसा ही सम्मान कर आपस की प्रीति को बढ़ावें। महाराज ने इस बात को अंगीकार कर लिया। इस पर वह महाराना को ले आने के बहाने से उदयपुर चला गया और वि० सं० १७६६ में सफ़रा नदी के किनारे इस वीर का स्वर्गवास हो गया। परंतु वास्तव में दुर्गादास का देहांत वि० सं० १७७५ के करीब हुआ था। अतः ख्यातों का यह लेख ठीक नहीं है।

ख्यातों में यह भी लिखा मिलता है कि दुर्गादास ने (अपने को बादशाही मनसबदार समझ) साँभर में अपना डेरा महाराज की सेना से अलग किया था, इसी से महाराज उससे नाराज़ हो गए थे। यह भी संभव है कि जोधपुर और जयपुर के नरेशों को साँभर का विभाग करते देख दुर्गादास ने भी हिस्सा मांगा हो, और यही महाराज की अप्रसन्नता का कारण हुआ हो। वि० सं० १७६५ की कार्तिक सुदी १५ के, साँभर से लिखे, मंडारी बिठलदास के, बीलाड़े के चौधरी भगवानदास के नाम के, पत्र से ज्ञात होता है कि कार्तिक बदी १३ को महाराज की सेना साँभर पहुँची। वहाँ पर युद्ध होने पर अली अहमद हारा, और उसने एक लाख बीस हजार रुपये देने का वादा कर इनसे संधि कर ली। इसके बाद कार्तिक सुदी १ को नारनौल, मथुरा और आँबेर के सूबेदार ? (फ़ौजदार) ५-६ हजार सेना लेकर वहाँ पहुँचे। परन्तु तीसरे पहर के युद्ध में वे तीनों मय तीन हजार सैनिकों के मारे गए। उनकी सेना के बहुत-से हाथी, घोड़े, ऊँट, सुखपाल आदि महाराज की सेना के हाथ लगे।

की सम्मिलित सेनाओं ने आँबेर पर भी अधिकार कर लिया था। इसीसे जयसिंहजी

१. 'लेटर मुगल्स' में लिखा है कि बादशाह को दोनों नरेशों के आँबेर पर सम्मिलित आक्रमण करने की सूचना ई० सन् १७०८ की १६ जून को मिली थी, और इसके एक सप्ताह बाद यह भी ज्ञात हुआ कि इन दोनों नरेशों ने हिंदौन और बयाना के फौजदार को भी हरा दिया है। (ये दोनों प्रांत आगरे से क्रमशः ७० और ५० मील नैर्ऋत्य-कोण पर थे।) इस पर उसने अमीरख़ाँ को सेना एकत्रित कर उधर जाने की आज्ञा दी। इसके कुछ दिन बाद ही उसे अजमेर के सूबेदार शुजाअतख़ाँ बाराह का पत्र मिला। उसमें लिखा था कि दोनों नरेशों ने मिलकर अपने सेनापति रामचन्द्र और साँवलदास की अधीनता में २,००० सवार और १५,००० पैदल आँबेर पर आक्रमण करने के लिये भेजे थे। परन्तु वहाँ के सूबेदार ने उन्हें सफल न होने दिया। इस झूठी सूचना को सच्ची समझ बादशाह ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। इसी बीच बादशाह ने असदख़ाँ-वकीले मुतलक को दिल्ली से आगरे पहुँच उधर के उपद्रव को दबाने की आज्ञा भेजी। इसी प्रकार अवध के सूबेदार ख़ाँदौरी, इलाहाबाद के सूबेदार ख़ाँजहाँ और मुरादाबाद के फौजदार मुहम्मद अमीनख़ाँ को भी आज्ञा दी गई कि वे अपनी आधी-आधी सेनाओं को लेकर असदख़ाँ की मदद पर जायें। इसी अवसर पर मेवात के फौजदार ने भी दिल्ली के सूबेदार से सेना बढ़ाने के लिये तीन लाख रुपये की मदद माँगी। परन्तु उसने वह पत्र असदख़ाँ के पास भेज दिया। इस पर असदख़ाँ ने १,००,००० रुपये नक़द भेजकर अपनी सेना को वहाँ जाने की आज्ञा दे दी। परन्तु २१ अगस्त (आश्विन वदी १) को उपर्युक्त झूठी सूचना का भेद खुल गया, और बादशाह को ज्ञात हो गया कि राजा जयसिंहजी ने २०,००० सैनिकों के साथ नैश आक्रमण कर आँबेर के क़िले पर अधिकार कर लिया है।

इसके बाद बरसात के समाप्त होते ही राजपूत-वीरों ने मेड़ते होते हुए अजमेर पर हमला किया, और वहाँ से आगे बढ़ साँभर पर चढ़ाई की। इस पर मेवात, मेड़ता और नारनौल के फौजदार भी तत्काल इनके मुकाबले को आ पहुँचे। यद्यपि युद्ध में एक बार तो राजपूत-सेना के पैर उखड़ गए, तथापि कुछ देर बाद ही उसे हुसैनख़ाँ के मारे जाने की सूचना मिल गई। इससे मैदान दोनों नरेशों के हाथ रहा। इसके अगले वर्ष महाराना के सेनापति साँवलदास ने पुर और माँडल के फौजदार को भगाकर युद्ध में वीर-गति प्राप्त की। (भा० १, पृ० ६८-७०)।

'मन्नासिरेआलमगीरी' (भा० २, पृ० ५००) में लिखा है कि जब आँबेर के फौजदार सैयद हुसैनख़ाँ को महाराजा अजितसिंहजी और राजा जयसिंहजी के युद्ध से हट जाने और आँबेर पर आक्रमण करने के विचार की सूचना मिली, तब उसने वहाँ के क़िले की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबंध किया। परन्तु राजपूत-सैनिकों के पहुंचते ही उसकी नई भरती की हुई सेना घबराकर भाग गई। इस पर ख़ाँ ने बचे हुए सैनिकों के साथ क़िले से निकलकर राठोड़ दुर्गादास का सामना किया। यद्यपि राजपूत पूरी तौर से सफल न हो सके, तथापि ख़ाँ का डेरा लूट लिया गया, और उसका पुत्र, जो शिविर

मारवाड़ का इतिहास

लौटकर अपनी राजधानी को चले गए, और महाराज साँभर से नागोर की तरफ चले। इनके आगमन की सूचना पा मोहकमसिंह लाडणू की तरफ भाग गया, और राव इन्द्रसिंह को क़िले का आश्रय लेना पड़ा। जब महाराज उक्त प्रांत के गांवों को लूटते हुए मूँडवे पहुँचे, तब इन्द्रसिंह की माता अपने पौत्र को लेकर इनसे मिलने आई, और उसने कह-सुनकर इन्हें लौट जाने पर राजी कर लिया। इसलिये यह लौटकर जोधपुर चले आए।

की रक्षा के लिये नियत था, मार डाला गया। दूसरे दिन ख़ाँ बड़ी गड़बड़ के साथ भागकर नारनौल पहुँचा। परंतु वहाँ से सैनिक इकट्ठे कर फिर एक बार लौट चला। साँभर के पास पहुँचते पहुँचते उसका राजा जयसिंहजी की सेना से सामना हो गया। यद्यपि पहले पहल ख़ाँ की सेना कुछ सफल होती हुई दिखाई दी, तथापि शीघ्र ही ख़ाँ और उसके सरदार रेत के टीले के पीछे छिपे हुए २-३ हजार बंदूकधारी राजपूत-योद्धाओं के बीच घिरकर मारे गए। (लेटरमुगल्स, भा० १, पृ० ६८-७०)।

उसी में 'बहादुरशाहनामे' के आधार पर यह भी लिखा है कि इसके बाद बादशाह ने नर्मो से काम लिया, और शाहजादे अज़ीमुशान को बीच में डालकर ई० स० १७०८ की ६ अक्टोबर (वि० सं० १७६५ की कार्तिक सुदी ४) को राजा जयसिंहजी और महाराजा अजितसिंहजी को मनसब दिए गए। परंतु जोधपुर और मेड़ते के क़िले बाराह के सैयद अब्दुल्लाख़ाँ के अधिकार में ही रखे गए। (लेटर मुगल्स, भा० १, पृ० ७१)।

'हदीकतुल अकालीम' नामक इतिहास में लिखा है कि आँबेर और जोधपुर के राजाओं के मालवे से ही अपने-अपने देशों को लौट जाने पर बादशाह ने असदख़ाँ को लिखा कि शाहजहानाबाद (दिल्ली) से अकबराबाद (आगरे) जाकर राजपूतों को तसल्ली दे। इसके बाद नर्मदा से पार उतरने पर उसे ख़बर मिली कि राना की मिलावट से कछवाहा और राठोड़ नरेशों के अपने-अपने देशों पर फ़ौजें भेजने पर आँबेर का फ़ौजदार हुसैनख़ाँ, मारे गए जानवर की तरह शत्रुओं के मुकाबले में हाथ-पाँव पटककर, और मेहराबख़ाँ लड़ाई से मुँह मोड़कर जोधपुर से भाग गए हैं। इससे राजपूत और भी सुदृढ़ हो गए हैं, और राना के बहकाने से अधिक उपद्रव करना चाहते हैं। यह देख उसने असदख़ाँ को उन्हें दंड देने का लिखा। (देखो पृ० १२८)।

१. कहीं-कहीं महाराज अजितसिंहजी का भी जयसिंहजी के साथ आँबेर जाना और कुछ दिन वहाँ रहकर लौट आना लिखा मिलता है।

२. अजितोदय, सर्ग १८, श्लो० १-६ तथा ६६-१०६।

ख्यातों में लिखा है कि महाराजा अजितसिंहजी का प्रधान मंत्री पाली का ठाकुर चांपावत मुकुन्ददास (सुजाण सिंहोत) था। परंतु उसकी उद्वेगिता के कारण कुछ ही समय बाद महाराज उस से नाराज़ हो गए। इसके बाद महाराज की आज्ञा से एक रोज़ छिपिये के ठाकुर ऊदावत प्रतापसिंह ने मुकुन्ददास और उसके भाई रघुनाथसिंह को मार डाला। परंतु इस की सूचना मिलते ही

महाराजा अजितसिंहजी

कुछ दिन बाद महाराज ने फिर अजमेर पर चढ़ाई कर वहां के शाही हाकिम को तंग करना शुरू किया। यह देख उसने बहुत-सा द्रव्य देकर इनसे संधि कर ली। इस पर यह देवलिये होते हुए जोधपुर चले आए।

इसी प्रकार महाराज के पराक्रम के सामने साँभर और डीडवाने के शाही अधिकारियों को भी सिर झुकाना पड़ा।

इसकी सूचना पाकर बादशाह इनसे और भी नाराज हो गया। इसके बाद वह दक्षिण में अपने भाई कामबख्श के मारे जाने से निश्चिन्त होकर अजमेर की तरफ लौटा। जब उसके नर्मदा से इस पार आने की सूचना मिली, तब

मुकुन्ददास के सेवक गुहिलोत धना और चौहान भीयाने ने (जो मामू भानजे थे) किले में ही प्रतापसिंह को मार कर अपने स्वामी का बदला लिया। ख्यातों के अनुसार यह घटना वि० सं० १७६५ में हुई थी।

इस विषय का यह दोहा मारवाड़ में प्रचलित है:-

आजूणी अधरात, मैहलां जु रोई मुकनरी।

पातल री परभात, भली रुआणी भीमड़ा ॥

१. 'वीर विनोद' में मुद्रित शाहपुरे के राजा भारतसिंहजी के, वि० सं० १७६५ की माघ सुदी ६ (ई० सन् १७०६ की ६ जनवरी) के, पत्र से और उनके मुत्सद्दियों के वि० सं० १७६५ की चैत्र बदी ३ (ई० सन् १७०६ की १६ फरवरी) के पत्र से जो उदयपुर के पंचोली बिहारीदास के नाम लिखे गए थे, प्रकट होता है कि भारतसिंहजी के बादशाह के साथ दक्षिण में होने और अजितसिंहजी के अजमेरवालों से दंड वसूल करने से उत्साहित होकर अजमेर प्रांत के राठोड़-सरदारों ने शाहपुरेवालों को तंग करना शुरू किया था। अतः लाचार हो, उन्होंने ये पत्र, सहायता के लिये, उदयपुरवालों को लिखे थे।

२. अजितोदय, सर्ग १६, श्लो० ६-१४।

३. अजितोदय, सर्ग १६, श्लो० १७-१८। 'वीरविनोद' में प्रकाशित नवाब असदख़ाँ के, हि० सन् ११२१ की ११ सफ़र (वि० सं० १७६६ की प्रथम वैशाख सुदी १३ = ई० सन् १७०६ की ११ अप्रैल) के, पत्र से, जो अजमेर के सूबेदार गुजाअतख़ाँ के नाम लिखा गया था, प्रकट होता है कि उस (असदख़ाँ) की पूर्ण इच्छा थी कि मारवाड़ और मेवाड़ के नरेशों को समझा-बुझाकर अपनी तरफ़ कर लिया जाय।

४. मि० विलियम हरविन ने अपने 'लेटरमुग़ल्स' नामक इतिहास में कामबख़्श का ई० सन् १७०६ की जनवरी में मरना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० ६२-६४) इसके

मारवाड़ का इतिहास

महाराज ने राव इंद्रसिंह को अपनी सेना लेकर जोधपुर में उपस्थित होने की आज्ञा भेजी। परंतु उसने अपने को शाही मनसबदार बतलाकर महाराज की आज्ञा मानने से इनकार कर दिया। इस पर महाराज ने पहले उसी को दंड देने का विचार कर मँगसिर में फिर से नागोर पर चढ़ाई की। यह देख इंद्रसिंह का सुखस्वप्न टूट गया। बादशाह अब तक यहाँ से बहुत दूर था, अतः उससे किसी प्रकार की सहायता की आशा नहीं की जा सकती थी। इससे लाचार होकर उसे फिर महाराज की शरण लेनी पड़ी^१। महाराज ने भी उसे अपना भतीजा जान क्षमा कर दिया।

इसके बाद मार्ग में इंद्रसिंह ने बीमारी के कारण अपना साथ में चलना कष्टकर बतलाकर महाराज से अपने पुत्र को साथ ले जाने की प्रार्थना की। इसी के अनुसार यह डीडवाने से उसके पुत्र को लेकर साँभर होते हुए मारोठ पहुँचे और वहाँ पर अधिकार कर बहादुरशाह के मुकाबले को चले^३।

अनुसार वि० सं० १७६५ के फागुन में यह घटना हुई थी। परंतु 'ओरियंटल बायो-ग्राफिकल डिक्शनरी' में इस घटना का हि० सन् १११६ के ज़िलहिज (ई० सन् १७०८ की फरवरी या मार्च) में होना लिखा है। इसके अनुसार इसका समय करीब ११ मास पूर्व आता है। (देखो पृ० २०८) यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

१. महाराज के सिकदार दयालदास के नाम लिखे वि० सं० १७६६ की माघ सुदी १ के पत्र से ज्ञात होता है कि इस बार इंद्रसिंह ने दो लाख रुपये नकद देने और समय पर सेना लेकर फौज में उपस्थित होने का वादा किया था। इसके बाद इंद्रसिंह के उपस्थित होने पर इनमें के एक लाख रुपये माफ़ कर दिए गए, और महाराज उसको साथ लेकर वापस लौटे।

२. वि० सं० १७६६ की चैत्र-सुदी १५ के, साँभर से, महाराज के लिखे, दयालदास के नाम के पत्र में लिखा है कि तू किसी बात की फ़िक्र न करना। हम बादशाह के साथ ऐसी चोट करेंगे कि वह बहुत दिन तक याद करेगा। हाँ, अगर वह मेल करेगा, तो उसे हमारी इच्छा के अनुसार शर्तें माननी होंगी।

बादशाह बहादुरशाह (शाह आलम) ने अपने सने जलूस ३ की १७ वीं रविउल अव्वल (वि० सं० १७६६ की ज्येष्ठ वदि ४ = ई० स० १७०६ की १६ मई) को महाराज के नाम एक फ़रमान लिखा था। उस से प्रकट होता है कि आसफ़ुद्दौला के समझाने से बादशाह ने महाराज से मेल करना अज़ीकार कर लिया था।

३. अजितोदय, सर्ग १६, श्लोक १६-३०।

महाराजा अजितसिंहजी

इसी बीच पंजाब में सिक्खों का उपद्रव उठ खड़ा हुआ। अतः बहादुरशाह ने राजपूताने में फिर से भगड़ा उत्पन्न करना उचित न समझा और, वि० सं० १७६७ के आषाढ़ (ई० सन् १७१० के जून) में, उसने अजमेर पहुँच, महाबतख़ाँ की मारफ़त महाराज से संधि करली^१। इसके अनुसार जोधपुर पर भी महाराज का अधिकार स्वीकार कर लिया गया।

१. 'लेटर मुगल्स' में पहले-पहल बादशाह को इसकी सूचना का, ई० सन् १७१० की ३० मई को, अजमेर के निकट पहुंचने पर मिलना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० १०४) परंतु अन्य गणितज्ञों के अनुसार उस दिन हि० सन् ११२२ की २ रविउल आखीर को ई० सन् १७१० की २० मई (वि० सं० १७६७ की ज्येष्ठ-सुदी ३) आती है।

२. बादशाह बहादुरशाह (शाह आलम) के सने जलूस ४ की १ रविउल आखीर (वि० सं० १७६७ की ज्येष्ठ सुदि २=ई० सन् १७१० की १६ मई) का एक खास पंजे वाला फ़रमान मिला है। इस में महाराज को जोधपुर देने और मेड़ता खालसे में रखने का उल्लेख है। साथ ही इस में महाराज को दरबार में पहुँचने पर मनसब देने का वादा भी किया गया है।

इसी साल की ६ रविउल आखीर (वि० सं० १७६७ की ज्येष्ठ सुदि ११=ई० स० १७१० की २७ मई) का महाराज के नाम का एक बादशाही फ़रमान और भी मिला है। इस पर भी खास पंजा लगा है। इस में बहादुरशाह ने महाराज को अपने पास आने के लिये लिखा है।

इसी में पहले फ़रमान का हवाला भी है। इसी प्रकार अपने सने जलूस ५ की ५ सफ़र (वि० सं० १७६८ की चैत्र सुदि ६=ई० स० १७११ की १४ मार्च) को बादशाह बहादुरशाह ने एक फ़रमान और भेज कर महाराजा अजितसिंहजी को अपने पास बुलवाया था।

वि० सं० १७६६ (चैत्रादि १७६७) की आषाढ़ बदी ११ के, महाराज के, दयालदास के नाम लिखे पत्र में लिखा है कि शाहज़ादे अज़ीम और महाबतख़ाँ ने आदमी भेजकर कहलाया था कि अपने भरोसे के पुरुष भेज दो, ताकि आपकी इच्छानुसार संधि करवा दी जाय। इस पर राठोड़ चौपावत भगवानदास आदि ५ आदमी वहाँ भेजे गए। बादशाह ने हमारी सब बातें स्वीकार कर हमें बुलवाया। इस पर हम भी उससे मिलने को चले। यह देख उसने खानख़ाना मुहब्बतख़ाँ और बुंदेला चतुरसाल को हमारी पेशवाई में भेजा। आषाढ़ बदी ११ को इधर हमने डूमाड़े से सवारी की, और उधर बादशाह राजोसी से चला। शाहज़ादा अज़ीम भी उसके साथ था। पास आने पर शाहज़ादा पालकी से उतर घोड़े पर सवार हुआ, और हमें अपने साथ ले जाकर बादशाह से मिलाया। उसने भी हमें जोधपुर का अधिकार, १६ हज़ारी जात और १४ हज़ार सवारों का मनसब, घोड़ा, हाथी, खिलअत, दुगदुगी, तलवार, जड़ाऊ सरपेच आदि दिए।

३. इसी समय अँविर पर भी महाराज जयसिंहजी का स्वत्व मान लिया गया। इसके बाद ये दोनों नरेश बादशाह से मिलकर अपने-अपने देशों को लौट गए, और बादशाह पंजाब की तरफ़

मारवाड़ का इतिहास

के उपद्रव को शांत करने के लिये वि० सं० १७६७ की आषाढ़-सुदी २ (१७ जून) को अजमेर से पंजाब की तरफ गया ।

ऐलकिंस्टन ने अपने हिंदोस्थान के इतिहास में लिखा है कि बादशाह ने अपने पुत्र के द्वारा संधि की थी । उस समय उसने जयपुर और जोधपुर के नरेशों की सारी शर्तें स्वीकार कर इनकी स्वाधीनता भी उदयपुर के राना के समान ही मान ली थी । (देखो पृ० ६६२) ।

‘अजितोदय’ से भी शाहजादे अज़ीमुद्दौल्लाह के द्वारा संधि का होना प्रकट होता है । (देखो सर्ग १६, श्लो० ३१-३८) ।

‘हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब’ में लिखा है कि ई० सन् १७०६ के अगस्त में अजितसिंह ने अंतिम बार दल-बल-सहित जोधपुर में प्रवेश किया, और बादशाह ने उसका स्वत्व पूरी तौर से स्वीकार कर लिया । (देखो भा० ३, पृ० ४२४) ।

‘लेटर मुगल्स’ में लिखा है कि जिस समय बहादुरशाह का शिविर बनास के तट पर था, उस समय हॉसी का नाहरख़ाँ और यारमुहम्मद, जो राजस्थान के नरेशों को दबाने के लिये भेजे गए थे, उनके मंत्रियों को लेकर हाज़िर हुए । ई० सन् १७१० की २२ मई (वि० सं० १७६७ की ज्येष्ठ सुदी ५) को शाहजादे अज़ीमुद्दौल्लाह के द्वारा उक्त नरेशों के पत्र बादशाह के सामने पेश किए गए; साथ ही शाहजादे की प्रार्थना पर उनके कुर्सी माफ़ कर दिए गए, और उसी (शाहजादे) के द्वारा उनके मंत्रियों को खिलअत दिए गए । इसके पाँचवें दिन जब बादशाह का डेरा टोडे के पास हुआ, तब उसने राना अमरसिंह, महाराजा अजितसिंह और राजा जयसिंह के आदमियों को १८ खिलअत दिए । साथ ही १ खिलअत राठोड़ दुर्गादास का पत्र लानेवाले को भी दिया गया । इसी बीच बादशाह को सरहिंद के उत्तर में (बन्दा की अधिनायकता में) सिकखों के उपद्रव उठाने की सूचना मिली । अतः उसने महाबतख़ाँ को उपर्युक्त नरेशों को समझाकर अपने पास ले आने के लिये भेजा । इसके बाद जब इन्होंने संधि करना स्वीकार कर लिया, तब बादशाह ने अपने वज़ीर मुनअमख़ाँ को इनकी अगवानी को रवाना किया । २१ जून को जोधपुर और जयपुर के नरेश आकर उससे मिले, और प्रत्येक ने २०० मुहरें और २,००० रुपये उसकी भेंट किए । बादशाह ने भी उन्हें खिलअत, जड़ाऊ तलवारें, कटार, पट्टे, हाथी और फ़ारस के घोड़े देकर अपनी-अपनी राजधानियों को लौट जाने की आज्ञा दी । इससे पुष्कर तक तो दोनों राजा एक साथ लौटे, परंतु वहाँ से जयसिंहजी तो जयपुर की तरफ़ रवाना हो गए और महाराज जुलाई (आषाढ़) के अंतिम भाग में जोधपुर चले आए । बादशाह भी २२ जून (आषाढ़-सुदी ७) को अजमेर पहुँचा ।

उसी इतिहास में कमवरख़ाँ के लेख के आधार पर यह भी लिखा है कि जिस समय दोनों राजा बादशाह से मिलने आए, उस समय कमवर ने देखा कि शाही कैप के चारों ओर की पहाड़ियाँ और मैदान राजपूतों से भरे हैं । उस समय कई हज़ार शूतर-सवार पहाड़ों के दरों में छिपे थे और प्रत्येक ऊँट पर बन्दूकों या तीर-कमानों से सजे हुए दो-दो या तीन-तीन योद्धा बैठे थे । उनका उद्देश्य यह था कि यदि बादशाह की तरफ़ से किसी प्रकार का धोका हो, तो अपने प्राण देकर भी अपने स्वामियों की रक्षा करें । (देखो भा० १, पृ० ७१-७३) ।

महाराज के रामपुर से लिखे वि० सं० १७६६ (चैत्रादि १७६७) की वैशाख बदी १३ के दयालदास के नाम के पत्र से बादशाह का महाराज को जोधपुर और जयसिंहजी को आँबेर देने का वादा करना प्रकट होता है ।

इसी वर्ष महाराज ने तीर्थ-यात्रा का विचार किया। इसीसे यह जोधपुर से चलकर राजगढ़, पाटन और दिल्ली होते हुए कुरुक्षेत्र पहुँचे, और वहाँ से अन्य तीर्थों में स्नान करते हुए सादोर होकर हरद्वार गए। यहीं पर इन्हें राव इंद्रसिंह का भेजा हुआ एक पत्र मिला। उसमें महाराज की अनुपस्थिति में तहवरअली द्वारा मारवाड़ में किए गए उपद्रवों का वर्णन था। इस पत्र को पढ़ते ही महाराज मारवाड़ को लौट चले, और कुछ ही दिनों में मारोठ आ पहुँचे। इनके आगमन का समाचार सुन तहवरअली गोठ-मौंगलोद से भागकर अजमेर चला गया। इसपर महाराज पुष्कर स्नान कर मेड़ते होते हुए जोधपुर को चले। मार्ग में ही इन्हें बहादुरशाह के लाहौर में मरने की सूचना मिली।

इसके बाद उसके चारों पुत्रों के बीच बादशाहत के लिये झगड़ा उठ खड़ा हुआ। यह देख महाराज ने भी आस-पास के यवन शासकों का नाश करना शुरू कर दिया।

इसके बाद बहादुरशाह का पुत्र मोइजुद्दीन जहाँदारशाह अपने भाइयों को मारकर, वि० सं० १७६१ की चैत्र सुदी १५ (ई० सं० १७१२ की १० अप्रैल) को, तख्त पर बैठा।

१. कर्नल टॉड ने लिखा है कि वि० सं० १७६८ में महाराज ने बादशाह की तरफ से नाहन (सिरमूर=पंजाब) के राजा पर चढ़ाई कर उसे हराया और वहाँ से लौटते हुए यह तीर्थ-यात्रा को गए। (क्रुक्सपादित टॉड का राजस्थान का इतिहास, भा० २, पृ० १०२०) 'राजरूपक' में भी नाहन-विजय का उल्लेख है। (देखो पृ० १८७)।

२. बहादुरशाह (शाह आलम) के, सने जलूस ५ की १२ शव्वाल) (वि० सं० १७६८ की कात्तिक सुदी १३=ई० सं० १७११ की १२ नवम्बर) के, महाराज के नाम के शाही फर्मान से ज्ञात होता है कि उस ने महाराज को सूरात की फौजदारी दी थी। इसीसे शायद यह वहाँ का प्रबन्ध कर तीर्थयात्रा को गए होंगे।

३. 'राजरूपक' में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

४. अजितोदय, सर्ग १६ श्लो० ७०-६०।

बहादुरशाह वि० सं० १७६८ की फागुन बदी ७ (ई० सं० १७१२ की १८ फरवरी) को मरा था। 'क्रॉनोलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इंडिया' में २८ फरवरी लिखी है। (देखो पृ० १५३) परंतु 'लेटर मुगल्स' में ई० सं० १७१२ की २७ फरवरी की रात को उसका मरना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० १३५)।

५. 'लेटर मुगल्स' में उस दिन (हि० सं० ११२४ की २१ सफ़र मानकर) २६ (वास्तवमें १६) मार्च का होना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० १८६) और 'क्रॉनोलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इंडिया' में उस दिन २० अप्रैल लिखा है। (देखो पृ० १५४)।

मारवाड़ का इतिहास

किशनगढ़ नरेश राजसिंहजी के विपत्ती का साथ देने के कारण यह उनसे नाराज़ था। इसलिये वह लाहौर से लौटकर रूपनगर चले आए, और उन्होंने महाराज को पत्र लिखकर समय पड़ने पर सहायता करने की प्रार्थना की। इस पर इन्होंने भी उन्हें अपना भतीजा समझ यह बात स्वीकार कर ली। इसके कुछ दिन बाद महाराज ने आस-पास के प्रदेशों पर अधिकार करने का विचार कर किशनगढ़-नरेश राजसिंहजी को भी सेना लेकर उपस्थित होने का लिखा। परंतु उन्होंने इसकी कुछ भी परवा न की। यह देख महाराज बाँदरवाड़ा, भिणाय और विजयगढ़ को विजय करते हुए देवगढ़ पहुँचे। जिस समय इनका निवास उक्त स्थान पर था, उस समय फिर इन्होंने पत्र लिखकर राजसिंहजी को अपने पास बुलवाया। परंतु जब इस बार भी उन्होंने इस पर ध्यान नहीं दिया, तब (वि० सं० १७६१=ई० सन् १७१२ में) इन्होंने किशनगढ़ पर आक्रमण कर वहाँ पर अधिकार कर लिया और उसके बाद ही रूपनगर को भी घेर लिया। पहले तो राजसिंहजी ने बड़ी वीरता से इनका सामना किया, परंतु अंत में उन्हें महाराज की

‘राजरूपक’ में लिखा है कि उसने महाराज को गुजरात की सूबेदारी दी थी। परंतु महाराज के उधर जाने के पूर्व ही वह मर गया, और फ़र्रुख़सियर दिल्ली के तख़्त पर बैठा। (हस्त-लिखित पुस्तक पृ० १८८)।

जहाँदारशाह का जल्दूसी सन् हि० सन् ११२४ की १४ रबीउल अक्वल (वि० सं० १७६६ की चैत्र सुदी १५=ई० सन् १७१२ की १० अप्रैल) से माना गया था।

१. इन्होंने शायद लाहौर के युद्ध में अज़ीमुद्दौल्लाह का पक्ष लिया था। इसी से मोहज़ुद्दीन जहाँ-दारशाह इनसे नाराज़ था।

२. इसकी पुष्टि किशनगढ़-नरेश के वि० सं० १७६८ की माघ सुदी ८ के महाराज के नाम के पत्र से भी होती है।

३. महाराज के लिखे वि० सं० १७६६ (चैत्रादि संवत् १७७०) के, पंचोली बालकृष्ण के नामके पत्रों से ज्ञात होता है कि महाराज ने उसे जूनिया, मसूदा, तोड़ा, बाँदरवाड़ा और शक्तावतों के अधीन के प्रदेशों को विजय करने के लिये भेजा था और उसने वे प्रदेश विजय कर लिए थे।

ऐसा ज्ञात होता है कि महाराज के उधर से लौट कर जोधपुर आने पर उपर्युक्त लोगों ने फिर कहीं-कहीं सिर उठाया होगा। इसीसे पंचोली बालकृष्ण ने उन को फिर से जीता।

महाराजा अजितसिंहजी

बात मानलेनी पड़ी। इसके बाद यह रायसिंहजी को साथ लेकर सांभर पहुंचे। इसकी सूचना पाते ही आंबेर-नरेश जयसिंहजी, राजा उदयसिंहजी और राव मनोहरदास शेखावत वहाँ आकर इनसे मिले। इसी समय बादशाह मोइजुद्दीन भी लाहौर से दिल्ली की तरफ चला आया था। परंतु शीघ्र ही उसे हाजीपुर से शाहजादे (अजीमुरशान के पुत्र) फर्रुखसियर की चढ़ाई का समाचार मिल जाने से उसने महाराज से छेड़-छाड़ करना उचित न समझा। महाराज भी आंबेर-नरेश जयसिंहजी आदि के लौट जाने पर जोधपुर चले आए।

कुछ दिन बाद जब मोइजुद्दीन जहाँदारशाह को कैद कर फर्रुखसियर बादशाही तख्त पर बैठा, तब राव इंद्रसिंह का पुत्र मोहकमसिंह बगड़ी के ठाकुर दुर्जनसिंह

१. महाराज के, दयालदास के नाम लिखे, एक पत्र में (इसका नीचे का भाग फटा हुआ है) लिखा है कि हमारे राजसिंहजी को बुलाने पर उन्होंने आप न आकर अपने तीनों लड़कों को भेजने का लिखा। इस पर हमने किशनगढ़ आदि पर अधिकार कर रूपनगर को भी घेर लिया। जब क़िला फ़तह हो जाने की सूत हुई, तब राजसिंहजी ने अपना कुसर मानकर माफ़ी माँग ली और आश्विन बदी १ को वह हमारे पास चले आए। साथ ही उन्होंने हाथी और तोपें भी नज़र कीं। वि० सं० १७६६ (चैत्रादि संवत् १७७०) की वैशाख बदी ६ के महाराज के लिखे अपने फौजबन्दी पंचोली बालकृष्ण के नाम के पत्र से उस समय सरवाड़ आदि पर महाराज का कब्ज़ा होना प्रकट होता है।
२. महाराज के वि० सं० १७६६ की माँगसिर बदी १० के लिखे, दयालदास के नाम के पत्र में लिखा है कि आज राय रघुनाथ का पत्र आया। उससे ज्ञात हुआ कि बादशाह ने हमारी कही सब बातें मान ली हैं। उसने अहमदाबाद का सूबा और सोरठ, ईडर तथा पट्टन का दरोबस्त हमको दिया है। और हमने उज्जैन का सूबा और मंदसौर आदि का दरोबस्त राजा जयसिंहजी को दिलवाया है। साथ ही इंद्रसिंहजी और राजसिंहजी को क्रमशः नागौर और किशनगढ़ तथा रूपनगर दिलवाया है। जिन-जिन लोगों ने हमारी सेवा की थी उन-उनके सब काम ठीक तौर से करवा दिए हैं।
३. 'राजरूपक' में इन घटनाओं का उल्लेख नहीं है। 'वीरविनोद' में प्रकाशित मारवाड़ के इतिहास में किशनगढ़ की चढ़ाई का वि० सं० १७६८ के भादों (ई० सन् १७११ के सितम्बर) में होना लिखा है।
४. 'अजितोदय', सर्ग २०, श्लो० १-२१। उक्त काव्य में यह भी लिखा है कि बादशाह ने जयपुर और जोधपुर के नरेशों का साँभर में एकत्रित होना सुनकर ही लाहौर से लौटने में शीघ्रता की थी।
५. फर्रुखसियर वि० सं० १७६६ की माघ बदी १० (ई० सन् १७१३ की १० जनवरी) को बादशाह हुआ था।

मारवाड़ का इतिहास

को साथ लेकर, दिल्ली चला गया, और वहाँ पर महाराज के विरुद्ध बादशाह के कान भरने लगा। यह बात महाराज को बहुत बुरी लगी। अतः इन्होंने भाटी अमरसिंह को भेज मोहकमसिंह को मरवा डाला। इस पर दुर्जनसिंह भागकर दक्षिण में चला गया।

इसके बाद महाराज ५ महीने तक मेड़ते में रहे, और वहीं से फिर इन्होंने राव इन्द्रसिंह को अपने पास आने को लिखा। परंतु वह इनके पास न आकर कुछ दिन के लिये सैयदों के पास दिल्ली चला गया। इसी प्रकार किशनगढ़-नरेश राजसिंहजी भी दिल्ली पहुँच बादशाह के पास रहने लगे।

ये लोग फर्रुखसियर को महाराज के विरुद्ध भड़काते रहते थे। अतः उसने इनके कहने से पहले तो पत्र लिखकर महाराज-कुमार अभयसिंहजी को दरबार में बुलाने की कोशिश की। परन्तु जब महाराज ने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया, तब वि० सं० १७७० (ई० सन् १७१३) में उसने सैयद हुसैनअलीख़ाँ (अमीरुल उमरा) को जोधपुर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी^१। इसकी सूचना पाते ही महाराज ने खीवसी

१. अजितोदय, सर्ग २०, श्लो० २४-२६। 'लेटरमुग़ल्स' (भा० १, पृ० २८५ का फुटनोट) में मोहकम के स्थान पर मुकंद (और मुल्कन) लिखा है। 'वीरविनोद' में प्रकाशित मारवाड़ के इतिहास में इस घटना का वि० सं० १७७० की भादों सुदी १ (ई० सन् १७१३ की २७ अगस्त ?) को होना लिखा है। 'सैहल्ल मुताख़रीन' में जिस राजा मोहकमसिंह का हि० सन् ११३३ की १३ मुहर्रम (वि सं० १७७७ की कार्तिक सुदी ११=ई० सन् १७२० की ३ नवम्बर) को बादशाह मुहम्मदशाह की सेना को छोड़कर अब्दुल्लाख़ाँ से मिल जाना, और युद्ध होने पर दूसरे दिन रात को उसकी सेना से भी भाग जाना लिखा है, वह इस मोहकम से भिन्न था; क्योंकि उसके नाम के आगे राव न लगा होकर राजा की उपाधि लगी है। (देखो भा० २, पृ० ४४०) साथ ही 'मअ्रासिरुलउमरा' में उसे खत्री लिखा है। (देखो भा० २, पृ० ३३०)।

२. अजितोदय, सर्ग २०, श्लो० ३६-३६।

३. मि० इरविन ने अपने 'लेटर मुग़ल्स' नामक इतिहास के भा० १ पृ० २८५-२८६ में लिखा है कि बहादुरशाह महाराज अजितसिंहजी को दबाने में कृतकार्य न हो सका, और उसके मरते ही शाही तख़्त के लिये मग़ड़ा उठ खड़ा हुआ। यह देख महाराज ने भी मारवाड़ के आस-पास गो-वध बन्द कर मुसलमानी धर्म के प्रचार को रोक दिया। इसके बाद अजमेर पर भी इन्होंने अपना अधिकार कर लिया। उसी इतिहास में कमबरख़ाँ के लेख के आधार पर यह भी लिखा है कि इधर तो बादशाह ने हुसेनकुली को जोधपुर पर चढ़ाई करने के लिये भेजा और उधर अनेक प्रलोभनों से पूर्ण पत्र लिखकर महाराज से उसे मार डालने का आग्रह किया। (लेटर मुग़ल्स, भा० १, पृ० २८६)।

महाराजा अजितसिंहजी

को हुसैनअली से मिलकर बातचीत तय करने के लिये भेज दिया, और स्वयं सेना सजाकर नगर से बाहर राईकेबाग के पास डेरा लगाया। खीवसी ने मेड़ते के पास (बूध्यावास में) पहुंचा शाही सेना-नायक से संधि कर ली। इस पर वह महाराज-कुमार अभयसिंहजी^३ को लेकर दिल्ली लौट गया। वहाँ पर वि० सं० १७७१ की सावन बदी ४ (ई० सन् १७१४ की १६ जुलाई) को बादशाह ने महाराज-कुमार से मिलकर उनका बड़ा आदर-सत्कार किया।

‘बाँवे गजेटियर’ में लिखा है कि इसी अवसर पर बादशाह ने महाराज-कुमार को सोरठ की हकूमत (फौजदारी) दी। इस पर वह स्वयं तो बादशाह के पास ही रहे,

१. फारसी-इतिहासों में हुसैनअली का मारवाड़ के गाँवों को लूटते हुए मेड़ते पहुँचना लिखा है।

२. बादशाह फर्रुखसियर के सने जलूस १ की ११ सफर (वि० सं० १७७० की फागुन सुदी १२=ई० सन् १७१४ की १५ फरवरी) का महाराज के नाम का एक फरमान मिला है। उसमें अजितसिंहजी के (पहले के अनुसार ही) मनसब और रियासत के अधिकार के अङ्गीकार करने का उल्लेख है।

कहीं-कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि मीरजुमला ने ही दोनों सैयद-भ्राताओं को एक स्थान से हटाने के लिये बादशाह से कहकर हुसैनअली को जोधपुर पर चढ़ाई करने के लिये भिजवाया था। साथ ही उसने एक फरमान महाराज के नाम भी भिजवाया था। उसमें उसने हुसैनअली को मार डालने का आग्रह किया था। इसके बाद बादशाह ने अब्दुल्लाहों को पकड़ने की कोशिश शुरू की। परंतु इस बात के प्रकट हो जाने से उसने अपने भाई (हुसैनअली) को शीघ्र लौट आने के लिये लिख भेजा। इसी समय महाराज ने हुसैनअली को उसके मारने के लिये आया हुआ शाही फरमान भी दिखला दिया। इस पर वह महाराज से संधि कर तत्काल लौट गया।

‘मुतख्खिबुल्लुबाब’ से भी इस बात की बहुत कुछ पुष्टि होती है। (देखो भा० २, पृ० ७३८)।

‘अजितोदय’ में लिखा है कि जब बादशाह के कहने से हुसैनअली मारवाड़ की तरफ चला आया, तब पीछे दिल्ली में मीरजुमला के बहकाने से बादशाह ने उसके बड़े भाई को मार डालने का प्रबन्ध किया। परन्तु इसमें उसे सफलता नहीं हुई। इसकी सूचना पाते ही हुसैनअली महाराज से संधि कर दिल्ली लौट गया। (देखो सर्ग २१, श्लो० १-३८) उक्त काव्य में इस चढ़ाई के कारणों में मोह-कमसिंह का दिल्ली में मारा जाना भी एक कारण माना है। परन्तु कुछ भी हो, इतना तो मानना ही पड़ता है कि इस बार की संधि में मारवाड़ के वीरों का वह पूर्व का-सा पौरुष प्रकट न हो सका।

३. वि० सं० १७७० (चैत्रादि १७७१) की ज्येष्ठ बदी १४ के, महाराज के, खीवसी के नाम लिखे पत्र से प्रकट होता है कि इसके एक दिन पूर्व हुसैनअली के तीन अमीर आकर अभयसिंहजी से मिले और उन्हें हाथी पर चढ़ाकर नबाब के पास ले गए। वहाँ पर उसने इनका बड़ा सत्कार किया, और १ हाथी, १ पोशाक तथा १ कलगी भेंट की।

मारवाड़ का इतिहास

परन्तु कायस्थ फ़तहसिंह को उन्होंने अपना नायब बनाकर वहाँ का प्रबंध करने के लिये जूनागढ़ भेज दिया। इसके बाद वि० सं० १७७२ के ज्येष्ठ (ई० सन् १७१५ की मई) में महाराज-कुमार लौटकर जोधपुर चले आए।

इसी वर्ष (वि० सं० १७७२=ई० सन् १७१५ में) महाराज को गुजरात की सूबेदारी और ५,००० सवारों का मंसब मिला। इस पर यह जालोर होते हुए भीनमाल पहुँचे और वहाँ से व्यास दीपचंद की सलाह से चाँपावत हरिसिंह और भाटी खेतसी को जैतावत दुर्जनसिंह और बनावटी दलथंभन के पीछे रवाना किया। इनको आज्ञा दी गई थी कि ये उक्त दुर्जनसिंह और दलथंभन का पता लगाकर उन्हें मार डालें। (इसी के साथ मेड़ते के शासक पेमसी को भी नागोर पर चढ़ाई करने की आज्ञा भेजी गई।) इसके बाद महाराज बड़गाँव की तरफ़ होते हुए आबू के पास पहुँचे और वहाँ के देवड़ा शक्तिसिंह को हराकर पालनपुर की तरफ़ चले। इन्हें आया देख वहाँ के यवन-शासक (फ़ीरोज़ख़ाँ) ने और बावड़ी के पंचायण ने इनसे संधि कर ली। इसके बाद यह कोलीवाड़े से कर लेते हुए पाटन पहुँचे। यहाँ से महाराज ने अपनी सेना के एक भाग को मालगढ़ पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी, और दूसरे भाग के साथ यह स्वयं अहमदाबाद की तरफ़ चले। महाराज की आज्ञा के अनुसार सेना का वह भाग भी कोलियों के उपद्रव को शांत कर मार्ग में महाराज से आ मिला। इसके बाद यह अहमदाबाद पहुँच वहाँ के सूबे का प्रबंध करने में लग गए।

१. बाँबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २६७।

२. बाँबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० २६६ और 'लेटर सुग़त्स' भा० १, पृ० २६ का फ़ुटनोट।

महाराजा अजितसिंहजी के नाम का अहमदाबाद की सूबेदारी का फ़रमान बादशाह फ़र्रुख़सियर के सने जलूस ३ की २३ ज़िलहिज (वि० सं० १७७२ की पौष बदी १०=ई० स० १७१५ की ६ दिसम्बर) को लिखा गया था। इस फ़रमान में बादशाह की तरफ़ से महाराज को एक ख़िलअत दिए जाने का भी उल्लेख है।

३. 'राजरूपक' में भादों के अंत तक महाराज का जालोर में निवास करना लिखा है। (देखो पृ० १६८)।

४. अजितोदय, सर्ग २२, श्लो० ७-३५। उक्त काव्य में दलथंभन का उल्लेख नहीं है, क्योंकि उसके लेखानुसार वह सोजत के युद्ध में ही मारा गया था।

‘बाँवे गजेटियर’ में लिखा है कि अहमदाबाद पहुँचकर महाराज ने गजनीख़ाँ जालोरी को पालनपुर और जवाँमर्दख़ाँ बाबी को राधनपुर का हाकिम (फ़ौजदार) बनाया था ।

‘मीरातेअहमदी’ से ज्ञात होता है कि उसी वर्ष महाराज को प्रसन्न करने के लिये कोल्हापुर के कोतवाल ने ईद के त्योहार पर गाय की कुरबानी रोक दी । इससे वहाँ के सारे मुसलमान भड़क उठे ।

पहले लिखा जा चुका है कि महाराज ने पेमसी को नागोर विजय की आज्ञा दी थी । उसी के अनुसार उसने नागोर को घेरकर युद्ध छेड़ दिया । इसी अवसर पर इंद्रसिंह के बहुत-से सरदार भी लालच में पड़कर महाराज के पक्ष में चले आए । इससे जब नगर पर महाराज का अधिकार हो गया, तब राव इंद्रसिंह किला छोड़कर अपने परिवार के साथ कासली नामक गाँव में जा रहा । परन्तु उसका पीछा करता हुआ जोधा दुर्जनसिंह रात्रि में वहाँ जा पहुँचा, और उसने उसके द्वितीय पुत्र मोहनसिंह को भी मार डाला । यह देख इंद्रसिंह भागकर दिल्ली में बादशाह के पास चला गया, और फिर से महाराज के विरुद्ध उसके कान भरने लगा । परन्तु इस बार उसे विशेष सफलता नहीं हुई । यह घटना वि० सं० १७७३ के श्रावण (ई० सन् १७१६ की जुलाई) की है ।

इसी वर्ष बादशाह ने हैदरकुली को सोरठ का फ़ौजदार बनाया । उस समय वहाँ का प्रबंध महाराजकुमार अभयसिंहजी के अधिकार में होने से पहले तो उसे हस्तगत करने की उसकी हिम्मत न हुई, परन्तु अंत में किसी तरह वहाँ पर उसका अधिकार हो गया ।

१. बाँवे गजेटियर, भा १, खंड १, पृ० २६६ ।

२. बाँवे गजेटियर, भा १, खंड १, पृ० २६६, फुटनोट ३ ।

३. ‘राजरूपक’ में इस घटना की तिथि सावन सुदी ३ लिखी है । (देखो पृ० २००) ।

४. अजितोदय, सर्ग २३, श्लो० २-१३, और राजरूपक, पृ० २०१-२०२ । वि० सं० १७७३ की सावन सुदी ७ के एक पत्र से भी इसी वर्ष नागोर पर महाराज का अधिकार होना सिद्ध होता है ।

५. बाँवे गजेटियर, भा १, खंड १, पृ० २६६-३०० ।

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १७७३ की माघ सुदि १२ (ई० सं० १७१७ की १३ जनवरी) को बादशाह ने महाराज को शाही खिलअत, जड़ाऊ सरपेच, जड़ाऊ दस्तारबंद, जड़ाऊ कटार और सोने के साज का हाथी दिया।

इसके बाद फागुन (फरवरी) में उस (बादशाह) ने इन्हें नागोर का परगना, जो उस समय अजमेर की सूबेदारी में था, जागीर में दे दिया।

अगले वर्ष महाराज ने गुजरात में दौरा करते समय द्वारका की यात्रा की, और मार्ग में हलवद के भालों की कूटनीति से क्रुद्ध हो उसे दंड दिया। इसके बाद यह अहमदाबाद लौट आए। इसी बीच हरिसिंह ने कर्माखेड़ी की गद्दी पर आक्रमण कर दलथंभन और दुर्जनसिंह को मार डाला।

मुसलमानों के स्वेच्छाचार से नफ़रत होने के कारण महाराज अपने अधिकृत-स्थानों में उनकी स्वच्छंदताओं को दबाए रखते थे। इसी से वि० सं० १७७४ (ई० सन् १७१७) में इस प्रकार की शिकायतों से नाराज होकर बादशाह ने गुजरात का सूबा शम्सामुद्दौला खाँदौराँ नसरतजंग को सौंप दिया। अतः महाराज लौटकर जोधपुर चले आए।

१. फ़र्रुख़सियर के सने जलूस ४ की १० सफ़र का महाराज के नाम का एक फ़रमान मिला है। इसमें सिक्खों की हार का उल्लेख है।

२. फ़र्रुख़सियर के सने जलूस ५ की रबीउल अव्वल का भी महाराज के नाम का एक फ़रमान मिला है। इसमें की तारीख़ फट गई है। सम्भव है यह १ रविउल अव्वल हो; क्योंकि उसी दिन फ़र्रुख़सियर का सने जलूस शुरू हुआ था।

इस फ़रमान में उस अवसर पर बादशाह द्वारा एक खाँसे खिलअत और दो ईराकी घोड़ों का महाराज को दिया जाना लिखा है। ये घोड़े ईरान के बादशाह ने भेजे थे।

३. अजितोदय, सर्ग २३, श्लो० २४-३५। वहीं पर यह भी लिखा है कि हलवद पहुँचने पर रात्रि में महाराज की सेना के साथ के व्यापारियों के ऊँट चुरा लिए गए। इस पर जब वहाँ के भाला-वंशी शासक से शिकायत की गई, तब उसने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसलिये महाराज को उससे युद्ध करना पड़ा। अन्त में भाला भागकर नवानगर वालों की शरण में चला गया। इस पर पहले तो नवानगरवालों ने भी भाला का पक्ष लेकर महाराज का सामना किया। परंतु अन्त में उन्होंने दंड के रुपये देकर महाराज से संधि वली।

४. अजितोदय, सर्ग २४, श्लो० ३४-३६ और राजरूपक, पृ० २०१।

५. बौवे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३०० और अजितोदय, सर्ग २४ श्लो० ४०।

इसके बाद यह मंडोर, नांगोर और मेड़ते का दौरा करते हुए पुष्कर पहुँचे। इसी बीच बादशाह फ़र्रुखसियर और सैयदों के बीच के मनोमालिन्य ने उग्र रूप धारण कर लिया। यह देख बादशाह ने कुतुबुल्मुल्क को धोके से पकड़कर मारना चाहा। परंतु चालाक सैयद को इस बात का पता लग जाने से वह सचेत होगया। इस पर बादशाह ने नाहरख़ाँ के द्वारा महाराज को अपनी सहायता के लिये बुलवाया। परंतु नाहरख़ाँ स्वयं भी गुप्त रूप से सैयदों से मिला हुआ था। इसीसे उसने बादशाह की अव्यवस्थितचित्ता का वर्णन कर महाराज का चित्त भी उसकी तरफ़ से फिरा दिया।

वि० सं० १७७५ की भादों सुदी ६ (ई० सन् १७१८ की २० अगस्त) को जब महाराज दिल्ली के पास पहुँचे, तब बादशाह ने इनके लिये एतकादख़ाँ के साथ एक कटार भेजी, और इनकी अगवानी के लिये शम्सामुद्दौला को नियत कर उसे आज्ञा दी कि वह महाराज के सामने जाकर जहाँ तक हो, खुशामद आदि से उन्हें अपनी तरफ़ मिलाने का प्रयत्न करे। परंतु महाराज बादशाह की अस्थिरता और शाही दरबार की हालत से परिचित हो चुके थे। अतः इन्होंने कुतुबुल्मुल्क के साथ जाकर ही बादशाह से मिलना उचित समझा। इसी के अनुसार जब यह दूसरे दिन मंत्री के साथ जाकर बादशाह से मिले, तब ऊपर से तो उसने खिलअत आदि देकर इनका

१. अजितोदय, सर्ग २५, श्लो० ४-२३। परन्तु उक्त काव्य में इनका जयपुर-नरेश जयसिंहजी की सलाह से बुलाया जाना और यह देख सैयद-भ्राताओं का इनसे मेल कर लेना लिखा है। 'मुंतख़िबुल्लुबाब' में बादशाह का महाराज को अहमदाबाद से बुलवाना और 'महाराजा' के खिताब के साथ ही अन्य तरह से भी इनके पद और मान में वृद्धि कर इन्हें अपनी तरफ़ मिलाने की चेष्टा करना लिखा है। (देखो भा० २, पृ० ७६२)।

फ़र्रुखसियर के लिखे इस विषय के दो फ़रमान मिले हैं। इनमें बड़ी खुशामद के साथ महाराज से दिल्ली आने का आग्रह किया गया है। परन्तु दोनों में ही सन् और तारीख़ नहीं दी गई है।

हां, इनमें के एक फ़रमान से प्रकट होता है कि यह लिखा पढ़ी महाराज के द्वारका की यात्रा कर अहमदाबाद से जोधपुर चले आने पर की गई थी।

२. लेटर मुग़ल्स, भा० १, पृ० ३४८।

३. अजितोदय, सर्ग २६, श्लो० ३ और राजरूपक, पृ० २०६।

४. 'मुंतख़िबुल्लुबाब' में फ़र्रुखसियर की अव्यवस्थितचित्ता के बारे में ये शब्द लिखे हैं—“इज़्मो-राय बादशाह बरयक हाल करार न मे गिरफ़्त” (देखो भा० २, पृ० ७६४)।

मारवाड़ का इतिहास

सम्मान किया, परंतु इनके मंत्री के साथ आकर मिलने के कारण वह मन-ही मन इनसे नाराज हो गया। यह देख इन्होंने भी बादशाही दरबार में जाना छोड़ दिया। परंतु आश्विन बदी १३ (११ सितंबर) को बादशाह ने, मेल करने की इच्छा से, खाँदौर और सरबलंदखों को भेजकर इन्हें फिर अपने पास बुलवाया। इस पर महाराज और कुतुबुल्मुल्क अब्दुल्लाखों, दोनों एक ही हाथी पर सवार होकर बादशाह के पास पहुँचे। बादशाह ने भी ऊपर से बड़ी प्रीति दिखलाई और वजीर की सलाह से बीकानेर का अधिकार भी महाराज को दे दिया। परंतु भीतरही-भीतर वह निजामुल्मुल्क, मीर जुमला और ऐतकादखों आदि अनेक अमीरों को मिलाकर इनके मारने का षड्यंत्र रचने लगा। यह देख इधर कुतुबुल्मुल्क ने अपने भाई को, जो उस समय दक्षिण में था, सारा हाल लिख भेजा और, उधर बादशाह भी, जो सैयदों से पूरा पूरा द्वेष रखता था

१. अजितोदय, सर्ग २६, श्लो० ३६-४७।

वि० सं० १७७५ की भादों सुदी ८ के दिवसी से महाराज के लिखे दयालदास के नाम के पत्र में लिखा है कि भादों सुदी ७ को हम बादशाह से मिले। बादशाह भी हमसे बड़े आदर के साथ बाँह फैलाकर मिला और हमें अपनी दाहनी तरफ सब से ऊपर खड़ाकर 'राजराजेश्वर' का खिताब, खिलअत, घोड़ा, हाथी, माही मरातब, मोतियों की माला, जड़ाऊ कटार, जड़ाऊ सरपेच, १,००० सवार दुअस्पा का इजाफा और १ करोड़ दाम दिए।

इसकी पुष्टि इसी तिथि के पंचोत्ती अजबसिंह के नाम लिखे महाराज के पत्र से भी होती है।

२. 'अजितोदय' में लिखा है कि महाराज किले से लौटते हुए मार्ग में कुतुबुल्मुल्क के मकान पर ठहरे थे (देखो सर्ग २६, श्लो० ४६) परन्तु किसी ने इसकी सूचना बादशाह को दे दी। इससे बादशाह इनसे और भी अप्रसन्न हो गया। (देखो सर्ग २७, श्लो० २)।

३. किसी-किसी तवारीख में बादशाह का महाराज के द्वारा वजीर से मेल करने की इच्छा प्रकट करना भी लिखा है।

४. इस प्रकार महाराज को अकेले अब्दुल्लाखों के हाथी पर सवार होते देख नीबाज का ठाकुर अमरसिंह उनके पीछे चढ़ बैठा। उसी दिन से सरदार लोग महाराज के पीछे बैठने लगे हैं।

५. महाराज के, सिकदार दयालदास के नाम लिखे, वि० सं० १७७५ की पौष बदी ४ के पत्र में लिखा है कि बादशाह ने इन्हें खिलअत, मोतियों की माला, जड़ाऊ कलगी और एक करोड़ दाम देकर इनके मनसब में एक हजार सवार दुअस्पा की वृद्धि की। इसके अलावा अहमदाबाद का सूबा देने का भी हुक्म दिया।

६. 'लेटर मुगल्स' भा० १, पृ० ३४८-३५१।

महाराजा अजितसिंहजी

इनके विरुद्ध बराबर षड्यंत्र करने लगा। एक-दो बार तो उसने महाराज के मार डालने या पकड़ लेने की कोशिश भी की^१, परंतु इसमें उसे सफलता नहीं हुई।

अंत में (अब्दुल्लाख़ाँ) कुतुबुल्मुल्क के समझाने से पौष सुदी ३ (१३ दिसंबर) को स्वयं बादशाह उसे साथ लेकर महाराज के डेरे पर आया, और घंटे-भर से भी अधिक समय तक मेल-मिलाप की बातें करता रहा। इस पर दूसरे दिन महाराज भी दरबार में उपस्थित हुए। इस प्रकार एकबार फिर इनके आपस में मेल हो गया। इसके बाद माघ वदी २ (२८ दिसम्बर) को बादशाह ने इन्हें 'राजराजेश्वर' की उपाधि देकर गुजरात की सूबेदारी दी^२।

१. एकबार बादशाह ने सोचा कि उसके शिकार से लौटते हुए वज़ीर के मकान के पास पहुँचने पर जिस समय महाराज (जिनका पड़ाव उसी के मकान के पास था) अपने खेमे से निकलकर सत्कार के लिये सामने आवें, उस समय उन्हें पकड़ लिया जाय। परन्तु यह बात प्रकट हो जाने से महाराज हुसैनअली के मकान पर जाकर खड़े हो गए। इससे बादशाह की उधर आने की हिम्मत ही नहीं हुई।

इसी प्रकार स्वयं महाराज द्वारा अपने विश्वासपात्र सरदारों को लिखे गए उस समय के पत्रों में भी बादशाह की तरफ़ से इनके विरुद्ध किए गए षड्यंत्रों का उल्लेख मिलता है। उन पत्रों में महाराज ने जयपुर-नरेश जयसिंहजी का भी अपने विरुद्ध बादशाह को भड़काना सूचित किया है।

'अजितोदय' में भी महाराज को मारने के लिये बादशाह द्वारा षड्यंत्रों के रचे जाने का उल्लेख मिलता है। (देखो सर्ग २७, श्लो० ३-५)।

२. 'लेटर मुग़ल्स' में लिखा है कि पौष वदी १४ (६ दिसम्बर) को महाराजा अजितसिंहजी और शाही तोपख़ाने के नायक (बीका हज़ारी) के बीच लड़ाई छिड़ गई। यह लड़ाई तीन घंटे तक जारी रही, और इसमें दोनों तरफ़ के बहुत से योद्धा मारे गए। रात हो जाने पर जब भगड़ा शांत हुआ, तब बादशाह ने ज़फ़रख़ाँ को महाराज के पास भेजकर इस ग़लती के लिये क्षमा चाही। (देखो भा० १, ३६३)।

३. 'अजितोदय' सर्ग २७, श्लो० ७-११ और राजरूपक, पृ० २१२।

४. लेटर मुग़ल्स, भा० १, पृ० ३६३-३६४। ऊपर उद्धृत किए भादों सुदी ८ के स्वयं महाराज के पत्र में भी इन बातों का उल्लेख मिलता है।

अजितोदय में लिखा है कि इसके बाद एक दिन बादशाह ने राजराजेश्वर महाराजा अजितसिंहजी को और कुतुबुल्मुल्क को क़िले में बुलवाकर मार डालने का प्रबन्ध किया। इसके लिये पहले से ही सशस्त्र सिपाही महल में छिपाकर बिठा दिए गए थे। परन्तु इसका भेद खुल जाने से ये दोनों वहाँ से सकुशल निकल आए। (देखो सर्ग २७ श्लो० १२-१३)।

'लेटर मुग़ल्स' में इस घटना का संबंध केवल कुतुबुल्मुल्क से ही बतलाया है। (देखो भा० १, पृ० ३५४-३५५)।

मारवाड़ का इतिहास

कुतुबुल्मुल्क का खयाल था कि आँवेर-नरेश राजा जयसिंहजी भी उसके विरुद्ध बादशाह को भड़काते रहते हैं। इससे उसने फर्रुखसियर पर दबाव डालकर उन्हें अपने देश को लौट जाने की आज्ञा दिलवा दी^१।

इसी बीच सैयद हुसैन अलीख़ाँ (अमीरुलउमरा) अपनी सेना लेकर दक्षिण से दिल्ली आ पहुँचा। अतः इन लोगों ने स्थायी संधि कर लेने के लिये फिर एकबार बादशाह से बातचीत शुरू की। परंतु अंत में फर्रुखसियर की अव्यवस्थितचित्ता से सैयदों का और महाराज का विश्वास उस पर से बिलकुल ही उठ गया। इसलिये फागुन सुदी ६ (ई० सन् १७१६ की १७ फरवरी)^३ को इन्होंने किले पर अधिकार कर लिया। यह देख फर्रुखसियर जनाने में घुस गया। यद्यपि इन लोगों ने उसे बाहर आकर मामला तय कर लेने के लिये कई बार कहलाया, तथापि उसने इनकी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इससे क्रुद्ध होकर इन लोगों ने दूसरे ही दिन रफीउद्दरजात को कैद से निकालकर तख्त पर बिठा दिया और फर्रुखसियर को जनाने में से पकड़वाकर कैद कर लिया।

१. 'लेटर मुगल्स' भा० १, पृ० ३७६ और अजितोदय, सर्ग २७, श्लो० ३७ और ४०।

२. अजितोदय, सर्ग ३७, श्लो० १६।

३. 'हदीकतुलअकालीम' में ८ रबीउल आखीर के बदले ८ रबीउल अवल लिखा है। (देखो पृ० १३४) यह ठीक नहीं है।

४. अजितोदय, सर्ग २७ श्लो० ४१-४७।

५. अजितोदय, सर्ग २७ श्लो० ४८ और ५१। यह बहादुरशाह का पौत्र और रफीउश्शान का पुत्र था।

'अजितोदय' में लिखा है कि मुगल गाज़िउद्दीन ने एकबार फर्रुखसियर को छुड़वाने की चेष्टा की थी। परन्तु हुसैनअलीख़ाँ ने उसे नगर के पूर्वी द्वार के पास हराकर भगा दिया। (देखो सर्ग २७, श्लो० ४६-५०) इसकी पुष्टि 'लेटर मुगल्स' से भी होती है। (देखो भा० १, पृ० ३८६)।

६. रफीउद्दरजात को तख्त पर बिठाते समय उसका एक हाथ कुतुबुल्मुल्क ने और दूसरा महाराज अजितसिंहजी ने पकड़ा था। (देखो लेटर मुगल्स, भा० १, पृ० ३८६)।

७. वि० सं० १७७५ (चैत्रादि १७७६) की ज्येष्ठ बदी ११ के महाराज के सिकदार दयालदास के नाम के पत्र में लिखा है:—

बादशाह फर्रुखसियर ने हमें अपनी सहायता के लिये यहाँ बुलवाया था। परन्तु हमारे यहाँ पहुँचने पर जयसिंहजी के कहने-सुनने से वह हमसे नाराज़ हो गया। इस पर हमने और नवाब अब्दुल्लाख़ाँ ने हसनअली को दक्षिण से यहाँ बुलवा लिया। उसके (१७७५ की) फागुन बदी १४ को

महाराजा अजितसिंहजी

इसके बाद महाराज के कहने से नए बादशाह ने अपने पहले ही दरबार में जज़िया उठा देने और तीर्थों पर लगने वाले कर को हटा देने की आज्ञा दे दी^१।

इस प्रकार दिल्ली के भगड़े से निपटकर वि० सं० १७७६ की ज्येष्ठ बदी ४ (ई० सन् १७१६ की २६ अप्रैल) को महाराज ने वहां (दिल्ली) से गुजरात की तरफ जाने का विचार किया। परंतु रफीउदरजात के गद्दी पर बैठने का समाचार फैलते ही

दिल्ली पहुँचने पर फागुन सुदी २ को क़िला घेर लिया गया। फागुन सुदी १० बुधवार को फ़र्रुख़सियर को कैद कर लिया, और रफीउदरजात को गद्दी पर बिठा दिया। साथ ही हमने उससे कहकर जज़िया माफ़ करवा दिया, और तीर्थों पर की रुकावट भी दूर करवा दी।

इसके बाद वैशाख सुदी १० को फ़र्रुख़सियर के गले में तसमा डलवाकर मरवा डाला। फिर ज्येष्ठ बदी ११ रविवार को हमने बादशाह से मारवाड़ में आने की आज्ञा माँगी। इस पर बादशाह ने खिलअत, जड़ाऊ साज़ का घोड़ा, कानों में पहनने के लिये कीमती मोती, जड़ाऊ सरपेच, जड़ाऊ तलवार, हाथी, हथनी, तुमनतोग (बड़ा मरातब) आदि दिए।

पहले जब हम फ़र्रुख़सियर से मिले, तो उसने जयसिंहजी से सलाहकर हमको मरवाना चाहा। दूसरी दफ़े फिर घातकों को भीतर छिपाकर हमें बुलवाया। इसी प्रकार तीसरी बार शिकार में बुलाकर धोका देने का विचार किया। चौथी दफ़े पास बिठा कर मरवाना चाहा। इसी प्रकार एक बार बाग़ में बारूद बिछाकर और आग लगानेवालों को पास में खड़े कर हमको वहाँ बुलवाया। परन्तु उसे इनमें सफलता नहीं हुई। हम चाहते, तो जयसिंहजी को मार कर जयपुर की गद्दी पर किसी दूसरे को बिठा देते। परन्तु हमने उसे बचा दिया। पहले तो उसके वहीं पर (दिल्ली में ही) मारने का इरादा किया गया था। इसके बाद जब वह जयपुर की तरफ़ चला, तो उसके पीछे फ़ौज रवाना की गई। परन्तु हमने नवाब को समझाकर फ़ौज की चढ़ाई रुकवा दी। फिर उसे (जयसिंहजी को) मनसब में आँवरे दिलवाकर वहाँ (आँवरे) से ७०० कोस पर के दक्षिण में के बीदर की फ़ौजदारी दिलवाई। इसलिये अब वह वहाँ जायगा। हम उसे एकबार पहले भी आँवरे की गद्दी दिलवा चुके हैं।

लेटर मुग़ल्स में लिखा है कि वि० सं० १७७६ की वैशाख सुदी ६ (ई० सन् १७१६ की १७ अप्रैल) की रात को फ़र्रुख़सियर मार डाला गया। (देखो भा० १, पृ० ३७६-३६३)।

१. मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ८१७। यद्यपि फ़र्रुख़सियर ने भी पहले अपने राज्य के प्रथम वर्ष (वि० सं० १७७०=ई० सन् १७१३) में ही जज़िया उठा दिया था, तथापि बाद में इनायतउल्लाख़ाँ के जो इस विषय में मक्के के शरीफ़ की एक अज़ीज़ लाया था, कहने से अपने राज्य के छठे वर्ष (वि० सं० १७७४=ई० सन् १७१८) में इसे फिर से जारी कर दिया। (देखो लेटर मुग़ल्स, भा० १ पृ० ३३८ और मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २ पृ० ७७५)।

२. महाराजा अजितसिंहजी के नामका महाराना संग्रामसिंहजी द्वितीय का वि० सं० १७७५ की वैशाख बदी ११ का पत्र। इसमें उन्होंने जज़िया और तीर्थों पर की रुकावट उठवा देने के कारण महाराज को धन्यवाद दिया है।

भारवाड़ का इतिहास

आगरे की मुगल-सेना ने बगावत का झंडा खड़ाकर, वि० सं० १७७६ की ज्येष्ठ बदी ३० (ई० सन् १७१६ की ८ मई) को, शाहजादे मुहम्मद अकबर के पुत्र निकोसियर को तिमूर सानी के नाम से बादशाह घोषित कर दिया। इससे इन्हें अपना विचार स्थगित करना पड़ा।

इसके कुछ दिन बाद ही रफीउद्दरजात सख्त बीमार हो गया। अतः महाराज अजितसिंहजी ने और सैयद-भाताओं ने मिलकर आषाढ़ बदी ३ (२५ मई) को उसे तो ज़नाने में भेज दिया और उसकी इच्छानुसार उसके बड़े भाई रफीउद्दौला को आषाढ़ बदी ५ (२७ मई) के दिन शाहजहाँ सानी के नाम से गद्दी पर बिठा दिया। इसके बाद ही इन्हें शाइस्ताख़ाँ और आँबेर-नरेश जयसिंहजी के मिलकर आगरे में उपद्रव करने के विचार की सूचना मिली। अतः वहाँ पर अधिकार करने के लिये पहले सैयद हुसैनअली भेजा गया, और इसके कुछ दिन बाद कुतुबुल्मुल्क (अब्दुल्लाख़ाँ) और महाराज ने भी रफीउद्दौला को लेकर उधर प्रयाण किया। अब्दुल्लाख़ाँ का विचार मार्ग से ही आँबेर पर चढ़ाई कर राजा जयसिंहजी को दण्ड देने का था, परन्तु महाराजा अजितसिंहजी ने कह सुनकर उसे उधर जाने से रोक लिया। इसके बाद वि० सं० १७७६ की भादों बदी ५ (ई० सन् १७१६ की २५ जुलाई) को महाराज तो कोरी के मुक़ाम से मथुरा स्नान के लिये चले गए और कुतुबुल्मुल्क बादशाह को लेकर फ़तेहपुर-सीकरी की तरफ़ मुड़ गया। भादों बदी १२ (१ अगस्त) को आगरे के

१. मुतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० २५।

२. वि० सं० १७७६ की आषाढ़ बदी १० (ई० सन् १७१६ की १ जून) को रफीउद्दरजात राजयक्ष्मा की बीमारी से मर गया। (देखो लेटर मुग़ल्स, भा० १, पृ० ४१८) इसने केवल ३ महीने के क़रीब राज्य किया था।

३. 'लेटर मुग़ल्स' में रफीउद्दरजात का गद्दी से उतारा जाकर ज़नाने में भेजा जाना लिखा है। (देखो भा० १, पृ० ४१८)।

४. मुतख़िबुल्लुबाब, भा० १, पृ० ८२६।

५. अजितोदय, सर्ग २७, श्लो० ५३ और लेटर मुग़ल्स, भा० १, पृ० ४२०।

६. मुतख़िबुल्लुबाब, भा० १, पृ० ८३३।

७. यह बात महाराज द्वारा अपने एक सरदार के नाम लिखे उस समय के पत्र से भी प्रकट होती है। उसमें लिखा है कि अपने पर होनेवाली सैयदों की चढ़ाई की सूचना पाते ही आँबेर-नरेश जयसिंहजी ने अपने सरदारों को भेज हमसे सहायता की प्रार्थना की। इसी से हमने सैयदों से कह सुनकर उक्त चढ़ाई रूकवा दी।

क़िले पर सैयदों का अधिकार हो गया, और निकोसियर कैद कर लिया गया। इसकी सूचना पाते ही अब्दुल्लाखाँ अपनी चाल तेज़कर भादों सुदी १३ (१६ अगस्त) को 'ओल' के मुकाम पर पहुँचा। यहीं पर महाराज भी मथुरा की यात्रा से लौटकर उससे आ मिले। इतने ही में हुसैनअली भी लौटकर इनके पास आ गया। अतः यह सब लोग मिलकर दिल्ली को लौट चले। विद्यापुर में पहुँचने पर प्रथम आश्विन सुदी ५ या ६ (७ या ८ सितम्बर) को रफीउद्दौला भी बीमार होकर मर गया। परन्तु कुतुबुल्मुल्क ने दूसरे शाहजादे के दिल्ली से आने तक इस बात को गुप्त रक्खा। इसके बाद शाहजादे रोशनअख्तर के दिल्ली से वहाँ पहुँच जाने पर रफीउद्दौला की मृत्यु प्रकट की गई,

'अजितोदय' से भी इस बात की पुष्टि होती है। परन्तु उसमें एक तो आगरे पर की चढ़ाई का रफीउद्दौला की मृत्यु के बाद मुहम्मदशाह के समय होना लिखा है और दूसरा निकोसियर के पकड़े जाने के बाद महाराज का आगरे से मथुरा जाना और वहाँ से लौटने पर सैयद-भ्राताओं को आँबेर पर चढ़ाई करने से रोकना लिखा है। (देखो सर्ग २७, श्लो० ५३-५७ और सर्ग २८, श्लो० १-२६) और (राजरूपक, पृ० २१६-२१७) महाराज के दयालदास के नाम लिखे एक पत्र में (पत्र का कुछ हिस्सा फट जाने से तिथि आदि नहीं मिली है।) लिखा है कि अकबर के बेटे आगरे के क़िले में कैद थे। उन्होंने जयसिंह आदि के कहने से बगावत की। इस पर हम और हसनअलीखाँ वहाँ भेजे गए। हमने बादशाह को भी चढ़ाई करने को तैयार किया। इससे भादों बदी ३० को आगरे का क़िला फ़तह हुआ। निकोसियर दोनों भतीजों-सहित पकड़ा जाकर कैद किया गया। इसके बाद जयसिंह पर चारों तरफ़ से फ़ौजों की चढ़ाई हुई। इससे उसके मुल्क के हाथ से निकल जाने की नौबत आ पहुँची। यह देख उसने अपने ५ आदमी हमारे पास भेजे, और आजिज़ी करवाई। हमारी हर आज्ञा के पालन का वादा किया। इस पर हमने उसे साढ़े तीन हज़ारी मनसब दिलवाकर आँबेर को बचाया, और सोरठ की फ़ौजदारी दिलवाकर उसे अपने पास नियत किया। साथ ही उस पर गई हुई फ़ौजों को भी पीछा बुलवा लिया। इसके बाद हमने उसकी इच्छा के अनुसार अपने ४ आदमी भेज कर उसकी तसल्ली करवाई। अनंतर शीघ्र ही शाहजहाँ (सानी) भी बीमार होने के कारण मर गया। इस पर हमने जहाँशाह के बेटे रोशनअख्तर को दिल्ली से बुलवा कर और आश्विन बदी २ को हाथ पकड़ कर शाही तख़्त पर बिठा दिया। साथ ही उसका नाम मोहम्मदशाह गाज़ी रक्खा। इसके बाद हमारे देश को लौटने का इरादा करने पर बादशाह ने खिलअत, जड़ाऊ साज़ का घोड़ा, हाथी, मोतियों की माला, जड़ाऊ सरपेच और जड़ाऊ कटार भेंट किए। इनके अलावा अजमेर का..... (यहीं से पत्र खंडित है)।

१. लेटर मुग़ल्स, भा० १, पृ० ४२२-४३०। परन्तु इसमें अब्दुल्लाखाँ का स्वयं ही कोसी के मुकाम पर आँबेर जाने का विचार स्थगित करना लिखा है।

२. विद्यापुर फ़तेहपुर-सीकरी से ३ कोस उत्तर में है।

३. लेटर मुग़ल्स, भा० १, पृ० ४३१।

४. यह बहादुरशाह के चौथे पुत्र ख़ुजिस्ताअख्तर का पुत्र था।

मारवाड़ का इतिहास

और इसके दो दिन बाद ही द्वितीय आश्विन बदी १ (१८ सितम्बर) को रौशनअख्तर नासिरुद्दीन मोहम्मदशाह के नाम से गद्दी पर बिठा दिया गया ।

वि० सं० १७७६ की कार्तिक बदी ५ (ई० सन् १७१६ की २२ अक्टोबर) को बादशाह ने अजमेर के सूबे का प्रबन्ध सैयद नुसरतयारखाँ से लेकर महाराज के अधीन कर दिया और साथ ही मनसब में भी ३०० सवारों की वृद्धि कर शायद २,५०० सवार दुअस्था सेअस्था कर दिए ।

इसके बाद महाराज जोधपुर की तरफ़ खाना हुए, और मार्ग से जयसिंहजी को साथ लेकर मनोहरपुर होते हुए जोधपुर चले आएँ । यहाँ पर जयसिंहजी का बड़ा आदर-सत्कार किया गया । वह भी कुछ दिनों तक यहाँ रहकर अपने देश को लौट गए ।

१. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १-२ ।

२. हिजरी सन् ११३१ की १६ ज़िलहिज का फ़र्मान । इसमें के २,५०० सवारों के बाद के कुछ शब्द नष्ट हो गए हैं ।

‘लेटर मुग़ल्स’ से भी अजमेर की सूबेदारी मिलने की पुष्टि होती है । देखो भा० २, पृ० ४ ।

३. अजितोदय, सर्ग २८, श्लो० ३०-३३ । ‘लेटर मुग़ल्स’ में लिखा है कि महाराज अजितसिंहजी के बीच में पड़ने पर भी जयसिंहजी ने अवतक शत्रुता नहीं छोड़ी थी । इसलिये सैयदों का विचार उनपर चढ़ाई करने का था । (देखो भा० २, पृ० ३) परन्तु महाराज अजितसिंहजी ने जोधपुर जाते हुए मार्ग में जयसिंहजी को समझा कर शांत करने का वादा कर लिया । इससे यह चढ़ाई रोक दी गई । इसके बाद द्वितीय आश्विन सुदी ३ (५ अक्टोबर) को जयसिंहजी के टोडे से वापिस आँबेर लौट जाने की सूचना मिल गई । अतः यह मतगढ़ा शान्त हो गया । (देखो भा० २, पृ० ४) ‘राजरूपक’ में महाराज का मँगसिर में जोधपुर आना लिखा है । उसके अनुसार बूँदी-नरेश बुधसिंहजी भी इनके साथ थे । (देखो पृ० २१८) ।

४. अजितोदय, सर्ग २६ श्लो० १-३५ । परन्तु उक्त काव्य में सैयद-भ्राताओं में से एक के मारे और दूसरे के कैद किए जाने पर जयसिंहजी का जोधपुर से लौटना लिखा है ।

इसी के आगे उसमें महाराज का ८ महीनों के लिये मेड़ते जाकर रहना और फिर अजमेर पर चढ़ाई करना भी लिखा है । (देखो सर्ग २६, श्लो० १-६६) ‘राजरूपक’ में भी जयसिंहजी का एक सैयद के मारे जाने पर जोधपुर से जाना लिखा है । इसके बाद वि० सं० १७७७ की कार्तिक-बदी १२ को महाराज का मेड़ते पहुँचना और फिर अजमेर पर अधिकार कर लेना भी उससे प्रकट होता है । (देखो पृ० २२०) ।

महाराजा अजितसिंहजी

इसी बीच बादशाह ने सोरठ का सूबा जयसिंहजी को दे दिया, परंतु बाकी के अहमदाबाद सूबे का प्रबन्ध महाराज के ही अधिकार में रक्खा। उस समय मरहटों का प्रभाव बहुत बढ़ा हुआ था। साथ ही महाराज भी अत्याचारी मुसलमानों से हार्दिक घृणा रखते थे। इसी से यह गुप्त रूप से मरहटों को प्रोत्साहन देते रहते थे, और मौका पाकर इन्होंने मारवाड़ की सरहद से मिलते हुए गुजरात के प्रदेशों को भी अपने राज्य में मिला लिया था। यद्यपि बाद में इनको वापस हस्तगत करने के लिये सर-बुलन्दखाँ ने बहुत कुछ उद्योग किया, तथापि वह कृतकार्य न हो सका।

वि० सं० १७७७ (ई० सन् १७२०) में सैयदहुसेनअली मारा गया, और इसके करीब एक मास बाद ही सैयद अब्दुल्लाखाँ कैद कर लिया गया। इसलिये महाराज ने स्वयं मारवाड़ से बाहर जाना अनुचित समझ भंडारी अनोपसिंह को गुजरात के प्रबंध की देख-भाल के लिये भेज दिया। वहाँ पर उसके और अहमदाबाद के एक बड़े व्यापारी कपूरचन्द भंसाली के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ, और वह व्यापारी अनोप-सिंह के कार्य में गड़-बड़ करने लगा। इससे क्रुद्ध होकर अनोप ने भंसाली को मरवा डाला।

इस प्रकार गुजरात के सूबे का प्रबंध हो जाने के बाद महाराज स्वयं मेड़ते होते हुए अजमेर पहुँचे और वहाँ पर इन्होंने अपना अधिकार कर लिया। इसके बाद यह बादशाह की परवा छोड़ स्वाधीनता-पूर्वक आनासागर के शाही महलों में रहने लगे और इन्होंने अपने दोनों सूबों में गोवध का होना बंद कर दिया।

१. 'बॉवे गज़ेटियर' में लिखा है कि उस समय दिल्ली के पास सबसे प्रतापी-नरेश महाराज अजितसिंहजी ही थे। इसी से इनको प्रसन्न रखने के लिये ई० सन् १७१६ में, सैयदों ने इन्हें गुजरात की सूबेदारी दे दी थी। यह सूबेदारी ई० सन् १७२१ तक इन्हीं के अधिकार में रही। (देखो भा० १, खंड १, पृ० ३०१)।
२. बॉवे-गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३०१।
३. वि० सं० १७७६ (ई० सन् १७२२) में यह भी मार डाला गया। इसी बीच एक बार महाराज ने बादशाह मोहम्मदशाह से मिलकर अपने मित्र अब्दुल्लाखाँ को छुड़वाने की कोशिश करने का इरादा किया था, परंतु उस समय दिल्ली के शाही दरबार में विरोधी-पक्ष का प्रभाव देख इन्हें यह विचार छोड़ देना पड़ा।
४. लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० ५६-६० और ६१।
५. बॉवे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३०१।
६. अजितोदय, सर्ग २६, श्लो० ६७-६८ और सर्ग ३०, श्लो० १।
७. लेटर मुगल्स, भा० २ पृ० १०८।

मारवाड़ का इतिहास

इन कामों से निपटकर महाराज ने राजकुमार अभयसिंहजी को और भंडारी रघुनाथ को सांभर की तरफ भेजा। उन्होंने वहाँ के शाही फौजदार को भगाकर सांभर पर अपना अधिकार कर लिया। इसी प्रकार महाराज की सेनाओं ने डीडवाना, टोडा, झाड़ोद और अमरसर पर भी कब्जा कर लिया।

महाराज के इस प्रकार बढ़ते हुए प्रताप को देखकर बादशाह ने आगरे के शासक सआदतख़ाँ को अजमेर की सूबेदारी देने के साथ ही इन पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। परन्तु इस कार्य में एक भी शाही अमीर उसका साथ देने को तैयार न हो सका। इससे उसकी चढ़ाई करने की हिम्मत न हुई। इसके बाद क्रमशः शम्सामुद्दौला, कमरुद्दीनख़ाँ बहादुर और हैदरकुलीख़ाँ बहादुर को इस कार्य के लिये तैयार किया गया। परन्तु इनमें के प्रत्येक व्यक्ति ने चढ़ाई करने का वादा करके भी दिल्ली से आगे बढ़ने का साहस नहीं किया। खासकर शम्सामुद्दौला तो अपना पेशवेमा दिल्ली के बाहर खड़ा करवाकर भी इधर-उधर के बहाने कर नगर से बाहर न निकला। वह अच्छी तरह जानता था कि एक तो इस समय शाही खजाना खाली होने से सैनिकों के वेतन और रसद आदि का प्रबन्ध करना ही कठिन होगा। दूसरे यदि इस कार्य में असफलता हुई, तो दूसरों को भी सिर उठाने का साहस हो जायगा। इन हालातों में महाराज अजितसिंहजी जैसे प्रबल शत्रु से भिड़ना मूर्खता ही होगी^१।

कहीं-कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि बुद्धिमान और दूरदर्शी शम्सामुद्दौला को भय था कि यदि ऐसे अवसर पर महाराज ने स्वयं ही दिल्ली पर चढ़ाई कर दी, तो यह घुन लगी हुई शाही इमारत बहुत शीघ्र गिरकर नष्ट हो जायगी। इसलिये जहाँ तक संभव हो सका, उसने नम्रतापूर्ण पत्र भेज-भेजकर महाराज को संतुष्ट रक्खा, और इस प्रकार दिल्ली को भावी संकट से बचा लिया।

१. अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० २-५।

२. मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ६३६-६३७।

३. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १०८, सैहख़ल मुताख़रीन, पृ० ४५४ और मुंतख़िबुल्लुबाब, भा० २, पृ० ६३७।

४. 'सैहख़ल मुताख़रीन' से भी इस बात की बहुत कुछ पुष्टि होती है। (देखो पृ० ४५४)।

५. ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १७७७ में बादशाह रतलामनरेश राजा मानसिंहजी से नाराज़ हो गया और उसने उनसे रतलाम का अधिकार छीन लिया। इस पर उन्होंने महाराज अजितसिंहजी से सहायता की प्रार्थना की। महाराज ने बादशाह से कह कर

महाराजा अजितसिंहजी

शम्सामुद्दौला का विचार था कि यदि बादशाह का ऐसा ही आग्रह हो, तो महाराज से अजमेर का सूबा लेकर गुजरात का सूबा उन्हीं की अधीनता में छोड़ दिया जाय। परंतु हैदरकुलीख़ाँ आदि को यह बात पसंद न थी। इसीसे सआदतख़ाँ को महाराज पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी गई थी। परंतु जब वह पहले लिखे अनुसार कृतकार्य न हो सका, तब यह काम कमरुद्दीनख़ाँ को सौंपा गया। इस पर उसने बादशाह से प्रार्थना की कि सैयद अब्दुल्लाख़ाँ और उसके रिश्तेदारों के अपराधों को क्षमा कर उन्हें उसके साथ जाने की आज्ञा दी जाय। परन्तु बादशाह ने यह बात स्वीकार न की।

इसके बाद वि० सं० १७७८ के कार्तिक (ई० सं० १७२१ के अक्टोबर) में हैदरकुलीख़ाँ को गुजरात की और सैयद मुजफ़्फ़रअलीख़ाँ को अजमेर की सूबेदारी दी गई। इस पर हैदरकुली ने अपना नायब मेजर महाराज के प्रतिनिधि अनोपचन्द और नाहरख़ाँ से गुजरात का शासन ले लिया; परंतु मुजफ़्फ़रख़ाँ ने स्वयं जाकर अजमेर पर अधिकार करने का इरादा किया। इसी के अनुसार जिस समय वह मनोहरपुर पहुँचा, उस समय तक उसके पास करीब २०,००० सैनिक जमा हो गए थे। इसकी सूचना पाते ही महाराज ने भी महाराजकुमार अभयसिंहजी को मुजफ़्फ़र का मार्ग रोकने के लिये रवाना कर दिया।

बादशाह को खयाल था कि शाही सेना की चढ़ाई का समाचार पाते ही महाराज डरकर उसकी अधीनता स्वीकार कर लेंगे। परंतु जब उसे अपनी यह इच्छा पूर्ण होती न दिखाई दी, तब उसने मुजफ़्फ़र को मनोहरपुर में ही ठहर जाने की आज्ञा लिख भेजी। इसके अनुसार उसे तीन मास तक वहाँ रुकना पड़ा। इसी बीच उसका सारा खजाना समाप्त हो गया, और रसद की कमी हो जाने के कारण उसकी सेना के बहुत से सिपाही उसे छोड़कर अपने-अपने घरों को लौट गए। उसकी यह दशा देख आँबेर-नरेश जयसिंहजी ने अपने सेनापति के द्वारा उसे आँबेर बुलवा लिया। परंतु अपनी

रतलाम का अधिकार फिर से राजा मानसिंहजी को दिलवा दिया। परंतु इस घटना के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

१. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १०८ और सैदुल मुताख़रीन, पृ० ४५२।

२. यह नगर जयपुर से ३५ मील उत्तर और अजमेर से १३० मील ईशान कोण में है।

३. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १०८-१०९।

भारवाड़ का इतिहास

असमर्थता का विचार कर मुजफ्फर को इतनी ग्लानि हुई कि वहीं से उसने अजमेर की सूबेदारी का फ़रमान और खिलअत बादशाह को लौटा दिया और स्वयं फ़कीर हो गया ।

इसके बाद सैयद नुसरतयारखाँ बाराह को अजितसिंहजी पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी गई । इसी बीच (भरतपुर-राज्य के संस्थापक) चूड़ामन जाट ने अपने पुत्र मोहकमसिंह को सेना देकर महाराज के पास अजमेर भेज दिया । अनन्तर जैसे ही महाराज को नुसरतयारखाँ के चढ़ाई करने के विचार की सूचना मिली, वैसे ही इन्होंने महाराजकुमार अभयसिंहजी को उत्तर की तरफ़ आगे बढ़ नारनौल को और दिल्ली तथा आगरे के आस-पास के प्रदेशों को लूटने की आज्ञा दी । इसके अनुसार वह बारह हज़ार शूतर-सवारों के साथ नारनौल जा पहुँचे । यद्यपि पहले तो वहाँ के फौजदार बयाजि-दखाँ मेवाती के प्रतिनिधि ने इनका यथा सामर्थ्य सामना किया, तथापि अन्त में राठोड़ों की तीव्र तलवार के सामने से उसे मेवात की तरफ़ भागना पड़ा । महाराजकुमार भी नारनौल को लूटने के बाद अलवर, तिजारा और शाहजहाँपुर को लूटते हुए दिल्ली से केवल नौ कोस के फ़ासले पर स्थित सराय अलीवर्दीखाँ तक जा पहुँचे ।

इससे दिल्ली के शाही दरबार में फिर गड़-बड़ मच गई । इस पर सब से पहले शम्सामुद्दौला ने महाराज से भयंकर बदला लेने की कसमें खाकर बादशाह से अजमेर पर चढ़ाई करने की आज्ञा प्राप्त की और इसीके अनुसार वह अपने डेरे (एक बार फिर) दिल्ली के बाहर खड़े करवा कर बड़े जोर-शोर से चढ़ाई की तैयारी करने लगा ।

१. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १०६-११० और सैहल मुताख़रीन, पृ० ४५४ । पिछले इतिहास में यह भी लिखा है कि महाराज अजितसिंहजी के दो राजकुमारों ने मुजफ्फ़र का पीछा कर ४-५ शाही गाँवों को लूट लिया । परंतु उसमें इस घटना के बाद शाही अमीरों को अजमेर पर चढ़ाई करने की आज्ञा का मिलना और उनका बाहने बनाकर इस कार्य को टालना लिखा है ।

अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ६-११ । उक्त काव्य में अभयसिंहजी की चढ़ाई का समाचार सुनकर मुज़ (द) फ़फ़र का मनोहरपुर से भागना और इसके बाद अभयसिंहजी का साँभर की तरफ़ जाना लिखा है ।

२. इनमें के प्रत्येक ज़ैट पर बंदूकों या तीर कमानों से सजे दो-दो सवार चढ़े हुए थे ।

३. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११० । अजितोदय में महाराजकुमार अभयसिंहजी का नारनौल को लूटकर साँभर को लौटना और इसके बाद जाकर शाहजहाँपुर को लूटना लिखा है । इसके बाद यह फिर साँभर लौट आए थे । (देखो सर्ग ३०, श्लो० १२-२१) ।

४. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११० ।

महाराजा अजितसिंहजी

परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी उसकी आगे बढ़ने की हिम्मत न हुई। यह देख, बादशाह उससे नाराज हो गया। अतः शम्सामुद्दौला को अपना दरबार में जाना ही बन्द करना पड़ा। इसके बाद बादशाह ने हैदरकुलीख़ाँ को इस कार्य के लिये तैयार किया। यद्यपि पहले तो उसने बादशाह के सामने अनेक प्रबंध-संबंधी प्रार्थनाएँ उपस्थित कर इस कार्य में बड़ी तत्परता दिखाई, तथापि अन्त में जब सारा शाही तोपखाना ही उसके अधिकार में दे दिया गया, और उसके डेरे भी नगर से बाहर खड़े करवा दिए गए, तब उसने आगे बढ़ने से एकाएक इनकार कर दिया। इसके बाद कमरुद्दीनख़ाँ को भी इसी प्रकार अपनी असमर्थता प्रकट करनी पड़ी। अन्त में बहुत कुछ कहा सुनी के बाद नुसरतयारख़ाँ ने किसी तरह महाराज के विरुद्ध चढ़ाई की। परन्तु इसी बीच महाराज स्वयं ही अजमेर से जोधपुर लौट आए। इसलिये यह भगड़ा यहीं शान्त हो गया।

इस घटना के करीब एक मास बाद (ई० सन् १७२२ की २१ मार्च=वि० सं० १७७६ की चैत्र सुदी १५ को) महाराज ने बादशाह के पास अपने प्रतिनिधि भेजकर कहलाया कि तुरंत पर बैठते समय आपने गुजरात और अजमेर के उपद्रव को दबाने के लिये उक्त दोनों सूबे मुझे सौंपे थे। इसके बाद जब सारे उपद्रव शांत हो चुके, तब गुजरात का सूबा हैदरकुली को दे दिया गया। फिर भी मैंने इस पर कुछ आपत्ति नहीं की। परन्तु अब आप अजमेर का सूबा भी मुझसे लेना चाहते हैं। यह कहाँ तक न्याय्य है। इसे आप स्वयं ही सोच देखें।

‘अजितोदय’ में लिखा है कि इसी अवसर पर अंबिर-नरेश जयसिंहजी ने महाराजकुमार के बढ़ते हुए प्रताप को देख अपने प्रधान पुरुषों को महाराज के पास भेजा, और उनके द्वारा बहुत कुछ कह सुन और क्षमा मांगकर महाराज से मैत्री कर ली। इसी समय महाराज ने अंबिर-नरेश की तरफ से आए हुए खंगारोत श्यामसिंह के बड़े पुत्र को नराणा गांव जागीर में दिया था। (देखो सर्ग ३० श्लो० २२-२६)।

१. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११०-१११। उक्त इतिहास में यह भी लिखा है कि निज़ा-मुल्मुल्क के दक्षिण से दिल्ली के निकट पहुँचने की सूचना मिलने से ही महाराज अजमेर से जोधपुर लौट गए थे।

२. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १११। उक्त इतिहास में यह भी लिखा है कि अजितसिंहजी ने बादशाह को यह भी सूचित किया था कि यदि मुज़फ़्फ़रअली यहाँ आ जाता, तो मैं उसे अजमेर भी सौंप देता। परन्तु वह तो यहाँ तक पहुँचा ही नहीं। इसके अलावा नारनौल पर के हमले का कारण केवल मेवातियों के साथ का व्यक्तिगत मनोमालिन्य ही था। शत्रु लोग इससे बादशाह से विरोध करने का तात्पर्य बतलाकर अन्याय करते हैं।

मारवाड़ का इतिहास

इस पर बादशाह ने भी सहज ही झगड़ा मिटता देख उत्तर में महाराज के नाम एक फ़रमान लिख भेजा। उसमें इनके पहले के किए कार्यों की प्रशंसा के बाद दोनों सूबों के ले लेने के विषय में इधर-उधर के बहाने बनाए गए थे। अन्त में यह भी लिखा था कि अजमेर का सूबा तो तुम्हारे ही अधीन रखा जाता है, कुछ दिनों में अहमदाबाद का सूबा भी तुम्हें लौटा दिया जायगा। इस फ़रमान के साथ ही बादशाह की तरफ़ से महाराज के लिये खासा खिलअत, जड़ाऊ सरपेच, एक हाथी और एक घोड़ा उपहार में भेजा गया।

वि० सं० १७७६ के मँगसिर (ई० सन् १७२२ के दिसम्बर) में बादशाह ने नाहरख़ाँ को अजमेर की दीवानी और सांभर की फ़ौजदारी तथा उसके भाई रुहल्लाख़ाँ को गढ़ बीटली की क़िलेदारी दी। इसपर वे दोनों महाराज के वकील खेमसी भंडारी के साथ दिल्ली से अजमेर चले आएँ। इस घटना को अभी तक एक महीना भी न होने पाया था कि एक रोज़ नाहरख़ाँ ने महाराज के सामने कुछ अनुचित शब्द कह दिए। इससे क्रुद्ध होकर इन्होंने उसे और उसके भाई को मरवा डाला, और उसका शिविर लूट लिया। उसके साथ के यवनों में से कुछ तो हमले में मारे गए और कुछ बचकर निकल भागे।

१. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० १११-११२। ग्रांटडफ़ की 'हिस्ट्री ऑफ़ मरहटाज़' में लिखा है कि इसी समय बादशाह ने ख़ाँ दौराँ के कहने से आगरे के सूबे का प्रबन्ध भी महाराज को सौंप दिया था। (देखो भा० १, पृ० ३५१)।
२. वि० सं० १७७६ की मँगसिर बदी १ के महाराज के, दयालदास के नाम, सांभर से लिखे, पत्र से प्रकट होता है कि गेसूख़ाँ ने हिडौन से जयपुर-नरेश जयसिंहजी का थाना उठाकर वहाँ पर अधिकार कर लिया था। इस पर महाराज ने अपनी सेना को अंबिरवालों की फ़ौज के साथ भेजकर कार्तिक बदी ५ को वहाँ पर फिर जयसिंहजी का अधिकार करवा दिया। गेसूख़ाँ मय फ़ौज के मारा गया।
३. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११२। नाहरख़ाँ और खुनाथ भंडारी ये दोनों ही महाराज का पत्र लेकर संधि के लिये पहले बादशाह के पास गए थे।
४. अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ३१-३३।
५. लेटर मुग़ल्स, में नाहरख़ाँ के मुख से अनुचित शब्दों के निकलने का उल्लेख नहीं है। (देखो भा० २, पृ० ११२) वि० सं० १७८० की पौष बदी ६ के, मेड़ते से लिखे, महाराज के दयालदास के नाम के पत्र में लिखा है कि नाहरख़ाँ ७८ दिन में मारवाड़ में पहुँचेगा। परंतु इस पत्र के पिछले दो अंकों में कुछ गड़बड़ मालूम होती है।

महाराजा अजितसिंहजी

इसकी सूचना पाते ही बादशाह ने शरफुद्दौला इरादतमंदखाँ को ७,००० ज्ञात और ६,००० सवारों का मनसब तथा २,००,००० रुपये नक़द देकर महाराज पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। साथ ही ५०,००० शाही सवारों और अनेक अमीरों को भी उसके साथ कर दिया। इनके अलावा उसने आँबेर-नरेश जयसिंहजी, मुहम्मदखाँ बंगश और राजा गिरधर बहादुर आदि अमीरों को भी उसके साथ जाने को लिख दिया। इसके बाद ही वि० सं० १७८० की ज्येष्ठ सुदी १३ (ई० सन् १७२३ की ५ जून) को नागोर का परगना राव इन्द्रसिंह को दे दिया गया। परन्तु उस समय उसके शाही सेना के साथ दक्षिण में होने के कारण समयानुसार नज़र आदि का कार्य उसके पौत्र मानसिंह ने पूरा किया।

इसी समय हैदरकुलीखाँ भी अहमदाबाद से लौटकर रिवाड़ी आ पहुँचा। इसकी सूचना पाते ही बादशाह ने उसे अजमेर की सूबेदारी और साँभर की फौजदारी देकर उधर जाने की आज्ञा दी। अतः वह भी वहीं से लौटकर नारनौल में इरादतखाँ के साथ हो लिया।

इस प्रकार शाही दल को आता देख महाराज ने गढ़ बीटली (के क़िले) की रक्षा का भार तो ऊदावत वीर अमरसिंह को सौंपा और स्वयं साँभर होते हुए जोधपुर चले आएँ।

१. कुछ दिन बाद जयपुर-नरेश जयसिंहजी ने आकर शाही सेना की सहायता से नागोर पर इन्द्रसिंह का अधिकार करवा दिया। इस पर राज्य की तरफ़ से महाराजकुमार आनन्दसिंह उसके मुकाबले को भेजे गए। परन्तु इन्होंने डीढ़वाना पहुँच स्वयं ही स्वतंत्रता का मन्डा खड़ाकर दिया। अन्त में बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर यह तो शांत हो गए, पर इस गड़बड़ के कारण नागोर इन्द्रसिंह के अधिकार में ही रह गया।

२. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११३ और अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ३३-४० और ४२-४४।

३. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११३ और अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ४१।

४. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० ११३ और पृ० ११४ का फुटनोट *।

‘अजितोदय’ में महाराज का शाही सेना से युद्ध करने के लिये त्रिवेणी से आगे पहुँचना, जयसिंहजी का बीच में पड़, इन्हें युद्ध से रोकना और इनका वापस अजमेर लौट आना लिखा है। (देखो सर्ग ३०, श्लो० ४६-५२) पर यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १७८० के आषाढ़ (ई० सं० १७२३ के जून) में शाही सेना के अजमेर पहुँचने पर ऊदावत वीर अमरसिंह ने क़िले का आश्रय लेकर उसका सामना किया। कुछ दिनों तक तो बराबर युद्ध होता रहा, परन्तु इसके बाद आँबेर-नरेश जयसिंहजी ने बीच में पड़ उक्त क़िला शाही सेना को दिलवा दिया, और बादशाह को संधि का विश्वास कराने के लिये महाराजकुमार अभयसिंहजी को दिल्ली भिजवा दिया। बादशाह ने भी महाराजकुमार के वहाँ (दिल्ली) पहुँचने पर उनकी बड़ी खातिर की। इसके बाद महाराज स्वयं, जो इन दिनों मेड़ते के मुक़ाम पर थे, जोधपुर लौट आएँ ?

१. 'राजरूपक' में सावन में फ़ौज का आना और ४ मास तक युद्ध होना लिखा है। (देखो पृ० २३८)।

वि० सं० १७७६ (चैत्रादि १७८०) की वैशाख सुदी १५ के बुँदी के, रावराजा बुधसिंहजी के लिखे, महाराज के नाम के, पत्र से प्रकट होता है कि उस समय उन्होंने भी कुछ सेना महाराज की सहायता के लिये भेजने का प्रबंध किया था।

२. अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ५३-६५। परन्तु 'राजरूपक' में जयसिंहजी के बीच में पड़ने का उल्लेख नहीं है। (देखो पृ० २३६)।

कर्नल टॉड के राजस्थान के इतिहास से भी इसकी पुष्टि होती है। उसमें लिखा है कि ४ महीने के युद्ध के बाद अजमेर शाही अमीरों के हवाले किया गया। परन्तु उसमें क़िले का नाम तारागढ़ लिखा है। (देखो भा० २, पृ० १०२८)।

'लेटर मुग़ल्स' में 'मीराते वारिदात' के आधार पर लिखा है कि यद्यपि इस क़िले में केवल ४०० योद्धा थे, तथापि आपस की बातचीत के बाद ही यह क़िला शाही लश्कर को सौंपा गया था, और क़िलेवाले अपने-अपने शस्त्र लिए निशान उड़ाते और नक्कारा बजाते हुए क़िले से बाहर निकले थे। (देखो भा० २ पृ० ११४ का फुटनोट*)

ख्यातों में लिखा है कि इस अवसर पर महाराजा अजितसिंहजी को १ अजमेर, २ टोडा, ३ भियाय, ४ केकड़ी, ५ परबतसर, ६ मारोठ, ७ हरसोर, ८ भैंसेर, ९ तोसीया, १० वाहाल, ११ बवाल, १२ साँभर, १३ नागौर और १४ डीडवाने के परगनों का अधिकार छोड़ देना पड़ा था।

३. 'राजरूपक' में मँगसिर सुदी ७ को इनका दिल्ली को रवाना होना लिखा है। (देखो पृ० २४५)।

४. अजितोदय, सर्ग ३०, श्लो० ६६-८५। उसमें यह भी लिखा है कि जिस समय यवन-सेना रीयाँ में थी, उस समय महाराज ने जयसिंहजी के आग्रह से संधिकर महाराजकुमार को बादशाह के पास जाने की आज्ञा दी थी।

५. अजितोदय, सर्ग ३१, श्लो० १।

महाराजा अजितसिंहजी

यद्यपि बादशाह ने महाराज से अजमेर ले लिया था, तथापि उसे हर समय इनका भय बना रहता था और वह इनको मारकर निश्चित होने का मौका ढूँढ़ता था। इसी-लिये उसने महाराजकुमार अभयसिंहजी से घनिष्ठता बढ़ानी प्रारंभ की, और राजा जय-सिंहजी के द्वारा भंडारी रघुनाथ को अपनी तरफ़ मिला लिया। इसके बाद इन्हीं दोनों के द्वारा वह अभयसिंहजी को उनके पिता के विरुद्ध भड़काने का षड्यंत्र रचने लगा। परन्तु इस पर भी जब महाराजकुमार ने उसके भय और प्रलोभनों पर ध्यान नहीं दिया, तब एक रोज़ उसने राजा जयसिंहजी और भंडारी रघुनाथ के द्वारा एक जाली पत्र लिख-वाकर किसी तरह उस पर उन (महाराजकुमार) के दस्तखत करवा लिए। इसके बाद वही पत्र गुप्त रूप से अभयसिंहजी के छोटे भ्राता बख़्तसिंहजी के पास भेज दिया गया। इसमें राज्य की रक्षा के लिये वृद्ध महाराज को मार डालने का आग्रह किया गया था। जैसे ही यह पत्र उनको मिला, वैसे ही एकबार तो वह चकित और किंकर्तव्य-विमूढ़ से हो गए। परन्तु अन्त में उन्होंने देश और भ्राता पर आनेवाले भावी संकट का विचार कर भवितव्यता के आगे सिर झुकाना ही स्थिर किया। इसी के अनुसार वि० सं० १७८१ की आषाढ़ सुदी १३ (ई० सन् १७२४ की २३ जून) को, रात्रि के पिछले पहर, निद्रित अवस्था में ही, महाराजा अजित इस लोक से विदा हो गए।

महाराज के प्रताप से मुसलमान लोग जितना भय खाते थे, हिन्दू उतना ही निर्भय रहते थे। इन्होंने बालकपन से ही संसार के अनेक परिवर्तन देखे थे। एक समय वह था कि जब यह अपनी माता के गर्भ में ही थे कि इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। इसके बाद इनके जन्म लेते ही औरङ्गजेब जैसा प्रबल बादशाह इनका शत्रु बन बैठा, और उसकी शत्रुता के कारण इनकी वीर-माता को भी प्राणों

१. मन्नासिखल उमरा, भा० ३ पृ० ७५८। (इसी पृष्ठ की टिप्पणी में 'तारीखे मुज़फ़्फ़री' का हवाला देकर लिखा है कि कुछ लोगों का कहना है कि महाराजा अजितसिंह बादशाह की कुछ भी परवा नहीं करते थे। इसीसे बादशाह ने और उसके बज़ीर ऐतमादुद्दौला कमरुद्दीनख़ाँ ने उसके बेटे बख़्तसिंह को, बाप का उत्तराधिकारी बना देने का प्रलोभन देकर, उसको मारने के लिये तैयार कर लिया। इंडियन ऐंटिक्वेरी, भा० ५८, पृ० ४७-५१।

महाराज के साथ कुल मिलाकर ६२ या ६६ प्राणियों ने अपनी खुशी से चिता में प्रवेशकर हृदय-ज्वाला को शांत किया था। इनमें ६ रानियाँ थीं। (देखो अजितोदय, सर्ग ३१, श्लो० ३२-३३ और राजरूपक, पृ० २४७-२५४)।

मारवाड़ का इतिहास

से हाथ धोना पड़ा। इसके बाद ८ वर्ष की आयु तक यह अज्ञातवास में रहे, और इनके पैतृक-राज्य पर यवनों का अधिकार रहा। परंतु इनके स्वामि-भक्त सरदार उस समय भी प्राणों का मोह छोड़ बिना नायक के ही शत्रुओं से लोहा लेते रहे। इसके बाद २० वर्षों तक इनके सरदारों और इन्होंने समय-समय पर यवनों के दांत खड़े कर अन्त में अपने गए हुए राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया। परंतु आश्चर्य तो उस समय होता है, जब एक मातृ-पितृ-हीन नवजात बालक कालांतर में ऐसा प्रतापी निकलता है कि जिसकी सहायता से फ़र्रुख़सियर सा बादशाह दिल्ली के शाही तख़्त से हटाया जाता है और उसके रिक्त स्थान पर क्रमशः तीन नए बादशाह बिठाए जाते हैं।

यहाँ पर यह प्रकट करना कुछ अनुचित न होगा कि उस संकट के समय मारवाड़ के अधिकतर सरदारों ने अपने स्वामि-धर्म का स्मरण कर बड़ी निर्भीकता से महाराज का साथ दिया था। यह उन्हीं की वीरता का फल था कि औरङ्गज़ेब जैसा प्रबल बादशाह भी मारवाड़ राज्य को नहीं पचा सका, और उसके उत्तराधिकारी को उसे उगलना-पड़ा।

ख्यातों के अनुसार महाराज के १२ पुत्र थे १ अभयसिंहजी, २ बख़्तसिंहजी, ३ अखैसिंह, ४ बुधसिंह, ५ प्रतापसिंह, ६ रत्नसिंह, ७ सोनग (सोभागसिंह) ८ रूप सिंह, ९ सुलतानसिंह, १० आनन्दसिंह, ११ किशोरसिंह, १२ रायसिंह। इनमें से बड़े

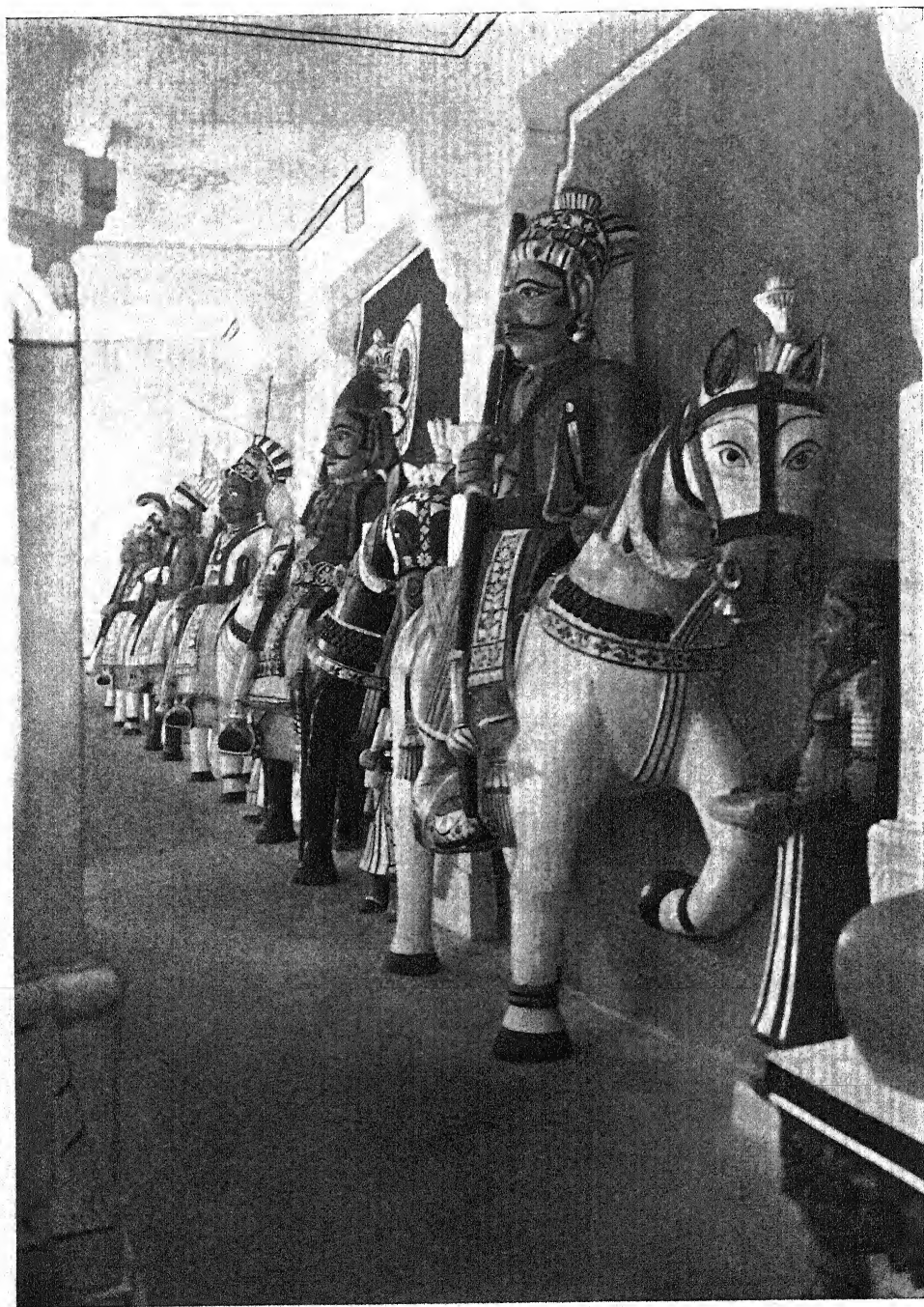
१. स्फीउद्दरज़ात ने १५ जमादिउल आखिर हि० सं० ११३१ को (अपने राज्य के पहले वर्ष में) महाराजा अजितसिंहजी के पुत्र प्रतापसिंह को १,००० जात और ५०० सवारों के मनसब की जागीर दी थी। यह बात अमीरउल उमरा के परवाने से जाहिर होती है। उसी में महाराज के पुत्र चतुरसिंह की, जिसको पहले से यह मनसब था, मृत्यु का भी उल्लेख है।

२. इनका जन्म वि० सं० १७६५ की आषाढ़ सुदी ५ (ई० सन् १७०८ की ११ जून) को हुआ था (देखो अजितोदय, सर्ग १७, श्लो० २०-२१)।

३. इनका जन्म वि० सं० १७६६ की आश्विन वदी ११ (ई० सन् १७०९ की १८ सितंबर) को हुआ था।

४. इनका जन्म वि० सं० १७६७ की श्रावण वदी ३० (ई० सन् १७१० की १५ जुलाई) को हुआ था। (देखो अजितोदय, सर्ग १९, श्लो० ६३-६४)।

वि० सं० १७६० की आषाढ़ वदी १ के अजितसिंहजी के ताम्रपत्र में इनके बड़े महाराजकुमार का नाम उद्योतसिंहजी लिखा है। उनका जन्म वि० सं० १७५९ की आश्विन वदी ३० को हुआ था। परंतु अनुमान होता है कि उनकी मृत्यु बाल्यावस्था में ही हो जाने से उस समय के ग्रन्थों में अभयसिंहजी ही ज्येष्ठ राजकुमार मान लिए गए थे।



वीरों का दालान, मंडोर

यह महाराजा अजितसिंहजी ने वि० सं० १७७१ (ई० सं० १७१४) में बनवाया था।

महाराजा अजितसिंहजी

पुत्र अभयसिंहजी जोधपुर-राज्य के स्वामी हुए, द्वितीय पुत्र बख्तसिंहजी को नागोर का प्रान्त मिला और तृतीय पुत्र आनन्दसिंहजी ने फिर से ईडर का राज्य प्राप्त किया।

महाराज ने कई गाँव दान दिए थे और कई नवीन स्थान

१. ख्यातों से ज्ञात होता है कि स्वर्गवासी महाराजा अजितसिंहजी की दाहक्रिया हो जाने पर उनके पुत्र आनन्दसिंहजी अपने छोटे भ्राता किशोरसिंह और रायसिंह को लेकर रायपुर की तरफ चले गए थे। परंतु 'अजितोदय' में इनका घाणेराम की तरफ जाना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि जोधा मोहकमसिंह इनका अभिभावक होकर इनके साथ गया था। (देखो सर्ग ३२, श्लो० २-३) इसके बाद वि० सं० १७८५ (ई० सन् १७२८) में आनन्दसिंहजी और रायसिंहजी ने जाकर ईडर पर अधिकार कर लिया। संभवतः उस समय उक्त प्रान्त इनके बड़े भ्राता अभयसिंहजी के मनसब की जागीर में रहा होगा।

किशोरसिंह अपने ननिहाल जयसलमेर चला गया था। 'अजितोदय' में लिखा है कि आंबेर नरेश जयसिंहजी ने इसे दिल्ली बुलवाकर बादशाह से टोड़े का अधिकार दिलवा दिया था (देखो सर्ग ३२, श्लो० ५)।

२. १ बासणी-दधवाडियां (जैतारण परगने का), २ बेराई (शेरगढ़ परगने का), ३ घोडारण्य ४ सूरपालिया (नागोर परगने के), ५ गोदेलावास (सोजत परगने का), ६ गूंदीसर ७ राजपुरा ८ ईटावा-सूरपुरा (मेड़ता परगने के), ९ मंडली, १० डोली नेरवा (जोधपुर परगने के), ११ कोडिया पट्टी जाखेड़ों की १२ गोरेडी (डीडवाने परगने के), १३ ठाढरवा १४ नोखडा १५ अंटिया समदड़ाऊ (फलोदी परगने के), १६ मुडली (बीलाड़ा परगने का) चारणों को; १७ बाघावसिया (बीलाड़ा परगने का), १८ साजी (पाली परगने का), १९ पुरियों का खेड़ा (जसवंतपुरा परगने का), २० वेदावड़ी खुर्द (मेड़ता परगने का), २१ हाडेचा (सांचोर परगने का) स्वामियों, नाथों, भारतियों, पुरियों और गुसाँइयों को; २२ पुरोहितों का बास (सिवाना परगने का), २३ मैसर-कोटवाली २४ तिवरी २५ मांडियाई-खुर्द २६ मैसर-खुर्द २७ खैड़ापा २८ दंदोरा २९ मोडी-बड़ी ३० बासणी मनया (जोधपुर परगने के), ३१ खीचंद (फलोदी परगने का), ३२ टीबणिया (पचपदरा परगने का), ३३ मादड़ी (पाली परगने का), ३४ पंडित का बास (शेरगढ़ परगने का) पुरोहितों को; ३५ पालड़ी (नागोर परगने का), ३६ गैलावस (जोधपुर परगने का) ब्राह्मणों को; ३७ मूंदियाऊ (नागोर परगने का) (द्वारका के) श्री रणछोड़रायजी के मन्दिर को; ३८ मामावास (सोजत परगने का) महादेव के मंदिर को; ३९ ऊदलियावास (बीलाड़ा परगने का) गंगा-गुरु को; ४० अंबाली (नागोर परगने का) समनशाह की दरगाह को; ४१ दागडा (मेड़ता परगने का) भाटों को; ४२ टीबडी (जैतारण परगने का) रूपनारायणजी ठाकुरजी के मन्दिर को और ४३ महेशपुरा (जालोर परगने का) रावलों को।

३. महाराज अजितसिंहजी के बनवाए हुए स्थान:-

जोधपुर के किले में-फतैपौल और गोपालपौल के बीच का कोट, नई फतैपौल (वि० सं० १७७४ में), दौलतखाना, फतैहमहल, भोजनसाल, बीच का महल, रुवाबगाह के महल, रंगसाल और

मारवाड़ का इतिहास

आदि भी बनवाए थे ।

कर्नल टॉड ने अपने 'राजस्थान के इतिहास' में लिखा है कि अजितसिंहजी ने अपने सिक्के अलग ढलवाए थे, और इसी तरह अपना नाप (गज), अपना तोल, अपनी अदालतें और अपने ओहदे (पद) भी अलग कायम किए थे । परंतु अब तक उस समय का सिक्का देखने में नहीं आया है ।

२४ छोटे ज़नाने महल । (इन्होंने चामुण्डा के मन्दिर की मरम्मत भी करवाई थी ।) नगर में घनश्यामजी का मन्दिर (पंच-मंदिरो वाला), मूल नायकजी का मन्दिर, मंडोर में—एक थंभे के आकार का महल, वहाँ के ज़नाने मकानात (वि० सं० १७७५ में), जसवंतसिंहजी का देवल, गणेशजी की मूर्ति-सहित भैरवोंवाला दालान और पहाड़ में काटकर बनाई हुई वीरों की मूर्तियोंवाला दालान । (यह दालान वि० सं० १७७१ में बनवाया था) ।

१. किले में की चाँदी की पूरे क़द की मुरलीमनहोर, शिवपार्वती, चतुर्भुज विष्णु और हिंगलाज (देवी) की मूर्तियाँ भी इन्होंने ही वि० सं० १७७६ में बनवाई थीं ।

२. ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान (क्रुक् संपादित), भा० २, पृ० १०२६ ।

२७. महाराजा अभयसिंहजी

यह महाराजा अजितसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १७५६ की मँगसिर वदी १४ (ई० सन् १७०२ की ७ नवंबर) को जालोर में हुआ था। जिन समय इनके पिता का स्वर्गवास हुआ, उस समय यह दिल्ली में थे। इसलिये पिता की और्ध्वदैहिक क्रिया से निपटने पर वि० सं० १७८१ की सावन सुदी ८ (ई० सन् १७२४ की १७ जुलाई) को वहीं पर इनका राज्याभिषेक हुआ। उस अवसर पर बादशाह भी इनके स्थान पर आया और उसने नागोर प्रांत और गिलखत आदि देकर इनका सत्कार किया।

१. परन्तु वि० सं० १७६० की जालोर की सनद के अनुसार यदि उद्योतसिंहजी को, जिनकी मृत्यु बचपन में ही हो गई थी, अजितसिंहजी का ज्येष्ठ पुत्र माना जाय तो अभयसिंहजी उनके द्वितीय राजकुमार होंगे।

२. पहले लिखे अनुसार इन्होंने पिता की आज्ञा से, वि० सं० १७७८ के कार्तिक (ई० सन् १७२१ के अक्टोबर) में, मुज़फ्फरअलीख़ाँ के विरुद्ध चढ़ाई की थी। इसके बाद जब उसके हतोत्साह हो जाने पर बादशाह ने नुसरतयारख़ाँ को अजमेर पर अधिकार करने के लिये नियत किया, तब इन्होंने, उसके वहाँ पहुँचने के पूर्व ही, १२,००० शूतर-सवारों के साथ जाकर नारनौल को लूट लिया। यह देख वहाँ के फौजदार के आदमी मैदान छोड़ कर भाग गए।

इसके बाद इन्होंने अलवर, तिजारा और शाहजहाँपुर को लूटकर दिल्ली से ८ कोस दक्षिण में स्थित सराय अलीवर्दीख़ाँ तक चढ़ाई की (देखो लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० १०६-११०)।

इन्होंने मुसलमानों से सौंभर आदि भी छीने थे।

३. अभयोदय, सर्ग २, श्लो० ४।

४. ख्यातों में लिखा है कि उस अवसर पर बादशाह ने इन्हें, वे १४ परगने, जो वि० सं० १७८० में इनके पिता के समय जूट करलिय गए थे, वापस दे दिए।

मारवाड़ का इतिहास

‘अभयोदय’ से ज्ञात होता है कि इसी समय बादशाह ने इन्हें ‘राजराजेश्वर’ की उपाधि भी दी थी। इसके बाद, वि० सं० १७८१ के भादों (ई० सन् १७२४ के अगस्त) में, इन्होंने मथुरा जाकर आँवेर-नरेश जयसिंहजी की कन्या से विवाह किया, और फिर यह वृंदावन-यात्रा कर दिल्ली लौट आएँ।

इसके बाद वि० सं० १७८२ (ई० सन् १७२५) में यह सरबुलंदख़ाँ (मुबारिजुलमुल्क) के साथ हामिदख़ाँ और दक्षिणियों के उपद्रवों को दबाने के लिये गुजरात की तरफ़ गएँ।

वहाँ से लौटने पर जिस समय महाराज दिल्ली में थे, उस समय इन्हें सूचना मिली कि (इनके छोटे भाई) आनंदसिंहजी और रायसिंहजी, जैतावत, कूपावत,

१. देखो सर्ग ६, श्लो० ११-१२।

२. ख्यातों में लिखा है कि जोधपुर के सरदारों का विश्वास था कि राजा जयसिंहजी की सलाह से ही महाराज अजितसिंहजी मारे गए थे। इसलिये उन्होंने, इस विवाह को टालने के लिये महाराज से पहले जोधपुर चलने का आग्रह किया। परन्तु जब महाराज ने इस बात को नहीं माना, तब बहुत-से सरदार नाराज़ होकर अपने-अपने घरों को चल दिए और बहुत से महाराज के छोटे भ्राता आनन्दसिंहजी और रायसिंहजी के दल में जा मिले। महाराज के, वि० सं० १७८१ की भादों सुदी १० के, दिल्ली से लिखे, दुर्गादास के पुत्र अभयकरण के नाम के पत्र से भी सरदारों के अपने-अपने घरों को चले जाने की पुष्टि होती है।

सरदार लोग भंडारी रघुनाथ को भी महाराज अजितसिंहजी के मरवाने में सम्मिलित समझते थे। परन्तु फिर भी उस समय तक अभयसिंहजी का सारा कार-बार भंडारियों के ही हाथ में होने से वे लोग नाराज़ थे और महाराज को उनके कैद करने के लिये बार-बार दबाते थे। अंत में लाचार होकर महाराज को उन्हें कैद करने का हुक्म देना पड़ा। इस अवसर पर कई भंडारी मारे गए। इसके बाद महाराज ने मथुरा के मुक़ाम पर स्वयं भंडारी रघुनाथ को भी कैद कर लिया और उसका काम पंचोली रामकिशन को सौंपा। परन्तु इसके बाद वि० सं० १७८२ के ज्येष्ठ में जब महाराज ने उस (रघुनाथ) को और अन्य भंडारियों को कैद से निकाला, तब फिर सरदार नाराज़ होकर जालोर की तरफ़ चले गए। इस पर महाराज ने, उनको प्रसन्न करने के लिये, भंडारी रघुनाथ और खीबसी को दुबारा कैद कर दिया।

३. अभयोदय, सर्ग ६, श्लो० १७-४२।

४. बौद्धगज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३०६। परन्तु ‘राजरूपक’ में इसका उल्लेख नहीं है। वि० सं० १७८२ की कार्तिक सुदी ४ के, जयपुर-नरेश जयसिंहजी के, महाराज के नाम लिखे, पत्र से भी इसकी पुष्टि होती है।



२७. महाराजा अभयसिंहजी

वि० सं० १७८१-१८०६ (ई० सं० १७२४-१७४९)

महाराजा अभयसिंहजी

ऊदावत आदि मारवाड़ के कुछ सरदारों को साथ लेकर देश में उपद्रव मचा रहे हैं। उन्होंने गोडवाड़ में लूट-मार करने के बाद सोजत और जैतारण पर अधिकार कर लिया है और साथ ही मेड़ते पहुँच उसे भी लूट लिया है। जब यह सूचना महाराज को दिल्ली में मिली, तब यह वहाँ से लौट आएँ और मेड़ते पहुँच इन्होंने वहाँ की रक्षा का भार मेड़तिया (माधवसिंह के वंशज) शेरसिंह को सौंप दिया। इसके बाद चिर-प्रचलित प्रथा के अनुसार जोधपुर में इनका राजतिलकोत्सव मनाया गया। इन कामों से निपटकर चैत्र में इन्होंने नागोर पर चढ़ाई की। उस समय इनके छोटे भ्राता बख्तसिंहजी भी इनके साथ थे। जैसे ही इंदरसिंह को इनके मेड़ते और रैण होते हुए खजवाने पहुँचने की सूचना मिली, वैसे ही उसने अपने पुत्र को सेना देकर इनका सामना करने के लिये मूँडवे की तरफ़ रवाना किया। परन्तु वहाँ पहुँचने पर जब उसे महाराज की विशाल-सेना का हाल मालूम हुआ, तब वह बिना लड़े ही भागकर नागोर लौट गया। इसके बाद महाराज ने आगे बढ़ नागोर को घेर लिया। यद्यपि कुछ दिन तक इंदरसिंह ने भी इनका सामना बड़ी वीरता से किया, तथापि अन्त में नगर पर महाराज का अधिकार हो जाने से वह क़िला खाली कर इनकी शरण में चला आया। महाराज ने उसके निर्वाह के लिये कुछ गांव निकालकर नागोर का अधिकार अपने छोटे भ्राता बख्तसिंहजी को देना निश्चित किया। इसीके साथ उन्हें 'राजाधिराज'

१. महाराज के, वि० सं० १७८१ (चैत्रादि १७८२) की आषाढ़ सुदी ११ के, दिल्ली से, दुर्गादास के पुत्र अभयकरण के नाम लिखे पत्र से भी इस बात की पुष्टि होती है।
२. वि० सं० १७८१ की मँगसिर बदी ७ के महाराज के दिल्ली से लिखे अभयकरण के नाम के पत्र से इसकी पुष्टि होती है।
३. वि० सं० १७८२ की फागुन बदी ६ के एक पट्टे से उस समय महाराज का निवास जालोर में होना प्रकट होता है। इस पट्टे में इनके महाराजकुमार का नाम ज़ोरावरसिंह लिखा है।
४. वि० सं० १७८६ की सावन बदी ८ के स्वयं राजाधिराज बख्तसिंहजी के, नागोर से लिखे, पंचोली बालकृष्ण के नाम के पत्र से प्रकट होता है कि नागोर का वास्तविक अधिकार उनको वि० सं० १७८६ की सावन बदी १ से मिला था।

परन्तु वि० सं० १७८४ (चैत्रादि संवत् १७८५) की आषाढ़ सुदी ६ के आनन्दसिंहजी के पत्र से इस बात का पहले से ही तय हो जाना सिद्ध होता है। उस पत्र में उन्होंने अपने हक़ पर भी उदारता से विचार करने की प्रार्थना की है।

मारवाड़ का इतिहास

की उपाधि देना भी तय हुआ। यह देख इन्द्रसिंह वहाँ से दिल्ली की तरफ चला गया।

जिस समय महाराज नागोर-विजय में लगे थे, उस समय इनके छोटे भ्राता आनन्दसिंहजी ने एक बार फिर मेड़ते पर चढ़ाई की। परन्तु वहाँ के रक्षक मेड़तिये शेरसिंह के आगे उन्हें सफलता नहीं हुई, और वे नगर के बाहर ही लूट-मारकर वापस लौट गए। इसकी सूचना पाते ही महाराज भी अपने भ्राता राजाधिराज बख्तसिंहजी को साथ लेकर मेड़ते आ पहुँचे।

ख्यातों से ज्ञात होता है कि आँबेर-नरेश जयसिंहजी के और उनके बहनोई बूँदी-नरेश रावराजा बुधसिंहजी के आपस में मनोमालिन्य हो गया था। इसी से जयसिंहजी ने उनसे बूँदी का अधिकार छीन कर हाडा दलेलसिंह को दे दिया। इस पर बुधसिंहजी को कुछ दिन जोधपुर में आकर रहना पड़ा।

इसी प्रकार जयसलमेर रावल अखैराजजी को भी कुछ दिन के लिये मारवाड़ में आकर अपनी रक्षा करनी पड़ी थी।

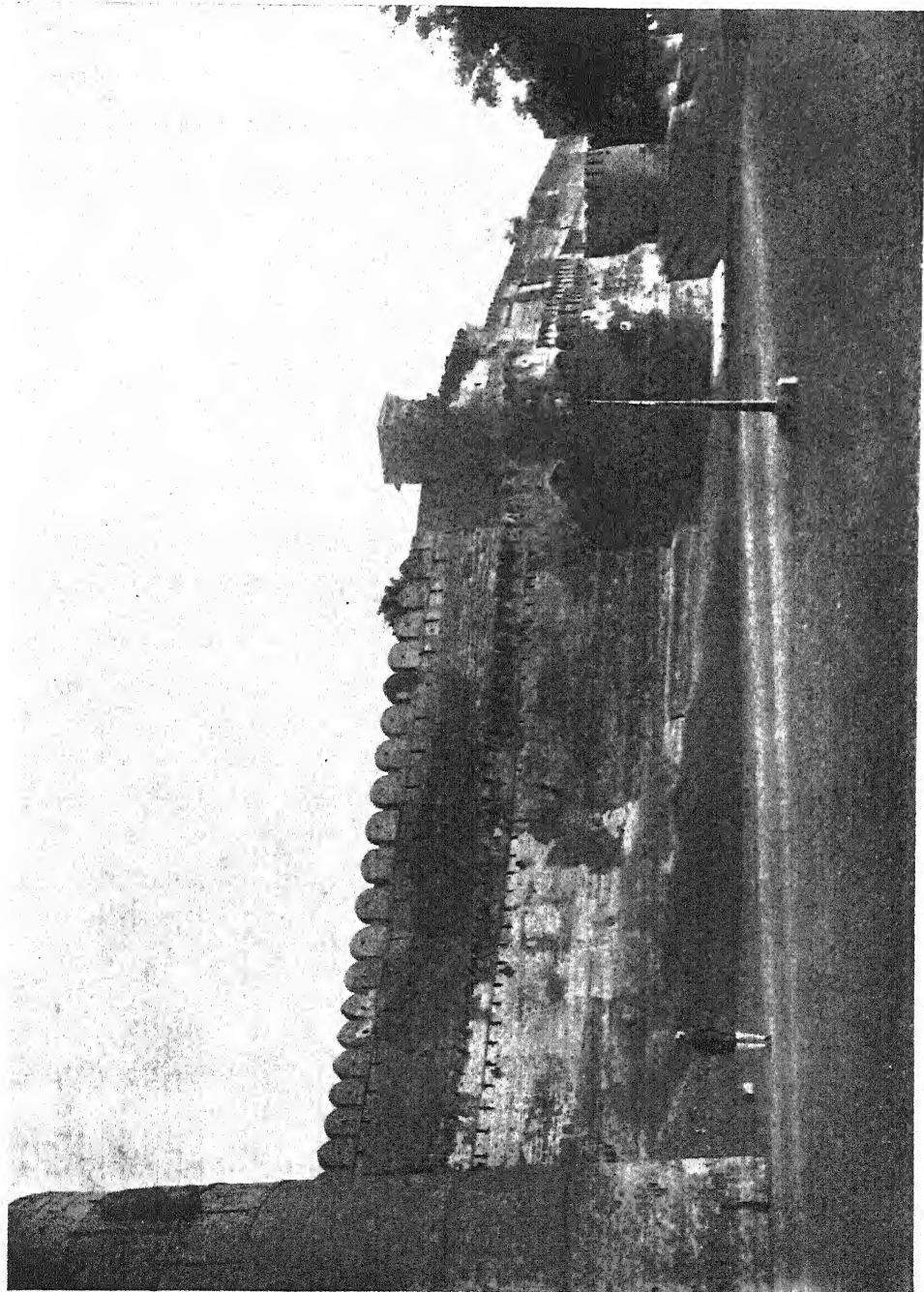
ख्यातों में यह भी लिखा है कि इसी वर्ष रायसिंहजी और आनन्दसिंहजी के कहने से कंतजी कदम और पीलाजी गायकवाड़ ने आकर जालोर में उपद्रव शुरू किया। परन्तु मंडारी खीवसी ने जाकर उनसे संधि करली। इससे वे वहाँ से वापस लौट गए।

१. अभयोदय, सर्ग ७, श्लो० ४-३३। परन्तु उक्त काव्य में और 'राजरूपक' में इन्द्रसिंह को निर्वाह के लिये गाँव देने का उल्लेख नहीं है (देखो राजरूपक, पृ० २७६)।

२. अभयोदय, सर्ग ७, श्लो० ३६-४०। उक्त काव्य में महाराज के साथ बख्तसिंहजी के मेड़ते आने का उल्लेख नहीं है। 'राजरूपक' में महाराजा अभयसिंहजी का मेड़ते लौटकर बख्तसिंहजी को नागोर देना लिखा है। साथ ही उसमें यह भी लिखा है कि इसके बाद महाराज जैतारण, जालोर और सिवाने होकर जोधपुर लौटे थे (देखो पृ० २७७-२७८)। कहीं-कहीं वि० सं० १७८३ के कार्तिक (ई० सन् १७२६ के अक्टोबर) में बख्तसिंहजी को नागोर का अधिकार देने का तय होना लिखा है।

वि० सं० १७८२ की आश्विन सुदी ५ के, महाराज के लिखे, पंचोली बालकृष्ण के नाम के, पत्र से आश्विन सुदी ४ को महाराज का मेड़ते से जैतारण की तरफ जाना प्रकट होता है।

३. ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १७८५ (ई० सन् १७२८) में बख्तसिंहजी ने नरावत राठोड़ों से पौकरन छीन लिया और उसे, भीनमाल की एवज में, चाँपावत महासिंह को दे दिया।



नागौर का क़िला

यह क़िला समतल भूमि पर बना है। इसके गिर्द की दुहेरी दीवार घिराव में करीब १ मील लंबी है। इनमें की बाहर की दीवार की ऊँचाई २५ फुट और भीतर की ५० फुट है। ये दीवारें नीचे ३० फुट और ऊपर १२ फुट के करीब मोटी हैं।

महाराजा अभयसिंहजी

वि० सं० १७८४ के श्रावण (ई० सन् १७२७ के जून-जुलाई) के क़रीब (बादशाह मुहम्मदशाह के बुलाने पर) महाराज लौटकर दिल्ली चले गए और इसी वर्ष के कार्तिक में इन्होंने गढमुक्तेश्वर की यात्रा की^१ ।

वि० सं० १७८५ (ई० सन् १७२८) में आनन्दसिंहजी और रायसिंहजी ने ईडर पर अधिकार कर लिया। यद्यपि उस समय उक्त प्रदेश महाराज के मनसब में था, तथापि इन्होंने मारवाड़ की तरफ़ का उपद्रव शांत होता देख इसमें कुछ भी आपत्ति नहीं की^२ ।

१. अभयोदय, सर्ग ७, श्लो० ४१-४२ ।

‘राजरूपक’ में लिखा है कि मार्ग में परवतसर पहुँचने पर महाराज को चेचक निकल आई थी । (देखो पृ० २७८) ।

२. अभयोदय, सर्ग ८, श्लो० २ ।

३. रासमाला, भा० २, पृ० १२५ की टिप्पणी १ ।

४. वि० सं० १७८२ की भादों सुदी ५ के, महाराज के नाम लिखे, पंचोली दौलतसिंह के, पत्र से इसी समय बादशाह की तरफ़ से महाराज को ईडर और थिराद का मिलना प्रकट होता है ।

५. इसी बीच महाराना संग्रामसिंहजी (द्वितीय) ने ईडर-प्रांत को ठेके के तौर पर लेने के लिये, जयपुर-नरेश सवाई राजा जयसिंहजी के द्वारा, महाराज से बात तय करना चाहा । महाराज ने भी रायसिंहजी से तंग आकर उनकी यह प्रार्थना स्वीकार करली । इससे वहाँ का बहुत-सा प्रांत मेवाड़ के राज्य में मिला लिया गया । वि० सं० १७८६ की श्रावण बदी ८ के, और वि० सं० १७८६ (चैत्रादि सं० १७८७) की ज्येष्ठ सुदी ७ के राजाधिराज बख़्तसिंहजी के पंचोली बालकृष्ण के नाम लिखे पत्रों से प्रकट होता है कि उस समय तक महाराज ने रायसिंहजी और आनन्दसिंहजी का ईडर पर का अधिकार स्वीकार नहीं किया था । इससे ज्ञात होता है कि यह अधिकार बाद में ही स्वीकार किया गया होगा । ‘गुजरात राजस्थान’ में लिखा है कि आनन्दसिंहजी ने वि० सं० १७८७ की फागुन सुदी ७ (ई० सन् १७३१ की ४ मार्च) को ईडर में प्रवेश किया था । नहीं कह सकते कि यह कहां तक ठीक है । वि० सं० १७६४ की भाष सुदी ७ के आनन्दसिंहजी और रायसिंहजी के लिखे पुष्करणी ब्राह्मण जग्गू (जगन्नाथ) के नाम के पत्र में लिखा है कि तूने ही हमको महाराज से कहकर ईडर का राज्य दिलवाया है । इसलिये तू अपने किसी वंशज को यहाँ भेज दे ।

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १७८७ के आषाढ़ (ई० सन् १७३० के जून) में गुजरात के सूबेदार सरबुलंदख़ाँ के कार्यों को देखकर बादशाह उससे नाराज़ हो गया। इससे उसने (अजमेर के साथ ही) गुजरात का सूबा महाराज अभयसिंहजी को दे दिया। इसी अवसर पर इन्हें खिलअत आदि के अलावा १८ लाख रुपये नक़द और मय गोला-बारूद के ५० छोटी-बड़ी तोपें भी दी गईं। इस पर यह अलवर होते हुए अजमेर पहुँचे और वहाँ पर अधिकार कर मेड़ते होते हुए जोधपुर चले आएँ। कुछ दिनों में जब २० हज़ार सवारों का रिसाला तैयार हो गया, तब यह यहाँ से चलकर जालोर पहुँचे। यहीं पर इनके छोटे भ्राता बख़्तसिंहजी आकर इनके साथ हो गए। इसके

१. इतिहास से ज्ञात होता है कि सरबुलंद ने गुजरात में होनेवाले मरहटों के उपद्रव को दबाने में असमर्थ होकर उन्हें वहाँ की आमदनी का चौथा भाग देने का वादा कर लिया था। साथ ही वह स्वयं भी बादशाह की परवाह न कर गुजरात में बड़ी लूट-मार करने लगा था। इसी से बादशाह उससे नाराज़ हो गया।

२. श्रीयुत सारडा का 'अजमेर', पृ० १६७।

३. ग्रांट डफ़ की 'हिस्ट्री ऑफ़ मरहटाज़' में इस घटना का समय ई० सन् १७३१ लिखा है। (देखो भा० १, पृ० ३७६)। परन्तु 'मन्नासिंघ उमरा' में दिए हि० सन् ११४० के हिसाब से ई० सन् १७२७ (वि० सं० १७८४) आता है। उसमें इसी के अगले साल इनका गुजरात जाना भी लिखा है (देखो भा० ३, पृ० ७५६)।

'राजरूपक' में इस घटना का समय वि० सं० १७८६ लिखा है। उससे यह भी ज्ञात होता है कि इसी के बाद यह गुजरात की चढ़ाई का प्रबन्ध करने के लिये आषाढ़ में दिल्ली से जोधपुर को रवाना हो गए (देखो पृ० २८३ और २८८) और यहाँ पर सारा प्रबन्ध कर लेने के बाद, वि० सं० १७८७ की चैत्र सुदी में, इन्होंने गुजरात की तरफ़ प्रयाण किया (देखो पृ० ३८७)।

४. महाराज के, शाही दरबार में रहनेवाले अपने वकील, भंडारी अमरसिंह के नाम लिखे, वि० सं० १७८७ की कार्तिक सुदी १२ के, पत्र में १५ लाख रुपये, ४० तोपें, २०० मन बारूद और १०० मन सीसे का दिया जाना लिखा है।

५. 'लेटर मुग़ल्स' में लिखा है कि महाराज ने दिल्ली से जोधपुर पहुँच मारवाड़ और नागोर से २० हज़ार कुशल राठोड़-सवार एकत्रित किए थे। इसके बाद यह मय अपने छोटे भाई बख़्तसिंहजी के अहमदाबाद की तरफ़ रवाना हुए। इनके पालनपुर के पास पहुँचने पर वहाँ का फौजदार करीमदादख़ाँ भी इनके साथ हो लिया (देखो भा० २, पृ० २०५)।

६. अभयोदय, सर्ग १०, श्लो० १-१६। 'लेटरमुग़ल्स' नामक इतिहास से ज्ञात होता है कि वि० सं० १७८७ के द्वितीय भादों (ई० सन् १७३० के सितम्बर) में महाराज का कैप जालोर में था। (देखो भा० २, पृ० २०३) और 'राजरूपक' से वि० सं० १७८७ के आषाढ़ में भी महाराज का निवास जालोर में होना प्रकट होता है (देखो पृ० ३१०)

महाराजा अभयसिंहजी

बाद महाराज अपनी इस वीर-वाहिनी को लेकर सिरोही की तरफ़ के कुछ जागीरदारों को दंड देते हुए पालनपुर जा पहुँचे। इस पर वहाँ के शासक ने सामने आकर इनकी अभ्यर्थना की। जैसे ही इसकी सूचना (मुबारिजुलमुल्क) सरबुलंद को मिली, वैसे ही उसने अहमदाबाद से आगे बढ़ मार्ग में ही इनके रोक लेने की तैयारी शुरू की। अपने गुप्तचरों के द्वारा यह हाल मालूम होने पर इन्होंने (महाराज) ने २०,००० रुपये की हुंडी और नायबी की आज्ञा लिखकर सरदार मुहम्मदख़ाँ के पास भेज दी, और साथ ही उसे यह भी कहला दिया कि संभव हो, तो वह चुपचाप अहमदाबाद पर अधिकार कर ले। इस पर वह गुजरातियों की सेना इकट्ठी कर मौक़ा ढूँढ़ने लगा। परन्तु सरबुलंद के पक्षवाले नगर के दरवाज़ों को ईंटों से बंदकर पूरी सतर्कता से नगर की रक्षा करने लगे थे। इससे वह सफल न हो सका।

इसके बाद जिस समय महाराज सिद्धपुर के निकट पहुँचे, उस समय आस-पास के कई मुसलमान अमीर भी सरबुलंद का पक्ष छोड़ कर इनके भंडे के नीचे चले आएँ।

इसी वर्ष के आश्विन (सितंबर) में महाराज ने अपना डेरा साबरमती-तट पर के मोजिर गाँव में कर वहाँ पर अपने मोरचे बनवाने शुरू किए। यहाँ से सरबुलंद

ख्यातों में लिखा है कि जिस समय महाराज सलावास में ठहरे हुए थे, उस समय भादराजन का ठाकुर नाराज होकर अपनी जागीर को लौट गया। यह देख महाराज के छोटे भ्राता बख़्तसिंहजी कुछ सैनिकों के साथ एकाएक वहाँ जा पहुँचे। इससे उसे लौट आकर महाराज की सेना में सम्मिलित होना पड़ा।

१. रेवाड़े का ठाकुर बहुधा जालोर की तरफ़ आकर उपद्रव किया करता था, इसी से उसे दंड दिया गया था।

२. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० २०३।

३. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० २०५ और बाँबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१०-३११।

४. वि० सं० १७८७ की द्वितीय भादौ सुदी ३ के महाराज के पत्र से उस समय महाराज का सिद्धपुर में होना प्रकट होता है।

५. लेटर मुग़ल्स, भा० २, पृ० २०५-२०६।

६. महाराज के अपने वकील अमरसिंह के नाम के वि० सं० १७८७ की कार्तिक सुदी १२ के पत्र में उस समय की गुजरात की दशा का वर्णन इस प्रकार दिया है:-

मरहटे सिर्फ़ चौथ ही नहीं लेते प्रत्युत बड़ौदा, डभोही और जंबूसर आदि ३० लाख की आमदनी के प्रांतों पर भी उन्हीं का अधिकार है। इनमें सूत आदि २८ प्रांत पीलू के अधिकार में हैं। उसका जी चाहता है, तो वहाँ की कुछ आमदनी शाही ख़जाने को दे देता है और नहीं चाहता

मारवाड़ का इतिहास

का शिविर केवल एक कोस की दूरी पर था। इससे रात होते ही वह अपनी तोपों को महाराज की सेना की पंक्ति की सीध में लगवाकर उस पर गोले बरसाने लगा। इसके बाद प्रातःकाल होने पर उसने अपनी सेना को युद्ध के लिये तैयार होने की आज्ञा दी। परन्तु रात की घटना से महाराज को अपने अधिकृत-स्थान की अनुप-योगिता सिद्ध हो चुकी थी। इसीसे यह अपनी सेना में आए हुए गुजरातियों की सलाह से अपनी राठोड़-वाहिनी को लेकर दो-ढाई कोस पीछे के सुरक्षित स्थान (खानपुर) में चले आए। यह स्थान वास्तव में ही सैनिक दृष्टि से बड़ा उपयोगी था। इसी से यहाँ पर नवीन मोरचे बनवाने की आज्ञा दी गई। इसके साथ ही इन्होंने कुछ चुने हुए सवारों को साबरमती नदी के उस पार के वैहरामपुर और बड़े नायनपुर पर अधिकार करने के लिये भेज दिया; क्योंकि उक्त स्थान अहमदाबाद पर गोलाबारी करने के लिये बड़े उपयोगी थे। महाराज की सैन्य के इस स्थान-परिवर्तन की सूचना सरबुलंदख़ाँ (मुबारिजुलमुल्क) को सायंकाल के समय मिली थी। इसलिये उसने रात्रि में होनेवाले आक्रमण से बचने के लिये अपने सैनिकों को तत्काल समुचित स्थानों पर नियत कर दिया। इसके बाद प्रातःकाल होते ही उसने शाही बाग के सामने पहुँच अपने मोरचे लगवा दिए। इसके साथ ही उसने अपनी सेना का एक भाग, मय एक तोपखाने के, नगर की रक्षा के लिये भेज दिया। इन कामों से निपटकर उसने फिर एक बार महाराज की सेना पर गोलबारी शुरू की।

इसके बाद जैसे ही महाराज की सेना के मोरचे यथास्थान लग चुके, वैसे ही उसने शत्रु-सेना की तोपों का जवाब देने के साथ-ही-साथ अहमदाबाद नगर और वहाँ के किले पर भी गोले बरसाने शुरू किए। राठोड़-वाहिनी का मोरचा ऊँचे स्थान पर होने के कारण इनके गोलों की चोट कारगर होती थी। यह देख दूसरे दिन (वि० सं० १७८७ की कार्तिक बदी ५) (ई० सं० १७३० की २० अक्टोबर) को सरबुलंद ने आगे बढ़ महाराज की सेना पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि इस युद्ध में उसके मुसलमान सैनिकों ने बड़ी वीरता दिखलाई, और एक बार खानपुर में घुसकर उसके एक भाग पर अधिकार भी कर लिया, तथापि अन्त में महाराज के तोपखाने और

है, तो नहीं देता है। पावागढ़ चिमनाजी के कब्जे में है। चाँपानेर का किला कंठाजी के पास है। इसके अलावा ये लोग देश में चौथ, देशमुखी और पेशकशी के लेने के साथ ही कुछ स्थानों में दरोबस्त (धर-पकड़) भी करते रहते हैं।

सवारों की मार से प्रवराकर सरबुलंद को अपनी सेना को लौट चलने की आज्ञा देनी पड़ी।

इसके बाद स्वयं महाराज ने अपने राठोड़-रिसाले के साथ आगे बढ़ शत्रु-सेना पर धावा किया। यद्यपि यवनों ने गाँव की आड़ लेकर तोपों और बन्दूकों की मार से इनके रोकने की जी-तोड़ चेष्टा की, तथापि समुद्र-तरंग की तरह आगे बढ़ती हुई राठोड़-सेना ने, सब विघ्न बाधाओं को दूरकर, शत्रुओं को मार भगाया, और उनके अधिकृत स्थान पर अपना झंडा खड़ा कर दिया। यह देख सरबुलंद भी अपनी सेना को उत्साहित करता हुआ पलट पड़ा, और बड़ी वीरता से महाराज की सेना का सामना करने लगा। अन्त में उसने एक बार राठोड़ों को पीछे ढकेलकर ही दम लिया। परंतु इस युद्ध में एक तो उसके बहुत-से बड़े-बड़े वीर सरदार काम आ गए, और दूसरे उसके बहुत-से सैनिक राठोड़ों के दूसरे आक्रमण की आशंका से चुपचाप मैदान छोड़ कर चल दिए, इससे उसका बल क्षीण हो गया। शत्रु की इस प्रकार की दुर्दशा से उत्साहित होकर राठोड़ों ने सरबुलंद पर दूसरा हमला कर दिया। परंतु ऐसे ही समय उसके दो सेनापति अमीनबेगखाँ और शेख अल्लाहयारखाँ नगर-रक्षिणी सेना को लेकर रण-स्थल में आ पहुँचे। इससे यद्यपि आक्रमण में राठोड़ों को सफलता न हो सकी, तथापि सरबुलंद की सेना के बहुत से सैनिकों के घायल हो जाने से उसका उत्साह शिथिल पड़ गया। इसके बाद जैसे ही सायंकाल होने पर युद्ध बंद हुआ, वैसे ही उसने अपना शिविर युद्ध-स्थल से उखड़वाकर अहमदाबाद के बाहर की तरफ़ किले के नीचे लगवा दिया।

१. लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० २०६-२०८।

२. लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० २०८-२११।

‘राजरूपक’ में लिखा है:-

सतरै समत सत्यासियो, आसू उज्जल पक्ख ;

बिजै-दशम भागा विचित्र, अमै प्रतिज्ञा अक्ख ।

(देखो पृ० ३६३)।

‘भीराते अहमदी’ में लिखा है कि सायंकाल के समय सरबुलंद के पास केवल ४०० सवार ही रह गए थे।

परन्तु महाराज द्वारा, शाही दरबार में स्थित, अपने वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७८७ की कार्तिक बदी २ के, पत्र से प्रकट होता है कि आश्विन सुदी ५ को महाराज ने शहर से डेढ़ कोस पूर्व के हाँसोल-नामक गाँव के पास सावरमती के किनारे मोरचे लगाए थे। परन्तु सरबुलंद के शाही

मारवाड़ का इतिहास

इसके बाद ही नीवाज ठाकुर उदावत अमरसिंह आदि के द्वारा बातचीत तय होकर महाराज और सरबुलंद के बीच संधि हो गई। इससे गुजरात का सूबा उसने महाराज को सौंप दिया और इसकी एवज में महाराज ने उसे उसकी सेना के वेतन आदि के लिये एक लाख रुपये नक़द और वहाँ से जाने के समय भार-बरदारी की गाड़ियाँ और ऊँट देने का वादा किया।

इस प्रकार झगड़ा शांत हो जाने पर सरबुलंदख़ाँ स्वयं महाराज के कैंप में आकर उनसे मिला। बातों ही बातों में उसने स्वर्गवासी महाराजा अजितसिंहजी के साथ की अपनी मित्रता का वर्णन कर महाराज की पगड़ी से अपनी पगड़ी बदल ली^१।

बाग़ और मुहम्मद अमीनख़ाँ के बाग़ की तरफ़ चले जाने से ७मी के दिन नगर के पश्चिम की तरफ़ भादर के क़िले के सामने (फ़तैपुर के पास=नदी के किनारे) मोरचे खड़े किए गए। यह देख क़िले और शहरपनाह से शत्रु की तोपें गोले बरसाने लगीं। तीन दिन तक मोरचों की लड़ाई होती रही। परन्तु चौथे दिन १०मी को, क़िले के पतन के लक्षण देख, सरबुलंद ने ८ हजार सवारों और १० हजार पैदल सिपाहियों के साथ महाराज की सेना पर हमला कर दिया। इसमें शत्रु के बहुतसे योद्धा मारे गए। इसके बाद महाराज और राजाधिराज ने मोरचों से आगे बढ़ सरबुलंद पर प्रत्याक्रमण किया। यह देख उसका तोपख़ाना इन पर गोले बरसाने लगा, और शत्रु-सैनिक गाँव की आड़ में छिप गए। परन्तु महाराज ने इसकी कुछ भी परवा न कर अपने सवारों की ३ अनियाँ बनाई, और ये सब एक ही बार में तोपख़ाने से आगे बढ़ तत्काल शत्रु के सामने जा पहुँचीं। दो घंटे के युद्ध के बाद शत्रु के पैर उखड़ गए, और वह भाग कर डेढ़ कोस पर के कासिमपुर में चला गया। महाराज के सैनिक भी उसके पीछे लगे हुए थे। इसलिये जैसे ही ये वहाँ पहुँचे, वैसे ही शत्रु ने मकानों की आड़ लेकर इनका सामना किया। यहाँ पर करीब एक घंटे तक युद्ध होता रहा। इसके बाद जब सेना के बिखर जाने से सरबुलंद के पास केवल ८० सवार रह गए, तब वह वहाँ से भागकर नदी-पार के अपने शिविर में चला गया। इसी बीच शेख़ अल्लाहयारख़ाँ शहर से निकल उसकी मदद को पहुँचा था। परन्तु वह शीघ्र ही मारा गया। इसके बाद शाम हो जाने से महाराज भी अपने शिविर को लौट गए। इस युद्ध में शत्रु के बहुतसे घोड़े, तोपें आदि राठोड़ों के हाथ लगे। उसके हजार-बारह सौ आदमी मारे गए और सात-आठ सौ घायल हुए। महाराज की सेना में यद्यपि मरनेवालों की संख्या कम रही, तथापि घायल अधिक हुए। महाराज की सवारी के घोड़े के भी तलवार के तीन और तीरों के दो ज़ख़म लगे। तीन तीर उसका चमड़ा छीलते हुए निकल गए। इस युद्ध में राजाधिराज भी ज़ख़मी हुए। परन्तु ईश्वर ने सहाय की। शिविर में पहुँचने पर सरबुलंद की तरफ़ से संधि का प्रस्ताव हुआ। दूसरे दिन महाराज ने फिर चढ़ाई की, परन्तु शत्रु बाहर नहीं आया।

१. लेटर सुगल्स, भा० २ पृ० २११-२१२। उसमें यह भी लिखा है कि इस युद्ध में राजाधिराज बख़्तसिंहजी के एक तीर का घाव लग गया था। इसीसे वह उस समय दरबार में उपस्थित न थे। परन्तु ख्यातों से उस समय उनका ससैन्य वहाँ पर उपस्थित होना प्रकट

कुछ दिनों में यात्रा का प्रबन्ध ठीक हो जाने पर सरबुलंद आगरे की तरफ चला गया, और महाराज ने वि० सं० १७८७ की कार्तिक सुदी १ (ई० सन् १७३० की ७ नवंबर) को अपने आता बख्तसिंहजी के साथ नगर में प्रवेश कर भादर के किले में निवास किया। इसके बाद इन्होंने वहाँ के प्रबन्ध की देख-भाल के लिये भंडारी रत्नसिंह को अपना नायब नियुक्त किया।

होता है। इसी प्रकार किसी-किसी ख्यात में आश्विन सुदी १२ को सरबुलंद का हिम्मत हारकर नींबाज ठाकुर अमरसिंह को संधि के लिये बुलवाना और फिर दोनों पक्षों के बीच संधि होना, तथा इसके बाद कार्तिक वदी ७ को सरबुलंद का गुजरात में रवाना होना लिखा है।

मूल में इस युद्ध की जो तिथियाँ दी गई हैं, वे 'लेटर मुगल्स' के अनुसार हैं।

महाराज के, शाही दरबार में स्थित, अपने वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७८७ की कार्तिक सुदी १२ के, उपर्युक्त पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि इस युद्ध का सारा प्रबन्ध महाराज ने अपनी ही तरफ से किया था। बादशाह की तरफ से तो केवल करीमख़ाँ, २०० सिपाहियों के साथ, उनके पास नियुक्त किया गया था।

१. लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० २१२-२१३।

परंतु महाराज की तरफ से शाही दरबार में स्थित अपने वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७८७ की कार्तिक वदी ४ के पत्र में सरबुलंद के सूबा छोड़ कर चले जाने और भादर के किले के विजय होने का उल्लेख मिलता है।

'सहस्रसुताखरीन' में इस घटना का हाल इस प्रकार लिखा है:-

जब बादशाह रिश्वत की शिकायतों के कारण रौशनहुँदौला से अप्रसन्न हो गया, तब शाही दरबार में शम्सामुद्दौला का प्रभाव बढ़ने लगा। इसी अवसर पर उस (शम्सामुद्दौला) ने रौशनहुँदौला के पक्ष वाले सरबुलंदख़ाँ के एवज में महाराजा अभयसिंहजी को गुजरात का सूबेदार नियुक्त करवा कर उक्त पद की सनद इनके पास भेज दी। साथ ही उसने इन्हें शीघ्र गुजरात पहुँच सरबुलंद को दिल्ली भेज देने का भी लिख भेजा। परंतु अभयसिंहजी ने सरबुलंद से गुजरात का अधिकार ले लेना एक साधारण कार्य जान अपने प्रतिनिधि को कुछ सेना देकर वहाँ भेज दिया। जब वहाँ पर उसे सफलता नहीं हुई, तब महाराज ने एक दूसरे प्रतिनिधि को वहाँ जाने की आज्ञा दी। इसके साथ पहले से कुछ अधिक सेना भेजी गई थी। परंतु सरबुलंद ने उसे भी कृतकार्य न होने दिया। यह देख स्वयं महाराज अभयसिंहजी ४०-५० हज़ार सैनिक लेकर गुजरात को चले। इस पर सरबुलंद ने कई कोस आगे बढ़ इनका सामना किया। यद्यपि एक बार तो उसने इनको पीछे हटा दिया, तथापि अन्त में उसे संधि का प्रस्ताव करना पड़ा। इसके बाद वह स्वयं सार्यकाल के समय सादे कपड़े पहन और थोड़े से नौकरों को साथ ले महाराज के डेरे पर पहुँचा। महाराज को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। पर इन्होंने उसे यथोचित सत्कार के साथ अपने पास बिठाया। इसके बाद उसने महाराज से कहा कि महाराजा अजित-सिंहजी मेरे पगड़ी-बदल भाई थे, अतः आप मेरे भतीजे हैं। मैंने यह युद्ध केवल अपनी इज़्ज़त बचाने के

मारवाड़ का इतिहास

इसी वर्ष महाराज ने राजाधिराज बख्तसिंहजी को पाटन का सूबेदार नियुक्त कर उनके नायब को वहाँ पर प्रबन्ध करने के लिये भेज दिया।

अगले वर्ष (वि० सं० १७८८-ई० सन् १७३१ में) बाजीराव पेशवा ने बड़ोदे पर चढ़ाई की। उस समय उक्त नगर पीलाजी गायकवाड़ के अधिकार में था। इसकी सूचना पाकर महाराजा अभयसिंहजी ने पेशवा को अहमदाबाद बुलवाया, और उसे,

लिये किया है। मेरे और आपके बीच किसी तरह की व्यक्तिगत शत्रुता नहीं है। अब आप इस सूबे का कार्य सँभालें, और मेरे खर्च के लिये कुछ रुपये देकर मेरी यात्रा के लिये भार-बरदारी का प्रबन्ध कर दें। महाराज ने तत्काल उसके कहने के अनुसार सब प्रबंध कर देने की आज्ञा दे दी। जब सरबुलंद को महाराज की तरफ का पूरा-पूरा विश्वास हो गया, तब उसने पुराने सम्बन्ध का उल्लेख कर अपनी सुफेद पगड़ी महाराज के सिर पर रख दी, और उनकी बहुमूल्य पगड़ी, जिसमें अनेक रत्न टके थे, उतारकर अपने सिर पर रख ली। इसके बाद वह महाराज से प्रेमलिंगन कर बिदा हो गया।

परंतु जिस समय सरबुलंद दिल्ली के मार्ग में था, उस समय शम्सासुद्दौला ने कुछ गुर्जबरदारों के साथ उसके पास यह शाही आज्ञा भिजवा दी कि महाराजा अभयसिंहजी का सामना करने के अपराध में उसके लिये दरबार में उपस्थित होने की मनाई हो गई है। इसलिये जब तक दूसरी शाही आज्ञा न मिले, तब तक वह दिल्ली न आकर मार्ग में ही ठहर जाय।

शाही दरबार का यह रंग दंग देख कुछ काल बाद आसफजहाँ ने राजा साहू के सेनापति बाजीराव को अभयसिंहजी के प्रतिनिधि से गुजरात छीन लेने के लिये तैयार किया। इसी से अन्त में उक्त प्रदेश मरहटों के अधिकार में चला गया। इस पर महाराज ने भी उधर विशेष ध्यान नहीं दिया। (देखो भा० २ पृ० ४६२-४६३)।

महाराज के शाही दरबार में स्थित अपने वकील के नाम लिखे अनेक पत्रों से प्रकट होता है कि मरहटों के लगातार के उपद्रवों और सरबुलंद की लूट-खसोट से अहमदाबाद का सूबा उजड़ गया था। इससे वहाँ की आमदनी से सेना का वेतन भी नहीं चुकाया जा सकता था। परंतु शाही प्रधान मन्त्री रुपये भेजने में ढील करता था। इसलिये स्वयं महाराज भी वहाँ रहना पसंद नहीं करते थे।

१. बाँबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१२। वहाँ पर यह भी लिखा है कि महाराज के अहमदाबाद पहुँचने पर (सलावत मुहम्मदख़ाँ बाबी के पुत्र) शेरख़ाँ बाबी ने हाज़िर हो कर एक हाथी और कुछ घोड़े इनके नज़र किए। इस पर महाराज ने उसके मृत-पिता की जागीर उसे देकर इसकी सूचना बादशाह के पास भेज दी। साथ ही कैवे (खंभात) के पास के प्रदेश का, जिसकी आमदनी स्वयं महाराज के लिये नियत थी, प्रबंध फ़िदाउद्दीनख़ाँ को सौंपा। (देखो भा० १, खंड १, पृ० ३११)।

२. महाराज के अपने वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७८७ की माघ वदी ८ के, पत्र से ज्ञात होता है कि इस के पूर्व ही बाजीराव और चिमनाजी ४० हजार सवारों के साथ माही के उस पार उतर चुके थे, और कंठाजी, पीलू, सूदा और ज्यंबकराव आदि एक बड़ी सेना लेकर सरत पहुँच चुके थे।

बड़ोदे पर अधिकार करने में, पीलाजी के विरुद्ध, अजमलुल्ला की सहायता करने को तैयार किया। उस समय महाराज की तरफ से बड़ोदे का शासन-भार अजमलुल्ला को सौंपा हुआ था। इसी के अनुसार महाराज की और पेशवा की सम्मिलित सेनाओं ने बड़ोदे पर चढ़ाई की। परंतु इसी बीच सूचना मिली कि निजामुलमुल्क स्वयं बाजीराव पेशवा को दबाने के लिये गुजरात की तरफ चला आ रहा है। इस पर पेशवा बड़ोदे की चढ़ाई का विचार छोड़कर दक्षिण की तरफ चला गया।

१. महाराज के अपने वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७८७ की चैत्र सुदी १४ के, पत्र में लिखा है:-

व्यंकराव दामाडे से हमारा और बाजीराव की सेनाओं का युद्ध हुआ। इसमें व्यंकराव, निजाम की फौज का सरदार मुगल मौमीनयारखाँ और मूलाजी पँवार मारे गये; और पँवार ऊदा, चिमना और पंडित के साथ ही पीलू का बेटा भी पकड़ा गया। इस प्रकार हमारा विजय हुई। पीलू, कंठा और आनंदराव की फौजें भागीं। पीलू भागकर डभोई में जा छिपा। बड़ोदे का प्रबंध उसके भाई के हाथ में है। दोनों स्थानों पर हमारी फौजें पहुँच गई हैं। शीघ्र ही दोनों स्थान उनसे खाली करवा लिये जायेंगे। कंठा भागकर निजाम के पास गया है। इसलिये तुम नवाब से कहकर निजाम को बादशाह की तरफ से हिदायत करवा देना, जिससे वह हमारे कथनानुसार चले, और कंठा, पीलू वगैरह को पनाह न दे। इस युद्ध में निजाम की फौज भी मारी गई है। इससे मुमकिन है निजाम इधर चढ़ आवे, और उससे युद्ध हो। अतः बादशाह से शीघ्र ही उसको हिदायत करवा दी जाय।

इस बार बाजीराव ने बादशाह की अच्छी सेवा की है। इसलिये उसको और राजा साहू को खिलअत, फरमान और हाथी तथा चिमना को खिलअत भिजवाने की कोशिश होनी चाहिए। साथ ही नवाब से बातचीत कर इनके लिये मनसब की भी कोशिश होनी चाहिए। निजामुलमुल्क के कहने से नवाब ने लिखा है कि बाजीराव को किसी प्रकार की मदद न देकर निकाल दो। परंतु बाजीराव ने बादशाह की सहायता की है। पीलू और कंठा आठ वर्ष से परगने दबाए बैठे हैं। ऐसी हालत में यदि नवाब लोगों के कहने से गड़बड़ करेगा, तो हम गुजरात का सूबा छोड़कर चले आवेंगे। निजाम तो सिर्फ हम लोगों को आपस में लड़ाना चाहता है। यदि वह इधर आया, तो अवश्य ही उसे दंड दिया जायगा।

वि० सं० १७८७ की चैत्र सुदी १४ के दूसरे पत्र में महाराज ने लिखा है कि बाजीराव के पत्र से ज्ञात हुआ कि निजाम ने हमारे और बादशाह के असली पत्र उस (बाजीराव) के पास भेजकर उसको लिखा है कि बादशाह तो उसे पकड़ना या दंड देना चाहता है, और वह नाहक ही अपने सजातीयों से लड़कर अपना बल क्षीण कर रहा है। इस पर उसका विश्वास उठ गया है, और वह यहाँ से जाना चाहता है। इसलिये उसके नाम का फरमान शीघ्र भिजवाना चाहिए, वरना वह चला जायगा। नवाब को भी अब निजाम से सावधान हो जाना चाहिए। इस समय कंठा निजामुलमुल्क के पास गया हुआ है। अगर वह यहाँ वापस आवेगा, तो अवश्य ही मारा जायगा।

मारवाड़ का इतिहास

इसके बाद बख्तसिंहजी भी लौटकर नागोर चले आएँ ।

उस समय स्वर्गवासी सेनापति खँडेराम दाभाडे का प्रतिनिधि पीलाजी भीलों और कोलियों की सहायता से स्वतंत्र हो रहा था, और महाराज की आज्ञा की कुछ भी परवा नहीं करता था । इसलिये वि० सं० १७८८ के माघ (ई० सन् १७३२ की जनवरी) में महाराज ने ईंदा लखवीर को उसे मारने की आज्ञा दी । इसी के अनुसार उसने डाकोर पहुँच उसे धोके से मार डाला । यह देख मरहटे बड़ोदा-प्रांत को छोड़कर डभोई के क़िले में चले गए । इस पर महाराज ने बड़ोदे पर अधिकार कर तत्काल ही डभोई के दुर्ग को भी घेर लिया । परंतु अन्त में वर्षा-ऋतु के आ जाने से कुछ ही दिनों में इन्हें वहाँ का घेरा उठा लेना पड़ा ।

१. बॉबि गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१२ ।

ख्यातों में इसके बाद महाराज का कुंतजी कदम के विरुद्ध सेना भेजना और उसका वापस लौट जाना लिखा है । उनमें इसी के बाद महाराज के बुलाने पर राजाधिराज बख्तसिंहजी का अहमदाबाद वापस आना भी लिखा है ।

यह बात महाराज के वि० सं० १७८८ की फागुन बर्दा १० के पत्र से भी प्रकट होती है । परंतु उसमें पीलाजी पर चढ़ाई करने का उल्लेख है ।

उसी पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय महाराज के मनसब के सवारों में दो हजार सवारों की वृद्धि की गई थी ।

२. बॉबि गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१३ । वि० सं० १७८८ (श्रावणादि) चैत्रादि सं० १७८६ की चैत्र सुदी ११ के महाराज के पत्र में, जो नड़ियाद से लिखा गया था, लिखा है—पीलाजी के माही पार करने पर हमारी सेना भी चंडूला से बाहर निकल कूच की तैयारी करने लगी । यह देख पीलाजी के आदमी हमसे मिलने को आए । हमने उनसे बड़ोदा, डभोई आदि बादशाही थाने छोड़कर शाही सेवा स्वीकार करने को कहा । परंतु पीला ने उत्तर में कहलाया कि वह तीन सूबेदारों के समय से बड़ोदे पर क़ाबिज़ है । सरखुलंद ने उस पर चढ़ाई की थी, परंतु उलटा उसे चौथ देने का वादा कर लौटना पड़ा ।

ये लोग सम्मुख रण में लोहा न लेकर इधर-उधर से हमला कर शत्रु-सैन्य को तंग करते हैं । इससे जैसे ही हमारी अगाड़ी की सेना पाँच कोस आगे बढ़ी, वैसे ही वह भागकर डाकोर जा पहुँचा ।

इस पर हमने सोचा कि इस प्रकार चढ़ाई करने से वह और भी दूर भाग जायगा । अतः पंचोली रामानंद, ईंदा लखवीर और मंडारी अजबसिंह को उससे बातचीत तय करने के बहाने उधर रवाना किया । उनसे यह भी कह दिया गया था कि तुम्हारी तरफ़ से सूचना मिलते ही यहाँ से सेना रवाना कर दी जायगी ।

इसके बाद चैत्र सुदी ६ को २,००० चुने हुए सवार भेजे गए। वातचीत करने को गए हुए हमारे आदमियों ने पीलू को मार डाला। इसी अवसर पर (दो घंटे रात जाते-जाते) हमारी सेना के सवार भी वहाँ जा पहुँचे। इससे पीलू का भाई मैमा और उसके बहुत-से सैनिक भी मारे गए। ७०० घोड़े और जंजालें (लम्बी बंदूकें) तथा अन्य बहुत-सा सामान लूट में हमारे सैनिकों के हाथ लगा।

अब हम शीघ्र ही बड़ोदे पहुँच उसे भी दुश्मन से खाली करवाने वाले हैं। हमारी सेना के ४० सिपाही मारे गए, और ५० जमादार और १००-११० वीर घायल हुए हैं।

इस बात की पुष्टि वि० सं० १७८८ (चैत्रादि सं० १७८६) की वैशाख सुदी १३ के महाराज के पत्र से भी होती है। उसमें पीलू के साथ १,५०० सवारों और १,००० पैदल सिपाहियों के होने का उल्लेख है। साथ ही उसमें यह भी लिखा है कि वातचीत करने को गए हुए हमारे आदमियों का पत्र मिलते ही हमने सेना भेज दी थी। जैसे ही यह सेना पीलाजी के लश्कर के पास पहुँची, वैसे ही लखधीर ने अपनी वापस रवानगी की आज्ञा प्राप्त करने के बहाने पीला के निवास-स्थान में घुसकर उसे मार डाला। इसी अवसर पर पीला का भाई भी सख्त घायल हुआ, और उसके साथ के ५ सरदार मारे गए। शत्रु के सवारों के ८०० घोड़े हमारी सेना के हाथ आए।

इसके बाद हम सेना लेकर वैशाख सुदी ८ को बड़ोदे पहुँचे। कंडाली की गढ़ी और दूसरे दो चार स्थानों से शत्रु मार भगाया गया। अब वे लोग नर्मदा पर के कोरल गाँव और डभोई के किले में एकत्रित हुए हैं। इनकी संख्या अत्यधिक है। साथ ही व्यवकराव की मा और ऊदा पँवार के भी इनकी सहायता में आने की सूचना है। आने पर उनको भी सज़ा दी जायगी।

कल हम बड़ोदे से रवाना होकर नर्मदा की तरफ जानेवाले हैं। अब तक २४ किले तो शत्रुओं से छीन लिए गए हैं, और जो बच गए हैं, उन पर भी शीघ्र ही दखल कर लिया जायगा।

वि० सं० १७८८ (चैत्रादि संवत् १७८६) की ज्येष्ठ बदी २ के महाराज के पत्र में लिखा है कि शत्रुओं ने डभोई के किले में एकत्रित होकर उपद्रव उठाया है। एक तो वहाँ शत्रुओं की बहुत बड़ी संख्या है। दूसरे वह किला भी बहुत मजबूत है और हमारे पास उसके मझासरे के योग्य बड़ी-बड़ी तोपों का अभाव है। शीघ्र ही बरसात का मौसम आनेवाला है। यदि इससे पूर्व ही उक्त किला हाथ न आया, तो यहाँ पर मरहटों का दल और भी बढ़ जायगा। उस समय इसका हाथ आना कठिन होगा। वि० सं० १७८८ (चैत्रादि संवत् १७८६) की आषाढ़ बदी ११ के महाराज के पत्र में भी येही बातें लिखी हैं। परंतु उससे यह भी ज्ञात होता है कि बड़ोदा और जंबूसर के किले तो इसके पूर्व ही जीत लिए गए थे, उस समय डभोई के किलेवालों के साथ युद्ध हो रहा था। चाँपानेर का बड़ा किला भी शत्रुओं के अधिकार में था। महाराज की सेना को लम्बी नालियोंवाली तोपों की सख्त जरूरत थी। इसलिये महाराज ने अपने वकील को लिखा था कि वह नवान्न (शाही प्रधान मंत्री) से कहकर सरत के किलेदार के नाम शीघ्र ही दो बड़ी तोपें भेजने की आज्ञा भिजवा दे। काम हो जाने पर वे तोपें लौटा दी जायँगी। इसी के साथ सोहराबख़ाँ को भी अपनी सेना लेकर वहाँ पहुँचने का हुक्म भिजवाने में शीघ्रता करने को लिखा गया था।

ये सब पत्र महाराज ने शाही दरबार में रहनेवाले अपने वकील के नाम लिखे थे।

मारवाड़ का इतिहास

इन बराबर के झगड़ों से नष्ट-भ्रष्ट होते हुए गुजरात में भयंकर दुर्भिक्ष ने और भी हालत खराब कर दी।

वि० सं० १७८१ के फागुन (ई० सन् १७३३ की फरवरी) में खँडैराव की विधवा स्त्री उमाबाई ने, पीलाजी की मृत्यु का बदला लेने के लिये उसके पुत्र दामाजी गायकवाड़ आदि को साथ लेकर, अहमदाबाद पर चढ़ाई कर दी। परंतु इसमें उसे पूरी सफलता नहीं हुई। अन्त में दुर्गादास के पुत्र अभयकरण के द्वारा यह तय किया गया कि उसे वहाँ की आमदनी की चौथ (चौथा भाग) और दसोत (दसवाँ भाग) के अलावा अहमदाबाद के खजाने से अस्सी हजार रुपये और दिए जायँ। बादशाहने भी समय देख महाराज की की हुई इस संधि को पसन्द किया, और इनके लिये एक खिलअत भेजा।

वि० सं० १७१० (ई० सन् १७३३) में महाराज ने गुजरात के सूबे का प्रबन्ध रत्नसिंह भंडारी को सौंप दिया, और स्वयं बख्तसिंहजी के साथ जालोर होते हुए शाहपुरवालों से दंड के रुपये लेकर जोधपुर चले आएँ।

१. वि० सं० १७८६ की भादों बदी १ के, महाराज के अपने वकील के नाम लिखे, पत्र में लिखा है कि गुजरात में भयंकर अकाल है। नाज एक रुपये का सेर-भर तक बिक चुका है, फौज की तनख्वाह के तीस लाख रुपये चढ़ गए हैं। इससे लोग भागने का इरादा कर रहे हैं। ऐसी हालत में यदि नवाब रुपयों का प्रबंध शीघ्र नहीं करेगा, तो हम द्वारका-यात्रा कर यहाँ से लौट आवेंगे।

२. बाँबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१४।

३. बाँबे गज़ेटियर भा० १, खंड १, पृ० ३१४। इसमें महाराज का जोधपुर होते हुए दिल्ली जाना भी लिखा है। इसी से अगले वर्ष जवाँमर्दखाँ ने महाराज के भ्राता आनन्दसिंह और रायसिंह से इंडर छीन लेने के लिये चढ़ाई की। परंतु उन्होंने ने मल्हारराव होल्कर और रानोजी सिंधिया की (जो उस समय मालवे में थे) सहायता प्राप्त कर उलटा उसे १,७५,००० रुपये दंड के देने को बाध्य किया। इसमें से २५,००० रुपये तो उसी समय ले लिए गए, और बाकी के रुपयों के एवज में जवाँमर्दखाँ का भाई जोरावरखाँ और अमराजी कोली का प्रतिनिधि अजबसिंह अमानत के तौर पर रखे गए। (बाँबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१५)। ई० सन् १७३५ में महाराज के प्रतिनिधि रत्नसिंह को उसके खर्च के लिये धौलका-प्रांत दिया था। (बाँबे गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१५)।

४. 'मन्नासिख उमरा' में इनका वि० सं० १७८६-६० (ई० सन् १७३२-३३) में जोधपुर लौटना लिखा है। परंतु वहीं पर उक्त इतिहास के लेखक ने अजितसिंहजी के मरने

महाराजा अभयसिंहजी

इसी वर्ष के भादों (ई० सन् १७३३ के अगस्त) में राजाधिराज बख्तसिंहजी के और बीकानेर-नरेश सुजानसिंहजी के बीच एक सरहदी मामले पर झगड़ा उठ खड़ा हुआ। इससे बख्तसिंहजी ने बीकानेर पर चढ़ाई कर दी। आश्विन सुदी में महाराज भी अपने दल-बल-सहित उनकी सहायता को वहाँ जा पहुँचे। कुछ दिन तक तो दोनों तरफ से लड़ाई होती रही। परंतु अन्त में फागुन के महीने में लोगों ने बीच में पड़ आपस में मेल करवा दिया। फिर भी बीकानेर के कुछ सरहदी प्रदेशों पर वि० सं० १७६२ (ई० सन् १७३५) तक जोधपुरवालों का ही अधिकार बना रहा।

वि० सं० १७६१ के ज्येष्ठ (ई० सन् १७३४ की मई) में महाराज नागोर, पुष्कर और अजमेर होते हुए मेवाड़ की तरफ चले। डुरडे में इन्होंने जयपुर, उदयपुर, कोटा, बीकानेर और किशनगढ़ के नरेशों से मिलकर एक शानदार दरबार

पर बख्तसिंहजी का गद्दी बैठना लिख दिया है। यह ठीक नहीं है। 'ग्रैंट डफ़ की हिस्ट्री ऑफ़ मरहटाज़' में लिखा है कि ई० सन् १७३२ (वि० सं० १७८६) में पीलाजी का ज्येष्ठ पुत्र धम्माजी सोनगढ़ से रवाना हुआ, और उसने गुजरात के पूर्व की तरफ के बहुत से प्रदेशों पर अधिकार कर जोधपुर तक चढ़ाई की। इसीसे महाराज अभयसिंहजी को गुजरात से लौटकर मारवाड़ में आना पड़ा। (देखो भा० १, पृ० ३८१)।

१. 'बीकानेर की तवारीख' में महाराज का स्वयं वहाँ न जाकर सेना भेजना ही लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि इस युद्ध में बीकानेर के राजकुमार जोरावरसिंहजी ने अच्छी वीरता दिखाई थी। इसी से जोधपुर की फौज को (पूरी) सफलता नहीं हुई। (देखो पृ० १६२)।
२. यह बात बीकानेर के राजकीय इतिहास से भी प्रकट होती है। (देखो पृ० १६४) महाराज के, अपने शाही दरबार में रहनेवाले वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७६० की मैगसिर सुदी ७ के, पत्र में लिखा है— "तुमने बादशाह के कथनानुसार शीघ्र ही हमें फिर अहमदाबाद जाने के बारे में लिखा, सो ज्ञात हुआ। बीकानेर का शहर हमारे अधिकार में आ गया है। किलेवाले अभी लड़ रहे हैं।" इसी वर्ष की फागुन सुदी १० के नागोर से लिखे महाराज के पत्र से प्रकट होता है कि बीकानेरवालों ने १२ लाख रुपये देने और समय-समय पर सेवा में हाज़िर रहने का वादा कर महाराज से संधि कर ली थी। इन १२ लाख में से ८ लाख तो नक़द देने का इक़रार था और ४ लाख के एवज़ में ख़रबूजी और सारूबा के प्रांत देने तय हुए थे।
३. उस समय ये सब नरेश वहाँ आ गए थे।

मारवाड़ का इतिहास

किया। इसमें उपस्थित होनेवालों ने एक दूसरे की सहायता करने की प्रतिज्ञा कर वि० सं० १७६१ की श्रावण वदी १३ (ई० सन् १७३४ की १७ जुलाई) को एक प्रतिज्ञा-पत्र लिखा। इसके बाद वर्षा-ऋतु के अंत में रामपुरे में अगला कार्य निश्चित करने का वादा कर यह देवलिये होते हुए जोधपुर लौट आएँ।

इसी वर्ष वि० सं० १७६१-६२ (ई० सन् १७३४-३५) में यह मल्हारराव को दबाने के लिये शम्सामुद्दौला के साथ अजमेर और साँभर की तरफ गए। यद्यपि उस समय महाराज की सम्मति युद्ध के पक्ष में थी, तथापि राजा जयसिंहजी ने बीच में पड़ उसे रोक दिया, और बादशाह की तरफ से मरहटों को चौथ देने का प्रबन्ध करवा दिया।

वि० सं० १७६२ (ई० सन् १७३५) में राजाधिराज बखतसिंहजी ने दौलतसिंह साँखला आदि की मिलावट से एक बार फिर बीकानेर पर चढ़ाई करने का प्रबन्ध किया। परन्तु इसमें उन्हें विशेष सफलता नहीं हुई।

इसके बाद वि० सं० १७६२ के ज्येष्ठ (ई० सन् १७३५ की मई) में शम्सामुद्दौला के साथ ही महाराज भी दिल्ली चले गए।

१. ख्यातों में लिखा है कि उस स्थान पर महाराज ने अपने लिये लाल डेरा खड़ा करवाया था। यह सूचना पाकर बादशाह इनसे नाराज़ हो गया। परन्तु इनके वकील भंडारी अमरसी ने उसे समझाया कि मरहटों के बढ़ते हुए उपद्रव को दबाने का प्रबंध करने के लिये राज-स्थान के नरेशों का एकत्रित होना आवश्यक था। परन्तु शाही खेमा खड़ा किए बिना ऐसा होना असंभव होने से ही महाराज ने लाल खेमा खड़ा करवाया था। यह सुन बादशाह ने महाराज को खिलअत और फरमान भेजकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

२. कुछ ख्यातों में इस घटना का समय वि० सं० १७६१ और कुछ में वि० सं० १७६२ दिया है। उनमें महाराज का शाहपुरेवालों से देवलिया वापस लौटकर राठोड़ रघुनाथसिंह को देना और शाहपुरे के राजा उमैदसिंहजी का इनके पास आकर आजिजी प्रकट करना भी लिखा है।

३. लेटर मुग़ल्स, भा० २ पृ० २८०। यद्यपि इसमें महाराज का नाम नहीं है, तथापि मारवाड़ की ख्यातों से इस बात की पुष्टि होती है।

महाराज के, अपने वकील के नाम लिखे, वि० सं० १७६१ की आश्विन वदी १ के, पत्र में इनके खाँ दौरों की सहायता के लिये शीघ्र ही जयपुर की तरफ़ रवाना होने के विचार का उल्लेख है।

४. इसी वर्ष बुरहानुल्मुल्क ने सोहराबख़ाँ को वीरमगौव का शासक नियत किया। परन्तु भंडारी रबसिंह के विरोध करने पर बादशाह ने उक्त नगर फिर से महाराज की ज़ागीर में रख

महाराजा अभयसिंहजी

शाही सेना की मदद करने के कारण मल्हार-राव होल्कर महाराज से अप्रसन्न था। इसी से वि० सं० १७६३ (ई० सन् १७३६) में उसने कंतजी के साथ गुजरात से आगे बढ़ मारवाड़ पर चढ़ाई की। यद्यपि कुछ दिन तक वह यहाँ के जालोर, सोजत, बीलाड़ा, मेड़ता और जोधपुर आदि प्रांतों में लूट-खसोट करता रहा, तथापि महाराज के सरदारों और मुसाहिबों ने उसे शीघ्र ही लौट जाने पर बाध्य कर दिया। महाराज भी इस घटना की सूचना पाकर दिल्ली से खाना होनेवाले थे, परन्तु इतने ही में होल्कर के लौट जाने का समाचार मिल जाने से इन्होंने अपना विचार स्थगित कर दिया।

इसके बाद बादशाह ने दरबारियों के कहने-सुनने से वि० सं० १७६३ (ई० सन् १७३७) में, गुजरात का सूबा मोमीनखाँ को दे दिया। परन्तु जब उसने उक्त प्रांत पर अधिकार करने में अपने को असमर्थ पाया, तब रंगोजी को, खास अहमदाबाद नगर, उसके आस-पास का प्रदेश और कैवे (खंभात) बंदर को छोड़कर

दिया। इसके बाद सोहराब ने बुरहानुल्मुल्क से कह-सुनकर दुबारा उसे अपने नाम लिख-वा लिया। यह बात रत्नसिंह को बुरी लगी। इससे उसने इधर-उधर से सहायता लेकर उस पर चढ़ाई कर दी। परन्तु सोहराबखाँ के पड़ाव के पास पहुँच उसने उससे कहलाया कि यदि वह बादशाह की तरफ से महाराज के पक्ष में अंतिम आज्ञा आ जाने पर उक्त स्थान को खाली कर देने का वादा कर ले, तो आपस में संधि हो सकती है। यह बात सोहराबखाँ को मंजूर न हुई। इस पर दोनों तरफ से युद्ध की तैयारी होने लगी। परन्तु इसके दूसरे ही दिन रत्नसिंह ने नैश-आक्रमण कर उसकी सेना को भगा दिया। सोहराबखाँ स्वयं भी घायल हो जाने के कारण बाद को शीघ्र ही मर गया। (बॉबे गज़ेटियर, भा० १, खं० १, पृ० ३१५-३१६)।

वि० सं० १७६२ की आश्विन बदी २ के एक पत्र में राजाधिराज बख्तसिंहजी के फिर से खुरबूजी प्रांत पर चढ़ाई करने का उल्लेख मिलता है।

१. बॉबे गज़ेटियर, भा० १, खं० १, पृ० ३१७।

२. ग्रांटडफ की 'हिस्ट्री ऑफ़ मरहटाज़' में इस घटना का समय ई० सन् १७३५ लिखा है। (देखो भा० १, पृ० ३६०)।

मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि इसी समय राजाधिराज बख्तसिंहजी ने जाकर गोपालपुरे की गढ़ी को घेर लिया। उस समय बीकानेर-नरेश जोरावरसिंहजी उसी में ठहरे हुए थे। इसी बीच दिल्ली से महाराज की आज्ञा आ जाने के कारण जोधपुर की फौज का एक दस्ता भी राजाधिराज की मदद में वहाँ जा पहुँचा। यह देख बीकानेरवाले घबरा गए और उन्होंने कुछ रुपये और सरहद्दी इलाका राजाधिराज को देकर उनसे संधि कर ली।

मारवाड़ का इतिहास

उक्त सूबे की सारी आय का आधा भाग देने की प्रतिज्ञा पर, अपनी सहायता के लिये तैयार किया। यह देख महाराज ने (अपने प्रतिनिधि) रत्नसिंह को उनके सम्मिलित बल का यथा-शक्ति मुकाबला करने की आज्ञा भेज दी। परन्तु जब मोमीनख़ाँ और मरहटों की विशाल सेनाएँ अहमदाबाद के बिल्कुल निकट पहुँच गईं, तब रत्नसिंह ने लाचार होकर वहाँ का सारा हाल महाराज को लिख भेजा। इस पर महाराज को इतना क्रोध आया कि यह बादशाह के सामने ही दरबार से उठकर खाना हो गए। यह देख उपस्थित शाही अमीरों में घबराहट छा गई, और उन्होंने महाराज को वापस बुलवाकर बादशाह से गुजरात की सूबेदारी फिर से इन्हीं के नाम लिखवा दी। परन्तु इसी के साथ बादशाह ने यह इच्छा प्रकट की कि गुजरात की नायबी भंडारी रत्नसिंह से लेकर राठोड़ अभयकरण को दे दी जाय। इस आज्ञा के पहुँचने पर मोमीनख़ाँ ने यह प्रस्ताव किया कि यदि रत्नसिंह बादशाही हुक्म के अनुसार अपना कार्य-भार अभयकरण को सौंप दे, और नगर की रक्षा का भार फ़िदाउद्दीनख़ाँ को दे दे, तो मैं कैबे (खंभात) की तरफ़ जाने को तैयार हूँ। परन्तु रत्नसिंह ने यह बात नहीं मानी। इस पर ख़ाँ ने दामाजी मरहटे को भी अपनी सहायता के लिये बुलवा लिया। इस प्रकार मरहटों की सहायता लेकर मोमीन ने अहमदाबाद पर चढ़ाई की। यद्यपि रत्नसिंह ने एक बार तो बड़ी वीरता से उनके सम्मिलित सैन्य को मार भगाया, तथापि अंत में नगर को अधिक काल तक सुरक्षित रखना असंभव समझ मोमीन से संधि करली। इसी के अनुसार वह (रत्नसिंह) उस (मोमीनख़ाँ) से अपने मार्ग-व्यय के लिये कुछ रुपये लेकर, शस्त्रों से सजे अपने दल के साथ, नगर से खाना हो गया। उसके इस प्रकार चले जाने पर अहमदाबाद पर मोमीनख़ाँ का अधिकार हो गया। परन्तु इसके साथ ही उक्त प्रांत की आधी आमदनी के साथ-साथ अहमदाबाद का आधा नगर भी मरहटों के अधिकार में चला गया।

१. बॉबि गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१८-३१९।

२. बॉबि गज़ेटियर, भा० १, खंड १, पृ० ३१९-३२०। वि० सं० १७६५ (ई० सन् १७३८-१७३९) में नादिरशाह के आक्रमण ने मुगल बादशाहत को और भी शिथिल कर दिया।
(क्रॉनॉलॉजी ऑफ़ मीडन इंडिया, पृ० १७७-१७८)।

वि० सं० १७६४ (ई० सन् १७३७) में महाराजा ने शाहपुरे के राजा उम्मेदसिंहजी को ले जाकर बादशाह से मिलाया था। (राजपूताने का इतिहास, खंड ३, पृ० ६४३)।

महाराजा अभयसिंहजी

इस घटना के बाद महाराज दिल्ली से खाना होकर साँभर, अजमेर और मेड़ते होते हुए जोधपुर चले आएँ ।

कुछ दिन बाद राजाधिराज बख्तसिंहजी के राजकर्मचारियों के साथ अधिक सख्ती का बरताव करने के कारण उनके और महाराज के बीच मनोमालिन्य हो गया । इस पर वि० सं० १७६६ के आषाढ़ (ई० सन् १७३६ के जून) में बख्तसिंहजी ने मेड़ते पर अधिकार करने के लिये चढ़ाई की । यह देख महाराज ने उनको समझाने के लिये अपने विश्वास-पात्र पुरुषों को भेजा । परंतु जब उन्होंने इसकी कुछ भी परवा न की, तब महाराज स्वयं सेना सजाकर उनके मुकाबले को चले । परंतु अन्त में शीघ्र ही दोनों भाइयों के बीच मामूली मेल हो गया ।

इस झगड़े से निपटकर महाराज ने फिर बीकानेर पर चढ़ाई की, और वहाँ पहुँच किले के चारों तरफ़ घेरा लगा दिया । जब कुछ दिन बीत जाने पर वहाँ के किले की रसद समाप्त हो चली, तब बीकानेरवालों ने, अपने आदमी भेजकर, बख्तसिंहजी से सहायता की प्रार्थना की । परंतु राजाधिराज ने बड़े भ्राता के विरुद्ध युद्ध में स्वयं बीकानेरवालों का पक्ष लेना अनुचित समझ, उन आदमियों को जयपुर महाराज जयसिंहजी के पास भेज दिया । इस पर जयसिंहजी ने सोचा कि यदि बीकानेर पर महाराज अभयसिंहजी का अधिकार हो गया, तो इनकी ताकत और भी बढ़ जायगी, और जयपुर तक का बचना कठिन हो जायगा । यह सोच उन्होंने बीस हज़ार सैनिक लेकर जोधपुर पर चढ़ाई कर दी । इसकी सूचना पाते ही, वि० सं० १७६७ (ई० सन्

१. ख्यातों में लिखा है कि वि० सं० १७६५ (ई० सन् १७३८) में महाराज की आज्ञा से राठोड़-वाहिनी ने भिषाय की तरफ़ चढ़ाई कर गौड़ अमरसिंह से राजगढ़ और सावर के शक्तावतों से घटियाली, पीपलाद और चौसल आदि छिन लिए थे । अन्त में शक्तावतों ने दस हज़ार रुपये देकर इनसे सुलह कर ली ।

२. उस समय वहाँ पर जोरावरसिंहजी का राज्य था ।

३. बीकानेर-कौंसिल के मेम्बर मुंशी सोहनलाल के लिखे उक्त रियासत के इतिहास में लिखा है कि:-

(अभयसिंह ने) शहर बीकानेर पर हमला करके उसके एक हिस्से को तीन पहर तक लूटा । एक लाख रुपये का माल गनीमत में उसके हाथ लगा । राजा अभयसिंह का डेरा मन्दिर लक्ष्मीनाथजी के पास पुराने किले की जगह था, आदि (देखो पृ० १६६) । (इस इतिहास में जहाँ-जहाँ बीकानेर के इतिहास का नाम आया है, वहाँ-वहाँ इसी इतिहास से तात्पर्य है) ।

मारवाड़ का इतिहास

१७४१) में, महाराज अभयसिंहजी बीकानेर का घेरा उठाकर जोधपुर चले आए। इसी गड़बड़ में मौका पाकर बख्तसिंहजी ने फिर मेड़ते पर अधिकार कर लिया। परंतु अन्त में दोनों भाइयों के आपस में फिर सुलह हो गई। जयपुर-महाराज भी कुछ दिन जोधपुर में रहकर और भंडारी रघुनाथ के समझाने पर फौज खर्च के रुपये वसूल कर वापस लौट गए।

इसके बाद वि० सं० १७६८ के ज्येष्ठ (ई० सन् १७४१ की मई) में महाराज ने जयपुरवालों से बदला लेने का इरादा किया, और इसकी सूचना बख्तसिंहजी के पास भी भेज दी। इस पर उन्होंने अजमेर पहुँच उस पर अधिकार कर लिया। जैसे ही आगरे में राजा जयसिंहजी को जोधपुरवालों के अजमेर पर अधिकार कर जयपुर पर आक्रमण करने के विचार की सूचना मिली, वैसे ही वह ५०,००० सवारों को लेकर इनके मुकाबले को चल पड़े। परंतु अभी महाराज अभयसिंहजी का मुकाम रीयाँ में ही था कि राजाधिराज बख्तसिंहजी को शत्रु-सैन्य के (अजमेर के पास) गँगवाना नामक स्थान पर पहुँचने का समाचार मिला। इस पर वह महाराज के आने की राह न देख अकेले ही जयपुर की सेना से जा भिड़े। ख्यातों से ज्ञात

१. बीकानेर के इतिहास में इस घेरे का तीन महीने और पाँच दिन रहना लिखा है (देखो पृ० १६८)।

मारवाड़ की ख्यातों में महाराज का सावन सुदी ४ को जोधपुर पहुँचना लिखा है।

२. किसी-किसी ख्यात में लिखा है कि मेल करते समय महाराज ने बख्तसिंहजी की इच्छा के अनुसार मेड़ते के बदले जालोर का प्रांत उनको दे दिया था।

३. ख्यातों में लिखा है कि जोधपुर में मुकाबला होने के पूर्व ही सुलह होजाने से जयपुर वालों को मिथ्याभिमान होगया था। इसीसे उनके लौटने के समय भखरी के ठाकुर मेड़तिया केसरीसिंह ने उनका गर्व मिटाने के लिये बड़ी वीरता से इनका सामना किया। इस विषय का यह सोरठा प्रसिद्ध है:-

केहरिया करनाल, जो न जुडत जयसाह सँ।

आ मोटी अवगाल, रहती सिर मारुधरा ॥

४. किसी-किसी ख्यात में लिखा है कि जयसिंहजी ने जोधपुर से लौटते हुए अजमेर पर अधिकार कर लिया था। इसी से बख्तसिंहजी ने वहाँ पहुँच उनके आदमियों को भगा दिया। श्रीयुत सारडा ने अपने 'अजमेर' नामक इतिहास में लिखा है:-

ई० सन् १७३१ (वि० सं० १७८८) के कुछ काल बाद भरतपुर के जाटों ने राजा चूडामन की अधीनता में आगरे पर आक्रमण शुरू कर दिए। बादशाह ने वहाँ की रक्षा का भार जयपुर-नरेश

महाराजा अभयसिंहजी

होता है कि यद्यपि उस समय बख्तसिंहजी के पास केवल ५,००० और जयसिंहजी के पास करीब ५०,००० सैनिक थे, तथापि उन्होंने बड़ी वीरता से जयपुरवालों पर आक्रमण किया। एक बार तो जयपुरवालों के पैर ही उखड़ गए थे। परंतु बख्तसिंहजी

जयसिंहजी को सौंप अजमेर का शासन भी उन्हीं के अधिकार में दे दिया। परन्तु ई० सन् १७४० (वि० सं० १७६७) में महाराजा अभयसिंहजी और उनके छोटे भ्राता बख्तसिंहजी ने जयपुर और अजमेर पर चढ़ाई करने का इरादा किया। इसी के अनुसार बख्तसिंहजी ने जाकर अजमेर पर अधिकार कर लिया। इस कार्य में भिषाय और पिसाँगा के राठोड़-शासकों ने भी उन्हें सहायता दी थी। जब इसकी सूचना जयसिंहजी को मिली, तब वे ५०,००० सैनिकों को लेकर आगरे में उनके मुक़ाबले को चले। परन्तु उनके गँगवाना स्थान पर पहुँचने पर, ई० सन् १७४१ की ८ जून (वि० सं० १७६८ की आषाढ़-सुदी ६) को, अकेले बख्तसिंहजी ने केवल ५,००० सवारों को साथ लेकर जयपुर-नरेश का सामना किया। इसके बाद वह पुष्कर में अपने बड़े भ्राता अभयसिंहजी के पास चले गए। अनंतर दोनों भाइयों ने मिलकर फिर (अजमेर से ४ कोस पूर्व पर के) लाडपुरा नामक गाँव में जयसिंहजी की सेना को जा घेरा। परन्तु इस बार के हमले में जयसिंहजी ने अपने को राठोड़ों से लोहा लेने में असमर्थ समझ, रघुनाथ भंडारी के द्वारा, संधि करली। इसी के अनुसार जयसिंहजी ने परबतसर, रामसर, अजमेर आदि के सात परगने अभयसिंहजी को सौंप दिए। परन्तु फिर भी अजमेर के क़िले पर जयसिंहजी का ही अधिकार रहा। अतः ई० सन् १७४३ के अक्टोबर (वि० सं० १८०० के कार्तिक) में उनके मरने पर अभयसिंहजी ने सेना भेज कर उस पर अधिकार कर लिया। इसी के साथ राजा सूरजमल गौड़ से राजगढ़ भी छीन लिया।

इसके बाद सवाई राजा जयसिंहजी के उत्तराधिकारी राजा ईश्वरीसिंहजी ने फिर से अजमेर पर अधिकार करने के लिये चढ़ाई की। इसकी सूचना पाते ही महाराजा अभयसिंहजी अपने छोटे भ्राता बख्तसिंहजी के साथ वहाँ जा पहुँचे, और इन्होंने अजमेर की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध कर लिया। यहीं पर कोटे का भट्ट गोविंदराम भी ५,००० सवारों के साथ आकर महाराज के साथ हो गया। अभयसिंहजी के पास उस समय ३०,००० सवार हो गए थे। अतः ईश्वरीसिंहजी के (अजमेर से ८ कोस पर के) ढानी नामक स्थान पर पहुँचने पर दोनों तरफ़ से युद्ध की तैयारी हुई। परन्तु इसी बीच जयपुर के रायमल और जोधपुर के पुरोहित जग्गू (जगन्नाथ) ने बीच में पड़ दोनों नरेशों में संधि करवा दी (देखो पृ० १६७-१६६)।

परन्तु वास्तव में चूड़ामन जाट हि० सन् ११३३ (वि० सं० १७७८=ई० सन् १७२१) में ही मर चुका था। अतः ई० सन् १७३१ में वह इस उपद्रव में कैसे शरीक हुआ होगा? (देखो लेटर मुगल्स, भा० २, पृ० १२२ और ऑरियंटल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी, पृ० ११५)।

कर्नल टॉड ने गँगवाने के युद्ध का वर्णन इसप्रकार किया है:-

जैसे ही दोनों तरफ़ की सेनाएँ एक दूसरी के पास पहुँचीं, वैसे ही बख्तसिंह ने अपनी सेना लेकर आँवर की विशाल-बाहिनी पर हमला कर दिया। इसके बाद वह तलवार की धार और भाले की नोक से शत्रु-सैन्य को नष्ट करता और चीरता हुआ उसके भीतर प्रवेश करने लगा। परन्तु जिस समय उसने मुड़कर देखा, उस समय उसके साथ के सवारों में से केवल ६० सवार ही बाकी बचे

मारवाड़ का इतिहास

के भी बहुत-से वीर मारे जा चुके थे, इसलिये वहाँ पर अधिक ठहरना हानिकारक समझ वह रीयों में महाराज के पास चले आए। इसके बाद फिर शीघ्र ही दोनों भाइयों ने मिलकर दुबारा राजा जयसिंहजी पर चढ़ाई की। परंतु जयसिंहजी हाल में ही राठोड़ों के बाहु-बल की परीक्षा कर चुके थे, इसलिये उन्होंने महाराज से मेल कर लेने में ही अपना हित समझा, और इसीसे मारवाड़ के परबतसर आदि सातों परगने, जिन पर उन्होंने पहली बार की चढ़ाई के समय अधिकार कर लिया था, महाराज को सौंप दिए। इसके साथ ही हाल के गँगवाने के युद्ध में हाथ लगी बख्तसिंहजी की सेना की दो तोपें और मुरलीमनोहरजी की मूर्ति-सहित हाथी भी वापस देकर इनसे संधि कर ली। इसके बाद महाराना जगत-

थे। ऐसे अवसर पर यद्यपि गजसिंहपुरे के ठाकुर ने पीछे के जंगल की तरफ इशारा कर उससे उधर लौट चलने का आग्रह किया, तथापि राठोड़-वीर ने पीछे पैर रखने से साफ़ इनकार कर दिया, और सामने ही जयपुर-नरेश जयसिंहजी के पचरंगे मंडे को देख उस पर हमला कर दिया। इस पर चतुर कुंभानी ने, जो राजा जयसिंह और उनके मंडे के पास ही खड़ा था, उन्हें (जयसिंहजी को) शीघ्र ही वहाँ से टल जाने की सलाह दी। इसके अनुसार वह शत्रु के सामने पीठ दिखाना लज्जा-जनक समझ बाजू की ओर के खंडेले की तरफ़ निकल गए। परन्तु रणांगण छोड़ते समय उनके मुख से आप-ही-आप ये शब्द निकल पड़े:-

“यद्यपि आज तक मैंने १७ युद्धों में भाग लिया है, तथापि आज से पहले एक भी युद्ध ऐसा नहीं हुआ, जिसमें आज के युद्ध की तरह केवल तलवार के बल से ही विजय का फ़ैसला हुआ हो।”

कर्नल टॉड ने आगे लिखा है कि इस प्रकार सफलताओं से पूर्ण आयु व्यतीत करनेवाले राजस्थान के एक सबसे ज़बरदस्त, विद्वान् और बुद्धिमान् नरेश को मुद्दी-भर वीरों के सामने से इस बेइज्जती के साथ हटना पड़ा। इससे यह कहावत और भी पुष्ट हो गई—

“युद्ध में एक राठोड़ ने दस कछवाहों की बराबरी की।”

इसी के आगे कर्नल टॉड जयपुर-नरेश जयसिंहजी के कवियों द्वारा की गई बख्तसिंहजी की तारीफ़ के विषय में इस प्रकार लिखता है:-

“Jai Singh's own bards could not refrain from awarding the meed of valour to their foes, and composed the following stanzas on the occasion: “Is it the battle cry of Kali, or the war-shout of Hanumanta, or the hissing of Seshnag, or the denunciation of Kapaliswar? Is it the incarnation of Narsingh, or the darting beam of Surya? or the death-glance of the Dakini? or that from the central orb of Trinetra? Who could support the flames from this volcano of steel, when Bakhta's sword became the sickle of time?”

(ऐनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान (क्रक-संपादित), भा० २, पृ० १०५०-१०५१)।

१. ख्यातों में इन्हीं के साथ ‘केकड़ी’ का भी वापस देना लिखा है।

२. राजाधिराज बख्तसिंहजी को मुरलीमनोहरजी का इष्ट था। इसी से उनकी मूर्ति, हाथी के हौदे में बिठलाई जाकर, युद्ध में साथ रखी जाती थी। यही हाथी गँगवाने के युद्ध

महाराजा अभयसिंहजी

सिंहजी (द्वितीय) ने बीच में पड़ इस संधि को पक्की करने के लिये दोनों पक्षों के बीच मित्रता करवा दी। यह घटना वि० सं० १७१८ (ई० सन् १७४१) की है।

वि० सं० १८०० (ई० सन् १७४३) में जयपुर-नरेश जयसिंहजी का स्वर्गवास हो गया, और उनके उत्तराधिकारी राजा ईश्वरीसिंहजी वहाँ की गद्दी पर बैठे^१। इसी वर्ष महाराज अभयसिंहजी ने सेना भेजकर अजमेर के क़िले पर अधिकार कर लिया। यह समाचार सुन जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी ने अजमेर पर चढ़ाई की। इसी समय भट्ट गोविंदराम ने कोटे से ५,००० सवारों के साथ आकर महाराज का पक्ष ग्रहण किया। परंतु अन्त में विना लड़े ही दोनों पक्षों के बीच संधि हो गई। इस से अजमेर महाराजा अभयसिंहजी के अधिकार में ही रह गया। यह घटना वि० सं० १८०१ (ई० सन् १७४४) की है।

वि० सं० १८०४ (ई० सन् १७४७) में महाराज ने बीकानेर पर फिर एक फ़ौज भेजी। उस समय वहाँ पर स्वर्गवासी महाराजा ज़ोरावरसिंहजी के चचा आनन्दसिंहजी के द्वितीय पुत्र गजसिंहजी का अधिकार था। अतः महाराज की सेना को आई देख महाराज गजसिंहजी के बड़े भ्राता अमरसिंहजी भी उससे आ मिले^२। इस पर राजा गजसिंहजी ने बड़ी वीरता से इनका सामना किया। यह घटना श्रावण (जुलाई) महीने की है। इसके बाद महाराज ने एक सेना वहाँ और भेज दी^३। परन्तु कुछ काल बाद ही दोनों पक्षों के बीच संधि हो गई। इससे महाराज की सेना जोधपुर लौट आई।

में भड़ककर शत्रु-सेना में चला गया था। इसी प्रकार राजाधिराज की सेना के क़रीब-क़रीब सारे वीरों के मारे जाने के कारण उनकी दो तोपें भी जयपुरवालों के हाथ लग गई थीं।

१. ख्यातों में इस घटना का आश्विन सुदी १४ को होना लिखा है।
२. क्रॉनोलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इंडिया, पृ० १८३।
३. ख्यातों में लिखा है कि इसी समय महाराज के सेनापति ने राजा किशोरसिंहजी को १२ गाँवों-सहित राजगढ़ का अधिकार सौंप दिया था। उनमें यह भी लिखा है कि महाराज की आज्ञा से राजा किशोरसिंह और पंचोली बालकृष्ण ने जाकर राव उम्मेदसिंहजी को बुँदी पर अधिकार करने में सहायता दी थी।
४. 'बीकानेर की तवारीख़' में अमरसिंह का महाराज के पास सहायता के लिये अजमेर आना और उसी के लिये महाराज का बीकानेर पर फ़ौज भेजना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि अंत में उसे असफल होकर लौटना पड़ा था (देखो पृ० १७३-१७५)।
५. अगली सेना के सेनापति मंडारी खन्सी के मारे जाने से यह नई सेना भेजी गई थी।

मारवाड़ का इतिहास

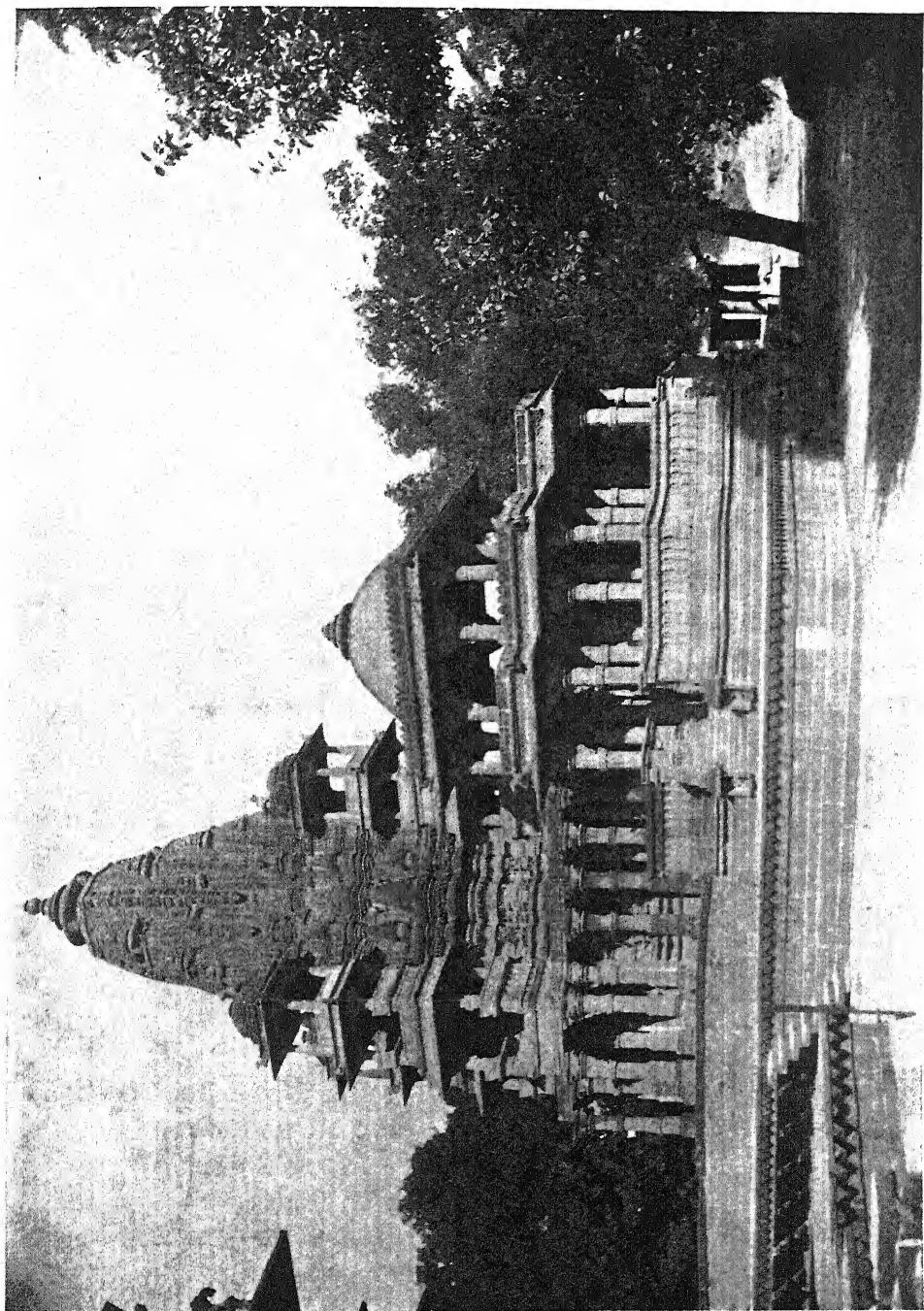
इसी वर्ष के माघ (ई० सन् १७४८ की जनवरी) में अहमदशाह दुर्रानी ने पंजाब पर चढ़ाई की। यह देख बादशाह ने महाराजा अभयसिंहजी और राजा बख्तसिंहजी को अपनी सहायता के लिये दिल्ली बुलवाया। यद्यपि महाराज राज्य के कार्यों में लगे होने से उधर न जा सके, तथापि राजाधिराज बख्तसिंहजी वहाँ जा पहुँचे।

इसके बाद वि० सं० १८०४ की फागुन बदी ५ (ई० सन् १७४८ की ८ फरवरी) को बादशाह ने उन्हें शाहजादे अहमदशाह के साथ शत्रुओं के मुकाबले को भेजा। सरहिंद में युद्ध होने पर अफगान हारकर भाग गए, और लाहौर पर फिर मुहम्मदशाह का अधिकार हो गया।

वि० सं० १८०५ की वैशाख बदी १४ (ई० सन् १७४८ की १५ अप्रैल) को बादशाह मुहम्मदशाह मर गया, और उसका पुत्र अहमदशाह दिल्ली के तख्त पर बैठा। इसके बाद वि० सं० १८०५ की सावन सुदी १ (ई० सन् १७४८ की १५ जुलाई) को उसने राजाधिराज बख्तसिंहजी को गुजरात की सूबेदारी दी। परन्तु उस समय चारों तरफ़ मरहटों के आक्रमण हो रहे थे। अतः उन्होंने गुजरात जाना उचित न समझा, और वह दिल्ली से लौटकर जोधपुर चले आए। यहाँ पर कुछ दिन बाद ही फिर महाराज और बख्तसिंहजी के बीच मनोमालिन्य उठ खड़ा हुआ। परन्तु शीघ्र ही मल्हारराव ने बीच में पड़ दोनों में मित्रता करवा दी।

इसी वर्ष जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी और उनके छोटे भाई माधोसिंहजी के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ। इस पर मल्हारराव होल्कर ने माधोसिंहजी और बूंदी के उम्मेदसिंहजी का पक्ष लेकर जयपुर पर चढ़ाई की। इस समय महाराजा जगतसिंहजी

१. क्रॉनोलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इन्डिया, पृ० १८८।
२. क्रॉनोलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इन्डिया, पृ० १८८। (यद्यपि उसमें उस दिन १८ फरवरी का होना लिखा है, तथापि गणना से १६ सफ़र को ८ फरवरी आती है)।
३. 'क्रॉनोलॉजी ऑफ़ मॉडर्न इन्डिया' में उस दिन हि० सन् ११६१ की २७ रबिउल आखीर को ई० सन् १७४८ की २७ अप्रैल का होना लिखा है। (देखो पृ० १८८)।
४. बाँवे गज़ेटियर, भा० १, खं० १, पृ० ३३२।
५. किसी-किसी ख्यात में लिखा है कि इसी समय महाराज ने बख्तसिंहजी से जालोर लेकर उसकी एक्क में उन्हें डीङवाने का प्रांत दिया था।
६. ख्यातों में साँभर, डीङवाने और जालोर के बारे में मनोमालिन्य होना लिखा है।



महाराजा अजितसिंहजी का स्मारक, मंडोर
 यह वि० सं० १८६० (ई० सं० १८०३) में बनकर तैयार हुआ था ।

महाराजा अभयसिंहजी

(द्वितीय) की प्रार्थना पर महाराज ने भी अपने दो हजार सवार रीयों ठाकुर शेरसिंह और ऊदावत कल्याणसिंह के साथ माधोसिंहजी की सहायता को भेज दिए ।

वि० सं० १८०६ की आषाढ़ सुदी १५ (ई० सन् १७४६ की १६ जून) को अजमेर में महाराजा अभयसिंहजी का स्वर्गवास हो गया ।

महाराजा अभयसिंहजी अपने पिता के समान ही वीर, साहसी, बुद्धिमान् और दानी थे^३ ।

महाराजा अभयसिंहजी के महाराजकुमार का नाम रामसिंहजी था ।

महाराज अभयसिंहजी ने निम्न-लिखित स्थान बनवाए थे:-

अभयसागर तालाब (जोधपुर के चाँदपोल दरवाजे के बाहर), चौखौं गाँव का बगीचा, अठपहलू कूँआ, कोट और महल (इन महलों का बनना प्रारंभ होकर ही रह गया था), महाराजा अजितसिंहजी का देवल (यह मंडोर में है। पर उनके समय

१. इस युद्ध में ईश्वरीसिंहजी की पराजय हुई। इसी से उन्हें उमैदसिंहजी को बूंदी और माधोसिंहजी को टोंक के ४ परगने देने पड़े। (राजपूताने का इतिहास, खण्ड ३ पृ० ६४७)।

२. किशनगढ़ नरेश महाराजा राजसिंहजी के चतुर्थ पुत्र बहादुरसिंहजी पर महाराज की पूर्ण कृपा थी।

३. महाराज ने शायद निम्न-लिखित ७ गाँव दान दिए थे:-

१. आलावास, २. लोलावास (जोधपुर परगने का) ३. कूँपड़ावास (बीलाड़ा परगने का) ४. टाटरवा, ५. रौणावास (मेड़ते परगने का) और ६. चाँचलवा (शेरगढ़ परगने का)। इनमें का पिछला गाँव वि० सं० १७८६ में और बाकी के वि० सं० १७८१ (ई० सन् १७२४) में दिए गए थे। इनके अलावा वि० सं० १७८६ (ई० सन् १७२६) में इन्होंने गोसाईजी को कोटे से बुलवाकर चौपासनी नामक गाँव दिया था, और साथ ही उनके लिये मारवाड़ के प्रत्येक गाँव के पीछे १ रुपया लागू का नियत कर दिया था।

४. वि० सं० १७८२ की फागुन बदी ६ के महाराज की तरफ से लिखे गए एक पट्टे में इनके महाराजकुमार का नाम ज़ोरावरसिंह लिखा है (यह बात पहले भी यथास्थान फुटनोट में लिखी जा चुकी है)।

मारवाड़ का इतिहास

तक यह अधूरा ही रह गया था । इसीसे बाद में वि० सं० १८६० (ई० सन् १८०३) में समाप्त हुआ), मंडोर का दरवाजा (डेवड़ी) और उस पर का मकान, देवताओं की मूर्तियाँ (जो महाराजा अजितसिंहजी की बनवाई पाबू आदि वीरों की मूर्तियों के पास ही पहाड़ काटकर बनवाई गई थीं), उन मूर्तियों का दालान, जोधपुर के किले का पक्का कोट, गोल की तरफ की पूर्वी बुर्जे (ये अधूरी ही पड़ी हैं, और अभयशाही बुर्जों के नाम से प्रसिद्ध हैं), किले में का चौकेलाव का कुँआ, बाग और फतहपौल (यह दरवाजा अहमदाबाद-विजय की यादगार में बनवाया गया था । इस युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद महाराज बहुत-से द्रव्य के साथ ही अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ भी जोधपुर में लाए थे । उनमें का 'दल-बादल' नामक बड़ा शामियाना आज तक बड़े-बड़े दरबारों के समय काम में लाया जाता है, और 'इंद्रविमान' नामक हाथी का रथ सूरसागर नामक स्थान में रखा हुआ है) ।

-
१. जोधपुर के किले में का फतहमहल पर का फूलमहल और कछवाहीजी का महल भी इन्हीं के बनवाए बतलाए जाते हैं ।

२८. महाराजा रामसिंहजी

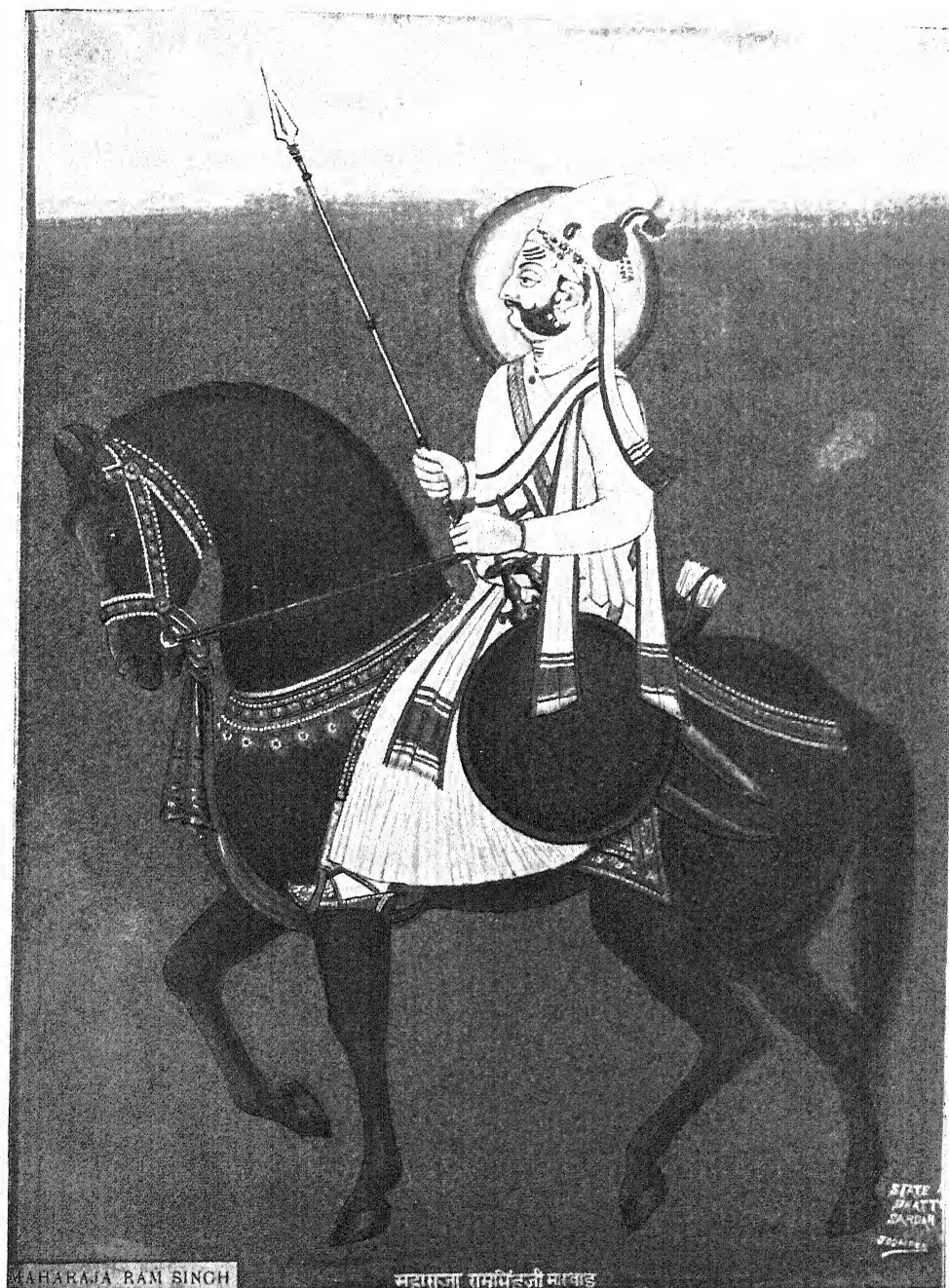
यह मारवाड़-नरेश महाराजा अभयसिंहजी के पुत्र थे। इनका जन्म वि० सं० १७८७ की प्रथम भादों बदी १० (ई० सन् १७३० की २८ जुलाई) को हुआ था; और पिता की मृत्यु के बाद वि० सं० १८०६ की सावन सुदी १० (ई० सन् १७४६ की १३ जुलाई) को यह मारवाड़ की गद्दी पर बैठे। यद्यपि यह भी अपने पिता के समान ही वीर प्रकृति के पुरुष थे, तथापि उस समय केवल उन्नीस वर्ष की अवस्था होने के कारण इनके स्वभाव में चंचलता अधिक थी। इसी से इनके राज्याधिकार प्राप्त कर लेने पर, मुँह-लगे लोगों के कहने-सुनने से, इनके और इनके चचा राजाधिराज बख्तसिंहजी के बीच मनोमालिन्य हो गया और यह उनको जालोर का प्रांत लौटा देने के लिये दवाने लगे। इसी बीच मौडा ठाकुर कुशलसिंह, चंडावल ठाकुर कूँपावत पृथ्वीसिंह, रायण ठाकुर बनैसिंह आदि मारवाड़ के कई सरदार इनसे अप्रसन्न हो गए। उनमें से जब कुछ लोग राजाधिराज बख्तसिंहजी के पास नागोर पहुँचे, तब उन्होंने बड़े आदर-मान के साथ उन्हें अपने पास रख लिया। इससे अप्रसन्न होकर महाराजा रामसिंहजी ने नागोर पर चढ़ाई की। यह देख राजाधिराज बख्तसिंहजी ने भी अपने अधीन के प्रत्येक

१. कुछ ख्यातों से ज्ञात होता है कि महाराजा रामसिंहजी ने, अपने राजतिलक के सम्बन्ध में आया हुआ, अपने चचा की तरफ़ का 'टीका' (उपहार) यह कहकर लौटा दिया था कि जब तक नागोर का प्रांत हमें नहीं सौंपा जायगा तब तक हम यह स्वीकार नहीं करेंगे।
२. ख्यातों से ज्ञात होता है कि अपनी मृत्यु के पूर्व महाराजा अभयसिंहजी ने रीयों के ठाकुर शेरसिंह से राजकुमार रामसिंहजी के पक्ष में बने रहने की प्रतिज्ञा करवा ली थी। परंतु एक बार रामसिंहजी ने उस ठाकुर के एक सेवक को ले लेने का हट किया। इस कारण वह भी अप्रसन्न होकर अपनी जागीर में चला गया। अन्त में जब महाराजा रामसिंहजी ने नागोर पर चढ़ाई की, तब कोसाने के चांदावत देवीसिंह को भेजकर शेरसिंह को नागोर की इस चढ़ाई में साथ देने के लिये सहमत कर लिया और इसके बाद यह स्वयं रीयों जाकर उसे साथ ले आए।

मारवाड़ का इतिहास

समुचित स्थान पर इनके मुकाबले का प्रबंध करवा दिया। इसीसे वहाँ पहुँचने पर महाराज की सेना के आगे बढ़ने में जगह-जगह बाधा उपस्थित होने लगी। फिर भी महाराज अपनी वीर-वाहिनी के साथ, बड़ी वीरता से शत्रुओं का दमन करते और उनकी उपस्थित की हुई बाधाओं को हटाते हुए, नागौर के पास जा पहुँचे। इस पर इनके बढ़ते हुए दल का मार्ग रोकने के लिये स्वयं राजाधिराज को आगे आकर मुकाबला करना पड़ा। कुछ दिनों तक तो दोनों तरफ के राठोड़-वीर आपस में लड़कर अपने ही कुटुंबियों और मित्रों के रक्त से रणभूमि को सींचते रहे। परंतु अन्त में बख्तसिंहजी के जालोर का प्रांत लौटा देने की प्रतिज्ञा कर लेने पर महाराज अपनी सेना के साथ मेड़ते लौट आए। इसके कुछ दिन बाद ही राजाधिराज बख्तसिंहजी, जालोर लौटाने का विचार त्यागकर, बादशाह अहमदशाह की सहायता प्राप्त करने के लिये दिल्ली चले गए। परंतु उस समय मरहटों के उपद्रव के कारण दिल्ली की बादशाहत नाम-मात्र की रह गई थी। इसलिये उधर से सहायता मिलना असंभव था। यह देख राजाधिराज ने 'अमीरुलउमरा' सलाबतख़ाँ (जुल्फिकारजंग) को अजमेर पर अधिकार करने में, मरहटों के विरुद्ध, सहायता देने का वादा कर, उससे जोधपुर पर अधिकार करने में सहायता माँगी। जैसे ही इस घटना की सूचना महाराजा रामसिंहजी को मिली, वैसे ही इन्होंने भी जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी से सहायता प्राप्त करने का प्रबंध कर लिया। इसी बीच रास ठाकुर ऊदावत केसरीसिंह, नीवाज ठाकुर कल्याण-

१. राजाधिराज बख्तसिंहजी ने सोचा कि मार्ग में जिस समय महाराजा रामसिंहजी की सेना देसवाल आदि की गढ़ियों पर अधिकार करने में उलझी होगी, उस समय पीछे से आक्रमण कर उसका शिविर और सामान आसानी से लूट लिया जायगा। परंतु महाराज के साथ के दूरदर्शी सरदारों ने ऐसा अवसर ही न आने दिया।
२. ऐसा भी लिखा मिलता है कि जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी ने कह सुनकर यह प्रबंध कर दिया था कि बख्तसिंहजी को जालोर के बदले अजमेर प्रांत के कुछ स्थान सौंप दिए जायँ और जालोर की मोरचेबंदी को ठीक करने में जो तीन लाख रुपये खर्च हुए हैं, वे भी जोधपुर के खज़ाने से दे दिए जायँ। परंतु जब तक यह रुपया न दिया जाय, तब तक जालोर पर बख्तसिंहजी का ही अधिकार रहे। (तवारीख राज श्री बीकानेर पृ० १७७)।
३. विक्रम-संवत् १८०५ (ईसवी सन् १७४८) में बादशाह अहमदशाह ने इसे अपना 'मीर बख्शी' बनाया था।
४. जयपुर-नरेश महाराजा ईश्वरीसिंहजी की कन्या का विवाह महाराजा रामसिंहजी से होना निश्चित हो चुका था। इसी से वह इनकी सहायता को तैयार हुए थे।



२८. महाराजा रामसिंहजी

वि० सं० १८०६-१८०८ (ई० सं० १७४६-१७५१)

सिंह, आसोप ठाकुर कूँपावत कनीराम और आउवा ठाकुर चाँपावत कुशलसिंह महाराज से नाराज होकर नागौर चले गए; और बखतसिंहजी के दिल्ली में होने के कारण उनके राजकुमार विजयसिंहजी को साथ लेकर जोधपुर-राज्य के बीसलपुर, काकेलाव, बनाड़ आदि गाँवों में उपद्रव करने लगे। कुछ दिन बाद इसी प्रकार पौकरन ठाकुर चाँपावत देवीसिंह और पाली ठाकुर चाँपावत पेमसिंह भी महाराज से अप्रसन्न होकर राजकुमार विजयसिंहजी के पास जा पहुँचे। बीकानेर-नरेश गजसिंहजी और रूपनगर (किशनगढ़) के स्वामी बहादुरसिंहजी ने पहले से ही राजाधिराज का पक्ष ले रखा था। परंतु जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी और मल्हारराव होल्कर, महाराज रामसिंहजी की तरफ़ थे। बखतसिंहजी के दिल्ली से लौट आने पर पीपाड़ के पास दोनों पक्षों के बीच घमसान युद्ध हुआ। ख्यातों में लिखा है कि इस युद्ध के समय बखतसिंहजी ने, सलाबतख़ाँ को समझाकर, सेना-संचालन का भार अपने ज़िम्मे लेना चाहा। परन्तु वह इसमें अपना अपमान समझ, सहमत न हुआ। इससे युद्ध के समय महाराज रामसिंहजी की सेना के ग्रहार से बहुत-सी यवन-सेना नष्ट होगई और रण-क्षेत महा-राजा रामसिंहजी के ही हाथ रहा। यह घटना विक्रम-संवत् १८०७ (ईसवी सन् १७५०) की है।

‘सहर्ल मुताखरीन’ में इस घटना का हाल इस प्रकार लिखा है:—

“हि० स० ११६१ (वि० सं० १८०५=ई० स० १७४८) में राजा बखतसिंह, जो अपने समय के राजपूताने के सब नरेशों में श्रेष्ठ था और जिसकी वीरता और बुद्धिमानी उस समय के सब राजाओं से बढ़ी-चढ़ी थी, दिल्ली आकर बादशाह अहमदशाह से मिला। वह अपने भतीजे राजा रामसिंह से जोधपुर, मेड़ता आदि का अधिकार छीनना चाहता था। इसलिये उसने, हर तरह की मदद देने का वादा कर, जुल्फ़िकार-जंग को अजमेर की सूबेदारी लेने के लिये तैयार किया और इसके बाद वह नागौर को लौट गया। कुछ समय बाद जब ‘अमीरुल उमरा’ (जुल्फ़िकारजंग) को अजमेर की सूबेदारी मिली, तब वह अगले साल के अखीर (वि० सं० १८०६=ई० सन् १७४९) में कई अमीरों के साथ चौदह-पंद्रह हजार सैनिक लेकर दिल्ली से रवाना हुआ। मार्ग में यद्यपि साथ के अमीरों ने उसे बहुत मना किया, तथापि उसने नीमराने के स्वामी जाट-नरेश सूरजमल पर चढ़ाई कर दी। परंतु अन्त में, युद्ध में हार जाने के कारण

मारवाड़ का इतिहास

उसे सूरजमल से संधि करनी पड़ी। इसके बाद जब वह (जुल्फिकार) नारनौल पहुँचा, तब राजा बख्तसिंह भी पूर्व-प्रतिज्ञानुसार वहाँ चला आया। उसके आने का समाचार पाते ही जुल्फिकार सामने जाकर उसे लिवा लाया। उस समय राजा ने उसे जाट-नरेश सूरजमल की अधीनता स्वीकार कर लेने के कारण बहुत धिक्कारा। इसके बाद बख्तसिंह और जुल्फिकारजंग दोनों अजमेर की तरफ़ रवाना हुए। इनके गोकलघाट के करीब (अजमेर के निकट) पहुँचने पर राजा रामसिंह भी जयपुर के राजा ईश्वरीसिंह के साथ तीस हज़ार सवार लेकर इनके मुकाबले को चला। 'अमीरुलउमरा', जुल्फिकारजंग राजा बख्तसिंह के साथ पुष्कर, शेरसिंह की रीयाँ और मेड़ते होता हुआ पीपाड़ के पास पहुँचा। यहाँ पर बख्तसिंह ने 'अमीरुल उमरा' को समझाया कि जिस मार्ग से शाही सेना चल रही है, उस मार्ग में रामसिंह का तोपखाना लगा है। इसलिये तुमको इधर-उधर का ध्यान छोड़कर मेरे पीछे-पीछे चलना चाहिए। परंतु मूर्ख और अभिमानी जुल्फिकार ने जवाब दिया कि आदमी एक दफ़ा जिधर मुँह कर लेते हैं फिर उधर से उसे नहीं मोड़ते। इस पर बख्तसिंह को लाचार हो, शत्रु की तोपों की मार से बचने के लिये, जुल्फिकार की सेना से हटकर चलना पड़ा। अपनी तोपों के पीछे खड़ी राजा रामसिंह की राजपूत-सेना भी जुल्फिकार की सेना के अपनी मार के भीतर पहुँचने तक धीरज बांधे खड़ी रही। परंतु जैसे ही उसकी फ़ौज राजपूत-सेना की तोपों की मार में आ गई, वैसे ही उसने उस पर गोले बरसाने शुरू कर दिए। इससे जुल्फिकार के बहुत से सिपाही मारे गए। यह देख मुग़ल-फ़ौज ने भी झटपट अपनी तोपों को ठीक कर युद्ध छेड़ दिया। कुछ देर की गोलाबारी के बाद मुग़ल-सेना को पानी की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। परंतु उस मैदान में पानी का कहीं भी पता न था। इससे प्यास के मारे वह और भी घबरा गई। इसके बाद जैसे ही राजा रामसिंह के तरफ़ की गोलाबारी का वेग़ घटा, वैसे ही वह मैदान छोड़ पानी की तलाश करने लगी, और उसकी खोज में भटकती हुई संयोग से राजा रामसिंह की सेना के सामने जा पहुँची। उसकी यह दशा देख राजपूत सैनिकों ने अपने आदमियों को उसके लिये जल का प्रबन्ध कर देने की आज्ञा दी और उन्होंने कुओं से पानी निकालकर मुग़ल-सैनिकों को और उनके घोड़ों को तृप्त कर दिया। इस प्रकार अपने शत्रुओं को स्वस्थ हुआ देख राजपूतों ने उनसे कहा कि इस समय तुम्हारे और हमारे बीच युद्ध चल रहा है, इसलिये अब तुम्हें यहाँ से शीघ्र भाग जाना चाहिए ”।

इसी के आगे 'सहरूल मुताखरीन' का लेखक लिखता है—“यद्यपि यह घटना अपूर्व है, तथापि मैंने इसे अपने मौसरे भाई इस्माइलखान की जबानी, जो उस समय जुल्लिकारजंग के साथ था, सुनकर ही लिखा है। इसलिये यह बिल्कुल सही है। राजपूतों का यह गुण और उच्च-स्वभाव प्रशंसनीय है। ईश्वर उनको और भी सद्गुण दे।” इसके बाद यद्यपि बखतसिंह ने जुल्लिकारजंग को हर तरह से समझाकर हिम्मत बँधानी चाही, तथापि वह घबराकर अजमेर की तरफ़ होता हुआ लौट गया। इस युद्ध में मल्हारराव होल्कर का पुत्र और जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंह रामसिंह की तरफ़ थे, फिर भी बखतसिंह ने रसद आदि के संग्रह करने में चतुरता से और युद्ध में वीरता से काम लिया था। परन्तु जुल्लिकारजंग के इस प्रकार हतोत्साह होकर लौट जाने से उसे भी युद्ध से मुँह मोड़ना पड़ा।”

वि० सं० १८०७ की कार्तिक सुदी ६ (ई० सन् १७५० की २८ अक्टोबर) को बखतसिंहजी ने मेड़ते पर चढाई की^३। परन्तु इसमें भी उन्हें सफलता नहीं

१. شنیده شد که، قتل‌وصف‌الذہار چون توپہا نہایت کرم شدند و تاثرہ حرب افسردگی پذیرفت در نواح راجپوتانہ خصوص دران - میدان کہ قلہ آب بہر تہہ اتم، اکمل است، رفقاء امیرالامرا بذاب بے آبی مضطرب گشتہ در تفحص آب اکثرے تا نزدیک لشکر رام سنگھ رسیدند— راجپوتیہ اثر عطش از سیمائے آنها دریافتہ از چاہ ہا بدست ملازمان خود آب کشایدہ اسپ و سوار را سیواپ گردانیدند، گفتند الکال برگردید کہ میان ما، شما جنگ است حکایہ احوال ذوالفقار جنگ، آب دادن راجپوتیہ بدشمنان نہایت صحت دارد— چہ سید اسمعیل علی خان بہادر خلف عبدالعلی خان بوند در خالواذ فقیر دران سفر رفیق و شریک آن لشکر بود— فقیر از زبان او اجتماع نمودہ بسلاک تکریر کشیدہ این صفت راجپوتان از عجائب اوصاف و معامد اخلاق است، و تعالیٰ جمع اصناف اہم عالم، و صفات حمیدہ، اخلاق پسندیدہ کرامت فرماید—

(सहरूल मुताखरीन, भा० ३, पृष्ठ ८८५)।

२. संभव है, यह खँडिराव हो, जो वि० सं० १८११ (ई० सन् १७५४) में जाट-नरेश सूरजमल से लड़ता हुआ डींग में मारा गया था।

३. इस अवसर पर महाराजा रामसिंहजी की तरफ़ से रीयों के ठाकुर शेरसिंह और राजाधिराज बखतसिंहजी की तरफ़ के आठवे के ठाकुर कुशलसिंह के बीच बड़ी वीरता से युद्ध हुआ। अन्त में दोनों ही थोड़ा आपस में लड़कर वीरगति को पहुँचे। यह युद्ध वि० सं० १८०७ की अगहन सुदी ६ (ई० सन् १७५० की २६ नवम्बर) को हुआ था।

मारवाड़ का इतिहास

मिली'। यह देख उन्होंने बीकानेर-नरेश गजसिंहजी और रूपनगर (किशनगढ़)-नरेश बहादुरसिंहजी को साथ लेकर रायपुर पर आक्रमण किया और वहां के ठाकुर को अधीनस्थ करने के बाद सोजत पर भी अधिकार कर लिया। वि० सं० १८०८ के वैशाख (ई० सन् १७५१ के अप्रैल) में महाराजा रामसिंहजी के और बख्तसिंहजी के बीच सलावास में युद्ध हुआ और इसके बाद 'रूपावास' आदि में भी कई लड़ाइयां हुई। अन्त में जैसे ही महाराज लौटकर जोधपुर पहुँचे, वैसे ही राजाधिराज के मेड़ते की तरफ आने की सूचना मिली। इसलिये यह जोधपुर में केवल एक रात रहकर शीघ्र ही मेड़ते जा पहुँचे। इसकी खबर पाते ही बख्तसिंहजी गगराणे में ठहर गए, और उन्होंने रास-ठाकुर केसरीसिंह की सलाह से, जैतारण होकर बलूदे पर चढ़ाई की। परन्तु मार्ग में बांजाकूड़ी के मुकाम पर बलूदे के ठाकुर ने स्वयं आकर उनकी अधीनता स्वीकार करली। इसलिये वह उधर न जाकर नींबाज की तरफ चले। वहाँ के ठाकुर कल्याणसिंह ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। इसके बाद वह रायपुर होकर बीलाड़े और पाल को लूटते हुए, वि० सं० १८०८ के आषाढ़ (ई० सन् १७५१ के जून) में, जोधपुर पर अधिकार करने के विचार से, रातानाडा-तालाब के स्थान पर आकर ठहरे।

वि० सं० १८०७ (ई० सन् १७५०) में जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी का देहान्त हो चुका था। इसलिये महाराजा रामसिंहजी को उस तरफ से सहायता मिलनी बंद हो गई थी। इधर मारवाड़ के मेड़तिये सरदारों के सिवा करीब-करीब अन्य सभी सरदार महाराज से बदल गए थे। इसी से जोधपुर पर बख्तसिंहजी के आक्रमण करने पर कुछ ही देर की लड़ाई के बाद नगर के सिंधी सिपाहियों ने जोधपुर-शहर का सिवानची नामक दरवाजा खोल दिया। इस घटना से नगर पर राजाधिराज बख्तसिंहजी का अधिकार

१. 'तवारीख राज श्री बीकानेर' में इसी वर्ष की अगहन बदी ६ (ई० स० १७५० की ११ नवंबर) को मेड़ते के युद्ध में रामसिंहजी का हारना लिखा है। (पृ० १७८)। इसी के बाद की लड़ाई में रीयों का ठाकुर शेरसिंह मारा गया था।

२. इस विषय का यह दोहा मारवाड़ में प्रसिद्ध है:—

“रामे हूँ राजी नहीं, दीनो उत्तर देश।

जोधायो माला करै, आव धणी बखतेश॥”

३. यह घटना वि० सं० १८०८ की आषाढ़ बदी १० (ई० सन् १७५१ की ७ जून) की है।

हो गया। यह देख किलेवालों ने कुछ देर तक तो गोलाबारी कर इनका सामना किया, परन्तु अन्त में वि० सं० १८०८ की सावन बदी २ (ई० सन् १७५१ की २६ जून) को किले पर भी राजाधिराज का अधिकार हो गया। जब इस घटना की सूचना महाराजा रामसिंहजी को मिली, तब यह शीघ्र ही जोधपुर की तरफ चले। परन्तु राजाधिराज ने नगर के द्वार बंद करवाकर उसकी रक्षा का पूरा-पूरा प्रबंध कर लिया था। इससे नगर को कुछ दिन तक घेर रखने पर भी रामसिंहजी को सफलता न मिली। यह देख यह सिंधिया से सहायता प्राप्त करने के लिये जयपुर की तरफ चले गए। वि० सं० १८०९ (ई० सन् १७५२) में सिंधिया की सहायता से रामसिंहजी ने एक बार फिर जोधपुर पर चढ़ाई की। इससे कुछ दिन के लिये अजमेर और फलोदी पर इन (रामसिंहजी) का अधिकार हो गया। परन्तु शीघ्र ही इन्हें उक्त स्थानों को छोड़कर रामसर होते हुए मंदसोर की तरफ जाना पड़ा। अन्त में बहुत कुछ चेष्टा करने के बाद बख्तसिंहजी को साँभर का परगना इन्हें सौंप देना पड़ा। वि० सं० १८११ (ई० सन् १८५४) में विजयसिंहजी (बख्तसिंहजी के पुत्र) के समय, मरहटों (जय आपा सिंधिया) की सहायता से, इन्होंने

१. नगर में प्रवेश करने पर राजाधिराज ने अपना निवास तलहटी के महलों में किया था। 'तवारीख राज श्री बीकानेर' में लिखा है कि वि० सं० १८०८ की आषाढ़ सुदी ६ (ई० सन् १७५१ की २१ जून) को चार पहर तक जोधपुर-नगर लूटा गया। (पृ० १७८)। परंतु ज्ञात होता है कि इसमें 'बदी' के स्थान में 'सुदी' और तिथि 'दशमी' के स्थान में 'नवमी' भूल से लिखी गई है।

२. 'तवारीख राज श्री बीकानेर' में लिखा है कि उस समय जोधपुर का किला भाटी राजपूतों की देख-रेख में था (पृ० १७८)। मारवाड़ की ख्यातों में किलेदार का नाम भाटी सुजानसिंह लिखा है। यह लवरे का ठाकुर था। इस विषय का यह दोहा प्रसिद्ध है:-

“थारो नाम सुजाण थो, अबके हुआ अजाण।

आश्रम चौथे आवियो, औ चूको अवसाण।”

बख्तसिंहजी को किला सौंपने में सांचोर का चौहान मोहकमसिंह भी शरीक था। इसलिये बख्तसिंहजी, इन दोनों से, अपने स्वामी महाराजा रामसिंहजी के साथ विश्वासघात करने के कारण, नाराज हो गए थे।

३. ग्रांट डफ की 'हिस्ट्री ऑफ मरहटाज़' में इस घटना का समय ई० सन् १७५६ (वि० सं० १८१६) लिखा है (भाग १, पृ० ५१३)। यह भूल प्रतीत होती है। वि० सं० १८११ की पौष बदी १० का, रामसिंहजी का एक खास रुका मिला है। यह ताउसर (नागौर के निकट) से लिखा गया था। संभव है, उस समय मरहटों के साथ होने से यह उधर भी गए हों।

मारवाड़ का इतिहास

फिर एक बार अपना गया हुआ राज्य प्राप्त करने की चेष्टा की। परन्तु अन्त में इन्हें मारवाड़ के सिवाना, मारोठ, मेड़ता, सोजत, परबतसर, साँभर और जालोर प्रांत लेकर ही सन्तोष करना पड़ा। वि० सं० १८१३ (ई० सन् १७५६) में अपने अधिकृत प्रांतों के महाराजा विजयसिंहजी द्वारा छीन लिए जाने पर महाराजा रामसिंहजी ने फिर मरहठों से सहायता ली थी। वि० सं० १८२६ की भादों सुदी ६ (ई० सं० १७७२ की ३ सितम्बर) को जयपुर में महाराजा रामसिंहजी का स्वर्गवास हो गया।

-
१. किसी-किसी ख्यात में इनकी मृत्यु की तिथि माघ सुदी ७ (ई० सं० १७७३ की ३० जनवरी) भी लिखी मिलती है। कहते हैं कि महाराजा रामसिंहजी ने १ टेला (मेड़ते परगने का) चारखों को और २ बासणी-सेपां (जोधपुर परगने का) पुरोहितों को दिए थे।

महाराजा रामसिंहजी के हाथ से जोधपुर निकल जाने के बाद की घटनाओं का यहां पर संक्षिप्त विवरण ही दिया गया है; क्योंकि उनका विस्तृत विवरण महाराजा बख्तसिंहजी और महाराजा विजयसिंहजी के इतिहासों में लिखा जायगा।

२६. महाराजा बख्तसिंहजी

यह महाराजा अजितसिंहजी के पुत्र और महाराजा अभयसिंहजी के छोटे भाई थे। इनका जन्म वि० सं० १७६३ की भादों बदी ७ (ई० सन् १७०६ की १६ अगस्त) को हुआ था। वि० सं० १८०८ की सावन बदी २ (ई० सन् १७५१ की २६ जून) को इन्होंने अपने भतीजे महाराजा रामसिंहजी को हराकर जोधपुर की गद्दी पर अधिकार कर लिया। इसके बाद ही इनके राजकुमार विजयसिंहजी ने चढ़ाई कर भाद्राजन भी ले लिया।

कुछ दिन बाद जब जय-आपा सिंधिया की सहायता से रामसिंहजी ने अजमेर और फलोदी पर फिर से अधिकार कर लिया, तब इन्होंने मेड़ते से डाबड़े के ठाकुर चौदावत बहादुरसिंह को एक बड़ी सेना के साथ उधर खाना किया, और साथ ही रामसिंहजी के साथ के सरदारों के नाम की बनावटी चिट्ठियाँ लिखवाकर, एक सेवक के हाथ, बड़ी चालाकी से, मरहटा फौज के सेनापति, सायबजी पटेल के पास पहुँचा दीं। इससे उसे उन सरदारों के महाराजा बख्तसिंहजी से मिले होने का भ्रम हो गया और वह बबराकर रामसिंहजी को साथ लिए रामसर की तरफ चला गया। इसप्रकार रामसिंहजी के एकाएक मरहटों के साथ चले जाने से उनके साथ के कुछ सरदार तो डर कर अपनी-अपनी जागीरों को लौट गए और कुछ रामसिंहजी के पास रामसर जा पहुँचे। इससे मौका पाकर बहादुरसिंह ने सहज ही अजमेर के किले पर अधिकार कर लिया। अन्त में जब सायबजी पटेल को सरदारों के नाम के पत्रों का बनावटी होना ज्ञात हुआ, तब वह बहुत पछताया। परंतु समय हाथ से निकल चुका था। इसलिये वह दक्षिण को चला गया और रामसिंहजी मंदसोर जा बैठे।

१. मन्नासिंह उमरा, में लिखा है:-

अजितसिंह के दो लड़के थे। पहला अभयसिंह और दूसरा बख्तसिंह। बाप के मरने पर यही बख्तसिंह मुल्क पर काबिज हुआ (भा० ३, पृ० ७५६)।

परंतु उसमें का यह लेख भ्रम-पूर्ण है।

२. इस घटना के पहले का इनका इतिहास महाराजा अजितसिंहजी, अभयसिंहजी और रामसिंहजी के इतिहासों के साथ दिया जा चुका है।

३. ख्याती में लिखा है कि आपाजी ने सायबजी पटेल को सेना देकर इनके साथ कर दिया था। परंतु कर्नेल टॉड ने महादजी पटेल का सेना लेकर इनके साथ आना लिखा है। (एनाल्स ऐंड ऐट्रिब्यूट्स ऑफ राजस्थान, भा० २, पृ० १०५८)।

मारवाड़ का इतिहास

इस भगड़े से छुट्टी पाकर महाराजा बख्तसिंहजी ने जयपुर की तरफ यात्रा की। इनके साथ ली^१ स्थान पर पहुँचने पर जयपुर-नरेश महाराजा माधवसिंहजी भी सामने आकर इनसे मिले। महाराजा बख्तसिंहजी का विचार था कि यदि जयपुर-नरेश साथ देने को तैयार हों, तो मरहटों पर चढ़ाई कर उन्हें मालवे से भगा दिया जाय। परंतु इस विचार को कार्य-रूप में परिणत करने के पूर्व, वहीं पर, यह बीमार हो गए और वि० सं० १८०६ की भादों सुदी १३ (ई० सन् १७५२ की २१ सितंबर) को उसी स्थान पर इनका स्वर्गवास हो गया।

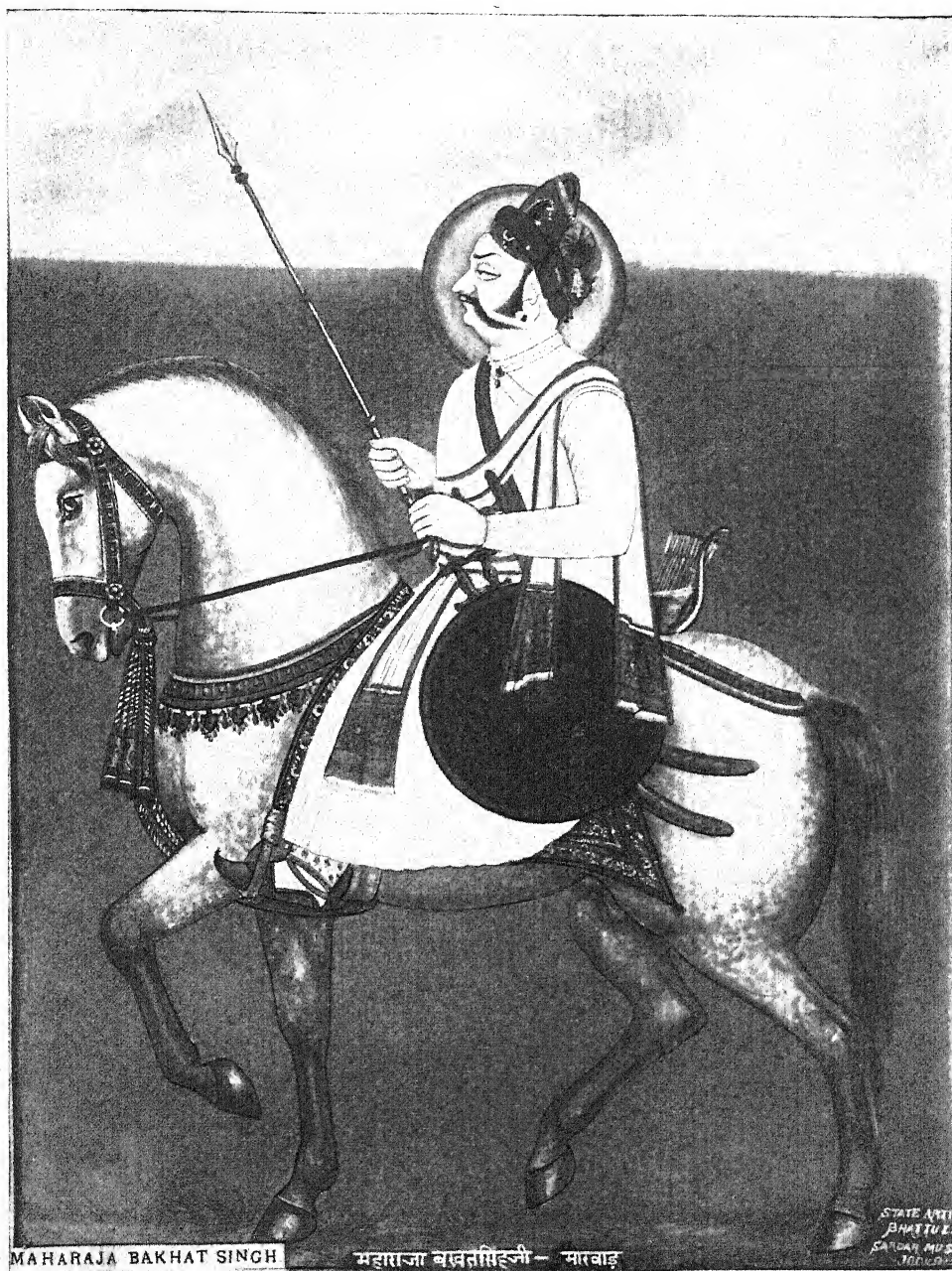
महाराजा बख्तसिंहजी वीर, बुद्धिमान्, नीतिज्ञ और कार्य-कुशल शासक थे। जोधपुर लेने के पूर्व नागोर का प्रबंध भी इन्होंने बड़ी खूबी के साथ किया था। साथ ही वहाँ के किले को सुदृढ़ और सुसज्जित करने में भी इन्होंने कोई कसर उठा न रक्खी थी। यद्यपि यह जोधपुर की गद्दी पर बैठने के १३ मास बाद ही स्वर्गवासी हो गए थे, तथापि इन्होंने यहाँ के प्रबंध में भी बहुत कुछ सुधार किए थे। मुरलीमनोहरजी के मंदिर के सामने की और नौ चौकियों की घनी बस्ती के कुछ मकानों और दूकानों को गिरवाकर वहाँ पर नगर-वासियों के स्वास्थ्य के लिये चौक बनवा दिए थे; और गिराए गए

१. यह स्थान जयपुर-राज्य में है।

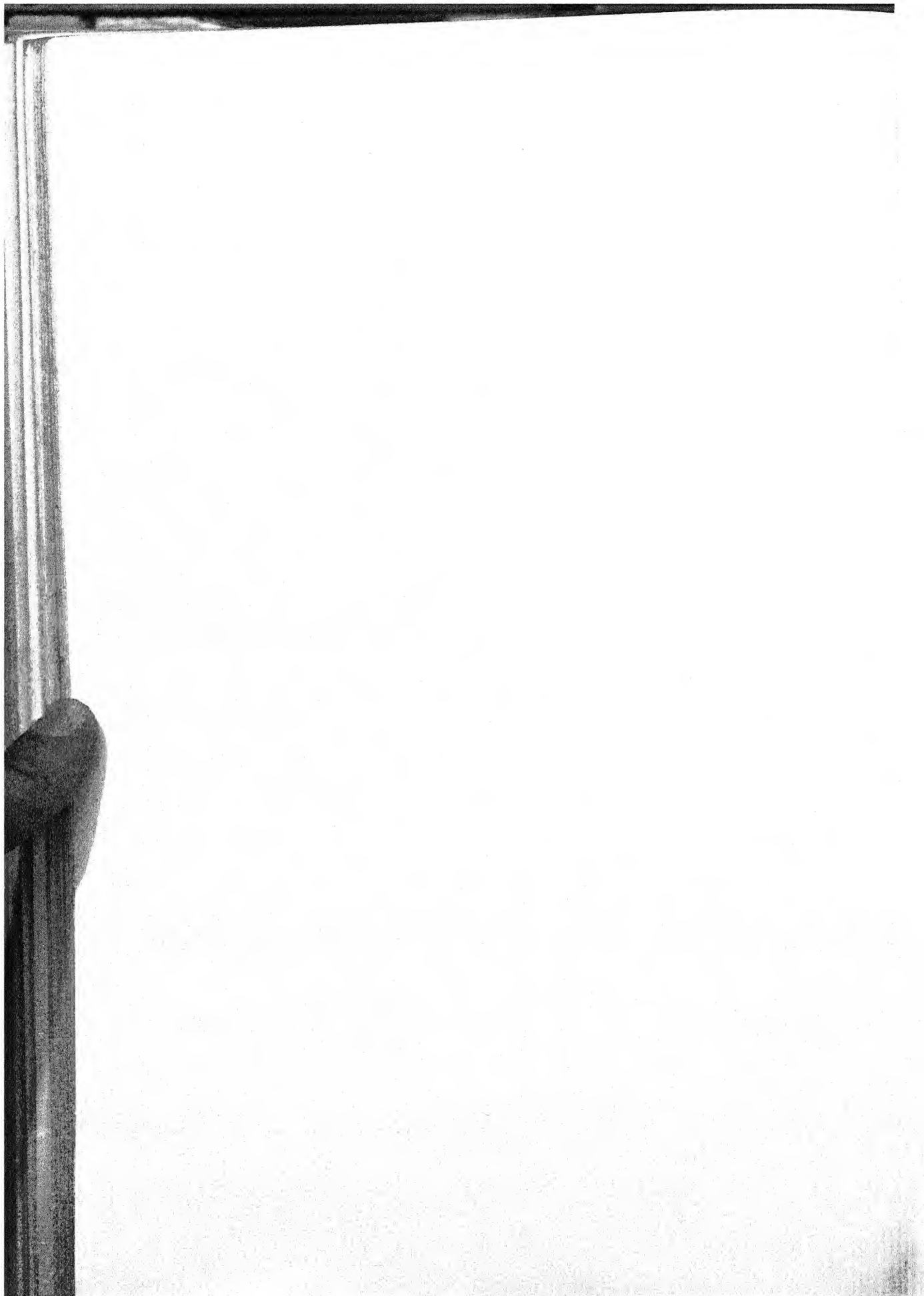
२. ख्यातों में लिखा है कि महाराजा बख्तसिंहजी जयपुर-नरेश महाराजा माधवसिंहजी को साथ लेकर मरहटों पर चढ़ाई करना चाहते थे। मेवाड़-नरेश महाराजा जगतसिंहजी द्वितीय की भी इस कार्य में सम्मति थी। परंतु जगतसिंहजी का स्वर्गवास तो इनके जोधपुर लेने के पहले ही हो गया, और माधवसिंहजी को इस कार्य में साथ देने का साहस न हुआ। साथ ही उन (माधवसिंहजी) को यह भय हुआ कि बख्तसिंहजी के जयपुर की तरफ आने से कहीं उनके राज्य में भी कोई बखेड़ा न उठ खड़ा हो। इसलिये उन्होंने अपनी रानी से, जो किशनगढ़-नरेश की कन्या होने के कारण महाराज की भतीजी थी, कहकर महाराज को उससे मिलने के लिये बुलवाया, और वहाँ पर इन्हें एक ऐसा फूलों का हार पहनवाया, जिसके विषाक्त स्पर्श से यह शीघ्र ही बीमार होकर स्वर्गवासी हो गए।

वि० सं० १८२२ (ई० सन् १७६५) में इनके राजकुमार महाराजा विजयसिंहजी ने उक्त स्थान पर इनका एक स्मारक बनवाया था। यह अब तक विद्यमान है।

३. इन्होंने महाराजा बहादुरसिंहजी को किशनगढ़ पर अधिकार करने में सहायता दी थी। इसीसे बादशाह अहमदशाह के मदद देने पर भी उनके बड़े भ्राता शामंतसिंहजी वहाँ पर अधिकार करने में सफल न हो सके।



२६. महाराजा बखतसिंहजी
 वि० सं० १८०८-१८०९ (ई० सं० १७५१-१७५२)



महाराजा बखतसिंहजी

मकानों और दूकानों के स्वामियों को हरजाना देकर संतुष्ट कर दिया था। सर्वसाधारण के सुभीते के लिये, शहर के बीच, कोतवाली का स्थान बनवाया था। इसी प्रकार 'मंडी' में की मसजिद गिरवाकर वहाँ पर नाज की विक्री के लिये एक चौक बनवाया था। राव मालदेवजी के समय की बनी शहरपनाह का घिराव कम होने के कारण उसका फिर से विस्तार करवाया था। यह कार्य इन्होंने अपनी कुशलता से केवल ६ मास में ही संपूर्ण करवा लिया था। साथ ही इन्होंने जोधपुर के किले में भी अनेक सुधार किए थे। महाराजा जसवंतसिंहजी (प्रथम) का बनवाया महल गिरवाकर दौलतखाने का चौक बनवाया, और लोहापौल के पास के कोठारों को तुड़वाकर वहाँ का मार्ग चौड़ा करवा दिया। इनके अलावा किले में की मसजिद हटवाकर जनानी डेवदी की नई पौल (दरवाजा), नई सूरजपौल, आनंदघनजी का मंदिर आदि स्थान बनवाए।

महाराजा बखतसिंहजी के महाराजकुमार का नाम विजयसिंहजी था।

महाराजा बखतसिंहजी ने, घटना-वश, चारणों और पुरोहितों से अप्रसन्न होकर उनके अनेक गाँव ज़ब्त कर लिए थे। परंतु अन्त समय पौकरन ठाकुर देवीसिंह की प्रार्थना पर वे सब-के-सब वापस कर दिए।

'सहस्रल मुताखरीन' के लेखक गुलामहुसैनखाँ ने और कर्नल जेम्स टॉर्ड ने इनकी वीरता और बुद्धिमानी की बड़ी तारीफ़ लिखी है; और इन्हें अपने समय का श्रेष्ठ योद्धा और बुद्धिमान् शासक लिखा है।

१. ख्यातों में लिखा है कि यद्यपि महाराज के अंत समय वे चारण और पुरोहित, जिनके गाँव ज़ब्त कर लिए गए थे, उपस्थित न थे, तथापि स्वयं ठाकुर देवीसिंह ने महाराज के हाथ से संकल्प का जल ग्रहण कर दान का कार्य संपन्न किया था।

इसके अलावा बखतसिंहजी ने और भी कई गाँव दान किए थे:-

१ इंद्रपुरा (डीडवाने परगने का, वि० सं० १७८५ में) नाथद्वारेवालों को, २ इंद्रपुरा (डीडवाने परगने का वि० सं० १७८६ में) और ३ चंगावड़ा छोटा (जोधपुर परगने का वि० सं० १८०८ में) चारणों को, ४ धुनाडी (नागोर परगने का वि० सं० १७८६ में) पुरोहितों को और ५ गुणसल्ली (मेड़ते परगने का १८०८ में) पीरज़ादों को दिया था। इसी प्रकार कीरतपुरे की २,००० बीघा भूमि भी चारणों को दी थी।

२. इसका खुलासा उल्लेख महाराजा रामसिंहजी के इतिहास में किया जा चुका है।

३. इसका कुछ वर्णन महाराजा अभयसिंहजी के इतिहास में दिया गया है।

मारवाड़ का इतिहास

कर्नल टॉड ने एक स्थान पर लिखा है^१:-

बख़ता (महाराजा बख़तसिंह) प्रसन्न चित्त, बिल्कुल निर्भय और अत्यधिक दानी होने के कारण एक आदर्श राजपूत था। उसका रूप तेजस्वी, शरीर बलिष्ठ और बुद्धि स्थानिक-साहित्य में पारंगत थी। वह एक श्रेष्ठ कवि था। यदि उसके हाथ से एक बड़ा अपराध न हुआ होता, तो वह भविष्य संतति के लिये, राजस्थान में होनेवाले राजाओं में, सब से श्रेष्ठ आदर्श नरेश होता। इन गुणों के कारण वह केवल अपने बंधुओं का ही प्रिय नहीं था, बल्कि अन्य बाहर के संबंधी भी उसका आदर करते थे।

कर्नल टॉड ने आगे फिर लिखा है^२:-

यदि बख़तसिंह कुछ वर्षों तक और जीवित रहता तो अधिक संभव था कि राजपूत, सारे हिंदोस्तान में, फिर से अपना पुराना अधिकार प्राप्त कर लेते।

१. "There was a joyousness of soul about Bakhat which united to an intrepidity and a liberality alike unbounded, made him the very model of a Rajput. To these qualifications were superadded a majestic mien and Herculean frame, with a mind versed in all the literature of his country, besides poetic talent of no mean order; and but for that one damning crime, he would have been handed down to posterity as one of the noblest princes Rajwara ever knew. These qualities not only riveted the attachment of the household clans, but secured the respect of all his exterior relations,....."

एनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० १०५७।

२. "Had he been spared a few years to direct the storm then accumulating, which transferred power from the haughty Tatar of Delhi to the present soldier of the Kistna, the probability was eminently in favour of the Rajputs resuming their ancient rights throughout India."

एनाल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० १०५८।

३० महाराजा विजयसिंहजी

यह महाराजा बख्तसिंहजी के पुत्र थे । इनका जन्म वि० सं० १७८६ की^१ मँगसिर वदि ११ (ई० सन् १७२६ की ६ नवम्बर) को हुआ था । जिस समय सींधोली के मुकाम पर इनके पिता का स्वर्गवास हुआ, उस समय यह मारोठे (मारवाड़) में थे । पिता की अचानक मृत्यु का समाचार मिलने पर वहीं पर, वि० सं० १८०६ की भादों सुदि (ई० सन् १७५२ के सितम्बर) में, यह गद्दी पर बैठे^३ । इसके बाद यह मेड़ते होते हुए जोधपुर पहुँचे और वि० सं० १८०६ की माघ वदि १२ (ई० सन् १७५३ की ३१ जनवरी) को यहां पर इन्होंने अपने राज-तिलक का उत्सव मनाया ।

१. कहीं-कहीं संवत् १७८७ भी लिखा मिलता है ।
२. ख्यातों में लिखा है कि-इस अवसर पर महाराजा अजितसिंहजी के पुत्र किशोरसिंह ने भिणाय पर अधिकार कर लिया था । परन्तु महाराजा विजयसिंहजी ने मारोठ से रास-ठाकुर केसरीसिंह, भाटी किशनसिंह, आदि को वहाँ भेज दिया । इससे किशोरसिंह युद्ध में मारा गया और भिणाय फिर महाराज के शासन में आगया ।
३. महाराजा विजयसिंहजी के समय का, वि० सं० १८०६ की माघ वदि १ (ई० सन् १७५३ की २० जनवरी) का, एक लेख फलोदी से मिला है । इसमें इनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम फतैसिंह लिखा है । [जर्नल बंगाल एशियाटिक सोसाइटी (ई० सन् १८१६), पृ० १००] ।
४. एक ख्यात में माघ के बदले मँगसिर लिखा है ।
५. जोधपुर के किले में एक संगमरमर का चबूतरा बना है । इसे 'शृंगार चौकी' कहते हैं और इसी पर यहां के महाराजाओं का राज-तिलक होता है । इस पर वि० सं० १८१० की माघ वदि ५ रविवार (ई० सन् १७५४ की १३ जनवरी) का एक लेख खुदा है । उससे ज्ञात होता है कि यह चौकी विजयसिंहजी के राज्य समय उक्त तिथि को बन कर तैयार हुई थी । इस लेख में इनके महाराज कुमार का नाम फतैसिंह लिखा है । परन्तु उनकी मृत्यु महाराज की जीवितावस्था में ही हो गई थी ।

मारवाड़ का इतिहास

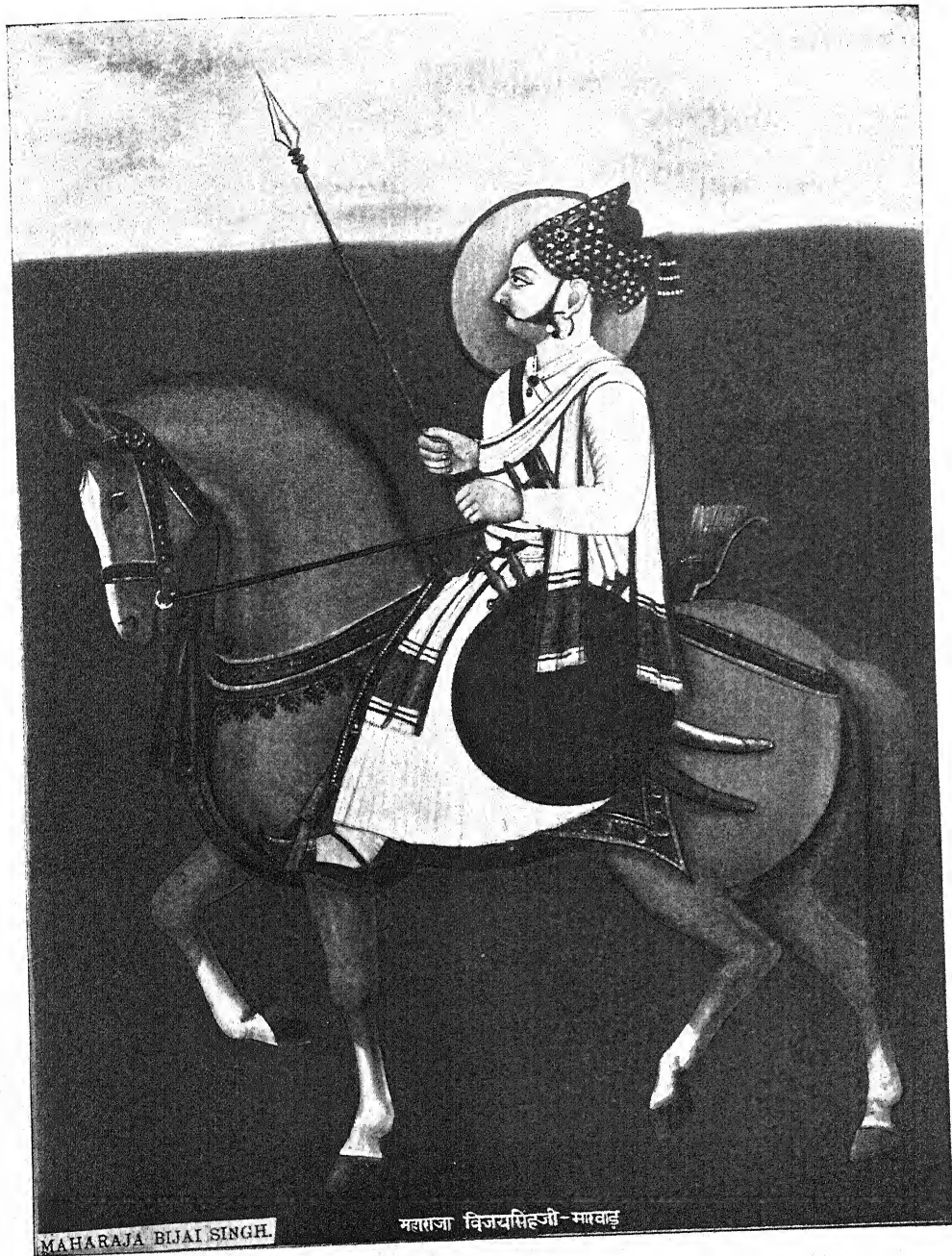
वि० सं० १८११ (ई० सन् १७५४) में रामसिंहजी ने जयापा सिंधिया की सहायता प्राप्त कर अपने गए हुए राज्य को फिर से प्राप्त करने के लिये मारवाड़ पर चढ़ाई की। इस पर महाराजा विजयसिंहजी जोधपुर का प्रबन्ध कर, शत्रु सैन्य का सामना करने के लिये, मेड़ते जा पहुँचे। बीकानेर-नरेश गजसिंहजी और किशनगढ़-नरेश बहादुरसिंहजी भी, अपनी अपनी सेनाएं लेकर, महाराज की मदद को वहाँ आ गए।

कुछ दिनों बाद जब रामसिंहजी जयापा को साथ लिए, किशनगढ़ को लूटते हुए, अजमेर पर अधिकार कर, पुष्कर पहुँचे और वहाँ से आगे बढ़ आलणियावास को लूटते हुए गंगारडे में ठहरे, तब महाराजा विजयसिंहजी भी अपने दलबल सहित उनके मुकाबले को चले। इससे शीघ्र ही दोनों तरफ की सेनाओं के बीच युद्ध शुरू हो गया।

इसी बीच मरहटों की सेना का एक भाग उदावत भरतसिंह की अध्यक्षता में जैतारण में इकट्ठा हुआ। परन्तु डेवड़ी का दारोगा अणदू शीघ्र ही मेड़ते से कुछ चुने हुए वीरों को लेकर वहाँ जा पहुँचा। इससे मरहटों को हारकर जैतारण से लौट जाना पड़ा।

यद्यपि गंगारडे में भी पहली बार के युद्ध में महाराजा विजयसिंहजी की ही विजय हुई थी, तथापि वि० सं० १८११ की आसोज वदि १३ (ई० सन् १७५४ की १४ सितम्बर) को, दूसरी बार के युद्ध में महाराज का तोपखाना पीछे छूट जाने

१. ख्यातों में दत्ताजी का भी इस चढ़ाई में साथ होना लिखा है। इस युद्ध में जयपुर-नरेश माधवसिंहजी प्रथम ने रामसिंहजी की सहायता की थी। (अजमेर, पृ० १७०)।
२. किशनगढ़ राज्य के दावेदार, सामन्तसिंहजी के पुत्र, सरदारसिंहजी भी मरहटों के साथ थे; क्योंकि जयापा ने उनके चचा बहादुरसिंहजी से किशनगढ़-राज्य का अधिकार छीन कर, उन्हें वहाँ की गद्दी पर बिठाने का वादा किया था।
३. श्रीयुत हरबिलास सारडा ने अपने 'अजमेर' नामक इतिहास में लिखा है कि अजमेर प्रान्त के खरवा और मसूदा के स्वामियों ने रामसिंह का और भिणाय, देवलिया और टंटोती के स्वामियों ने विजयसिंह का पक्ष लिया था। (देखो पृ० १७०)।
४. 'तवारीख राज श्री बीकानेर' में लिखा है कि मरहटों को हार कर सात कोस पीछे हटना पड़ा था। (देखो पृ० १८२)।



३०. महाराजा विजयसिंहजी
 वि० सं० १८०६-१८५० (ई० सं० १७५२-१७९३)

महाराजा विजयसिंहजी

से पासा पलट गया। मौका पाते ही मरहटों ने एकाएक उस तोपखाने पर हमला कर दिया। यह देख यद्यपि राठोड़-सरदारों ने प्राण देकर भी मान की रक्षा करने का बहुत कुछ प्रयत्न किया, तथापि उनकी सेना का व्यूह भंग हो जाने से बहुत से राठोड़-सरदार वीरगति को प्राप्त हुए और मैदान जयापा के हाथ रहा। इसके बाद सायंकाल हो जाने से महाराज अपने बचे हुए सरदारों आदि को साथ लेकर मेड़ते लौट गए और रात्रि के पिछले पहर में ही वहां से नागोर की तरफ चल दिए। इसी समय बीकानेर और किशनगढ़ के नरेशों को भी अपने-अपने देशों की रक्षार्थ लौट जाना पड़ा।

मेड़ते के पास की उपर्युक्त विजय के बाद जयापा ने अपनी और रामसिंहजी की सेना के चार भाग किए। इनमें के मुख्य भाग ने जयापा की आधीनता में नागोर पर घेरा लगाया और अन्य तीनों भागों ने जोधपुर, जालोर और फलोदी पर आक्रमण किया। परन्तु जोधपुर में वहां के दुर्ग-रक्षक चांपावत सूरतसिंह और नगर-रक्षक डेवदीदार सोभावत गोयंददास आदि ने उनको सफल न होने दिया। इसी प्रकार जालोर में भी भंडारी पोमसिंह के आगे उनकी एक न चली।

यद्यपि नागोर में स्वयं महाराज ने भी बड़ी वीरता से जयापा का सामना किया, तथापि किले के शत्रु-सैन्य के बीच घिर जाने के कारण कुछ दिनों में वहाँ की रसद

कर्नल टॉड ने लिखा है कि राठोड़-सैनिकों ने अपने ही वीरों पर, जो मरहटों को हरा कर लौट रहे थे, भ्रम से गोलाबारी शुरू कर दी। इससे उनकी विजय पराजय में बदल गई। (ऐनाल्स ऐशड ऐगिटक्विटीज ऑफ राजस्थान, भा० २, पृ० १६१-१६२)।

१. 'अजमेर' नामक इतिहास में लिखा है कि सिंधिया मैदान छोड़ कर भागने ही वाला था, परन्तु इसी बीच किशनगढ़-राज्य के दावेदार सरदारसिंहजी ने महाराजा विजयसिंहजी के मारे जाने की झूठी अफवाह फैला दी। इससे हतोत्साह होकर राठोड़-सैनिक मैदान से हट गए और महाराज को, मौका हाथ से निकल जाने के कारण, लाचार होकर नागोर का आश्रय लेना पड़ा। देखो पृ० १७०)।

कर्नल टॉड ने भी इस घटना का उल्लेख किया है (ऐनाल्स ऐशड ऐगिटक्विटीज ऑफ राजस्थान, भाग २ पृ० १०६२-१०६३)।

२. 'तवारीख राज श्री बीकानेर' में किशनगढ़ नरेश का मेड़ते से ही अपने राज्य की तरफ लौट जाना लिखा है (देखो पृ० १८२)। परन्तु बीकानेर का मार्ग नागोर की तरफ से होने के कारण बीकानेर महाराज वहां तक महाराजा विजयसिंहजी के साथ गए होंगे।

३. यह हरसोजाव का ठाकुर था।

मारवाड़ का इतिहास

समाप्त हो चली। यह देख किले वालों ने एक उपाय सोच निकाला। उन्होंने खोखर केसरखों को और एक गहलोत वीर को जयापा को छल से मार डालने के लिये नियत किया। इस पर वे दोनों बनियों का सा वेश बना कर आपस में लड़ते-झगड़ते जयापा के शिविर में जा पहुँचे। उस समय वह स्नान कर रहा था। परन्तु उनको लड़ता हुआ देख जिस समय उसने कारण जानने के लिये उन्हें अपने पास बुलाया, उस समय मौका पाकर उन्होंने उसे मार डाला। इस घटना से मरहटा-सेना में गड़बड़ मच गई। इसी समय मौके की फ़िराक़ में बैठी हुई राठोड़-सेना ने किले से निकल उन पर आक्रमण कर दिया। इससे एक बार तो मरहटों के पैर उखड़ गए और वे किले का घेरा छोड़ भाग खड़े हुए। परन्तु शीघ्र ही जयापा के भाई दत्ताजी ने बिखरी हुई मरहटा सेना को एकत्रित कर फिर से नागोर पर घेरा डालने का प्रबन्ध किया। जनैकोजी ने भी इस काम में योग देना अपना कर्तव्य समझा। यह घटना वि० सं० १८१२ (ई० सं० १७५५) की है। इसकी सूचना मिलते

१. ख्यातों से ज्ञात होता है कि उस समय तक जोधपुर, जालोर, नागोर, और डीडवाने को छोड़ मारवाड़ राज्य के बाकी के सारे ही प्रदेशों पर रामसिंहजी का अधिकार हो गया था। यह देख महाराजा विजयसिंहजी ने विजयभारती नामक पुरुष को महाराना राजसिंहजी (द्वितीय) के पास भेजा और उनसे जयापा से संधि करवा देने का कहलाया। इस पर उनकी तरफ़ से सलूबर का रावत जैतसिंह इस कार्य के लिये नागोर आया। परन्तु मरहटों ने उसका संधि का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। इसी से महाराज विजयसिंहजी के सरदारों को जयापा के साथ कूटनीति का व्यवहार करना पड़ा। इस घटना से क्रुद्ध होकर मरहटों ने किले के बाहर ठहरे हुए उक्त रावत के शिविर पर हमला कर उसे और महाराज के सेवक विजयभारती को भी मार डाला।

२. मारवाड़ में इस विषय की यह कहावत प्रचलित है:—

‘खोखर बड़ो खुराकी, खाय ग्यो आपा सरोखो डाकी’

जयापा के स्मारक में जो छतरी बनाई गई थी वह नागोर से तीन मील दक्षिण में विद्यमान है। ख्यातों से ज्ञात होता है कि जयापा को मारने वाले दोनों गुप्तचर मरहटों द्वारा उसी समय मार डाले गए थे।

३. यह जयापा का पुत्र था।

४. ग्रांट डफ़ की ‘हिस्ट्री ऑफ़ मरहटाज’ में इस घटना का समय ई० सं० १७५६ (वि० सं० १८१६) लिखा है। (परन्तु साथ ही उक्त इतिहास के भा० १, पृ० ५१४ की टिप्पणी १ में इस घटना के दिए गए समय पर सन्देह प्रकट किया है।) उसमें यह भी लिखा है

महाराजा विजयसिंहजी

ही रघुनाथराव ने भी मारवाड़ पर चढ़ाई की^१। इस प्रकार जयापा के भाई दत्ताजी, पुत्र जनकोजी और रघुनाथ राव की सम्मिलित सेनाओं ने जोधपुर और नागोर को घेर लिया। इस विशाल मरहटा-बाहिनी से अकेले सामना करना हानिकारक जान महाराजा विजयसिंहजी बीकानेर पहुँचे और वहाँ से महाराजा गजसिंहजी को साथ लेकर महाराजा माधोसिंहजी से सहायता प्राप्त करने के लिये जयपुर गए। परन्तु माधोसिंहजी ने इनकी सहायता करने से इन्कार कर दिया। इस पर यह लौट कर बीकानेर होते हुए नागोर चले आएँ। इसी बीच मारवाड़ में अकाल होने से मरहटों ने संधि करना स्वीकार कर लिया। इसलिये महाराज ने उन्हें २० लाख रुपये और अजमेर का प्रान्त देकर उनसे संधि करली। साथ ही मेड़ता, परबतसर, मारोठ, सोजत, जालोर आदि के परगने रामसिंहजी को दे दिए। इस प्रकार आपस का झगड़ा शान्त हो जाने पर महाराजा विजयसिंहजी जोधपुर लौट आए।

कि जयापा के घातकों में से एक वहीं पर मारा गया और दूसरा बचकर निकल गया। परन्तु उक्त इतिहास में रामसिंहजी और विजयसिंहजी दोनों को अभयसिंहजी का पुत्र लिखा है। यह ठीक नहीं है। (देखो भाग १, पृ० ५१३)।

‘अजमेर’ नामक इतिहास में इस घटना का समय ई० स० १७५६ (वि० सं० १८१३) लिखा है। (पृ० १७०)।

१. ‘हिन्दू पद पादशाही’ नामक इतिहास में अन्ताजी मानकेश्वर का १०,००० सैनिकों के साथ आकर राजपूताने में उपद्रव करना लिखा है।

२. ‘तवारीख राज श्री बीकानेर’ में लिखा है कि जयपुर-नरेश का विचार महाराजा विजयसिंहजी को धोके से मार डालने का था। परन्तु वह सफल न हो सके। (देखो पृ० १८४-१८५)।

मारवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि पहले जयपुर-नरेश महाराजा माधोसिंहजी ने महाराजा विजयसिंहजी का पक्ष लेना चाहा था। परन्तु फिर रामसिंहजी के साथ के, स्वर्गवासी जयपुर-नरेश ईश्वरीसिंहजी की कन्या के, सम्बन्ध का और अपने कर्मचारियों के कहने का विचार कर उन्होंने अपना मत बदल दिया।

इसके बाद उन्होंने महाराजा विजयसिंहजी को कैद कर लेने का विचार किया। परन्तु रीयाँ-ठाकुर जवानसिंह के कारण वह सफल न हो सके। ख्यातों से यह भी प्रकट होता है कि जयपुर-नरेश ने बीकानेर-नरेश गजसिंहजी को भी महाराज से जुदा करने के लिये उनका विवाह झिलाय ठाकुर की कन्या से निश्चित कर दिया था।

३. ख्यातों में लिखा है कि इन परगनों के साथ ही खरवा, मसूदा, भिगाय, केकड़ी, देवलिये के १६ गाँव और मसूदे के २७ गाँव रामसिंहजी को दिए गए थे। (कहीं कहीं सांभर, सिवाना, और नावे का भी रामसिंहजी को दिया जाना लिखा है)।

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १८१३ (ई० सन् १७५६) में जिस समय रामसिंहजी जयपुर के स्वर्गवासी नरेश ईश्वरीसिंहजी की कन्या से विवाह करने (जयपुर) गए, उस समय मारवाड़ के सरदारों ने, महाराज की अनुमति प्राप्त कर, उनके अधिकृत प्रान्तों पर चढ़ाई की और मेड़ता, जालोर और सोजत के परगने उनके पक्ष वालों से छीन लिए। इसकी सूचना मिलने पर रामसिंहजी ने एकबार फिर मरहटों से सहायता मांगी। इससे जयापा के भाई महादजी (माधोजी) को अपने भाई का बदला लेने का अच्छा मौका मिल गया। उसने पेशवा से आज्ञा लेकर मारवाड़ में ऐसी लूट-मार मचाई की बहुत कुछ कोशिश करने पर भी महाराज को सफलता नहीं मिली। अन्त में महाराज को महादजी (माधोजी) से सन्धि करनी पड़ी। इसके अनुसार रामसिंहजी से छीने हुए परगने तो वापस उन्हें लौटा देने पड़े और डेढ़ लाख रुपया सिंधिया को देना निश्चित हुआ। इसके बाद महादजी (माधोजी) अजमेर का प्रबन्ध गोविन्दराव को सौंप दक्षिण को लौट गया। परन्तु इस पराजय से मारवाड़ का प्रबन्ध शिथिल होगया

इससे उस समय महाराजा विजयसिंहजी के अधिकार में केवल नागोर, डीडवाना, फलोदी और जैतारण के प्रांत ही रह गए थे। महाराज के पक्ष के जिन जागीरदारों की जागीरें रामसिंहजी को दिए गए प्रांतों में थीं उनके खर्च के लिये महाराज को नकद रुपये नियत करने पड़े थे।

१. ख्यातों में लिखा है कि जिस समय मेड़ते पर चढ़ाई करने का विचार हो रहा था, उस समय पौकरन-ठाकुर देवीसिंह ने महाराज से अर्ज की कि मरहटों के और अपने बीच में हुई संधि को कम से कम एक वर्ष तक पालन करने का वचन दिया जा चुका है और उस अवधि के समाप्त होने में अभी ५ महीने बाकी हैं, इसलिये जहां तक हो अभी रामसिंहजी को दिए गए प्रांतों पर चढ़ाई न की जाय। परन्तु अन्य सरदारों के इस उचित परामर्श का विरोध करने पर वह अप्रसन्न हो गया और गुप्त रूप से मरहटों के साथ सहानुभूति रखने लगा। इससे भी मरहटों को मारवाड़ में लूट मार करने में बहुत कुछ सहायता मिली थी।
२. 'अजमेर' नामक इतिहास में लिखा है कि ई० स० १७५६ से १७५८ (वि० सं० १८१३ से १८१५) तक अजमेर खास पर रामसिंहजी और मरहटों दोनों का अधिकार रहा था। इसके अलावा खरवा, मसूदा और भिणाय रामसिंहजी के हिस्से में आए थे और बाकी का सारा प्रांत जयापा के भाई जनकूजी (?) और दत्तूजी के अधिकार में गया था। परन्तु ई० स० १७५८ में जिस समय रामसिंहजी जयपुर की तरफ चले गए, उस समय गोविन्दराव ने रामसिंहजी की तरफ के हाकिम को निकालकर अजमेर पर पूरा अधिकार कर लिया। परन्तु इस पर जब महाराजा विजयसिंहजी ने रामसिंहजी को दिए गए प्रांतों पर अपना हक प्रकट किया, तब उसने खरवा, मसूदा और भिणाय इन्हें सौंप दिए। इसके बाद महाराज ने टंटोती में अपना थाना कायम किया। ये प्रांत ई० स० १७६१ (वि० सं० १८४८) तक मारवाड़ के अधिकार में रहे। (पृ० १७१)।

और सरदार लोग स्वाधीन होने की कोशिश करने लगे। वि० सं० १८१४ के फागुन (ई० सन् १७५८ के मार्च) में जब इन भगड़ों से निपट कर महाराज फिर जोधपुर लौटे, तब पौकरन-ठाकुर देवीसिंह आदि सरदार बिना इनकी आज्ञा प्राप्त किए ही अपनी-अपनी जागीरों में जा बैठे और महाराज के बुलाने पर भी आने में बहाने करने लगे।

अगले वर्ष छोटी खाटू के ठाकुर जोधा जालिमसिंह ने, मेगरासर (बीकानेर राज्य में) के हटीसिंह ने, डीडवाने की तरफ के शेखावतों ने और नागोर के पश्चिम में स्थित करमसोतों ने आस-पास के गाँवों को लूट कर नागोर प्रान्त में उपद्रव शुरू किया। परन्तु महाराज के कृपा-पात्र जगन्नाथ ने जाकर उसे बड़ी वीरता से दबा दिया।

इन्हीं दिनों नींबाज-ठाकुर कल्याणसिंह का स्वर्गवास हो गया और रास-ठाकुर ने, महाराज से बिना अनुमति प्राप्त किए ही, अपने पुत्र दौलतसिंह को उसके गोद बिठा दिया। यद्यपि यह बात महाराज को बुरी लगी, तथापि समय की गति देख इन्हें चुप रह जाना पड़ा। परन्तु इतने पर भी मारवाड़ के सरदार शान्त न हुए और अपनी-अपनी जागीरों में बैठे हुए रामसिंहजी से पत्र-व्यवहार करने लगे। इस पर महाराज ने सिंधी फतैचन्द को भेजकर सब सरदारों को जोधपुर में इकट्ठा किया। परन्तु ये लोग नगर के बाहर बखतसागर तालाब के पास डेरे डालकर ठहर गए। यह देख महाराज ने अपने विश्वस्त-सेवक जगन्नाथ को उन्हें समझाकर नगर में ले आने

१. वि० सं० १८१५ (ई० सं० १७५९) में महाराज ने रास के ठाकुर केसरीसिंह को पौकरन के ठाकुर देवीसिंह को समझा कर ले आने के लिए भेजा। परन्तु वहाँ पर आपस में झगड़ा हो जाने से देवीसिंह ने जोधपुर आने से इनकार कर दिया।

कर्नल टॉड ने लिखा है कि यह देवीसिंह महाराजा अजितसिंहजी का पुत्र था और पौकरन-ठाकुर (महासिंह) ने अपने औरस पुत्र के न होने से इसे गोद लिया था। (एनाल्स ऐण्ड ऐगिटिकिटीज़ ऑफ़ राजस्थान, भा० २, पृ० १०६६) परन्तु यह ठीक नहीं है। देवीसिंह वास्तव में महासिंह का ही पुत्र था। यह देवीसिंह वीर और उद्दण्ड होने के कारण जोधपुर राज्य के अधिकार का अपनी तलवार के पट्टे (परतले) में होना बतलाया करता था।

२. यह महाराज को दूध पिलाने वाली धाय का पुत्र था।

३. इस घटना से अप्रसन्न होकर महाराज ने नींबाज की जागीर का एक गांव-पीपाड़ देने से इनकार कर दिया। इस से केसरीसिंह नाराज़ हो गया। इसके बाद सब सरदारों ने नींबाज में इकट्ठे होकर रामसिंहजी से मिलावट करने का षड्यंत्र शुरू किया।

मारवाड़ का इतिहास

के लिये भेजा। लेकिन बात चीत के सिलसिले में भगड़ा हो जाने के कारण सरदार लोग लौट कर बनाड़ की तरफ चले गए। इसकी सूचना मिलने पर महाराज ने फिर फतैचन्द आदि के द्वारा उन्हें समझाने की बहुत कुछ चेष्टा की, परन्तु सरदार लोग जोधपुर न आकर बीसलपुर की तरफ चल दिए। इस प्रकार आपस के विरोध को बढ़ता देख स्वयं महाराज उन्हें समझाने को खाना हुए। जैसे ही सरदारों को महाराज के आने की सूचना मिली, वैसे ही उन्होंने सामने आकर इनकी पेशवाई की और दूसरे ही दिन वे सब महाराज के साथ जोधपुर चले आए।

वि० सं० १८१६ की फागुन बदी १ (ई० सन् १७६० की २ फरवरी) को महाराज के गुरु आत्मारामजी का देहान्त हो गया। उनकी समाधि के समय बड़े-बड़े सरदारों को क़िले पर उपस्थित होने की आज्ञा दी गई थी। इसके अनुसार जब पौकरन, रास, आसोप और नींबाज के ठाकुर क़िले पर आए, तब उनके साथ के सारे आदमी क़िले की पौल के बाहर ही रोक लिए गए, और इसके बाद रानियों के आत्मारामजी के शव के अन्तिम-दर्शन करने को आने का बहाना बना कर उक्त पौल के द्वार बन्द कर दिए गए। अन्त में खिची गोरधन और (धायभाई) जगन्नाथ की सलाह से, रास्ते की कोठरियों में विदेशी सैनिकों को छिपाकर और क़िले का सब से ऊपर का द्वार बंद करवा कर, सरदारों को ऊपर आने को कहलाया गया। इस पर जैसे ही सब सरदार नकार खाने की पौल से आगे बढ़े, वैसे ही मार्ग की कोठरियों में छिपे सैनिकों ने बाहर आकर एकाएक उन पर हमला कर दिया। इससे पौकरन-ठाकुर देवीसिंह, रास-ठाकुर केसरीसिंह, आसोप-ठाकुर छत्रसिंह और नींबाज-ठाकुर दौलतसिंह पकड़े जाकर कैद कर लिए गए।

१. किसी किसी ख्यात में इस पौल का नाम अमृती पौल लिखा है।

२. इनमें से ठाकुर दौलतसिंह बाद में छोड़ दिया गया, परन्तु अन्य तीनों ठाकुरों का अन्त कैद में ही हुआ। इस विषय का यह दोहा मारवाड़ में प्रसिद्ध है:—

केहर देवो छत्रसी, दल्लो राजकुमार।

मरते मोडे मारिया, चोटी वाला चार ॥

कर्नल टॉड ने ६ ठाकुरों का कैद किया जाना लिखा है। (एनाल्स सेण्ड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान, भाग २, पृ० १०७०) परन्तु ख्यातों से यह बात सिद्ध नहीं होती।

इस घटना की सूचना मिलने पर उक्त सरदारों के बन्धुओं, सम्बन्धियों और मित्रों ने एकत्रित हो मारवाड़ में उपद्रव करने का आयोजन किया। यह देख धायभाई जगन्नाथ, विदेशी सैनिकों और छोटे-छोटे जागीरदारों को लेकर, उनको दबाने के लिये चला। साथ ही रायपुर-ठाकुर भाकरसिंह की मातहती में एक सेना नींबाज की तरफ रवाना की गई। इसी बीच सूचना मिली कि मेड़ते में इस समय शत्रु-सैन्य की संख्या बहुत कम रह गई है और रामसिंहजी हरसोर में है। परन्तु उपद्रवियों का विचार उन्हें शीघ्र ही मेड़ते ले आने का है। इस पर नींबाज की तरफ मेजी गई सेना को शीघ्र ही मेड़ते पहुँच उस पर अधिकार करने की आज्ञा दी गई। इसी के अनुसार उस सेना ने दूसरे दिन प्रातःकाल होने के साथ ही मेड़ते पर अधिकार कर लिया और शीघ्र ही सहायक सेना और रसद का प्रबन्ध कर वहाँ के मोरचे सुदृढ़ कर लिए।

मेड़ते के इस प्रकार एकाएक हाथ से निकल जाने की खबर मिलते ही रामसिंहजी ने एक बड़ी सेना के साथ आकर उक्त नगर को घेर लिया। यद्यपि कुछ दिनों बाद नगर में पानी की कमी होजाने के कारण अन्दर वालों को मेड़ते की रक्षा करना कठिन प्रतीत होने लगा, तथापि उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और वे बड़ी वीरता के साथ शत्रुओं के आक्रमणों को रोकते रहे।

इसी बीच, इधर बारिश हो जाने से पानी का कष्ट दूर हो गया और उधर मेड़ते वालों के घिर जाने की सूचना पाकर जगन्नाथ, बागियों के मुखिया चाँपावतों की सेना को जालोर की तरफ भगाकर, वहाँ आ पहुँचा। उसके दलबल सहित उधर आने की सूचना मिलते ही रामसिंहजी मेड़ते पर का घिराव हटाकर परबतसर की तरफ चले गए। जगन्नाथ ने वहाँ भी उनका पीछा किया। इस पर रामसिंहजी तो रूपनगर की तरफ चले गए और उनके साथ के सरदारों में से कुछ जगन्नाथ के पास चले आए और कुछ अपनी-अपनी जागीरों में लौट गए। इस प्रकार जो सरदार जगन्नाथ के पास चले आए थे उनकी जागीरों में महाराज की तरफ से वृद्धि की गई। इसके बाद राजकीय सेना ने फिर बचे हुए बागियों का पीछा किया। बीलाड़ा, सोजत आदि

१. ख्यातों में लिखा है कि इसके बाद रामसिंहजी जयपुर चले गए। उनके कुछ दिन वहाँ रहने पर जयपुर-नरेश ने सांभर का अपना हिस्सा उनको खर्च के लिए दे दिया।

२. ख्यातों में लिखा है कि चाँपावत सबलसिंह आदि सरदारों ने बहुतसी सेना इकट्ठी कर बीलाड़े पर चढ़ाई की। यह देख वहाँ का हाकिम आगे बढ़ उनके मुकाबले को आया।

मारवाड़ का इतिहास

अनेक स्थानों पर दोनों पक्षों के बीच कई युद्ध हुए। अन्त में चांपावतों की सेना को सोजत से भागकर घाटे (पहाड़ों) की तरफ जाना पड़ा। इससे डरकर कई अन्य ठाकुर भी महाराज के झंडे के नीचे आ गए और महाराज ने भी उन्हें जागीरें आदि देकर शांत कर दिया। इसी बीच महाराज के एक सेनापति पंचोली रामकरण ने जालोर से शत्रुओं को भगाकर वहां पर भी अधिकार कर लिया।

वि० सं० १८१८ (ई० सं० १७६१) में जोशी बालू ने राजकीय-सेना को लेकर इधर-उधर के बागी जागीरदारों को दबाया और उनसे दण्ड के रुपये वसूल किए। वि० सं० १८१९ (ई० सं० १७६२) में उसने अजमेर पहुँच उसे घेर लिया। परंतु महादजी (माधोजी) सिंधिया के समय पर वहां पहुँच जाने के कारण उसे लौट कर मेड़ते आ जाना पड़ा। अन्त में फिर सिंधिया को नौलाख रुपये मिल जाने से उसने महाराज से संधि कर ली।

कुछ दिन बाद बागियों ने, घाटे से रायपुर की तरफ लौट कर, मारवाड़ में फिर लूट-खसोट शुरू की। इस पर जगन्नाथ ने पहले उनके मुखिया चांपावत सरदार की जागीर 'पाली' पर चढ़ाई कर उस पर अधिकार कर लिया, और फिर रायपुर, भखरी, गूलर, आदि की तरफ जाकर बागी सरदारों का दमन किया। इससे मारवाड़ का उपद्रव बहुत कुछ शान्त हो गया।

जगन्नाथ के वीरता-पूर्ण कार्यों से महाराजा बहुत ही प्रसन्न थे और इसी से राज्य में उसका बड़ा मान था। परंतु अन्त में जोशी बालू के उसकी फजूल खर्ची की शिकायत करने से महाराजा उस (जगन्नाथ) से अप्रसन्न हो गए। इससे उसके मान और प्रभाव को बड़ा धक्का पहुँचा।

युद्ध होने पर उक्त हाकिम मारा गया और सबलसिंह के भी कई घाव लगे। इसके बाद सबलसिंह और उसका भाई श्यामसिंह बीलाड़े पहुँचे। परंतु वहां पर मुंह से कुछ अनुचित शब्द निकालने के कारण सबलसिंह कूँपावत राजपूतों के हाथ से सप्त घायल हुआ और खारिया नामक गाँव में पहुँचने पर उसका देहान्त हो गया। किसी किसी ख्यात में सबलसिंह का चांदेलाव ठाकुर मोहनसिंह के हाथ से मारा जाना लिखा है।

१. ख्यातों में लिखा है कि उसने मेड़ते के एक व्यापारी की लड़की को अपनी उपपत्नी बना लिया था और उसको प्रसन्न रखने के लिये राजकीय-द्रव्य का बहुत सा भाग खर्च कर दिया करता था।

२. इसी अपमान से वि० सं० १८२१ के सावन (ई० सं० १७६४ के अगस्त) में जगन्नाथ का देहान्त हो गया।

महाराजा विजयसिंहजी

इसके बाद महाराजा ने जावले के ठाकुर बदनसिंह को मेड़ते में कैद कर उसकी जागीर जब्त कर ली ।

वि० सं० १८२२ (ई० सं० १७६५) में महादजी (माधवराव) सिंधिया के फिर मारवाड़ पर चढ़ाई करने की सूचना मिली । इस पर महाराजा ने तीन लाख रुपये देकर उसे रोक दिया । परंतु फिर भी बागियों का मुखिया चांपावत सरदार खानूजी नामक मरहटे को अपनी सहायता के लिये चढ़ा लाया । इसकी सूचना मिलते ही महाराजा की सेना ने आगे बढ़ उसका सामना किया । युद्ध होने पर शत्रुदल की हार हुई । इससे मरहटे अजमेर की तरफ चले गए और चाँपावतों को सांभर की तरफ भागना पड़ा ।

इसी वर्ष महाराज ने गायों की चराई पर लगने वाले कर (घासमारी) को उठा कर जागीरदारों पर 'रेखबाब' नामक कर लगाया ।

इसी वर्ष महाराजा विजयसिंहजी वैष्णव (नाथद्वारे के गुसाइयों के) संप्रदाय के अनुयायी हो गए, और इन्होंने अपने राज्य में मांस और मदिरा का प्रचार बिलकुल रोक दिया । इन्होंने ही जोधपुर नगर में बालकृष्णजी का नया मन्दिर बनवाया था ।

१. कुछ काल बाद आउवे के ठाकुर की सिफारिश से कैद से छूट जाने पर यह रूपनगर चला गया ।

२. कहते हैं कि एकबार आसोप-ठाकुर ने अपने गांव से, बोरे में भरकर, बकरे का मांस मंगवाया था । परंतु जिस ऊंट पर वह बोरा बन्धा था, वह ऊंट नगर में आकर किसी तरह चमक गया और घबराकर उछल-कूद मचाने लगा । इससे बकरे का कटा हुआ सिर बोरे से निकलकर बाहर आ पड़ा । जब इस घटना की सूचना महाराज को मिली, तब इन्होंने ठाकुर को बुलाकर उससे अपनी आज्ञा का उल्लंघन करने का कारण पूछा । परंतु उसने काली ऊन का एक गोला पेश कर निवेदन किया कि वास्तव में यह गोला ही बोरे से निकलकर बाजार में गिर पड़ा था और सम्भवतः लोगों ने इसी को बकरे का सिर समझ यह शिकायत की है । इस प्रकार की बात बनाकर ठाकुर को अपना बचाव करना पड़ा ।

महाराजा विजयसिंहजी ने कसाइयों की जीविका बन्द हो जाने से उन्हें मकानों पर पत्थर की पट्टियां आदि चढ़ाने का काम सौंपा था । तब से अब तक उनके वंशज यही काम करते और चैवालिए कहते हैं ।

एकबार राजकीय सेना के एक मुसलमान सैनिक ने एक बैल को शस्त्र से जख्मी कर दिया । इसकी सूचना पाकर जब नगर का कोतवाल उसे पकड़ने को गया, तब सारे ही यवन-सैनिक बदल गए । यह देख लोगों ने महाराज को समझाया कि ऐसी हालत में अपराधी का अपराध क्षमा कर देना ही युक्ति-संगत है । अगर ऐसा नहीं किया जायगा तो सारी की सारी यवन-सेना नौकरी छोड़कर चली जायगी और इससे सरदारों को फिर से उपद्रव करने का मौका मिल जायगा । परंतु महाराज ने इस सलाह के मानने से इनकार कर दिया और अपने नफे-नुकसान की परवा न कर अपराधी और उसका साथ देने वालों को कठोर दण्ड दिया ।

मारवाड़ का इतिहास

वि० सं० १८२३ के कार्तिक (ई० स० १७६६ के नवम्बर) में महाराज ने नाथद्वारे की यात्रा की और इनके सेनापतियों ने इधर-उधर के सरकश जागीरदारों को दबाकर उनसे दण्ड के रुपये वसूल किए ।

वि० सं० १८२४ (ई० स० १७६७) में महाराज ने पुष्कर की यात्रा की । वहीं पर इनकी मित्रता भरतपुर के (जाट) नरेश जवाहरसिंहजी से हुई । पहले लिखा जा चुका है कि जयापा की नागौर की चढ़ाई के समय जयपुर-नरेश माधवसिंहजी ने महाराज का साथ देने से इन्कार कर दिया था । इसी से यह उनसे नाराज थे । इसलिए इस वर्ष जब जवाहरसिंहजी और जयपुर-नरेश के बीच मनोमालिन्य हुआ, तब महाराज ने भरतपुर वालों का साथ दिया । इसके बाद यह देवलिये तक जवाहरसिंहजी के साथ जाकर वहां से लौटते हुए सांभर और मारोठ होकर मेड़ते में कुछ दिन ठहर गए ।

वि० सं० १८२७ (ई० स० १७७०) में मेवाड़ के महाराना अड़सी (अरि-सिंह) जी, और उनके भतीजे (महाराना राजसिंहजी द्वितीय) के पुत्र रत्नसिंह व उसके पक्ष के सरदारों के बीच झगड़ा उठ खड़ा हुआ । इस पर महाराना ने महाराजा विजय-सिंहजी से सहायता मांगी । महाराज ने तत्काल अपनी राठोड़-सेना भेज कर मेवाड़ का उपद्रव शांत कर दिया । इससे प्रसन्न होकर महाराना अड़सीजी ने, आगे भी समय-समय पर होने वाले मेवाड़ के उपद्रवों को इसी प्रकार दबाने में सहायता देने की प्रतिज्ञा करवा कर, अपने राज्य का गोड़वाड़ का प्रांत महाराजा विजयसिंहजी को दे दिया । उस समय से ही यह प्रांत मारवाड़ राज्य में मिला लिया गया है ।

१. ख्यातों में लिखा है कि जिस समय जवाहरसिंहजी जयपुर राज्य में होकर भरतपुर की तरफ लौट रहे थे, उस समय कछवाहों ने उन पर पीछे से हमला कर दिया । इससे दोनों दलों के बीच घमसान युद्ध हुआ । इस यात्रा में जोधपुर की कुछ सेना भी भरतपुर वालों के साथ थी । इसके बाद जयपुर वालों ने भरतपुर-नरेश को पहुँचा कर लौटती हुई जोधपुर की सेना पर आक्रमण करने का प्रबन्ध किया । परंतु इसी बीच जयपुर-नरेश माधवसिंहजी के स्वर्गवास हो जाने से वे सफल न हो सके ।

२. किसी किसी ख्यात में लिखा है कि रत्नसिंह के पक्ष वालों ने भी फौज का खर्च देने की प्रतिज्ञा कर महाराज से सहायता मांगी थी । परंतु महाराज ने ऐसा करना उचित न समझा ।

३. यद्यपि 'राजपूताने के इतिहास' में जोधपुर-नरेश द्वारा महाराना को दी गई सहायता का उल्लेख छोड़ दिया गया है, तथापि महाराना अड़सीजी के स्वहस्ताक्षरों से लिखे महाराजा

महाराजा विजयसिंहजी

अगले वर्ष (वि० सं० १८२८=ई० सं० १७७१ में) महाराज फिर नाथद्वारे की यात्रा को गए । इस बार बीकानेर-नरेश गजसिंहजी और कृष्णगढ़-नरेश बहादुरसिंहजी भी वहां आ गए थे । मौका देख महाराना अड़सी (अरिसिंह) जी भी वहां पहुँचे और महाराज से गोड़वाड़ का प्रांत लौटा देने का आग्रह करने लगे । परंतु इन्होंने यह बात स्वीकार नहीं की ।

पहले लिखा जा चुका है कि जयपुर-नरेश ने अपना सांभर का हिस्सा खर्च के लिये रामसिंहजी को दे दिया था । इसलिये वि० सं० १८२९ (ई० सं० १७७२) में उनका स्वर्गवास होते ही उनके अधिकृत उस भाग पर जोधपुर वालों ने अधिकार कर लिया ।

वि० सं० १८३१ के भादों (ई० सं० १७७४ के सितम्बर) में आउवा-ठाकुर जैतसिंह जोधपुर के किले में मारा गया और आउवे पर महाराज की सेनाने अधिकार कर लिया । इसके तीन वर्ष बाद (वि० सं० १८३४=ई० सं० १७७७ में) ठाकुर

विजयसिंहजी के नाम के पत्र से, जो जोधपुर में सुरक्षित है, इस सहायता की पुष्टि होती है । उक्त पत्र में महाराना ने महाराज से बड़े ही मर्मस्पर्शी शब्दों में सहायता की प्रार्थना की है ।

१. कहते हैं कि उक्त प्रांत पर अधिकार करने के लिये उदयपुर वालों की तरफ से वि० सं० १६०७ से १६१० (ई० सन् १८५० से १८५३) तक पूरी कोशिश की गई थी । परंतु अन्त में भारत-सरकार ने भी उनका दावा खारिज कर दिया ।
२. कहते हैं कि लोगों ने महाराज से यह शिकायत की कि जैतसिंह महाराजकुमार को भड़काता है और उसे बड़ा घमंड हो गया है । ख्यातों में लिखा है कि महाराजा विजयसिंहजी ने वैष्णवमतानुयायी होकर अपने राज्य में मांस और मदिरा का प्रचार रोक दिया था । परंतु आउवा-ठाकुर जैतसिंह का खयाल था कि मेरे पिता कुशलसिंह ने महाराजा बख्तसिंहजी को जोधपुर का राज्य दिलवाने में अपने प्राण दिए थे, इसलिये उसका पुत्र होने के कारण महाराज मेरे कार्यों में विशेष रोक-टोक नहीं करेंगे । इसीसे वह शक्ति का उपासक होने के कारण कभी-कभी पशु-वध कर लिया करता था । महाराज ने शिकायत आने पर कई बार उसे ऐसा करने से मना किया । परंतु उसने इनके कथन पर विशेष ध्यान नहीं दिया । इससे महाराज खूब हो गए और एक रोज उसे किले में बुलवाकर धोके से मरवा डाला । किले के उत्तर की तरफ सिंगोरिये की भाकरी के पास, जहां पर उसका दाह संस्कार किया गया था, एक चबूतरा बनाया गया था । लोग उक्त स्थान को जैतसिंहजी का थड़ा कह कर अब तक पूजते हैं । इस पूजा का कारण शायद उसका अपने शाक्त-धर्म पर दृढ़ रह कर प्राण देना ही होगा ।

मारवाड़ का इतिहास

केसरीसिंह के बागी होजाने पर उसकी जागीर रायपुर पर महाराज ने कब्जा कर लिया और कुछ ही दिनों में अजमेर पर भी इनका बहुत कुछ दखल हो गया।

वि० सं० १८३७ (ई० सं० १७८०) में उमरकोट (सिंध) के टालपुरों ने मारवाड़ की सरहद पर उपद्रव उठाया और वे पौकरन आदि पर अधिकार करने का इरादा करने लगे। इस पर महाराज ने मांडणोत हरनाथसिंह, पातावत मोहकमसिंह, बारठ जोगीदास और सेवग थानू को अपना प्रतिनिधि बनाकर उनके पास चौबारी मेजा। जब मामला सुलभता हुआ नहीं देखा, तब इनमें से पहले तीन पुरुषों ने मिल कर उनके सरदार बीजड़ को धोके से मार डाला। इस पर उसके अनुचरों ने उन तीनों को मार अपने स्वामी का बदला लिया। इसकी सूचना मिलने पर महाराज ने इन तीनों के पुत्रों को क्रमशः अलाय, करणू और रिनिया नामक गांव जागीर में दिए। इसके बाद बीजड़ के भाई-बन्धुओं ने अपने नेता का बदला लेने के लिये फिर से मारवाड़ की सरहद पर उपद्रव शुरू किया। इस पर महाराज ने उनको दण्ड देने के लिये एक सेना खाना की। इस राठोड़-वाहिनी ने टालपुरों को हराकर उमरकोट पर ही अधिकार कर लिया। यह घटना वि० सं० १८३६ (ई० सं० १७८२)

१. वि० सं० १८३६ (ई० सं० १७७६) में महाराज ने प्रसन्न होकर रायपुर की जागीर केसरीसिंह के पुत्र फ़तैसिंह को लौटा दी थी।
२. मारवाड़ की ख्यातों में टालपुरों का सोदा राजपूतों से उमरकोट छीनना लिखा है ?
३. सेवग थानू को इन तीनों ने पहले ही वहाँ से गिराब की तरफ़ मेज दिया था, क्योंकि वह ब्राह्मण था।
४. ख्यातों के अनुसार उमरकोट पर जोधपुर नरेशों का यह अधिकार वि० सं० १८६६ (ई० सं० १८१२) तक रहा था। उमरकोट पर अधिकार करने में पौकरन के ठाकुर सवाई-सिंह ने बड़ी वीरता दिखलाई थी। इससे प्रसन्न होकर वि० सं० १८३६ (ई० सं० १७८२) में महाराज ने उसे प्रधान का पद और साथ ही उस कार्य के वेतन स्वरूप (बधारे में) मजल और दूनाड़ा नामक गांव दिए।

मिरज़ा कलिचबेग़ फ़ेदूनबेग़ की लिखी 'हिस्ट्री ऑफ़ सिंध' के, द्वितीय भाग में, उमरकोट के विषय में लिखा है:-

जिस समय सिंध के शासक मियाँ अब्दुल्लाही (कल्होरा) के राज्य में मीर बीजड़ का प्रताप बहुत बढ़ा हुआ था, उस समय जोधपुर नरेश के दो राठोड़-प्रतिनिधियों ने सिंध पहुँच, उसके साथ गुप्त परामर्श करने के बहाने से, उसे (बीजड़ को) मार डाला। परंतु मरने के पूर्व आहत बीजड़ ने अपनी

तलवार से उन दोनों राजपूतों को, मय उनके दो अनुचरों के, वहीं समाप्त कर दिया। यह घटना हि० स० ११६४ (ई० स० १७८१ ?) की है।

कुछ लोगों का अनुमान है कि यह कार्य मियाँ अब्दुल्ला की प्रार्थना पर ही किया गया था। इसीसे उसने, इस कार्य की एवज में, उमरकोट का अधिकार जोधपुर-नरेश को सौंप दिया। परंतु इसके बाद ही उसे (मियाँ अब्दुल्ला को) बीजड़ के पुत्र मीर अब्दुल्लाख़ाँ के भय से कलात की तरफ़ भागना पड़ा और उसी समय उसने अपने पुत्र को जोधपुर-नरेश के पास भेज दिया।

कुछ दिन बाद पूर्व की तरफ़ से महाराजा विजयसिंह की सेना ने और उत्तर की तरफ़ से कलात की सेना ने सिंध पर चढ़ाई की। इसकी सूचना मिलते ही मीर अब्दुल्लाख़ाँ ने पहले जोधपुर की सेना का मुकाबला करने के लिये प्रयाण किया। मार्ग में रेगिस्तान को पार कर आगे बढ़ते ही, उसे एक पहाड़ी-गढ़ी में एक सौ राजपूत सरदार और ठाकुर दिखाई दिए। उनका मुखिया विजयसिंह का पुत्र और दामाद था; और उन सरदारों के अनुयायी पास की समतल भूमि पर ठहरे हुए थे। दोनों सेनाओं के बीच युद्ध होने पर विजय अब्दुल्ला के पक्ष में रही और राजपूतों का बहुत सा माल-असबाब भी उसके हाथ लगा।

इसके कुछ काल बाद मीर अब्दुल्ला के मियाँ अब्दुल्ला द्वारा धोके से मरवाए जाने पर मीर फ़तैअलीख़ाँ बल्लोचों का मुखिया चुना गया।

आगे उक्त इतिहास में लिखा है कि मियाँ अब्दुल्ला ने कुछ रुपया लेकर, इसके बहुत पहले ही, खानगी तौर पर, उमरकोट जोधपुर के राजा विजयसिंह को सौंप दिया था। (परंतु 'फ़ैरे नामा' का लेखक मीर बीजड़ को मारने की एवज में उमरकोट का दिया जाना लिखता है।) इसीसे उक्त राजा ने वहां के किले में अपनी कुछ फ़ौज रख छोड़ी थी। परंतु जब उसे (राजा की फ़ौज को) मीर के (हि० स० ११६६=ई० स० १७८२ में) मियाँ अब्दुल्ला पर विजय पाने का समाचार मिला, तब उसने शत्रु (मीर) से उस दुर्ग की रक्षा के लिये रसद और नई सेना भेजने के लिये अपने राजा को लिखा। इस पर राजा ने भी शीघ्र ही सामान से लदे १०० जंठ और २,००० सैनिक उमरकोट की तरफ़ खाना किए। मार्ग में उनमें के तीन सौ सैनिकों का सामना (मीर सुहराबख़ाँ के बन्धु) मीर गुलाम मुहम्मद से, जो शिकार को निकला था, होगया। युद्ध होने पर करीब एक सौ राजपूत मारे गए और बचे हुए पीछे आती हुई अपनी सेना की तरफ़ लौट चले। बल्लोचों ने, जिनको पीछे आने वाली राजपूत-सेना का पता न था, इनका पीछा किया। परंतु कुछ ही देर में वे (बल्लोच), उस विशाल राठोड़-वाहिनी के बीच घिर कर मारे गए। यह घटना हि० स० १२०१ (ई० स० १७८६) की है ?

इसकी सूचना मिलते ही मीर सुहराब ने, मीर फ़तैअली की सहायता से, राजपूतों का पीछा किया और उनके लौटकर अपने मुल्क में पहुंच जाने पर भी उनमें के बहुत से योद्धाओं को मार, उनके मुल्क को लूट और मंदिरों को गिरा कर बदला लिया। इसके बाद बल्लोच अपने देश को लौट गए।

(१) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० १७८-१८३।

(२) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० १६३।

(३) यह मीर चाकर का, जो खैरपुर के मीरों का पूर्वज था, पुत्र था। हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० १७१।

मारवाड़ का इतिहास

यह देख मियाँ अब्दुलबी तीसरी बार फिर कलात के शासक मुहम्मद नसीर के पास मदद लेने को गया। परंतु उसने बार-बार बल्लोचों से झगड़ा करना उचित न समझा। इसी लिये उसने, अब्दुलबी को अपने यहां से डालने के लिये, बल्लोचों के मुखिया मीर फतैअलीख़ाँ से लिखा-पढ़ी द्वारा मियाँ को कलात की सेना के साथ खुदाबाद (शिकारपुर) तक लौटा देने की अनुमति मांगी। यद्यपि फतैअलीख़ाँ ने यह बात मानली, तथापि कलात की सेना को नदी के उस पार ही रखने की सूचना भी दे दी। यह सब गुप्तरूप से तय हुआ था। इसके बाद अब्दुलबी कलात के शासक की दी हुई ब्रह्मियों की सेना के साथ सीविस्तान के हटरी नामक स्थान पर पहुँच कर ठहर गया और नदी के पार करने के पूर्व जोधपुर के राजा की, जिसको शायद उसने पहले ही गुप्तरूप से मदद के लिये लिख भेजा था, सेना के आने की राह देखने लगा। परंतु इसी बीच उसके साथ के सैनिक, आस-पास के गांवों को उजड़े हुए देख, रसद और रुपयों के लिये गड़-बड़ मचाने और अब्दुलबी को वहीं छोड़ कर चले जाने का विचार करने लगे। यद्यपि अब्दुलबी ने राजपूतों की सेना को शीघ्र ले आने के लिये आदमी भेजे थे, तथापि राजपूतों ने कहला दिया कि जब तक वह (मियाँ) नदी पार न होलेगा, तब तक वे उसकी मदद को न आवेंगे। इसी समय ब्रह्मी सैनिक बागी हो गए और स्वयं अब्दुलबी के सामान को लूट कर वहीं से अपने देश को लौट गए। इसके बाद अब्दुलबी अपनी रक्षा के लिये वहां से डेराह प्रांत की तरफ चला गया। जब राजपूत-सेना को, जो अपनी सरहद पर मियाँ का रास्ता देखती थी, उसके नदी के उस पार से ही चले जाने का समाचार मिला, तब वह भी वापस राजधानी को लौट गई। यह घटना हि० स० ११६७ (ई० स० १७८३) की है^१।

‘फैरे नामे’ का लेखक लिखता है कि जब हि० स० ११६८ (ई० स० १७८४) ? में हैदराबाद के किले पर मीर फतैअलीख़ाँ का अधिकार हो गया, तब कल्होरा का कुटुम्ब, जो वहां रहता था, (अब्बसीनिया-वासी गुलाम) शालमी के साथ जोधपुर भेज दिया गया; क्योंकि वहां पर पहले से ही मियाँ अब्दुलबी का लड़का रहता था।

परंतु इसमें की कुछ बातें मारवाड़ की ख्यातों से नहीं मिलती हैं और इसके सनों में भी गड़-बड़ नज़र आती है। उनमें मारवाड़-नरेश का बीजड़ के कुटुम्बियों को हराकर उमरकोट लेना लिखा है और उस समय के कल्होरा-शासक की स्थिति से भी इसी बात की पुष्टि होती है; क्योंकि वह स्वयं ही उस समय परमुखापेची हो रहा था। ऐसी हालत में उमरकोट का डालपुरों से लेना और उसकी रक्षा करना विना तलवार के बल के असम्भव था। हाँ, यह सम्भव है कि निर्बल मियाँ अब्दुलबी ने डालपुरों के प्रभाव से बचने के लिये उनके एक नवीन शत्रु का वहां पर पैर जमाना गनीमत समझ महाराज से मैत्री करली हो और महाराज ने भी भविष्य की गड़-बड़ को मिटाने के लिये उसे कुछ रुपयों की सहायता दे दी हो।

(१) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० १४२।

(२) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० १६५-१६८।

(३) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० २००।

की है' ।

इसी बीच वि० सं० १८३८ (ई० सन् १७८१) में बीकानेर के महाराजकुमार राजसिंहजी, जो अपने पिता से अप्रसन्न हो जाने से देशगोक में रहते थे, जोधपुर चले आए। महाराजा विजयसिंहजी ने उन्हें बड़ी खातिर के साथ अपने पास रख लिया और वि० सं० १८४२ (ई० सन् १७८५) में पिता-पुत्रों में मेल करवाकर उन्हें फिर बीकानेर भेज दिया।

वि० सं० १८३६ (ई० सन् १७८२) में फिर टाणपुरों ने उमरकोट पर अधिकार करने का उद्योग किया। परन्तु महाराज के जोधा और पातावत सरदारों की सैन्य ने, समय पर पहुँच, उन्हें सफल न होने दिया।

वि० सं० १८३६ (ई० सन् १७७६) के करीब जयपुर-नरेश पृथ्वीसिंहजी का स्वर्गवास हो गया और उनके पीछे महाराजा प्रतापसिंहजी गद्दी पर बैठे। इसलिये कुछ सरदारों ने मिल कर पृथ्वीसिंहजी के बालक-राजकुमार मानसिंह को उसके ननिहाल भेज दिया। कुछ वर्ष बाद वह वहाँ से सिंधिया के पास पहुँचा। इसीसे वि० सं० १८४४ (ई० सन् १७८७) में मरहटों ने उसको गद्दी पर बिठाने के लिये जयपुर पर चढ़ाई की। इसकी सूचना पाते ही जयपुर-नरेश प्रतापसिंहजी ने महाराजा विजयसिंहजी से सहायता की प्रार्थना की। इस पर महाराज ने सिंधी भीमराज की

इसके अलावा उक्त इतिहास में, लिखा है कि हि० सं० ११६७ (ई० सं० १७८३) में तीमूरशाह ने मीर फ़तैअलीख़ाँ को सारे ही सिंध प्रदेश का शासक नियत कर मियाँ अब्दुल्ला को इज्जत के साथ राज-कार्य से अवसर ग्रहण कर लेने को बाध्य कर दिया और उसके निर्वाह के लिये पैनशन नियत कर दी।

१. किसी किसी ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १८३७ भी लिखा मिलता है। नहीं कह सकते यह कहाँ तक ठीक है?

२. इनमें लाडनू का ठाकुर था।

३. उस समय ये मरहटे दिल्ली के बादशाह शाहआलम द्वितीय के स्वयंभू प्रतिनिधि बने हुए थे।

(१) हिस्ट्री ऑफ़ सिंध, भाग २, पृ० २०२।

मारवाड़ का इतिहास

अधिनायकता में अपनी एक सेना उधर भेज दी^१। इस राठोड़-वाहिनी ने जयपुर-नरेश की सेना के साथ मिलकर तुंगों नामक स्थान में माधोजी की सेना का सामना किया। घमसान युद्ध होने के बाद मरहटों के पैर उखड़ गए और वे सनवाड़ की तरफ भाग चले। इससे अजमेर पर महाराज का पूरा अधिकार हो गया। इस युद्ध में किशनगढ़-नरेश ने भी राजकुमार मानसिंह का साथ दिया था। इससे मरहटों के परास्त हो भाग जाने पर राठोड़-सेना ने किशनगढ़ और रूपनगर को जा घेरा। सात महीने तक घिरे रहने से किशनगढ़-नरेश प्रतापसिंहजी तंग आ गए और अन्त में उन्होंने तीन लाख रुपये दण्ड देना स्वीकार कर महाराज से संधि कर ली। इसके साथ ही उन्हें रूपनगर का अधिकार भी वीरसिंह के पुत्र अमरसिंह को देना पड़ा।

वि० सं० १८४५ (ई० सं० १७८८) में किशनगढ़-नरेश प्रतापसिंहजी स्वयं जोधपुर आकर महाराज से मिले और उन्होंने पुराने मनोमालिन्य को दूर कर फिर से मैत्री स्थापित की।

वि० सं० १८४७ (ई० सं० १७९०) में माधोजी सिंधिया ने, अपनी पुरानी हार का बदला लेने के लिये, तुकोजी को साथ लेकर, मारवाड़ पर चढ़ाई की। यद्यपि यह झगड़ा जयपुरवालों के कारण ही हुआ था, तथापि इस बार वे मरहटों से मिल गए और उनके मुकाबले को सेना भेजने में बहानेबाजी करने लगे। इस पर

१. ग्रैंट डफ की हिस्ट्री ऑफ मरहटायज़, भा० २, पृ० १८१।

२. इस विषय का आधा दोहा प्रसिद्ध है:—

‘उदलती आमेर राखी राठोड़ा खरी’।

३. ख्यातों में लिखा है कि मरहटों ने, किशनगढ़ वालों की सहायता से अंबाजी इंगलिया की अधीनता में, एक बार फिर अजमेर पर अधिकार करने की कोशिश की थी। परंतु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। इसके बाद महाराज की सेना ने चांदावतों से रामसर छीन लिया।

४. जिस समय रूपनगर के स्वामी सरदारसिंहजी का स्वर्गवास होने लगा, उस समय उन्होंने अमरसिंह को गोद लेने की इच्छा प्रकट की थी। परंतु किशनगढ़-नरेश बहादुरसिंहजी ने उसकी एवज़ में अपने ज्येष्ठ पुत्र बिड़दसिंहजी को उनकी गोद बिठा दिया। इस पर अमरसिंह नाराज़ होकर महाराजा विजयसिंहजी के पास जोधपुर चला आया। इसीसे किशनगढ़-नरेश प्रतापसिंहजी महाराज से नाराज़ हो गए थे।

५. ख्यातों में लिखा है कि यद्यपि राठोड़ों ने जयपुर का पक्ष लेकर ही मरहटों से युद्ध किया था, और इन्हीं की सहायता से उस समय जयपुर की रक्षा हुई थी, तथापि कछवाहों के

महाराजा विजयसिंहजी

महाराजा विजयसिंहजी ने बीकानेर और किशनगढ़ के नरेशों को सहायता के लिये बुलवा लिया ।

इधर मेड़ते में जोधपुर, बीकानेर और किशनगढ़-नरेशों की सेनाएं युद्ध के लिये तैयार हो रही थीं और उधर महाराष्ट्र-वीर, सांभर, नांवा और परबतसर पर अधिकार करने के बाद, अजमेर को घेर कर, मेड़ते की तरफ बढ़ रहे थे । मार्ग में उनकी सेना के फ्रेंच जनरल (De Boigne) डी. बोइने का तोपखाना लूनी नदी की बालू में फँस गया । जैसे ही इसकी सूचना महाराज की सेना में पहुँची, वैसे ही कुछ सरदारों ने तत्काल उस तोपखाने पर आक्रमण करने की सलाह दी । परन्तु एक तो आपस की झूट के कारण यह मौका आपस के वाद-विवाद और विचार में ही निकल गया और दूसरे उक्त फ्रेंच जनरल ने झूठा संधि का प्रस्ताव भेज कर राठोड़-सरदारों को धोके में डाल रक्खा । इसके बाद जब बोइने के तोपखाने ने राठोड़-सेना के पड़ाव के पास पहुँच उस पर गोले बरसाने शुरू किए, तब राठोड़ों को धोके का हाल मालूम हुआ । इस पर वे भी झूटपट तैयार हो कर शत्रु से भिड़ गए । परन्तु शत्रु का आक्रमण होने तक धोके में रहने से इस युद्ध में राठोड़ सफल न हो सके और इन्हें मैदान से हट कर नागौर का आश्रय लेना पड़ा । साथ ही मरहटों को विजयी देख बीकानेर और किशनगढ़ के नरेशों को भी अपने-अपने राज्यों की रक्षार्थ लौट जाना पड़ा ।

चित्त में अपनी निर्बलता प्रकट होजाने के कारण ईश्वरी ने स्थान ग्रहण कर लिया था, और वे एक बार राठोड़ों को भी नीचा दिखाने को तुले हुए थे । इसीसे जयपुर-नरेश प्रतापसिंहजी ने सिंधिया को कई लाख रुपये देने का वादा कर जोधपुर पर आक्रमण करने के लिये उत्साहित किया था ।

किसी किसी ख्यात में यह भी लिखा है कि यद्यपि पहले तैवरों की पाटन के पास जोधपुर और जयपुर की सेनाओं ने मिलकर मरहटों का सामना किया, तथापि कुछ ही देर में जयपुर वालों ने माधोराव सिंधिया से संधि कर ली । इसीसे ठीक मौके पर अकेली राठोड़-वाहिनी को मरहटों का सामना करना पड़ा । इससे उसके बहुत से सरदार मारे गए और खेत मरहटों के हाथ रहा ।

१. खरवे के राव सूरजमल ने घिर जाने पर भी छः मास तक मरहटों से अजमेर के किले की रक्षा की थी । परन्तु अन्त में मरहटों के मेड़ते के युद्ध में विजय प्राप्त कर लेने से वह किला उनको सौंप दिया गया (अजमेर, पृ० १७३) ।

२. कहीं-कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि डी. बोइने के आक्रमण के पूर्व ही बीकानेर और किशनगढ़ के नरेशों को अपने-अपने राज्यों की रक्षार्थ लौट जाना पड़ा था । इससे इस युद्ध में मरहटों का सामना करने के लिये जोधपुर वाले अकेले ही रह गए थे । 'तवारीख

मारवाड़ का इतिहास

यह देख मरहटों ने जोधपुर पर कब्जा कर लेने का विचार किया। इस पर देश-काल को अपने विपरीत देख महाराज ने मरहटों से संधि करली। इससे अजमेर प्रान्त और साठ लाख रुपये माधवराव (माधोजी) के हाथ लगे। साथ ही जो कर अब तक दिल्ली के बादशाह को दिया जाता था, वह भी मरहटों को देना तय हुआ। यह घटना वि० सं० १८४७ के फागुन (ई० सं० १७६१ की फरवरी) की है।

महाराजा विजयसिंहजी ने एक जाट जाति की स्त्री को अपनी 'पासवान'^२ बना रखा था। उसका नाम गुलाबराय था। महाराज की अत्यधिक कृपा के कारण राज्य में भी उसका बहुत प्रभाव था और कभी-कभी वह राज्य के कामों में भी दखल दे दिया करती थी। इससे मारवाड़ के बड़े-बड़े सरदार अप्रसन्न हो गए और अपना विरोध प्रकट करने को जोधपुर छोड़ कर मालकोसनी की तरफ चले गए। यह देख वि० सं० १८४८ के फागुन (ई० सं० १७६२ की फरवरी) में महाराज स्वयं उनको लौटा

राज श्री बीकानेर' में के महाराजा सूरतसिंहजी के इतिहास में भी इस युद्ध का उल्लेख नहीं है (देखो पृ० १६७)।

१. महाराज ने इतने रुपये एक साथ न दे सकने के कारण कुछ तो गहने और जवाहरात आदि के रूप में मरहटों को उसी समय दे दिए, और बाकी रुपयों की एवज़ में ज़मानत के तौर पर सौंभर, मारोठ, नांवा, परबतसर, मेड़ता और सोजत की आमदनी उन्हें सौंप दी।
२. राजपूताने में 'पासवान' राजा की उस उप-पत्नी को कहते हैं, जिसका दरजा महारानी से कुछ ही कम होता है।

पासवान गुलाबराय वैष्णव-संप्रदाय को मानने वाली थी। इसके पुत्र का नाम तेजसिंह था, जिसकी मृत्यु वि० सं० १८४२ में हुई थी।

३. एक बार गुलाबराय किसी बात पर महाराज के प्रधान-मंत्री और कृपापात्र खीची गोरधन (गोवर्धन) से नाराज़ हो गई। यह देख वह पौकरन ठाकुर सवाईसिंह के डेरे पर चला गया और सब सरदारों को एकत्रित कर पासवान के राज्य-कार्य में हस्तक्षेप करने की शिकायत करने लगा। इस पर सब सरदारों ने मिलकर महाराज को समझाने का इरादा किया। परंतु इस गुप्त-मंत्रणा की सूचना गुलाबराय के कानों तक पहुँच जाने से वे सब घबरा कर बीसलपुर की तरफ चले गए।

किसी किसी ख्यात में यह भी लिखा मिलता है कि वि० सं० १८४७ (ई० सं० १७६०) के करीब गुलाबराय ने, महाराज के ज्येष्ठ-पौत्र भीमसिंहजी के होते हुए भी, महाराज के छोटे पुत्र शेरसिंह को युवराज-पद दिलवा दिया था। इस से नाराज़ होकर चापावत, कृपावत, ऊदावत और मेड़तिये सरदार मालकोसनी की तरफ चले गए थे।

महाराजा विजयसिंहजी

लाने को चले। जिस समय सरदारों का पड़ाव बीसलपुर में था, उस समय महाराज भी वहां जा पहुँचे। यह देख सारे सरदार सामने आकर महाराज से मिले और इनके साथ लौटकर जोधपुर की तरफ चले। परन्तु इनके जोधपुर पहुँचने के पूर्व ही, वि० सं० १८४६ की वैशाख वदि ७ (ई० सं० १७६२ की १३ अप्रैल) को, महाराज के पौत्र भीमसिंहजी ने जोधपुर के किले और नगर पर अधिकार कर लिया।

वि० सं० १८४६ की वैशाख वदि १० (ई० सं० १७६२ की १६ अप्रैल) को पौकरन-ठाकुर और रास-ठाकुर के आदमी गुलाबराय को, किले पर पहुँचा देने के बहाने से, पीनस में बिठाकर ले गए और मार्ग में उन्होंने उसे मार डाला। परन्तु महाराज को इसकी खबर न होने दी।

वि० सं० १८४६ की वैशाख सुदि ६ (ई० सं० १७६२ की २७ अप्रैल) को जब महाराज जोधपुर के निकट पहुँचे, तब नगर और किले पर भीमसिंहजी का अधिकार देख बालसमंद के बगीचे में ठहर गए। अन्त में दस महीने बाद रियां, कुचामन, मीठड़ी, बलूदा और चंडावल के ठाकुरों ने पौकरन-ठाकुर सवाईसिंह को समझाया कि महाराज की उपस्थिति में उनके पौत्र भीमसिंहजी का जबरदस्ती राज्याधिकारी बन बैठना शोभा नहीं देता। इस पर उसने महाराज से भीमसिंहजी को खर्च के लिये सिवाना जागीर में देने और महाराज के बाद जोधपुर की गद्दी पर उनका अधिकार कायम रखने का वादा करवा कर उन (भीमसिंहजी) को सिवाने भिजवा देने का प्रबन्ध किया। यद्यपि भीमसिंहजी ने ये बातें स्वीकार कर लीं, तथापि क़िला छोड़ने के पूर्व उन्होंने सरदारों से यह प्रतिज्ञा करवाली कि सिवाने की तरफ जाते समय मार्ग में उनसे किसी प्रकार की छेड़छाड़ नहीं की जाय। इस प्रकार पूरा प्रबन्ध होजाने पर वह किले से बाहर चले आए और महाराज से क्षमा मांग

१. भीमसिंहजी महाराजा विजयसिंहजी के द्वितीय पुत्र भोमसिंहजी के लड़के थे और महाराज के स्वर्गवासी ज्येष्ठ-पुत्र फ़तैसिंहजी की गोद बिठाए गए थे।

किसी किसी ख्यात में यह भी लिखा है कि जिस समय सरदार जोधपुर छोड़कर बीसलपुर या मालकोसनी की तरफ़ रवाना हुए थे, उस समय उन्होंने भीमसिंहजी को समझा दिया था कि महाराज के हमारे पीछे आने पर आप जोधपुर के किले और नगर पर अधिकार कर लेना।

२. यह पत्नी के रूपावत सरदारसिंह के हाथ से मारी गई थी। और उसके पास जो धन था वह पौकरन-ठाकुर सवाईसिंह और रास-ठाकुर जवानसिंह ने आपस में बाँट लिया था।

३. इस कार्य में मुख्य भूमिका कुचामन-ठाकुर ने ली थी।

मारवाड़ का इतिहास

सिवाने की तरफ़ रवाना होगए। उस समय प्रतिज्ञा करने वाले सरदार भी उन्हें सिवाने तक सकुशल पहुँचा देने के लिये उनके साथ हो लिए। मार्ग में सायंकाल हो जाने से इनका पहला पड़ाव भँवर नामक गांव में हुआ। इसी दिन वि० सं० १८५० की चैत्र सुदि ८ (ई० स० १७६३ की २० मार्च) को महाराज क़िले में दाख़िल हुए। यद्यपि सरदारों ने महाराज की अनुमति लेकर ही भीमसिंहजी को मार्ग में किसी प्रकार की छेड़छाड़ न होने देने का वचन दिया था, तथापि क़िले पर पहुँचते ही महाराज का क्रोध भड़क उठा और इन्होंने राज्य की विदेशी सेना को महाराज-कुमार भीमसिंहजी को मार्ग में से पकड़ लाने की आज्ञा देदी। इसी के अनुसार उस सेनाने दूसरे दिन प्रातःकाल होते-होते भँवर पहुँच भीमसिंहजी के दल पर आक्रमण कर दिया। यह देख राजकुमार को सकुशल सिवाने तक पहुँचाने के लिये साथ गए राज-भक्त सरदारों को भी, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये, महाराज की सेना से युद्ध करना पड़ा। महाराज की भेजी हुई सेना की संख्या अधिक होने से इधर कुछ सरदार तो उसका मार्ग रोक कर युद्ध में प्रवृत्त हुए और उधर उनकी सलाह से ठाकुर सवाईसिंह भीमसिंहजी को लेकर पौकरन की तरफ़ चल दिया। दिन भर युद्ध होने के बाद जब महाराज को भीमसिंहजी के निकल कर चले जाने की सूचना मिली, तब इन्होंने युद्ध बन्द करने की आज्ञा भेजकर सेना को वापस बुलवा लिया और उन राज-भक्त सरदारों को हर तरह से तसल्ली दिलवाई।

इसके बाद महाराज ने सिंधी अख़ैराज को भेजकर गौडावाटी और मेड़ता प्रान्त के उन जागीरदारों से, जो महाराज-कुमार भीमसिंहजी के षड्यंत्र में सम्मिलित थे, दण्ड के रुपये वसूल किए।

वि० सं० १८५० की आषाढ वदि ३० (ई० स० १७६३ की ८ जुलाई) को रात्रि में जोधपुर में महाराजा विजयसिंहजी का स्वर्गवास हो गया।

इन्होंने करीब ४० वर्ष राज्य किया था। इनके समय एक तो दिल्ली की बादशाहत शिथिल हो जाने से मरहटों का उपद्रव बढ़ गया था और दूसरे महाराजा रामसिंहजी और महाराजा बख़्तसिंहजी के आपस के झगड़े के कारण, जो उनके बाद वि० सं० १८२६ (ई० स० १७७२) तक चलता रहा था, मारवाड़ के सरदारों में स्वतंत्रता आ गई थी। इसी से इनके राज्य में हमेशा एक न एक उपद्रव जारी रहा। यह

१. किसी किसी ख़्यात में इस घटना का एक दिन पहले होना लिखा है।

महाराजा विजयसिंहजी

महाराजा परम वैष्णव थे और इन्होंने वि० सं० १८१७ (ई० सं० १७६०) में जोधपुर नगर में गंगश्यामजी का विशाल मंदिर बनवाया था।

महाराजा विजयसिंहजी ने ही पहले-पहल वि० सं० १८२२ (ई० सं० १७६५) में मारवाड़ में अपने नाम का चांदी का रुपया चलाया था। यह 'विजयशाही' रुपये के नाम से प्रसिद्ध था और वि० सं० १८५७ (ई० सं० १८००) तक प्रचलित रहा।

‘मन्त्रासिरुल उमरा’ के लेखक ने महाराज के विषय में लिखा है:—

“उस (बखतसिंह) के मरने पर उसका लड़का विजयसिंह अब तक (मारवाड़ पर) काबिज है। यह राजा रियाया-परवरी, अधीन होने वालों की परवरिश और सरकशों की सर-शिकनी में मशहूर है।”

वि० सं० १८३२ की सावन सुदि ११ (ई० सं० १७७५ की ७ अगस्त= हिजरी सन् ११८६ की ६ जमादिउस्सानी) की एक शाही सनद से ज्ञात होता है कि दिल्ली के पास का रायसिना नामक गाँव, जहाँ पर इस समय नई दिल्ली बसी है, जोधपुर-नरेशों की परंपरागत जागीर में था। यद्यपि बीच में जोधपुर के गृहकलह के कारण वह ज्वत्त होगया था, तथापि उसके शान्त होने पर उपर्युक्त तिथि को फिर से महाराजा विजयसिंहजी को दे दिया गया था।

१. यद्यपि कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि अजितसिंह ने अपने नाम के सिक्के चलाए थे (ऐनाल्स ऐन्ड एन्टिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान (क्रुक् संपादित), भा० २, पृ० १०२६) परंतु उनका अब तक कुछ भी पता नहीं चला है।

२. इसी वर्ष से मारवाड़ में बिजैशाही रुपये की एवज़ में भारत-सरकार के रुपये का चलन जारी हुआ था।

३. मन्त्रासिरुल उमरा, भा० ३, पृ० ७५६।

४. त्रिजयग्रन्थेषक-पत्रिका, अंक १, (अप्रैल १८३०), पृ० ४-१४ और जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन, (जुलाई १८३१), पृ० ५१५-५२५।

मारवाड़ का इतिहास

महाराजा विजयसिंहजी के ७ पुत्र थे:—

१ फ़तैसिंहजी, २ भोमसिंहजी, ३ जालिमसिंह, ४ सरदारसिंह, ५ गुमानसिंहजी, ६ सावंतसिंह और ७ शेरसिंह ।

इन महाराज के समय जोधपुर नगर में निम्नलिखित स्थान बनवाए गए थे:—

१ गंगरयामजी का मन्दिर, २ बालकृष्णजी का मन्दिर, ३ कुँजबिहारीजी का मन्दिर, ४ गुलाब सागर तालाब, ५ गिरदीकोर्ट, ६ मायला बाग और ७ उसमें का झालरा ।

१. यह विजयसिंहजी के ज्येष्ठ पुत्र थे । इनका जन्म वि० सं० १८०४ की सावन वदि ४ (ई० सं० १७४७ की १४ जुलाई) को हुआ था । परंतु वि० सं० १८३४ की कार्सिक सुदि ८ (ई० सं० १७७७ की ८ नवम्बर) को महाराजा की विद्यमानता में ही, निस्सन्तानावस्था में, इनका स्वर्गवास हो गया । इसी लिये इनके छोटे भ्राता भोमसिंहजी के पुत्र भीमसिंहजी इनकी गोद रखे गए थे ।

जोधपुर नगर का फ़तैसागर नामक तालाब इन्हीं के नाम पर बनवाया गया था ।

२. इनका जन्म वि० सं० १८०६ की द्वितीय भादों सुदि १० (ई० सं० १७४९ की १० सितम्बर) को और इनकी मृत्यु, चेचक की बीमारी से, वि० सं० १८२६ की वैशाख वदि १३ (ई० सं० १७६९ की ४ मई) को हुई थी । भीमसिंहजी इन्हीं के पुत्र थे ।

३. इनको महाराज ने पहले नांवा और फिर (वि० सं० १८४८ के वैशाख=ई० सं० १७९१ की मई में) गोड़वाड़ जागीर में दिया था । महाराज की इच्छा इन्हीं को अपना उत्तराधिकारी बनाने की थी । वि० सं० १८५५ (ई० सं० १७९८) में इनका स्वर्गवास हुआ ।

४. यह १७ वर्ष की आयु में ही चेचक से मर गए थे ।

५. इनका जन्म वि० सं० १८१८ की कार्सिक सुदि ८ (ई० सं० १७६१ की ५ नवम्बर) को हुआ था और वि० सं० १८४८ की आश्विन वदि १३ (ई० सं० १७९१ की २६ सितम्बर) को इनका स्वर्गवास हो गया । इन्हीं के पुत्र मानसिंहजी भीमसिंहजी के बाद जोधपुर की गद्दी पर बैठे थे ।

६. ख्यातों से ज्ञात होता है कि गुलाबराय ने वि० सं० १८४७ (ई० सं० १७९०) में महाराज से कहकर इन्हीं को युवराज का पद दिलवाया था । इनका देहान्त वि० सं० १८५३ (ई० सं० १७९६) में हुआ ।

७. यह तालाब वि० सं० १८४५ में बनकर तैयार हुआ था ।

८. यही आजकल सरदार मारकेट कहाता है ।

९. इनमें के पहिले दो मन्दिरों के अलावा सब स्थान गुलाबराय ने बनवाए थे । पहिले झालरे के स्थान पर एक बावली थी । वि० सं० १८३३ में उसी में परिवर्तन कर झालरा बनाया गया था । उपर्युक्त स्थानों के अलावा फ़तैसागर, किले में का मुरलीमनोहरजी का मन्दिर आदि अन्य अनेक स्थान भी इनके समय बनवाए गए थे ।

महाराजा विजयसिंहजी ने कई गाँव दान दिए थे ।

१. १ जेलवा (बीलाड़े परगने का), २ केसरवाली ३ नींबोड़ा (जलवन्तपुरा परगने के),
४ जैतियावास ५ डाबरयाणी-खुर्द ६ दुगोर (मेड़ता परगने के), ७ बासणी-वैदां
८ सांगासणी (दुगोर की एवज़ में) (जोधपुर परगने के), ९ जैतपुरा (मेड़ता परगने
का) ब्राह्मणों को; १० भावंडां ११ डोहू (नागोर परगने के) पुरोहितों को; १२
नगवाडा-कलां (परबतसर परगने का), १३ भैरुवास (मेड़ता परगने का) चारणों
को; १४ मुंदियाऊ (नागोर परगने का) (द्वारका के) रणछोड़रायजी के मन्दिर को;
१५ पुनास (पुनियावास) (मेड़ते परगने का) जगन्नाथरायजी के मन्दिर को; १६ लाडवा
(मेड़ते परगने का), १७ मालावास (परबतसर परगने का), १८ बोइल (बीलाड़ा
परगने का) बालकृष्णजी के मन्दिर को, १९ अंबाली (नागोर परगने का) समनशाह
की दरगाह को; २० अजबपुरा (नागोर परगने का) भगतों को; २१ खारड़ा-मेवासा
(जोधपुर परगने का), २२ लालणा-खुर्द (परबतसर परगने का) गुसाइयों को और
२३ मीरसिया (परबतसर परगने का) दादियों को ।

इनके अलावा महाराज ने नाथद्वारेवालों आदि को और भी बहुत सा दान दिया था ।

३१. महाराजा भीमसिंहजी

यह महाराजा विजयसिंहजी के पौत्र और भोमसिंहजी के पुत्र थे, परन्तु इनके बड़े चचा फ़तैसिंहजी और पिता भोमसिंहजी का स्वर्गवास (इनके पितामह) महाराजा विजयसिंहजी के जीतेजी हो जाने से, वि० सं० १८५० की आषाढ सुदि १२ (ई० सं० १७६३ की २० जुलाई) को, यह अपने दादा के उत्तराधिकारी हुए।

इनका जन्म वि० सं० १८२३ की आषाढ सुदि १२ (ई० सं० १७६६ की १६ जुलाई) को हुआ था। जिस समय महाराजा विजयसिंहजी का स्वर्गवास हुआ, उस समय यह अपना विवाह करने के लिये जयसलमेर गए हुए थे; परन्तु उक्त सूचना के मिलते ही, पौकरन-ठाकुर सवाईसिंह के साथ, जोधपुर आकर यहाँ की गद्दी पर बैठे।

इसी बीच इनके चचा ज़ालिमसिंह और चचेरे भाई मानसिंहजी भी जोधपुर के करीब पहुँच चुके थे^१। परन्तु भीमसिंहजी के क़िले पर चढ़ जाने के कारण उन्हें, क़ूपावत और मेढ़तिया सरदारों को साथ लेकर, जोधपुर से लौट जाना पड़ा। इसके बाद उन्होंने मारवाड़ में लूट-मार शुरू की। परन्तु शीघ्र ही महाराजा भीमसिंहजी ने उनके उपद्रव को दबाने के लिये एक सेना भेज दी। यह देख ज़ालिमसिंह गोडवाड़ की तरफ़ चला गया और मानसिंहजी ने जालोर के सुदढ़ दुर्ग का आश्रय ग्रहण किया।

१. ख्यातों में भीमसिंहजी का जयसलमेर से पौकरन होते हुए, आषाढ सुदी ६ (१७ जुलाई) को जोधपुर के क़िले में पहुँचना लिखा है।
२. एक स्थान पर इनका जन्म वि० सं० १८३३ की आश्विन सुदि १२ को होना लिखा है। परन्तु जब इनके पिता का देहान्त वि० सं० १८२६ में ही होगया था, तब यह जन्म संवत् कैसे सही हो सकता है।
३. महाराजा विजयसिंहजी के स्वर्गवास की सूचना पाते ही ज़ालिमसिंह और मानसिंहजी दोनों जोधपुर आकर नगर के बाहर शेखावतजी के तालाब पर ठहरे थे; क्योंकि सरदारों ने उन्हें क़िले में जाने से रोक दिया था। उस समय चांपावत-सरदार और उनके पक्ष के अन्य कई सरदार भी भीमसिंहजी के पक्ष में थे।
४. किसी-किसी ख्यात में ज़ालिमसिंह का सोजत पर अधिकार कर लेना लिखा है।

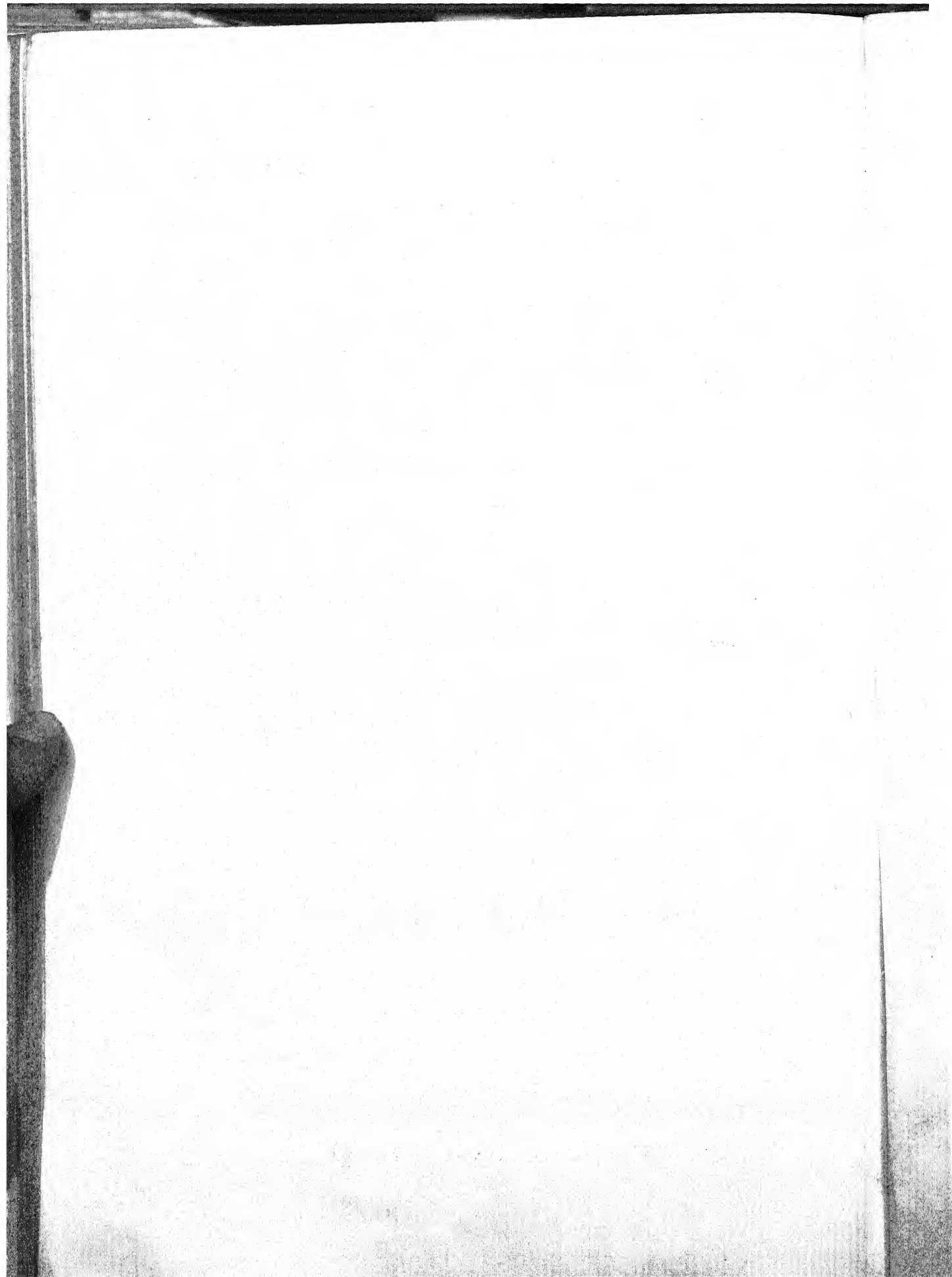


MAHARAJA BHIM SINGH

महाराजा भीमसिंहजी-भावदू

३१. महाराजा भीमसिंहजी

वि० सं० १८५०-१८६० (ई० सं० १७६३-१८०३)



महाराजा भीमसिंहजी

इस प्रकार मारवाड़ में शान्ति हो जाने पर महाराजा भीमसिंहजी ने अपने पक्ष के सरदारों आदि को, जिन्होंने इन्हें भँवर के युद्ध और जोधपुर की गद्दी प्राप्त करने में सहायता दी थी, यथोचित पुरस्कार (जागीरें आदि) देकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

अगले वर्ष (वि० सं० १८५१=ई० सं० १७९४ में) मरहटों ने (लखवा की अधीनता में) मारवाड़ पर चढ़ाई की^१। परन्तु महाराज ने भीतरी उपद्रव को दबाए रखने के विचार से उन्हें सेना के खर्च के लिये कुछ रुपये देकर लौटा दिये।

अपनी अनुपस्थिति में जालिमसिंह और मानसिंहजी के राज्य पर अधिकार करने का उद्योग करने के कारण यह उनसे अप्रसन्न हो गए थे। इसीसे वि० सं० १८५३ (ई० सं० १७९६) में इन्होंने अपने चचा जालिमसिंह से गोडवाड़ छीन लिया। परन्तु इनके चचेरे भाई मानसिंहजी, जालोर-दुर्ग का आश्रय मिल जाने से, अपनी स्थिति को सम्हाले रहे। यह देख, वि० सं० १८५४ (ई० सं० १७९७) में, इन्होंने सिंधी अखैराज को जालोर पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। यद्यपि उसने जाकर जालोर के आस-पास के प्रदेश पर अधिकार कर लिया, तथापि क़िला और नगर उसके हाथ न आ सका।

इसी वर्ष जालिमसिंह ने, उदयपुर की सहायता प्राप्त कर, मारवाड़ पर चढ़ाई की। परन्तु महाराजा की आज्ञा से सिंधी बनराज ने उसे काछबली की घाटी में रोक दिया। वहीं पर वि० सं० १८५५ (ई० सं० १७९८) में जालिमसिंह का स्वर्गवास हुआ। इससे उधर का सारा झगड़ा अपने आप शान्त हो गया।

१. ख्यातों से ज्ञात होता है कि पौकरन-ठाकुर सवाईसिंह ने अपनी की हुई सेवा के उपलक्ष्य में फलोदी का प्रान्त जागीर में चाहा था और महाराजा भीमसिंहजी ने उसकी यह प्रार्थना स्वीकार भी कर ली थी; परन्तु सिंधी जोधराज के, सरदारों को परगना जागीर में देने का, विरोध करने से यह कार्य न हो सका। इससे उक्त ठाकुर अप्रसन्न हो गया और उसने तीर्थ-यात्रा के बहाने दिल्ली पहुँच लखवा को जोधपुर पर चढ़ाई करने के लिये तैयार किया।
२. वि० सं० १८५२ के चैत्र (ई० सं० १७९६ के अप्रैल) में महाराज ने सिंध के भूतपूर्व शासक मियाँ अब्दुल्ला की तृतीय पुत्र फ़ज़लअलीख़ाँ को निर्वाह के लिये जागीर दी।
३. इसी ने वि० सं० १८५७ (ई० सं० १८००) में जोधपुर के पास का अखैराज (अखैराजजी का) तालाब बनवाया था।
४. यह प्रान्त महाराजा विजयसिंहजी की तरफ़ से मानसिंहजी को जागीर में दिया गया था।
५. यह उदयपुर महाराना जगतसिंहजी का दौहित्र था।
६. किसी-किसी ख्यात में इसका मेवाड़ में मरना लिखा है।

मारवाड़ का इतिहास

इसी वर्ष महाराजा भीमसिंहजी ने सिंधी अखैराज से अप्रसन्न होकर उसे कैद कर दिया। इससे जालोर का घेरा शिथिल पड़ गया। इसके बाद वि० सं० १८५८ (ई० सं० १८०१) में जिस समय महाराजा भीमसिंहजी जयपुर-नरेश प्रतापसिंहजी की बहन से विवाह करने को पुष्कर गए, उस समय मानसिंहजी ने चुपचाप जालोर के क़िले से निकल पाली नगर को लूट लिया। इसकी सूचना मिलते ही महाराज की तरफ़ से सिंधी चैनकरण और बलूदा-ठाकुर चांदावत बहादुरसिंह उनको पकड़ने को चले। उन्होंने साकदड़ा स्थान पर पहुँच मानसिंहजी को घेर लिया। उस समय उन (मानसिंहजी) के साथ थोड़ीसी सेना होने से सम्भव था कि वह पकड़ लिए जाते, परन्तु उनके साथ के कुछ वीरों ने, राजकीय सेना को सम्मुख-युद्ध में फँसा कर, उनको जालोर पहुँच जाने का मौक़ा दे दिया। इस घटना के बाद सिंधी बनराज को फिर जालोर पर घेरा डालने की आज्ञा दी गई।

इसी वर्ष सरदारों में नाराज़ी फैल जाने से वे कालू नामक गाँव में इकैठे होकर आस-पास के प्रदेश में उपद्रव करने लगे। इस पर महाराज की आज्ञा से भंडारी धीरजमल ने वहाँ पहुँच उन्हें कालू से खदेड़ दिया। अगले वर्ष (वि० सं० १८५९=ई० सं० १८०२ में) सरदारों के षड्यंत्र से महाराज का दीवान जोधराज, अपने घरमें सोई हुई हालत में, मार डाला गया। इससे क्रुद्ध होकर महाराज ने आउवा, आसोप, चंडावल, रास, रोयट, लांबियाँ और नींबाज के ठाकुरों की जागीरें ज़ब्त

१. यद्यपि वि० सं० १८४७ (ई० सं० १७९०) में ही अजमेर पर मरहटों का अधिकार हो गया था, तथापि मसूदा, खरवा, सुमेल, भिणाय और पिशांगण पर उस समय तक महाराज का ही शासन था।

२. ख्यातों में इस घटना का समय वि० सं० १८५८ की आषाढ सुदि १४ (ई० सं० १८०१ की २४ जुलाई) लिखा है।

३. उस समय यही महाराज की जालोर-स्थित सेना का सेनापति था।

४. ख्यातों में लिखा है कि उस समय खेजड़ला-ठाकुर के भाई भाटी जोधसिंह ने मानसिंहजी से निवेदन किया कि आप तो जालोर चले जायँ और विपन्न की सेना के मुकाबले का भार हम-लोगों पर छोड़ दें।

५. यद्यपि इस षड्यंत्र में पौकरन, रीयाँ आदि के और भी अनेक सरदार शामिल थे, तथापि वे लोग बाद में इससे अलग हो गए थे।

महाराजा भीमसिंहजी

करंली और साथ ही सिंधी इन्द्रराज को देख में इकट्ठे हुए सरदारों को मारवाड़ से बाहर निकाल देने की आज्ञा दी। उन दिनों तिंवरी के पुरोहित भी सरदारों से मिले हुए थे। इसीसे इन्द्रराज ने उनके वहाँ पहुँच उनसे बीस हजार रुपये दण्ड के वसूल किए और इसके बाद आगे बढ़ सरदारों का पीछा किया। उसको इस प्रकार अपने पीछे लगा देख वे लोग गोडवाड़ की तरफ होते हुए मेवाड़ में चले गए। इस काम से छुट्टी मिलते ही इन्द्रराज ने मरहटों के चढ़े हुए रुपये देकर उनसे साँभर, परबतसर, आदि के परगने वापस ले लिए और फिर जालोर पहुँच, वि० सं० १८६० की सावन सुदि ७ (ई० सं० १८०३ की २६ जुलाई) के आक्रमण में, वहाँ के नगर पर अधिकार कर लिया। इससे किले वालों का बाहरी सम्बन्ध बिल्कुल टूट गया और थोड़े ही दिनों में रसद आदि की कमी होजाने से मानसिंहजी को किला छोड़ कर निकल जाने का इरादा करना पड़ा। परन्तु इसी समय देवनाथ नाम के एक योगी ने उन्हें कुछ दिन और धैर्य रखने की सलाह दी। यद्यपि उस समय किले में रसद के न रहने से भीतर वालों को हर बात का कष्ट था, तथापि मानसिंहजी ने योगी के कथन का विश्वास कर, कुछ दिन के लिये, किला छोड़कर निकल जाने का विचार स्थगित कर दिया।

वि० सं० १८६० की कार्तिक सुदि ४ (ई० सं० १८०३ की १६ अक्टोबर) को जोधपुर में महाराजा भीमसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। इस समाचार के जालोर पहुँचते ही भंडारी गंगाराम और सिंधी इन्द्रराज ने, महाराजा भीमसिंहजी के पीछे पुत्र न होने से, वह चलता हुआ युद्ध तत्काल बंध कर दिया।

१. धीरजमल ने लांबियाँ और रास पर पहले ही अधिकार कर लिया था और इस समय वह नींबाज को घेरे था। परन्तु नींबाज-ठाकुर के पुत्र के महाराज से क्षमा मांग लेने पर केवल पीपाड़ ज़ब्त किया जाकर बाकी की जागीर उसे लौटा दी गई।
२. वि० सं० १८४७ (ई० सं० १७९०) में, महाराजा विजयसिंहजी के समय, ये परगने, रूपयों की एवज़ में, मरहटों को सौंपे गए थे।
३. इसी आक्रमण में सिंधी बनराज मारा गया था। जालोर से मिले लेख में भी उसका सावन सुदि ७ के मरने में मारा जाना लिखा है।
४. पीठ में फोड़ा निकलने से इनका स्वर्गवास हुआ था।

मारवाड़ का इतिहास

महाराजा भीमसिंहजी ने करीब १० वर्ष राज्य किया था । यह महाराजा दानी, वीर और न्याय-प्रिय थे । फिर भी कुछ लोगों के बहकाने से इनका बरताव अपने बान्धवों के साथ बहुत कड़ा रहा था ।

यद्यपि इनके कोई पुत्र नहीं था, तथापि इनके स्वर्गवास के बाद कुछ सरदारों ने इनकी रानी के गर्भवती होने की घोषणा करदी और उसी गर्भ से बादमें धौकलसिंह का जन्म होना प्रकट किया गया । परन्तु अन्त में यह षड्यंत्र असफल हुआ ।

मंडोर में का महाराजा अजितसिंहजी पर का देवल (स्मारक-भवन), जो अधूरा रह गया था, इन्हीं के समय समाप्त हुआ था ।

-
१. महाराजा भीमसिंहजी ने, वि० सं० १८५१ (ई० सं० १७६४) में, (जोधपुर परगने का) बघडा नामक गांव एक मन्दिर के निर्वाहार्थ दिया था ।

शुद्धिपत्र नं० १

श्रावणादि और चैत्रादि संवतों का अन्तर

| पृष्ठ | पंक्ति | श्रावणादि संवत् | चैत्रादि संवत् |
|-------|--------|---|---|
| ६५ | १-२ | वि० सं० १४८० की चैत्र-सुदी ३ (ई० सं० १४२३ की १५ मार्च) | वि० सं० १४८१ की चैत्र सुदि ३ (ई० सं० १४२४ की ४ मार्च) |
| ६८ | २६ | वि० सं० १५६५ (ई० सं० १५३८) | वि० सं० १५६६ (ई० सं० १५३९) |
| ७० | ४-५ | वि० सं० १४४६ की वैशाख सुदी ४ (ई० सं० १३६२ की २८ अप्रैल) | वि० सं० १४५० की वैशाख सुदि ४ (ई० सं० १३६३ की १६ अप्रैल) |
| ८३ | २-३ | वि० सं० १४७२ की वैशाख वदी ४ (ई० सं० १४१५ की २६ मार्च) | वि० सं० १४७३ की वैशाख वदि ४ (ई० सं० १४१६ की १७ मार्च) |
| १०२ | ८ | वि० सं० १५४५ की वैशाख सुदी ५ (ई० सं० १४८८ की १६ अप्रैल) | वि० सं० १५४६ की वैशाख सुदि ५ (ई० सं० १४८९ की ६ अप्रैल) |
| १०४ | २-३ | वि० सं० १५४५ की ज्येष्ठ सुदी ३ (ई० सं० १४८८ की १४ मई) | वि० सं० १५४६ की ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० सं० १४८९ की ३ मई) |
| १०४ | २४ | वि० सं० १२३६ (ई० सं० ११७६) | वि० सं० १२३७ (ई० सं० ११८०) |
| १०७ | २ | वि० सं० १५४८ की चैत्र सुदी ३ (ई० सं० १४९१ की १३ मार्च) | वि० सं० १५४९ की चैत्र सुदि ३ (ई० सं० १४९२ की १ मार्च) |
| १०७ | ५-६ | वि० सं० १५४८ की वैशाख सुदी ३ (ई० सं० १४९१ की १२ अप्रैल) | वि० सं० १५४९ की— प्रथम वैशाख सुदि ३ (ई० सं० १४९२ की ३१ मार्च) |
| १०९ | ७-८ | वि० सं० १५१४ की वैशाख वदी ३० (ई० सं० १४५७ की २३ अप्रैल) | वि० सं० १५१५ की वैशाख वदि ३० (ई० सं० १४५८ की १३ अप्रैल) |
| १११ | ३ | वि० सं० १५४० की वैशाख सुदी ११ (ई० सं० १४८३ की १८ अप्रैल) | वि० सं० १५४१ की वैशाख सुदि ११ (ई० सं० १४८४ की ६ मई) |
| ११४ | ७ | वि० सं० १५८८ (ई० सं० १५३१) | वि० सं० १५८९ (ई० सं० १५३२) |
| ११५ | १ | वि० सं० १५८८ की ज्येष्ठ सुदी ५ (ई० सं० १५३१ की २१ मई) | वि० सं० १५८९ की ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० सं० १५३२ की ९ मई) |

| पृष्ठ | पाक | श्रावणादि संवत् | चैत्रादि संवत् |
|-------|-------|--|--|
| ११६ | २-३ | वि० सं० १५८८ की आषाढ वदी ५ (ई० सं० १५३१ की ५ जून) | वि० सं० १५८६ की आषाढ वदि ५ (ई० सं० १५३२ की २४ मई) |
| १२० | १ | वि० सं० १५६३ (ई० सं० १५३६) | वि० सं० १५६४ (ई० सं० १५३७) |
| १४६ | २२ | वि० सं० १५८८ (ई० सं० १५३१) | वि० सं० १५८६ (ई० सं० १५३२) |
| १७६ | २७ | वि० सं० १६५० | वि० सं० १६५१ |
| १७६ | ३१ | वि० सं० १६३६ | वि० सं० १६४० |
| १८७ | ७ | वि० सं० १६६५ (ई० सं० १६०८) | वि० सं० १६६६ (ई० सं० १६०९) |
| २८८ | १७-१८ | वि० सं० १७५७ (ई० सं० १७००) | वि० सं० १७५८ (ई० सं० १७०१) |
| ३०० | २२ | वि० सं० १७६६ | वि० सं० १७६७ |
| ३१५ | ३१ | वि० सं० १७७५ | वि० सं० १७७६ |
| ३४३ | ७ | वि० सं० १७८७ | वि० सं० १७८८ |
| ३४३ | २६ | वि० सं० १७८७ | वि० सं० १७८८ |

शुद्धिपत्र नं० २.

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|-------|--------|---|--|
| १७ | ६ | “आलमगीर नामे” | “आलमगीर नामे” |
| २१ | ७ | ३५ .. | ४३ |
| ३१ | २ | राव सीहाजी .. | १ राव सीहाजी |
| ३४ | २७ | पृ० ३० .. | पृ० ६३० |
| ४२ | २ | राव सीहाजी .. | राव सीहाजी ^१ |
| ७३ | २२ | वि० सं० १४८५ (ई० स० १४२८) | वि० सं० १४८४ (ई० स० १४२७) |
| ७५ | १४ | थी, .. | थी, ^२ |
| ७७ | ४-५ | वि० सं० १५६४ (ई० स० १५३७) | वि० सं० १४६४ (ई० स० १४३७) |
| ७७ | ८ | पड़ी .. | पड़ी ^१ । |
| ८३ | १ | राव जोधाजी .. | १५ राव जोधाजी |
| ८७ | १७ | चाचा .. | चाचा |
| ८६ | ३ | सके । .. | सके ^१ । |
| ९१ | ८ | उनके .. | उनकी |
| १०७ | ३ | की है । .. | की है ^२ । |
| ११५ | २६ | ई० स० १७६० .. | ई० स० १७६१ |
| १२३ | १२ | १५४१ .. | १५४२ |
| १२५ | ६ | (ई० स० १५४१) .. | (ई० स० १५४२) |
| १३८ | १ | वि० सं० १६१४ (ई० स० १५५७) | वि० सं० १६१५ (ई० स० १५५८) |
| १३८ | १३ | (ई० स० १५६१) .. | (ई० स० १५६२) |
| १३६ | २८ | इन्हीं .. | इसी |
| १४३ | १४ | वि० सं० १५४५=ई० स० १४८८ | वि० सं० १५५५=ई० स० १४६८ |
| १४६ | २७ | (हि० स० ६७१ .. | (हि० स० ६७० |
| १५७ | १५ | इसी वर्ष (१६३३) के कार्तिक (ई० स० १५७६ के अक्टोबर) | (कहीं वि० सं० १६३२ का कार्तिक (ई० स० १५७५ का अक्टोबर) लिखा है । |
| १५७ | २६ | समय-समय .. | समय-समय |

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|-------|--------|---|---|
| १६१ | ८ | जयपुर के .. | आंबेर के * |
| १६८ | २-३ | वि० सं० १६३६ (ई० सं० १५८२) | वि० सं० १६३८ (ई० सं० १५८१) |
| १७७ | १५ | जगमल .. | जगमाल |
| १८३ | २१ | है:— .. | है:— |
| १६० | २४ | थी । .. | था । |
| १६४ | ४ | लौदी .. | लोदी |
| १६५ | १४ | वि० सं० १६७५ .. | (पालनपुर की तवारीख में इस सम्बत् के साथ ही हि० सं० १०२६ लिखा है । यह विचारणीय है । |
| १६७ | १ | १८ सितंबर .. | ६ सितंबर |
| २०१ | ५ | चैत्र सुदि ६ (.....११ मार्च) | ज्येष्ठ सुदि १३ (.....१२ मई) |
| २०५ | ७ | २६ .. | २८ |
| २०५ | २८-३० | फुटनोट २ .. | २ तुलुक जहांगीरी पृ० ४३४ |
| २१५ | ७ | (१० दिसंबर) .. | (१० नवंबर) |
| २१६ | २-३ | करीब २ या १ ½ मास .. | (करीब २ या १ ½ मास ?) |
| २२० | १ | (ई० सं० १६५८) .. | (ई० सं० १६५७) |
| २२३ | २ | किया । .. | किया । |
| २३३ | १० | पौष सुदि ६ (२७ दिसंबर) .. | वि० सं० १७१८ की पौष सुदि ६ (ई० सं० १६६१ की १७ दिसम्बर) |
| २३३ | २६ | (वि० सं० १५१६) | (वि० सं० १७१६) |
| २३३ | ३० | वि० सं० १७१७ की मंगसिर सुदि ५ तक गुजरात में रहना .. | वि० सं० १७१८ की पौष वदि ५ या ७ को गुजरात से खाना होना |
| २४१ | १३ | वि० सं० १७३३ की चैत्र वदि ३ (ई० सं० १६७६ की १२ मार्च) | वि० सं० १७३२ की चैत्र वदि ३० (ई० सं० १६७६ की ४ मार्च) |

* जयपुर नगर वि० सं० १७८४ (ई० सं० १७२७) में सवाई राजा जयसिंहजी ने बसाया था । इसलिये इस इतिहास के पृष्ठ २०३ (पंक्ति १०), २०५ (पं० ११), २२८ (पं० २७), २६३ (पं० २८), २६४ (पं० २०), २६६ (पं० २६), ३०२ (पं० ४, २२, २५), ३११ (पं० १७), ३१३ (पं० १६), ३१५ (पं० १७, १६), ३२४ (पं० २०), ३२५ (पं० १७) और ३३२ (पं० ३०) पर छपे जयपुर शब्द के स्थान पर उक्त राज्य की प्राचीन राजधानी आंबेर सम्मना चाहिए ।

